अभिनंदन ग्रंथ



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

शारीरिक विकलांग, विवशता तथा भौतिक जगत् की परिस्थितियों की विषमताओं ने डॉ. गुप्त अन्तर्मुखी और अन्तर्द्रष्टा बना दिया है। इसीलिए उनमें भावना, उद्भावना (कल्पना) और चिन्तन की प्रधानता है। इसी अन्तर्मुखता के कारण वे सूक्ष्म को स्थूल से अधिक महत्व प्रदान करते हैं। अन्तर्दृष्टि सम्पन्न होने के कारण ही वे कविर्मनीषी हैं, अर्थात् कवि हैं और मनीषी दार्शनिक भी। समृद्ध मनीषा से सम्पन्न होने के कारण वे प्रज्ञापुरुष हैं।

-डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा

\+ + +

आशा और आकांक्षा की तरलता, जीवन की कठिनता और कोमलता, सौन्दर्य-बोध के पुरातन एवं नूतन संस्कारों से ओत-प्रोत, अस्तित्व-बोध और मानवीय चेतना की गहरी संवेदनशीलता, सतत् अध्ययनशीलता और गहन ज्ञान की अभिव्यक्ति की निरन्तर आतुरता एक साथ जिसमें लक्षित होती है वे हैं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त। उनमें अटूट जिजीविषा है जो विषम परिस्थितियों में भी निरन्तर उन्हें कार्य करने की प्रेरणा देती रहती है। उनकी ऋजुता और कोमलता ऐसी कि एक बार जो उनसे मिलता है उन्हीं का हो जाता है।

-डॉ. कमलाशंकर त्रिपाठी

\+ + +

'विद्या ददाति विनयम्' की उक्ति उन पर पूर्णतया घटित होती है। वे एक अत्यन्त विनम्र, शिष्ट और आतिथेय व्यक्ति हैं। उनका निश्छल, सरल और सात्विक जीवन एक खुली पुस्तक है जिसका कोई भी पृष्ठ न तो विशृंखलित हुआ है, न ही मैला। एक बात और कह दूँ - डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने 'द' सीखा है ' - दया, दान और दमन - तीनों ही इसमें शामिल हैं औरों की तो मैं नहीं जानता लेकिन मैंने उनसे बहुत कुछ लिया है।

- डॉ. रामजीत मिश्र

ISBN 978-81-7977-589-9

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अभिनन्दन ग्रंथ

हीरक जयंती के अवसर पर प्रकाशित

संपादक

डॉ. मुरारीलाल सारस्वत
डॉ. एन. एल. शर्मा
डॉ. मोहनलाल मौर्य
डॉ. गोविन्द दीक्षित
डॉ. नितिन सेठी

प्रकाशक
प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली

- कृति : डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अभिनंदन ग्रंथ
- संस्थान : अमृत महोत्सव समिति, बरेली
- संस्मरण : 2016
- मूल्य : 1500 रु. (पन्द्रह सौ रुपए मात्र)
- प्रकाशन : प्रकाश बुक डिपो, बरेली
- प्रकाशन सहयोग : अभिलेख प्रकाशन, बरेली
- मुद्रक : नारायण प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स,
  नैनीताल रोड, बरेली
  चलयंत्र - 9808115065
- प्राप्ति स्थान :
  1. प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली।
     मो. 9359103571
  2. श्री इंद्रदेव त्रिवेदी अमृत महोत्सव समिति,
     बिहारीपुर खत्रियान, बरेली।
     मो. 9359106329
  3. अभिलेख प्रकाशन, एम-12, त्रिवटीनाथ,
     बरेली। मो. 9568714129
  4. डॉ. मुरारीलाल सारस्वत, त्रिशूल एन्क्लेव,
     बरेली। मो. 9412462219
  5. डॉ. मोहनलाल मौर्य, बदायूँ।
     मो. 9410429499

ISBN 978-81-7977-589-9

अभिनन्दनीय :
डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

हम न करेंगे अपनों का तो
फिर अभिनन्दन कौन करेगा ?
अति विशिष्ट हैं वे अपने में
वही क्षेत्र में एक मात्र हैं
इसकी स्वीकृति कृपा न उन पर
वे इसके सर्वथा पात्र हैं
देव न पूजें हम अपने तो
पूजन-चन्दन कौन करेगा ?
जो पा रहे उसे पाने को
वे तो पूरे अधिकारी हैं
सम्मानित कर सम्मानित हैं
हम ही उनके आभारी हैं
हमीं तिलक यदि नहीं करेंगे
अक्षत-चन्दन कौन करेगा ?
हम अतिरिक्त न कुछ देते हैं
यह उनका प्राप्तव्य रहा है
सच पूछा उनका कृतित्व सब
सम्मानों से भव्य रहा है
वे आरुढ़ न हों तो सार्थक
युग का स्यंदन कौन करेगा ?
मूल्य उन्हीं के द्वारा अर्जित
हम तो मूल्यांकन करते हैं
पूजनीय वे बने तभी तो
हम पूजन-अर्चन करते हैं
हम मूल्यांकन करें न तो फिर
सोना, कुन्दन कौन करेगा ?
वे उत्तीर्ण हुए जीवन में
पग पग पर ली गई परीक्षा
सब महती प्राप्तियाँ उन्हीं की
यह तो सम्यक, सुष्ठु समीक्षा
हमीं न सीचेंगे तो अपनी
बगिया नन्दन कौन करेगा ?



–चन्द्रसेन विराट
121, बैंकुंठधाम कॉलोनी, आनन्द बाजार के पीछे,
इन्दौर–452018 (म.प्र.) मो.09329895540



सम्पादकीय

साहित्य का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके अंतर्गत धर्म, दर्शन, विज्ञान, काव्य, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि सभी आ जाते हैं। काव्य को साहित्य का पर्याय माना गया है जो भाव जगत की सृष्टि है और मानव समाज के विचारों का आधार है। इसके द्वारा मानव जीवन की अभिव्यक्ति और सम्पूर्ण ज्ञान की चेतना का बोध होता है। साहित्य की अभिव्यक्ति गद्य, पद्य तथा गद्य और पद्य के समिश्रण द्वारा की जाती है। इसके अन्तर्गत कविता, नाटक, चम्पू, उपन्यास, कहानी, आत्मकथा, संस्मरण, समालोचना तथा पत्रकारिता आदि सभी कुछ आ जाता है। इनमें से एक विधा को समर्पित व्यक्ति भी साहित्य में स्थापित हो जाता है फिर जिसने विविध विधाओं में विपुल सर्जना की हो उसका तो कहना ही क्या ? डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक ऐसे ही महान चिन्तक, कवि, लेखक, समालोचक, पत्रकार तथा शोध निर्देशक है जिन्होंने अपनी अप्रतिम जिजीविषा द्वारा अध्ययन, मनन, चिन्तन द्वारा साहित्य में अभिनन्दनीय स्थान बनाया है।

आकारगत सीमाओं से ऊपर उठ जाना ही सच्ची साधना और जीवन संघर्ष है। संकल्पनिष्ठ, संघर्षशील, स्वाभिमानी व्यक्ति शारीरिक और भौतिक विवशताओं को परास्त करता हुआ उत्कर्ष के शिखर तक पहुँच ही जाता है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने उसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अपनी शारीरिक विकलांगता और उससे उत्पन्न बाधाओं को अतिक्रान्त करते हुए साहित्य के क्षेत्र में अपार ख्याति अर्जित की है। उनकी सतत्, समर्पित साधना ने उन्हें सिद्धि और प्रसिद्धि के उस शिखर तक पहुँचा दिया है जहाँ पहुँचकर व्यक्ति आदरणीय और अभिनन्दनीय हो जाता है।

नैसर्गित प्रतिभा सम्पन्न डॉ. गुप्त भौतिक जगत की परिस्थितियोंवश अन्तर्मुखी और अन्तर्द्रष्टा बन गये हैं। इसी कारण उनमें भावना, कल्पना और चिन्तन की प्रधानता है। सूक्ष्म को स्थूल से अधिक महत्व देना उनके अन्तर्मुखी स्वभाव के कारण है तो अन्तर्दृष्टि उन्हें सफल कवि, रचनाकार, मनीषी, दार्शनिक तथा प्रज्ञापुरुष बनाती है। दृढ़निश्चयी डॉ. गुप्त सतत् संघर्ष, कठिन परिश्रम के साथ समर्पित भाव से साहित्य साधना में लीन हैं। छियत्तर वर्ष की आयु में भी अपरिमित ऊर्जावान रहकर प्रतिदिन अठारह घण्टे स्वाध्याय और लेखन में लीन रहते हैं। साहित्य की प्रायः हर विधा में उनका अनूठा योगदान है। पत्रकारिता के क्षेत्र में स्तरीय त्रैमासिक 'साहित्यायन' का सम्पादन करके हिन्दी साहित्य जगत में दिनोंदिन चर्चित हो रहे हैं।

वर्ष 2009 में प्रकाशित 'साहित्यायन' का 208 पृष्ठीय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

विशेषांक उनके साहित्यिक अवदान को पाठकों तक पहुँचाने में सफल रहा और लोकप्रिय भी हुआ फिर भी उनके विशाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व को समग्रता से प्रस्तुत करने हेतु एक विस्तृत अभिनन्दन ग्रन्थ की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसी क्रम में उनकी हीरक जयन्ती पर प्रस्तुत अभिनन्दन ग्रन्थ में उनके बहुआयामी साहित्यिक अवदान को समग्र रूप में समाहित करते हुए मनीषियों की दृष्टि में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के मूल्यांकन के साथ आदर भाव को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अभिनन्दन ग्रन्थ आठ सोपानों में विभक्त है जो क्रमशः डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त - साहित्य सृजन एवं अवदान, समीक्षा के निकष पर सृजन, सृजन पर शोधकार्य, डॉ. गुप्त के निर्देशन में शोधकार्य, आत्मीयों एवं मनीषियों की दृष्टि में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, पत्र-पत्रिकाओं में डॉ. गुप्त तथा चित्रवीथी के रूप में हैं। हम आशा करते हैं कि प्रस्तुत सामग्री डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के विशाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व का समग्र रूप से मूल्यांकन करने में सक्षम होगी और पाठकों में लोकप्रियता पायेगी। उनकी हीरक जयन्ती पर समर्पित यह भाव सुमन रूपी अभिनन्दन ग्रन्थ सुधी एवं सुहृदय पाठकों के करकमलों में उनका असीम स्नेह पाने की अपेक्षा के साथ समर्पित हैं।

हम उन सभी लेखकों, विद्वानों और आत्मीयजनों का आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने अपना रचनारूपी आशीर्वाद इस अभिनन्दन ग्रन्थ हेतु प्रदान किया है। हमारे दो विद्वान सहयोगी डॉ. रामस्वरूप आर्य (बिजनौर) तथा श्री इसरार अहमद 'सरमद' (अमरोहा) के आकस्मिक निधन पर गहरा शोक व श्रद्धांजलि अर्पित है।

पुनः उन सभी विद्वत्जनों को धन्यवाद ज्ञापित करते हैं जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग इस सारस्वत यज्ञ में हमें प्राप्त हुआ है।

इति शुभम्

-डॉ. मुरारीलाल सारस्वत
मो. 9412462219





प्रकाशकीय

सुप्रसिद्ध साहित्यकार, गतिशील रचनाधर्मी, सकारात्मक चिंतक, भारतीय संस्कृति के संवाहक और रचनात्मक लेखन के धनी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के इस अभिनंदन ग्रंथ को आपको समर्पित करते हुए अतीव हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस अभिनंदन ग्रंथ को हम लोगों ने डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की हीरक जयन्ती पर सम्मानार्थ आत्मार्पित किया है। इसी से इस ग्रंथ की महत्ता और द्विगुणित हो जाती है कि इसमें संकलित लेख-कवितायें-टिप्पणी मात्र डॉ. गुप्त की प्रशंसा को ही इंगित नहीं करतीं, बल्कि एक उच्चकोटि के शोधग्रन्थ के संक्षिप्त रूप को हम सबके समक्ष उद्‌घाटित करती हैं।

डॉ. गुप्त ने अब तक अपने द्वारा लिखित रचनाओं के माध्यम से भारतीय अस्मिता, संस्कृति, प्रकृति एवं इतिहास के वास्तविक स्वरूप का सत्यान्वेषण कर साहित्याकाश को और भी ऊर्ध्वगति प्रदान की है। हमें यह भी विदित है कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने अब तक लोगों को शोध कराकर उन्हें भी शोध की सर्वोच्च डिग्री प्राप्त करने का सुअवसर उपलब्ध कराकर उनकी भी प्रतिष्ठा शिक्षा के क्षेत्र में स्थापित करने का नेतृत्व किया है। इसी सारस्वत योगदान का स्मरण कर उनका अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन और भी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। हम इस तथ्य से भी अवगत है कि 'साहित्यायन' पत्रिका का प्रत्येक प्रकार से निर्देशन कर साहित्य जगत में इसे स्थापित करने में आपने अग्रणी भूमिका का निर्वहन किया है और साहित्य की जितनी भी विधायें हैं, उससे सम्बन्धित प्रकाशन कर नये एवं पुराने रचनाकारों को प्रेरित किया है कि वे अपनी प्रतिभाओं का यहाँ प्रकाशन करवाकर नवाचारी और भी प्रयोगों को परिपुष्ट कर सकते हैं, इसलिए इस अभिनंदन ग्रंथ की गरिमा महत्वपूर्ण हो गई है।

हम आभारी है उन रचनाकारों के, जिन्होंने अपने अनेक अनुभवों का डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी के लिए अंतर्मन से सहेजकर रखा है और आवश्यकता पड़ने पर हमें प्रेषित किया है ताकि हम उसे अभिनंदन ग्रन्थ में गरिमामयी स्थान दे सकें। हम आभारी हैं, उन साहित्य साधकों के जिन्होंने अखबारों/पत्रिकाओं की कतरनें और छपे लेखों, फोटोग्राफ्स आदि को हमें प्रेषित कर इस अभिनंदन ग्रंथ को बेहतरीन बनाने में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

इस अभिनंदन ग्रंथ में कई मर्मस्पर्शी तथ्य आये हैं, वहीं डॉ. गुप्त के अब तक के अनवरत जीवन संघर्ष से साहित्याकाश को स्पर्श करने का उपक्रम भी है। इस

अभिनंदन ग्रंथ में समसामयिक विषयों पर डॉ. गुप्त की टिप्पणियों का सत्यान्वेषण भी आपको देखने को मिलेगा। इस अभिनंदन-ग्रंथ में डॉ. गुप्त के पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं कर्म के प्रत्येक क्षेत्र की नयनाभिराम झांकियों का विविधता से चित्रण देखने को मिलेगा। इस अभिनंदन ग्रंथ में डॉ. गुप्त से संपृक्त अभिनन्दन अनेक लोगों के संस्मरण का जीता-जागता एवं मनोहारी दृश्य भी देखने को मिलेगा, जिससे जहाँ डॉ. गुप्त को और भी नया रचने की प्रेरणा प्राप्त होगी, वहीं पाठकवर्ग को भी और ऊर्जा प्राप्त होगी कि संघर्षमय जीवन के होते हुए भी कैसे सतत् शैक्षिक, सामाजिक और पारिवारिक ऊँचाइयाँ प्राप्त की जा सकती हैं।

इस अभिनंदन ग्रंथ के विषय में आप सबके विचारों एवं दृष्टिकोणों से हम अवगत होना चाहेंगे, इसलिए अपने आत्मीय शब्दों से अवगत अवश्य करायें। इस अभिनंदन ग्रंथ के प्रकाशन में 'प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली' का सहयोग सराहनीय है। उनका आभार तथा नारायण प्रिन्टर्स और अन्य सहयोगी बन्धुओं का हार्दिक धन्यवाद!

भवदीय :
इन्द्रदेव त्रिवेदी
सचिव-अमृत महोत्सव समिति, बरेली
मो. 9359106329

शुभकामना सन्देश

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, बरेली ने डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में पर अभिनन्दन ग्रन्थ निकालने की योजना बनायी है। लिखना तो बहुत कुछ चाहता था, लिखना आवश्यक भी था और उचित भी। पर, क्या करूँ! विवश हूँ। स्वास्थ्य साथ नहीं दे रहा है। पिछले कई महीनों से बीमार चल रहा हूँ। लिखना-पढ़ना सब बन्द-सा हो गया है।

लगभग पाँच दशक की साहित्य-साधना के फलस्वरूप आपने एक से बढ़कर एक जो उदात्त कृतियाँ साहित्य के सुधी समाज को दी हैं, उसके लिए वह सदा आपका ऋणी रहेगा। इस सारस्वत यज्ञानुष्ठान में जिन लोगों ने अपनी रचनात्मक समिधा का योगदान दिया है, वे सभी बधाई के पात्र हैं।

आपकी साहित्यिक आभा एवं सुवास से सम्पूर्ण हिन्दी जगत् प्रभावित तथा सुवासित है। आप और अधिक यशस्वी हों, आपका लेखन सार्थक हो, आपकी रचनाएँ उत्कृष्टता को प्राप्त करें और आगे भी आप इसी प्रकार सर्जनारत रहें, यही कामना है।

-डॉ. विवेकी राय

बड़ी बाग, गाजीपुर-233001 (उ.प्र.)

फोन नं. : (0548) 2221618, मोबाइल नं. : 9936031112



यशभारती से सम्मानित डॉ. विवेकीराय (जन्म 19 नवम्बर 1924) ने गद्य-पद्य की उपन्यास, कहानी, निबन्ध, रिपोर्ताज, व्यंग्य, संस्मरण, रेखाचित्र, समीक्षा और शोध आदि अनेक विधाओं में उच्च कोटि का साहित्य सृजन किया है। उनके बहुआयामी जीवन और साहित्य पर शताधिक शोधार्थियों ने 'विद्या वाचस्पति (पीएच.डी.) की उपाधि प्राप्त की है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के निर्देशन में भी दो शोध-छात्रों डॉ. पूनम यादव और डॉ. कुंज बिहारी सिंह ने डॉ. विवेकीराय के उपन्यासों पर कार्य करके पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है।

(सम्पादक)

सन्तोष कुमार गंगवार
SANTOSH KUMAR GANGWAR

सत्यमेव जयते

वित्त राज्य मंत्री
भारत सरकार
नई दिल्ली-110011
Minister of State for Finance
Government of India
New Delhi - 110 011



शुभकामना सन्देश

'चरैवेति-चरैवेति' के प्रेरक वाक्य को अपने जीवन का मंत्र मानने वाले डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपना सम्पूर्ण जीवन शिक्षा-शोध एवं साहित्य सेवा की त्रिवेणी में डूबकर व्यतीत किया है। 'अमृत महोत्सव समिति' उनके पिचहत्तरवें जन्मदिवस के शुभ अवसर पर एक भव्य अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन करने जा रही है, यह परम प्रसन्नता का विषय है।

मैं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त को इस अवसर पर शुभकामनायें प्रदान करता हूँ और उनके स्वस्थ व दीर्घजीवी होने की मंगलकामना करता हूँ।

(संतोष गंगवार)

138, नॉर्थ ब्लाक, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : 23093783, 23092377, 23094108 फैक्स : 23092680
138, North Block, New Delh-110001 Phone : 23093783, 23092377, 23094108, Fax : 23092680
बरेली कैम्प ऑफिस : टेलीफैक्स-0581-2577777, 2545555
Bareilly Camp Office : Telefax - 0581-2577777, 2545555

डॉ० अरुण कुमार
बी.एस.सी., एम.बी.बी.एस.
(लखनऊ),
डी.एन.बी., एफ.सी.जी.पी.
नगर विधायक, बरेली

सदस्य विधान सभा
उत्तर प्रदेश

निवास : 601-ए, ओ.सी.आर. बिल्डिंग,
लखनऊ, मो. 9837747102, 8765954823
कार्यालय : गाँधीनगर, इज्जतनगर, बरेली
मो. 9410025749, 0581-2541256

पत्रांक...................... दिनांक.........................



शुभकामना सन्देश

कर्मण्यता व कर्मठता के बल पर समय की शिला पर अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले यशस्वी-तपस्वी-मनस्वी बहुत थोड़े-से होते हैं। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अपने सृजनधर्मी व्यक्तित्व व साहित्यधर्मी कृतित्व के साथ आज भी सतत् क्रियाशील है। आपके द्वारा सम्पादित त्रैमासिक 'साहित्यायन' साहित्य व शोध की समादृत पत्रिका है। बुद्ध-सी करुणा, महावीर-सा ध्यान, ईसा-सी सहनशक्ति व विवेकानंद-सी मेधा का प्रातिभ साकल्य सप्रमाण आपमें देखा जा सकता है। राग-विराग-अनुराग से सर्वथा परे रहकर आप अद्यावधि साहित्य सृजन में संलग्न हैं। आपके आत्मीयों-मित्रों व शिष्यों द्वारा आपके अभिनंदन ग्रंथ की परिकल्पना की मैं अनुशंसा-अनुमोदन करता हूँ व इस पावन सुअवसर पर आपको शुभाषंसा ज्ञापित करता हुआ आपके उत्तम स्वास्थ्य की कामना करता हूँ।

(डॉ0 अरुण कुमार)

राजेश अग्रवाल

पूर्व मंत्री, कर एवं निबंधन, उ.प्र. सरकार
पूर्व उपाध्यक्ष, उ.प्र. विधान सभा
प्रदेश कोषाध्यक्ष, भा.ज.पा. उ.प्र.
वरिष्ठ रा.उपाध्यक्ष, अर्न्तराष्ट्रीय वैश्य फैडरेशन

फोन : 0581-2457878, 2477272
फैक्स : 0581-2577272
मो. 9412287576, 8765954824

ख-5 No. 774377

आवास : 53, गुलिस्ता कालोनी,
लखनऊ-226001

पत्रांक......................   दिनांक..........................



शुभकामना सन्देश

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त साहित्य जगत् का एक जाना-माना नाम है। बरेली कॉलेज के हिन्दी विभाग को आपने अपनी लम्बी सेवायें प्रदान की हैं। विवशता व विरोधाभासों ने आपको विचलित नहीं होने दिया। आप बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न शोधनिर्देशक हैं और अपने विचारों को अपने शब्दों के माध्यम से अपनी कृतियों में प्रतिफलित भी करते हैं।

मुझे ज्ञात हुआ है कि बरेली की अमृत महोत्सव समिति ने आपकी हीरक जयंती पर अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। मैं इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए आपके प्रेरणास्पद व्यक्तित्व को नमन करता हूँ और शुभकामनायें देता हूँ कि आप शत वर्षों से भी अधिक आयु प्राप्त कर इसी प्रकार साहित्य-सेवा में रत रहें।

परम चिन्मय आपको उत्तम स्वास्थ्य एवं अनथक शक्ति का भंडार देता रहे.....

(राजेश अग्रवाल)

निवास : 276, काली बाड़ी, बरेली-243005
E-mail : vaishrajeshbly05@yahoo.in

विषयानुक्रमणिका

प्रथम सोपान

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त : व्यक्ति एवं व्यक्तित्व

जीवन और व्यक्तित्व :-

1. जन्म एवं जन्मस्थान
2. पारिवारिक पृष्ठभूमि
3. शिक्षोपार्जन
4. व्याधियाँ और विकलांगता
5. दाम्पत्य जीवन
6. आजीविकोपार्जन
7. जिज्ञासु यायावर
8. अद्भुत जिजीविषामय व्यक्तित्व
9. प्रेरणाप्रद और कर्मठ जीवन
10. मान-सम्मान एवं पुरस्कार
11. साम्प्रतिक गतिविधियाँ

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त : व्यक्ति एवं व्यक्तित्व



आज का हिन्दी साहित्य गद्य-पद्य की समस्त प्रचलित विधाओं में लिखा जा रहा है। स्वाधीन भारत में सृजनरत रचनाकारों को आधुनिक के साथ ही समकालीन भी कहा जा सकता है। समकालीन रचनाकार गद्य-पद्य में समान रूप से सृजनशील हैं। ऐसे शत-शत रचनाकारों में एक विशिष्ट हस्ताक्षर हैं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त। बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी डॉ. गुप्त जी शिक्षक, साहित्यकार और पत्रकार हैं। एक साहित्यकार के रूप में आपको गद्य-पद्य पर समान अधिकार प्राप्त है। जिन समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में आम आदमी के दुःख-दर्द, संघर्ष विडम्बनाओं, स्थिति-परिस्थितियों, अवमूल्यन, असुरक्षा, शोषण जैसे विविध विषयों को उठाया है उनमें डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने अपनी कविताओं में वैयक्तिक अनुभव के साथ-साथ सामाजिक यथार्थ को भी बड़ी ही कुशलतापूर्वक अभिव्यक्ति प्रदान की है। आपके कृतित्व को समझने से पहले आपके जीवन और व्यक्तित्व को समझ लेना अपेक्षित प्रतीत होता है।

जीवन और व्यक्तित्व

व्यक्ति के आन्तरिक और बाह्य गुणों के संयोजित स्वरूप से व्यक्तित्व की सृष्टि होती है। प्रत्येक व्यक्ति के आचार-विचार, संस्कृति, प्रकृति, प्रवृत्ति, रहन-सहन, पहनावा एवं शारीरिक गठन भिन्न-भिन्न होने के कारण व्यक्तित्व भी अलग-अलग होता है। समकालीन साहित्यकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का साधारण मझोला कद है, चेहरा दाढ़ी-मूंछ विहीन, गोल एवं सुन्दर है जिस पर सौम्यता का आभास रहता है। भरा हुआ चौड़ा ललाट और सिर पर बिगरे-बिगरे तहजीव से पीछे की ओर को कढ़े हुए खिचड़ी बाल हैं, आँखों में अजीब-सा आकर्षण और जुबान में मृदुता एवं कोमलता है। हाथ-पैर असाध्य रोग संधिवातजन्य विकलांगता के कारण दुबले-पतले हैं। आप घर के अन्दर अक्सर सफेद बनियान एवं मृगछाला के समान चित्तीदार तहमद बांधते हैं। आपके पलंग के दायीं ओर एक बड़ी-सी अलमारी है जिसमें साहित्य की ढेरों पुस्तकें लगी हैं। डॉ0 गुप्त का अधिकांश समय पुस्तकों के अध्ययन, चिंतन एवं लेखन में गुजरता है। आप स्वभाव से बड़े ही आत्मीय एवं

सादगी पसंद हैं। एक बार जब मैं उनसे मिलने पहुँचा तो अन्दर से आवाज आयी, शर्ट नहीं पहन सकते हो ? बाहर के कितने लोग आते-जाते रहते हैं? तब गुप्त जी ने बड़ी ही मृदुता के साथ कहा, अरे भई तुम तो व्यर्थ में परेशान हो रही हो। तुम्हें लगता है ये बाहर के लोग हैं। मुझे तो लगता है ये सब परिवार के ही लोग हैं। सुरजीत भी तो अपने बेटे ही जैसा है और बेटे से कैसा पर्दा और मुझे अपने पास ही बिठा लिया। यह देखकर मुझे विश्वास नहीं हो पा रहा था कि वाकई मैं इतने बड़े साहित्यकार के पास बैठा हूँ।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त बहुत ही दयालु और उदारचेता हैं। आपके व्यक्तित्व की एक और बड़ी विशेषता है जिसे वे अपनी सबसे बड़ी कमजोरी मानते हैं और जिसे हम व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण, वह है निःस्वार्थ सेवा। आप अपने शोधार्थियों से बिना पारिश्रमिक लिए ही शोधकार्य कराते रहे हैं। एक शोधार्थी ने जब आपको पारिश्रमिक रूप में कुछ फीस देने का प्रयास किया तो आपने तपाक से उत्तर दिया, "जब नौकरी लग जाये तो दे देना" वापस कर दी व एक भी पैसा लेने से मना कर दिया। "थीसिस जमा हो गयी, वायवा हो गया, मैं प्रतीक्षा करती रही कि कब गुरु जी पैसे माँगे, मगर मेरी शंका निराधार रही। यहाँ तक कि जब मैं अपना प्रोविजनल सर्टिफिकेट लेने गयी और मैंने विनती की कि गुरुजी मैं श्रद्धावश आपके लिए कुछ भेंट करना चाहती हूँ तो भी उन्होंने स्पष्ट इन्कार कर दिया। विश्वास नहीं होता है कि आज के कलियुग में जब हर सम्बन्ध इतना कलंकित हो गया है, यहाँ तक कि गुरु-शिष्य संबंध भी, ऐसे में डॉ0 गुप्त जैसे गुरु भी विद्यमान हैं।" कितने आत्मीय, परोपकारी एवं दयावान हैं डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त। श्रीनिवास चतुर्वेदी जी ने आपके विषय में लिखा है - "अपनी अप्रतिम जिजीविषा के शस्त्र से शारीरिक विकलांगता को पराजित कर अध्ययन, मनन, चिन्तन द्वारा स्वयं के मनस सामर्थ्य को इतनी ऊँचाई तक विकसित कर लेना कि समाज क्या प्रकृति भी व्यक्ति के अभिनन्दन हेतु समुत्सुक हो, ऐसे पुरुषार्थ का नाम है - डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त। अपनी साहित्यिक तथा दार्शनिक उपलब्धियों को सामाजिकता से जोड़कर जिस व्यक्तित्व ने अधिकाधिक छात्रों को अनेक प्रकार के शोध विषय प्रदान किये हैं, अधिकाधिक छात्रों को पीएच.डी. प्रदान करायी हैं, ऐसे उदारचेता का नाम है डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त।" ऐसे श्रेष्ठ साहित्यकार के व्यक्तित्व विकास को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझने का प्रयास किया जा सकता है।

1. जन्म एवं जन्मस्थान

समकालीन कवि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का जन्म एक साधारण वैश्य परिवार में हुआ। उस दिन भारतीय पंचांग के अनुसार कार्तिक शुक्ल पंचमी वि.सं. 1997 और अंग्रेजी पंचांग के अनुसार 17 नवम्बर सन् 1940 दिन रविवार था पर स्कूल में

जन्मतिथि लिखाई गयी 4 जनवरी सन् 1940। आपका जन्म एक बड़े संयुक्त परिवार में हुआ था। यह परिवार एक हवेलीनुमा घर में रहता था। आपने अपने आवास के विषय में लिखा है – "बड़ी सी हवेलीनुमा आवास। घर के पच्चीस-तीस कमरों में तीन-चार कमरे और रसोईघर हमारे हिस्से में थे। बाहरी भाग में दो कमरे अलग से – एक बैठक के रूप में और दूसरा ईंधन की लकड़ी, सेंठा, कंडा आदि रखने के काम में आता था। दो बड़े-बड़े आंगन साझे में थे। दो बड़े-बड़े शौचालय भी साझे में थे-बाहरी आंगन से सटा शौचालय औरतों के लिए और घर के बाहर बना मर्दों के लिए। वस्तुतः उस हवेली में चाचा-ताऊ आदि के सात परिवार रहते थे। कुल पचास साठ सदस्य थे उस साझा घर में। प्रायः हर वर्ष दो-तीन बच्चे जन्म लेते, एक-दो शादियाँ होतीं और एक दो मौतें भी। मेरा जन्म इसी घर में हुआ था, पर छोटा भाई बहादुरगंज के गोदाम वाले घर में जन्मा था।" आपका परिवार नगर के जिस मुहल्ले में रहता था उसे रेती मुहल्ला कहा जाता था। इस मुहल्ले की बसावट बहुत दूर-दूर थी। आपके शब्दों में – "मुहल्ले का रहवास छितरा-छितरा था। उसके बीच से एक दस-पन्द्रह फीट चौड़ी खड़ंजावाली गली थी, जिसके पश्चिम की ओर प्रायः सारे घर ब्राह्मणों के थे, और पूर्व की ओर लगभग आधे किलोमीटर की लम्बाई में बनियों के घर। काछी, किसान आदि छोटी जातियों के घर दो-दो चार-चार के समूह में प्रायः सारे मुहल्ले में थे। काछियों के दो घर थे, जो मिले-मिले बसे हुए थे, कुम्हारों के पांच-छः परिवार थे, जो एक साथ बसे हुए थे। मेहतरों के दो समूह थे – पूर्व के समूह में दो परिवारों के घर और पश्चिम में पन्द्रह बीस मेहतर परिवारों के घर एक साथ थे। मुहल्ले के प्रारम्भ में ही दो परिवार मुसलमानों के भी बसे थे।" इस मुहल्ले में हर वर्ग के लोग रहते थे। इस बड़े मुहल्ले में विभिन्न जातियों का अपना-अपना महत्व एवं प्रभाव था। आपने लिखा है – "हमारा मुहल्ला छत्तीसों जातियों का है। ब्राह्मण, बनिया, किसान, कुम्हार, कहार, केवट, बारी, काछी, भुर्जी, नाई, धोबी, भंगी आदि सभी जातियों के लोगों के दो-दो, चार-चार घर हैं। लगभग चार-पांच हजार की आबादी में अधिकांश घर ब्राह्मण-बनियों के हैं। ब्राह्मणों में कुछ लोग सुशिक्षित और विद्वान हैं, जो प्रायः शिक्षक और पुरोहित हैं। अशिक्षित ब्राह्मण, गुंडई, चोरी चपाटी आदि करते हैं, कुछ रिक्शा चलाते हैं और कुछ राहजनी भी। सामान्यतः बनिया-समुदाय सम्पन्न हैं। पहले सभी बनिये व्यापारी, दुकानदार या लघु उद्योगपति थे। वे खंडसारी, आढ़त, दुकानदारी आदि में लगे रहते थे। यद्यपि बनिया वर्ग अन्य वर्ग की अपेक्षा सम्पन्न था तथापि आपका परिवार साधारण ही था। यही कारण है कि कुछ समय बाद ही आपके पिता जीविकोपार्जन के लिए बहादुरगंज मुहल्ले में किराये के मकान में जाकर बस गये थे और आढ़त की दुकान चलाकर परिवार का भरण-पोषण करने लगे थे। आपने आत्मवृत्त में लिखा है – "मेरा घर

बहादुरगंज की गल्ला मार्केट में था। खूब चौड़ी सड़क थी, जिसके दोनों ओर दुकानें और फड़ थे, एक ओर सब्जी मंडी और एक तरफ मुख्य मार्ग था। वहाँ अन्न के बोरों से भरी बैलगाड़ियाँ खड़ी रहा करती थीं, पिताजी गल्ले के आढ़ती थे। दुकान के पिछवाड़े एक बड़ा-सा गोदाम था। गोदाम के दोनों ओर सड़क थी। एक ओर का दरवाजा दुकान की ओर खुलता था दूसरी ओर का सब्जी मंडी की तरफ।" यह समय विश्व क्षितिज पर सर्वाधिक त्रासदायी था। देश में अकाल पड़ा हुआ था। भूख और महामारी से जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी और ब्रिटिश सरकार अन्न अपने भण्डारों में संग्रहीत करके विदेश भेज रही थी। ऐसे विषम परिवेश में बालक 'सुरेश' ने अपनी आँखें खोलीं। यही सुरेश आगे चलकर हिन्दी साहित्य-जगत में डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

2. पारिवारिक पृष्ठभूमि

डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त के पिताजी का नाम श्री लालताप्रसाद गुप्त और माता का नाम श्रीमती चमेली देवी है। श्रीमती चमेली देवी श्री लालताप्रसाद गुप्त की दूसरी पत्नी थी। अपने माता-पिता एवं परिवार के विषय में गुप्त जी ने लिखा है – "पिताजी के दो विवाह हुए थे – पहली पत्नी से एक पुत्री रक्षा देवी थीं जिन्हें हम रक्खा जिया कहते थे। पहली पत्नी के निधन के बाद पिताजी ने दूसरा विवाह किया, जिनसे पाँच संतानें हुईं, तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ।" इन पाँचों भाई-बहनों में श्रीमती सावित्री देवी जी सबसे बड़ी थी। सावित्री देवी जी कम उम्र में ही विधवा हो गयी थीं और अपने मायके में ही रहती थीं। इनसे छोटे थे श्री सूरजप्रसाद गुप्त जिन्होंने पिताजी के स्वर्गवासी होने पर परिवार का कार्यभार संभाला। श्री सूरजप्रसाद गुप्त जी से छोटी बहन का नाम सुशीला देवी है। डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त सुशीला देवी जी से छोटे तथा सुरेन्द्रनाथ गुप्त से बड़े हैं। इस प्रकार डॉ० गुप्त जी ने अपनी माँ की चौथी और पिता की पाँचवीं सन्तान के रूप में जन्म लिया। यद्यपि आपका परिवार भक्तिभाव वाला, अध्यात्मपरायण तथा धार्मिक प्रवृत्ति वाला था फिर भी पिता जी मांस-मदिरा का सेवन करते थे और बच्चों को भी खिलाने-पिलाने का प्रयास करते थे। आपके बड़े भाई सूरजप्रसाद गुप्त ने जब इस गलत आदत का भूख-हड़ताल द्वारा विरोध करना चाहा तो उपेक्षा कर दी, पर जब शाम तक बेटे ने कुछ न खाया, तो हमेशा के लिए माँस-मदिरा का परित्याग कर दिया। पर, जुआ खेलना नहीं छोड़ सके। वास्तव में पिताजी अमीरों से बराबरी करने का भ्रम पाल रखे थे वही हिसाब था 'आमदनी अठन्नी खर्चा रुपइया'। "पिताजी की तबियत अमीरों जैसी थी। खूब कमाया और उससे ज्यादा उड़ाया। प्रतिवर्ष नौटंकी कराते थे। घर में भी एक आध औरतें आती थीं, जो दिन में बिल्कुल घरेलू लगती थीं, पर उस पाँच-छः वर्ष की अवस्था में भी यह बोध था कि ये नौटंकी वाली नर्तकियाँ, वेश्याएँ हैं।" आपके पिताजी में जिम्मेदारी का

अहसास कम और रईसी का भाव अधिक था।

पिताजी की अमीरी तबियत एवं परिवार के प्रति लापरवाही के कारण आपके परिवार की आर्थिक स्थिति दिन व दिन बद से बदतर होती गयी। स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी कि धन के अभाव के कारण उनका ठीक से उपचार भी न हो सका और स्वास्थ्य लगातार बिगड़ता रहा। अंत में जुलाई 1948 ई0 में उनका देहावसान ही हो गया। दुकान साझेदार ने हड़प ली। अब सब लोग गोदाम वाला किराये का घर छोड़कर पैतृक घर में आकर गुजारा करने लगे। बड़े भाई श्री सूरजप्रसाद गुप्त भी इस समय मात्र 17 वर्ष के थे। इतनी कम उम्र में न तो व्यापार ही कर सकते थे और न नौकरी के लिए ही आवेदन। पिता के निधन के बाद परिवार अनाथ एवं निस्सहाय हो गया। ऐसी स्थिति में आपकी माताजी ने धैर्यपूर्वक काम लिया और अपने कुशल प्रबंधन से परिवार के सदस्यों में तारतम्य स्थापित करती रहीं। आपकी माताजी कुशल ग्रहणी, पतिपरायण, धर्मप्रवण तथा गम्भीर विचारों वाली महिला थीं। हालांकि इन विषम परिस्थितियों में घर का खर्चा चलाने के लिए दरियाँ, अलमारियाँ, बर्तन तथा आभूषण जैसी चीजें तक बिकती गयी। अब घर में छः प्राणी थे और कमाने वाला कोई नहीं। इस तरह विपन्नता के अथाह सागर में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की जीवन-नौका डगमगाती हुई आगे बढ़ती रही।

3. शिक्षोपार्जन

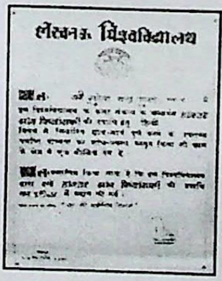
शिक्षा मानव जीवन की आधारशिला है। इसके बिना व्यक्ति और समाज के स्वस्थ विकास की कल्पना करना व्यर्थ है। इसके लिए व्यक्ति को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है जिसमें उसमें नैतिकता का विकास हो। शिक्षा के द्वारा चरित्र के निर्माण के साथ-साथ मस्तिष्क का भी विकास होता है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्यकार को अपने जीवन में जैसा समाज मिलता है, उसकी झाँकी उसके साहित्य में अवश्य परिलक्षित होती है। साहित्यकार का अभिव्यक्ति कौशल बहुत कुछ शिक्षा के द्वारा निर्धारित होता है। अतः साहित्यकार का शैक्षिक स्तर जानना अत्यावश्यक होता है।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के पिताजी का साया सिर से उठ जाने के बाद तो इस परिवार की स्थिति और भी दयनीय हो गयी। अब घर में छः लोग थे, पर कमाने वाला कोई न था। स्थिति इतनी खराब हो गयी कि घर की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दरियाँ, अलमारियाँ, बर्तन तथा आभूषण आदि एक-एक करके बिकते गये। स्कूल में फीस समय पर जमा कर पाना भी अक्सर कठिन हो जाता था। फलतः, फीस माफ करानी पड़ जाती थी। आपने फिर भी हार नहीं मानी। अभावों और असुविधाओं के बीच अपनी पढ़ाई जारी रखी। इस प्रकार सन् 1956 में श्री मंगलसेन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय शाहजहाँपुर से अच्छे अंकों से हाईस्कूल

उत्तीर्ण किया। इसके बाद अचानक संधिवात ने आपको जकड़ लिया। शरीर के सभी जोड़ों में पीड़ा और सूजन व्याप्त हो गयी। हालत इतनी गम्भीर हो गयी कि 7 वर्ष तक बिस्तर से उठ न सके। यथा सम्भव उपचार कराया गया, पर रोगमुक्त न हो सके। अन्त में बहुत समय बाद वैद्य पं. हरिश्चन्द्र मिश्र जी का उपचार सफल रहा, पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी, आपका शरीर विकलांग हो चुका था। पुत्र की बीमारी से व्यथित माता जी सन् 1960 ई0 में इस संसार से चल बसीं। 7-8 वर्ष की लम्बी अवधि के पश्चात् जैसे-जैसे आप स्वस्थ होते गये, किताबों का गहन अध्ययन करते गये। आपने इतना परिश्रम किया कि "श्री मुमुक्षु आश्रम उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, शाहजहाँपुर में सर्वाधिक अंकों से सन् 1966 में इण्टर उत्तीर्ण किया। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त पढ़ाई में प्रारम्भ से ही होशियार थे परन्तु बीमारी के कारण जो अविश्वास था कि कहीं आप फेल न हो जायें, किन्तु सर्वाधिक अंक प्राप्त करके परिवार के लोगों को चौंका दिया। आपने लिखा है – "सन् 1965 में, जब मैंने इंटर प्राइवेट का फार्म भरा, तो दादा ने ही सारा खर्च किया था। मेरे पैर में प्लास्टर चढ़ा था। दादा को लगता था कि मैं अंग्रेजी में पास नहीं हो पाऊँगा, पर जब 72 प्रतिशत अंक मिले तो उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ।" इसके बाद पढ़ाई लगातार चलती रही। सन् 1968 में शाहजहाँपुर के 'गांधी फैजाम कॉलेज' से संस्थागत छात्र के रूप में बी.ए. किया।

इसी दौरान कॉलेज की 'न्यूज एण्ड व्यूज' पत्रिका के छात्र सम्पादकत्व का कार्यभार भी संभाला। इसके बाद अपने अग्रज की सलाह एवं सहयोग से पढ़ने के लिए लखनऊ चले गए। लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् 1970 में प्रथम श्रेणी में एम.ए. (हिन्दी) किया। "एम.ए. में डॉ0 प्रभाकर शुक्ल के निर्देशन में हंस जवाहिर : एक आलोचनात्मक अध्ययन" शीर्षक से लघु शोधप्रबन्ध लिखा जो सन् 1996 में प्रकाशित हो चुका है। इस दौरान आपने विश्वविद्यालय की विभागीय 'ज्योत्सना' पत्रिका का सम्पादन भी किया। इसी विश्वविद्यालय से 'पंत की दार्शनिक चेतना' विषय पर डॉ0 सरला शुक्ल के निर्देशन में पीएच.डी. की। यह शोधग्रन्थ सन् 1996 में प्रकाशित हो चुका है। बरेली कॉलेज में शिक्षण कार्य करते हुए आपने 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' विषय पर डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है। इस प्रकार डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त जी का विद्यार्थी जीवन अत्यन्त संघर्षपूर्ण रहा है।


लखनऊ विश्वविद्यालय



4. व्याधियाँ और विकलांगता

यह सम्पूर्ण सृष्टि सौन्दर्यमयी है। सौन्दर्य ही सृष्टि का आधार है। सृष्टि के विविध प्राणियों में मानव सबसे सुन्दर प्राणी है। पंत जी ने लिखा है -

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर
मानव तुम सबमें सुन्दरतम। युगान्त (मानव) पृ. 50

सौन्दर्य मुख्यतया दो प्रकार का होता है - आन्तरिक सौन्दर्य एवं बाह्य सौन्दर्य। ये दोनों सौन्दर्य मिलकर ही मानव को प्राणियों में सुन्दरतम बना देते हैं। देखने वाले पर पहला प्रभाव बाह्य सौन्दर्य का होता है। जब हम किसी वस्तु/व्यक्ति पर प्रथम दृष्टि डालते हैं तो बाह्य सौन्दर्य से ही हमें उसके आकर्षक एवं अनाकर्षक होने की जानकारी प्राप्त होती है। बाह्य सौन्दर्य व्यक्ति को एकदम आकर्षित तो करता है पर यह स्थायी नहीं होता। आन्तरिक सौन्दर्य ही स्थायी सौन्दर्य है। बाह्य सौन्दर्य में शारीरिक बनावट संरचना तथा विविध अंगों का आकार प्रकार आता है। ये सब मिलकर शरीर को एक आकर्षक रूप प्रदान करते हैं। आन्तरिक सौन्दर्य में व्यक्ति के विचार एवं भाव आते हैं। जो भाव एवं विचार आनन्द सृजन तथा जन कल्याण की ओर प्रेरित करें उन्हें आन्तरिक सौन्दर्य से सम्बद्ध माना जाता है। जीवन की सार्थकता इन दोनों सौन्दर्यों के संगठित स्वरूप में ही है। बाह्य सौन्दर्य बाह्य वातावरण से प्रभावित होता है परन्तु आन्तरिक सौन्दर्य बाह्य वातावरण से अप्रभावित ही रहता है। बाह्य वातावरण के प्रभाव से, दुर्घटना अथवा किसी असाध्य बीमारी के कारण शरीर के किसी अंग में कमी आने पर निश्चित तौर पर बाह्य सौन्दर्य का क्षरण होना स्वाभाविक ही है।

समकालीन कवि डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का व्यक्तित्व आन्तरिक सौन्दर्य की गरिमा से जितना अभिमण्डित है, बाह्य सौन्दर्य उतना ही शिथिल। बाह्य सौन्दर्य पर किसी व्यक्ति का पूर्ण अधिकार नहीं होता है क्योंकि उसे बाह्य परिस्थितियाँ एवं वातावरण कमजोर एवं मजबूत करते रहते हैं। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त संकटग्रस्त स्थितियों में व्यतीत हुआ। सन् 1956 में हाईस्कूल उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने अगले वर्ष जैसे ही इन्टर में प्रवेश लिया, अचानक शरीर के सारे जोड़ों, विशेषकर हाथ-पैरों और घुटनों में पीड़ा और सूजन व्याप्त हो गयी। आपका शरीर संधिवात की चपेट में आ चुका था। इस विषय में आपने स्वयं लिखा है - "यह बात 1957 की है। मेरा रोग इतना विषम हो गया था कि सन् 1965 के अप्रैल माह तक अर्थात् सात वर्ष तक मैं चारपाई पर ही पड़ा रहा। यथासम्भव हर तरह का उपचार कराया गया - एलोपैथिक, होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक आदि। तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक आदि का भी सहारा लिया गया। अन्ततः नगर के प्रतिष्ठित वैद्य पं. हरिश्चन्द्र मिश्र का उपचार सफल रहा। वैद्य जी की दवाई और छोटे भाई सुरेन्द्र की

सेवा ने मुझे सर्वथा रोगमुक्त कर दिया। पर, अब मैं विकलांग था।" डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी का अधिकांश शरीर विकलांग हो चुका है। राजकीय मानदण्डों के अनुसार "आप सत्तर प्रतिशत विकलांग हैं।" विकलांगता जीवन के कर्म क्षेत्र में कितना बड़ा अभिशाप है इसके लिए डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त से अच्छा, भला और कौन जान सकता है? कई जगह साक्षात्कार में सफल हो जाने के बाद भी नौकरी प्राप्त न हो सकी क्योंकि वह विकलांग थे। कभी-कभी तो इन समस्याओं को झेलते-झेलते डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त जी का विश्वास ही डगमगाने लगता तब वह भगवान से यह प्रार्थना करने लगते कि वह उन्हें अपनी शरण में पनाह दे -

विकलांग बेसहारा
लकड़ी का न सहारा
मुझे ले लो राम!
मुझे ले लो राम!! (गीत श्री, पृ. 11)

ऐसे असाध्य रोग से पीड़ित होने के बावजूद डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त जी ने अपना परिश्रम एवं संघर्ष जारी रखा और अन्ततोगत्वा बरेली कॉलेज, बरेली जैसे प्रतिष्ठित महाविद्यालय में नौकरी प्राप्त कर ली। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की इस विकलांगता ने जहाँ एक तरफ उन्हें अनेक कष्ट प्रदान किये वहीं उनके आत्मविश्वास को भी मजबूती प्रदान की। इसी विकलांगता ने डॉ0 गुप्त को संघर्षों से जूझने की शक्ति भी प्रदान की है। इस प्रकार अभावों, कष्टों तथा शारीरिक अक्षमताओं ने डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के अन्तर्मन को जागृत कर एक श्रेष्ठ काव्य सर्जक के रूप में स्थापित किया है।

सतत संघर्षशील डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपनी विकलांगता को अपने कैरियर में कहीं भी अवरोध नहीं बनने दिया है। विडम्बना ही है कि अब भी कोई-न-कोई व्याधि उन्हें संतापित करती रहती है। आप 'सोराइसिस' नामक त्वचा रोग से भी ग्रस्त हैं, जो सन् 1956 से ही पीड़ित किए हैं। यह रोग समय-समय पर पीड़ित करने लगता है, तो कई-कई वर्षों तक सुसुप्त रहता है।

संधिवात ग्रस्त होने के प्रारम्भिक दिनों में बायें पैर के टखने में जब काफी दर्द रहता था, तब जिला अस्पताल और लखनऊ मेडिकल कॉलेज में कई बार प्लास्टर चढ़ाया गया था, इससे घुटने से नीचे का पैर कुछ पतला और साँवला-सा हो गया था, तब शाहजहाँपुर के एक डाक्टर ने कह दिया था कि ज़हर फैल रहा है, पैर काटना पड़ेगा। बेवकूफ़! वास्तव में बार-बार प्लास्टर चढ़ाने से रक्त संचार में बाधा पड़ी और त्वचा मलिन हो गई। उन्हीं दिनों, सन् 1957 में लखनऊ मेडिकल कॉलेज के डाक्टर ने दायें पैर की जाँघ में छोटा-सा आपरेशन करके 'ग्रन्थि' निकाली थी, और कहा था कि अब रोगमुक्त हो जाओगे।

पर, शाहजहाँपुर आने पर गुप्त जी बिल्कुल ही शय्याग्रस्त हो गये। लगभग सात-आठ वर्षों के अंतराल में सभी रोग तो दूर हो गए, पर कलाइयों से हाथ, और घुटनों से पैर मुड़कर रह गए थे, अर्थात् पैर सीधे नहीं खुलने से खड़ा नहीं हो सकते थे। अप्रैल 1965 में दोनों घुटनों का आपरेशन, बरेली के मिशन हॉस्पिटल में हुआ, तो विशेष प्रकार के कैलीपर्स युक्त जूता पहनकर चलने योग्य हुए। क्षमता इतनी कि पाँच-छः किलोमीटर तक बिना थके चल सकें। बस, ट्रेन आदि से दूर-दूर नगरों तक यात्रा करने में समर्थ हो गये। अपने नगर से बी.ए. करने के बाद, जुलाई 1968 में लखनऊ विश्वविद्यालय पढ़ने चले गये।

सन् 1973 में बरेली कॉलेज में नियुक्त हुए। 15 जून 1977 को विवाह हुआ और अक्टूबर 1984 को अपना आवास लिया। इस मकान के लेने के चक्कर में जो भाग-दौड़ करनी पड़ी, उससे घुटने में दर्द रहने लगा। सन् 1987 में पथरी के कारण आपरेशन कराया। पेट में प्रायः दस इंच का चीरा लगा, पर पूर्णतः रोगमुक्त हो गये।

प्रारम्भ से ही पढ़ने-लिखने की प्रवृत्ति रही है। देर रात तक पढ़ने-लिखने का प्रभाव आँखों पर पड़ना स्वाभाविक था। कंई डाक्टरों को दिखाया, अंततः 22 फरवरी 1999 को बरेली में डॉ0 कपिल अग्रवाल से आपरेशन कराया। शायद कुछ चूक हो गई। दिल्ली जाकर डॉ0 श्राफ को दिखाया, बताया कि कुछ भी सम्भव नहीं है, अर्थात् जितना दीख रहा है, उतना ही दिखेगा – ना कम, ना अधिक।

जब बायीं आँख की दृष्टि क्षीण होने लगी, तो 2 अगस्त 2004 को डॉ0 कोहली से आपरेशन कराया। अब चश्मा लगाकर पढ़ते-लिखते हैं।

26 मई 2007 को स्नानगृह में गिर पड़ा, तो बायें पैर में घुटने के कुछ ऊपर हड्डी टूट गई। सर्वोदय हास्पिटल में डाक्टर खेतान ने आपरेशन किया, और हड्डी के जोड़ पर एक स्टील की राड फिट कर दी गई। उसके बाद से, वाकर की सहायता से चल पाते हैं।

6 फरवरी 2014 को बाथरूम में फिर गिर गये, पर कोई विशेष चोट नहीं आई। पैर में थोड़ी सूजन रहने लगी है।

23 अप्रैल 2015 को दिल्ली के 'सेंटर फार साइट' में आँखों की जाँच कराई, तो 'ग्लूकोमा' बताया। अब सवेरे उठने से रात्रि सोने तक चार दवाइयाँ कई बार आँखों में डालते रहते हैं।

जब घुटने का आपरेशन हुआ था, तो पता चला कि मधुमेह और हृदय रोग भी पीड़ित किए हुए हैं।

गुप्त जी बताते हैं मैं और मेरी व्याधियाँ साथ-साथ चल रही हैं। प्रतिमाह चार-पाँच हजार की औषधियाँ, परहेज और व्यायाम (मार्निंग वाकर से) आदि के बल पर जीवन की गाड़ी को आगे बढ़ाता चल रहा हूँ। दो बार ऐसा भी हुआ, जब

डाक्टरों ने बताया कि बायीं टांग काटनी पड़ेगी, एक बार सन् 1957 में और दूसरी सन् 1990 को। बरेली कॉलेज में शिक्षा विभाग के अध्यक्ष डॉ. आर. एस. गौड़ के साले जयपुर मेडिकल कॉलेज में आर्थोपीडिक विभाग के अध्यक्ष हैं, उस दिन घर आये थे। डॉ. गौड़ ने उनसे अपने मित्र डॉ. गुप्त की व्याधि का उल्लेख किया था। डॉ. गौड़ और डॉ. गुप्त दोनों घनिष्ट मित्र हैं, और त्रिवटीनाथ कालोनी में ही रहते हैं। जयपुर वाले डाक्टर ने घंटे भर से अधिक जाँच-परख की और राय दी कि टाँग काटनी पड़ेगी, अन्यथा विष सारे शरीर में फैल जाएगा। इस प्रकार की नकारात्मक बातें डॉ. गुप्त को जितना क्रोधित करती हैं, उससे अधिक मनोबल सशक्त कर देती हैं। आशय है कि कुछ दिनों में ही घुटने का दर्द दूर हो गया। वैसे, जब दुःख-दर्द घनीभूत हो जाता है, तब आत्महत्या का भाव भी एक-दो बार मन में आया, पर, शीघ्र ही विजय प्राप्त कर ली। 'मन पाँखी' की एक कविता में उन्होंने लिखा है –

त्रिविध ताप संवलित
दुःखों से तंग आकर
बार-बार चाहा –
कि डूब मरूँ।
(पिंड छुटे)
लेकिन,
जब-जब भी डूबने गया
डूब गया स्वयं ही
और सारे दुःख
तैर कर किनारे जा लगे। (मनपाँखी-तैर गए दुःख, पृ. 79)

गुप्त जी का आशय है कि दुःख दर्द, रोग शोक आदि शरीर के धर्म हैं। 'शरीर व्याधि मन्दिरम्' – जब तक जीवन है, इसे सम्पूर्णता में जीना चाहिए। आत्महत्या उपाय नहीं, पाप है। सुख-दुःख जीवन सहचर हैं। इनके साथ जीने में ही वास्तविक आनंद है। सो, नाना प्रकार की व्याधियों के बावजूद वे निरन्तर सक्रिय हैं, सृजनरत हैं और दूसरों को भी जीवन की प्रेरणा दे रहे हैं।

5. दाम्पत्य जीवन

स्त्री-पुरुष के एक साथ रहकर जीवन-यापन से ही विधाता के सृष्टि-विस्तार का कार्य सम्भव है। सभ्यता के प्रारम्भिक चरण में शक्तिशाली पुरुष अनेक स्त्रियों पर अपना वर्चस्व रखता था, पर सामाजिक विकास के विभिन्न सोपानों में अनुभव के पश्चात् नर-नारी के सम्बन्धों का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप 'विवाह' के रूप में विकसित हुआ। वर्तमान में समस्त विश्व में किसी-न-किसी रूप में 'विवाह' की प्रथा का प्रचलन है। प्रेमचन्द ने 'विवाह' को एक समझौता माना है, जिसे तोड़ने का अधिकार

किसी को नहीं। वास्तव में, पति-पत्नी दोनों ही एक-दूसरे के हित में निरन्तर प्रयासरत रहते हुए पारस्परिक हित की कामना से कार्य करते हैं। भारतीय विद्वानों ने 'विवाह' को पवित्र बंधन स्वीकार किया है जो अधिकार प्राप्ति के साथ-साथ कर्तव्य-बोध भी कराता है। विवाह एक ऐसा पवित्र बंधन है जो स्त्री और पुरुष को दाम्पत्य के बंधन में बाँधता है। विवाह के इस बंधन में एक ओर जहाँ पति-पत्नी को कुछ अधिकार मिलते हैं वहीं यह बंधन उन्हें कुछ कर्तव्यों में भी बांध देता है।" इस प्रकार विवाह एक पवित्र सामाजिक समझौता है जो स्त्री पुरुष को समान अधिकार तो दिलाता ही है साथ ही साथ उन्हें दायित्व-बोध से भी परिचित कराता है।

लम्बी बीमारी के दौरान, माँ ने अनुभव किया कि सुरेश की स्थिति के बारे में अनिश्चय-सा है, तो इनसे डेढ़ वर्ष छोटे बेटे सुरेन्द्र की शादी कर दी। कुछ दिनों बाद उनका निधन हो गया। संयोग से, डॉ. गुप्त भी स्वस्थ हो गए, और बरेली मिशन में घुटनों के आपरेशन के बाद चलने-फिरने भी लगे। जब लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए., पीएच.डी. कर लिया तो नौकरी की तलाश में भाग-दौड़ शुरू हुई। इनके छोटे भाई ने अपने व्यापारिक सम्पर्कों के माध्यम से एक कॉलेज के प्रबंधक से बात की, तो सजातीय होने के नाते उसने अपनी बेटी के विवाह की बात चला दी, कहा कि प्रोफेसर की नौकरी पक्की समझो तथा भारी दहेज का प्रलोभन भी दिया। जब भाई ने गुप्त जी की विकलांगता के बारे में बताया, तो इधर-उधर की बातें चला दीं।

कालान्तर में, डॉ. गुप्त बरेली कॉलेज जैसे प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थान में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हो गये। उन्होंने हार नहीं मानी, क्योंकि उनका मानना है कि जिन्दगी जंग है और इस जंग को जीतना ही है। इसलिए हमेशा संघर्षशील रहे। अन्त में "सन् 1977 में इन्दु जी का प्रस्ताव स्थायी रहा। इन्दुजी बरेली महानगर के निवासी श्री अवधबिहारी लाल अग्रवाल की सुपुत्री हैं। गुप्त जी एवं इन्दु जी ने दाम्पत्य जीवन में सोत्साह प्रवेश किया। इन्दु जी को जीवन-साथी के रूप में पाकर आपके हृदय की सारी विडम्बना, उद्विग्नता समाप्त हो गयी, मन शान्त एवं निश्चिन्त होकर लेखन कार्य में प्रवृत्त हो गया। आपको ऐसा लगा मानो जिन्दगी में मिले सारे घावों की दवा मिल गयी हो, जीवन के सूखे मरुस्थल में प्रेममयी बादलों की बरसात हो गयी हो, अमावस की घनी काली रात को सोलह कलाओं से पूर्ण चाँद मिल गया हो। सुख-दुःख हर्ष-विषाद प्रत्येक अवसर पर उन्होंने गुप्त जी का पूर्ण सहयोग किया है। गुप्त जी ने स्वयं कहा है - "मेरी धर्मपत्नी सही अर्थों में अर्धांगिनी हैं।" आपकी दृष्टि में आपकी सहधर्मिणी अनुपमेय एवं अनिंद्य है। आपने लिखा है -

क्या कोई है जग में
जो स्थान ले सके इन्दु का, पत्नी का ?
जो रूठी रहे सदा

पर साथ दे सर्वदा
क्यों? है न अनुपमेय। (लोकतांत्रिक भारत में (पृ. 37)

आपके दो सुयोग्य सुन्दर और स्वस्थ पुत्र हैं। बड़े बेटे का नाम अभिनव गुप्त है – जो डीम्ड यूनीवर्सिटी नोएडा में वरिष्ठ प्रवक्ता हैं। छोटे बेटे का नाम अभिलेख गुप्त है – जो गुड़गाँव में एक अमेरिकन कम्पनी में सीनियर सॉफ्टवेयर इंजीनियर है। सितम्बर 2006 में आपको पितामह बनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। अब वे तीन पौत्रियों के बाबा है। तीनों पौत्रियाँ उन्हें बहुत प्यारी हैं। उनकी दोनों बहुएँ भी पूर्ण आदर और सम्मान देती है। सम्प्रति, डॉ. गुप्त सपत्नीक बरेली में रहते हैं और बेटे-बहुएं समय-समय पर आते रहते हैं। मुख्य पर्व-त्यौहार आदि पूरा परिवार बरेली में साथ-साथ मनाता है।

6. आजीविकोपार्जन

अर्थोपार्जन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा धन की प्राप्ति की जाती है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन अत्यंत अनिवार्य तत्व है। धन के अभाव में भौतिक संसाधन जुटा पाना कठिन ही नहीं असम्भव है। धन की प्राप्ति के तरीके प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, जैसे कृषि, व्यवसाय, उद्योग-धन्धे, नौकरी आदि।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के पिताजी गल्ला के व्यवसायी थे, इस आधार पर तो आपका व्यवसाय भी गल्ले की खरीद फरोख्त होना चाहिए, परन्तु अब यह जरूरी नहीं है कि बालक का भी वही व्यवसाय हो जो उसके पिता का है। दूसरे इस व्यवसाय में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त को प्रारम्भ से ही अरुचि थी क्योंकि व्यवसाय में झूठ का सहारा लिया जाता है परन्तु आप ऐसा नहीं कर सकते थे। पुस्तकें पढ़ने का शौक आपको प्रारम्भ से ही था। इसी कारण संधिवात से ग्रस्त हो जाने पर भी आपने अध्ययन जारी रखा और 'गीता', 'रामायण', 'चन्द्रकान्ता संतति', 'भूतनाथ', 'किस्सा हातिमताइ', 'किस्सा तोता मैना', 'माया', 'मनोहर कहानियाँ', 'नीहारिका', 'जासूसी दुनिया' जैसी पुस्तकें और पत्रिकाएँ किशोरावस्था में ही पढ़ ली थीं। इस प्रकार शैक्षिक क्षेत्र में जाने की भूमिका का निर्माण होता गया। एम.ए. करने के पश्चात् अध्यापक की नौकरी के लिए आवेदन करने लगे। शारीरिक अक्षमता के कारण कई बार साक्षात्कार में सफल हो जाने पर भी नौकरी नहीं मिल सकी। आपके शब्दों में – "साक्षात्कार में सफल हो जाने के बावजूद कई विद्यालयों में नहीं लिया गया। डॉ0 रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने साक्षात्कार के समय बड़ा हास्यास्पद प्रश्न उठा दिया कि आजकल छात्र उद्दण्ड हो गये हैं, अध्यापकों को ही दौड़ा देते हैं, तुम कैसे काम करोगे?" इस प्रकार कई बार साक्षात्कार में सफल होने पर भी नियुक्ति नहीं मिल सकी, परन्तु आपने हार नहीं मानी। अन्त में अगस्त 1973 में एक स्नातक

महाविद्यालय में नौकरी प्राप्त हो गयी। अभी डेढ़ महीने ही सेवा कर पाये थे कि 'बरेली कॉलेज' बरेली से निमंत्रण आ गया। 'स्मृति के वातायन' नामक कृति के 'बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं' नामक संस्मरण में डॉ. गुप्त ने उस कॉलेज के अनुभवों का रोचक चित्रण किया है।

30 अक्टूबर 1973 में बरेली महाविद्यालय में अध्यापन करने लगे। आपके अध्यापकीय जीवन में कभी-कभी तो आपका कवि मन इतना सोचने लगते थे कि काश! अध्यापक के बजाय किसान होता –

क्या जीवन है यह भी ?
काश!
अध्यापक नहीं
हलवाहा होता। (मन-पाँखी) काश! पृ. 73

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का मानना है कि आजीविकोपार्जन के लिए सर्वोत्तम अध्यापन है। अध्यापन, प्रशासनिक सेवा, सैन्य सेवा आदि अनेक प्रकार की नौकरियाँ हैं। सामान्यतः, आई.ए.एस. को सर्वोत्तम माना जाता है, पर गुप्त जी ने अध्यापन कार्य को सर्वोत्तम माना है। इसका कारण यह है कि अध्यापक को पढ़ने-लिखने का पर्याप्त समय मिलता है, साथ ही समाजसेवा और साहित्य सेवा भी कर सकता है। बेईमानी और भ्रष्टाचार की सम्भावना भी न्यूनतम रहती है, साथ ही नयी पीढ़ी को सँवारने का गुरुतर दायित्व शिक्षक सदैव उच्चतर मूल्यों को जीने की प्रेरणा देता रहता है। इसके बावजूद कवि मन कृषक के प्रति लालायित हो उठता है।

किन्तु, आधुनिक परिवेश में कृषि सर्वाधिक जोखिम का कार्य है। वाणिज्य-व्यवसाय हर-एक से बस की बात नहीं है और नौकरी (सरकारी सेवाएँ) सर्वाधिक सुरक्षित है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के पिताजी व्यवसायी थे, पर व्यवसाय में जोखिम उठा चुके पिताजी ने पुत्रों को नौकरी कराने की दृष्टि से अंग्रेजी शिक्षा दिलाना उत्तम समझा। डॉ. गुप्त के बड़े भाई ने उत्तर प्रदेश सरकार के सिंचाई विभाग में नौकरी की और डॉ. गुप्त ने डिग्री कॉलेज ने अध्यापकी। 30 जून 2000 को गुप्त जी ने 27 वर्ष तक नौकरी करके सेवानिवृत्त हो गए।

7. जिज्ञासु यायावर

राहुल सांकृत्यायन ने 'अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा' में घुमक्कड़ी को नकद धर्म कहा है। घुमक्कड़ व्यक्ति घूमने के साथ ही परमानंद की अनुभूति करता रहता है। आदिकाल से ही मानव घुमक्कड़ रहा है। सभ्यता के विकास के प्रारम्भिक चरण में मनुष्य की जीवनशैली यायावरी थी। आजीविकोपार्जन, सुरक्षा, भरण-पोषण आदि की दृष्टि से मानव कबीलों के रूप में इधर-उधर विचरण करते हुए जीवन-यापन करता था। ज्ञान की पिपासा भी मनुष्य में सदा से रही है। हवा कहाँ से चलती है,

नदियों में पानी कहाँ से आता है, सूरज-चाँद क्या हैं, आसमान क्या है, हम क्या हैं और क्यों हैं – जैसी जिज्ञासाएँ मानवमन में सदा से उठती रही हैं। इन जिज्ञासाओं की पूर्ति का माध्यम है यायावरी।

धार्मिक प्रयोजनों, ज्ञानप्राप्ति, प्रकृति के प्रति आकर्षण आदि नाना कारणों से प्रायः सभी व्यक्ति कम या अधिक पर्यटन करते ही हैं। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का परिवार सनातनधर्मी है, इसलिए तीर्थाटन में विशेष रुचि रखता है। जब गुप्त जी मात्र पाँच-छः वर्ष के रहे होंगे, तभी उनके पिताजी सपरिवार नैमिषारण्य ले गए थे। इसके बाद, लम्बे अंतराल तक पर्यटन का अवसर नहीं आया। गुप्तजी जब लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रावास में रहकर अध्ययन कर रहे थे, तब कभी अकेले तो कभी मित्रों के साथ लखनऊ के दर्शनीय स्थान देखे। लखनऊ के चिड़ियाघर में गए, तो शिह, हिरन, रीछ, मोर, गैंडा आदि पशु-पक्षी ही नहीं देखे, अजायबघर में जाकर मिस्र से उन्हीं दिनों उपहार स्वरूप प्राप्त हुई 'तूतनखामन' की ममी को देखा। राजाओं-बादशाहों के जिहर-बख्तर, सिक्के और पुराने हथियार भी देखे। गुप्त जी एक बार सबेरे तड़के ही संग्रहालय पहुँच गए और सावन की फुहारों के बीच मोर को नाचते हुए देखा। लखनऊ का इमामबाड़ा, घंटाघर, रूमी दरवाजा, बारादरी आदि कई-कई बार देखे।

गुप्तजी जब शोधकार्य कर रहे थे, तब प्रवक्ता पद की नौकरी के लिए साक्षात्कार हेतु सीतापुर, गोरखपुर, मेरठ, सौंरो, कासगंज, आगरा, मैनपुरी, कानपुर, बाराबंकी आदि अनेक नगरों की खाक छाननी पड़ी। गुप्तजी जहाँ भी गए, उनका जिज्ञासु मन दर्शनीय स्थानों को देखे बिना नहीं रहा।

जब बरेली कॉलेज में, नौकरी लग गई और विवाह हो गया, तो मूल्यांकन हेतु जहाँ-जहाँ गये, खूब पर्यटन किया। कानपुर का चिड़ियाघर, जे.के. मंदिर, बिठूर में पेशवा के महल, नाना साहब की खंडहर हवेली और गंगा किनारे अवस्थित ब्रह्मा मंदिर आदि कई-कई बार सपरिवार देखे हैं। एक मूल्यांकन कार्य हेतु हिन्दी विभाग के सभी सहयोगियों के साथ झांसी जाने का अवसर मिला। जहाँ अन्य विभागीय साथी शाम को मूल्यांकन से लौटते, तो होटल के अपने-अपने कमरों में विश्राम करने लगते, पर गुप्त जी का जिज्ञासु मन बेचैन हो उठता। मित्रों से बात की, पर कोई राजी न हुआ। तब गुप्त जी ने पूरा तांगा किराये पर लिया और अकेले ही झांसी का किला देखने निकल पड़े। तांगे वाले ने पूरे किले का चक्कर लगाया और गुप्त जी की अपेक्षित बातों को समझाता भी रहा।

जिज्ञासु यायावर डॉ. गुप्त जी मसूरी, सहसधारा, ऋषिकेश, हरिद्वार, नैनीताल आदि पर्यटन स्थलों की यात्राएँ कई बार कर चुके हैं। छः-सात बार नैनीताल और सात-आठ बार दिल्ली का पर्यटन किया है। नैनीताल जाने पर होटल

में ठहरते हैं और दिल्ली में अपने आई.ए.एस. मित्र सहपाठी के आवास पर। पर्वतीय स्थलों का महत्व प्राकृतिक सौन्दर्य के अवलोकन की दृष्टि से है। ऋषिकेश, हरिद्वार और नैनीताल का धार्मिक महत्व भी है। मथुरा, वृन्दावन और अयोध्या की यात्राएँ धार्मिक जिज्ञासाओं की दृष्टि से की गई थी और दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी आदि की यात्राएँ ऐतिहासिक ज्ञान-प्राप्ति की लालसा से की गई है। दिल्ली में लाल किला, कुतुबमीनार, हुमायूँ का मकबरा, छतरपुर मंदिर काम्पलेक्स अक्षर धाम, लोटस टैम्पल आदि सैकड़ों धार्मिक व ऐतिहासिक स्थान हैं। सफदरजंग का मकबरा, रहीम खानखाना का मकबरा आदि भी दर्शनीय है।

कुछ वर्ष पूर्व गुप्त जी जयपुर गए तो, चोखीधानी, आमेर का किला, हवामहल, महाराजा का सिटी पैलेस, जलमहल आदि देखकर अत्यधिक आनंद मिला। आमेर के किले में गुप्त जी के ज्येष्ठ पुत्र ने व्हीलचेयर पर बिठाकर शस्त्रागार की सैर कराई। गुड़गाँव में निर्मित 'किंगडम ऑफ ड्रीम्स' की सैर करके गुप्त जी को इतना आनंद मिला कि 'स्वप्नलोक की सैर' शीर्षक से आलेख लिखकर साहित्यायन में प्रकाशित कराया।

डॉ. गुप्त की अभिलाषा थी कि आकाश में उड़ूँ। उनकी इस जिज्ञासा की पूर्ति ज्येष्ठपुत्र डॉ. अभिनव गुप्त ने विमानयात्रा के द्वारा करा दी। गुप्तजी सपरिवार विमान से बंगलौर गए और फिर मैसूर, कुर्ग, श्री रंगपट्टनम आदि के वैभव को देखा। इस प्रकार आकाश में उड़ने की जिज्ञासा भी पूरी हो गई। पर, गुप्त जी का मन आज भी नये-नये स्थानों को देखने और सम्बन्धित ज्ञान को प्राप्त करने को लालायित रहता है।

8. अद्‌भुत जिजीविषामय व्यक्तित्व

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बचपन से ही संकल्पनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ठ, संघर्षशील एवं धुन के पक्के हैं। साथ ही यह भी सर्वथा सत्य है कि संघर्ष और डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त में पुराना सम्बन्ध रहा है। जीवन के शुरूआती दिनों में आप भयानक रूप से रोगग्रस्त रहे और 6-7 वर्ष तक चारपाई से उठ न सके। ये वे दिन थे, जब आपके शरीर के विकास का समय था। संधिवात रोग इतना घातक सिद्ध हुआ कि आपका 70 प्रतिशत शरीर विकलांग हो गया। ऐसी विषम स्थिति में भी आपने अपनी पढ़ाई जारी रखी। पैरों में प्लास्टर होने पर भी प्राइवेट रूप से पढ़ाई करते रहे और बायें पैर में कैलीपर पहनकर ही परीक्षा देने जाते रहे तथा अपने गहन अध्ययन से अच्छे अंक प्राप्त करते रहे। अध्ययनशीलता एवं कर्मठता के कारण ही आप अपने गुरुजनों के प्रिय शिष्य रहे हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का जीवन घटनाओं एवं दुर्घटनाओं से भरा हुआ है। आपका शरीर समय-समय पर गम्भीर रूप से चोटिल होता रहा, आपरेशन होते रहे

फिर भी आपके चेहरे पर एक सौम्यता दिखाई देती है। आपने अपनी विकलांगता को कभी भी व्यक्तित्व के विकास में बाधा नहीं बनने दिया। कई बार नौकरी हेतु आवेदन करने तथा साक्षात्कार में सफल हो जाने पर भी नियुक्ति न मिलने पर स्वयं को निराश नहीं होने दिया। आप लगातार परिश्रम करते रहे और अपने लक्ष्य को पाते रहे। आप हमेशा अध्ययन-अध्यापन में लगे रहते हैं तथा कभी भी खाली नहीं बैठते हैं। आपकी धर्मपत्नी जी ने कहा है कि "कभी भी मैंने आपको खाली नहीं देखा।" यह सतत् परिश्रम का ही सुपरिणाम है कि डॉ0 गुप्त को बरेली कॉलेज बरेली जैसे प्रतिष्ठित महाविद्यालय में सेवा प्रदान करने का अवसर मिला, साथ ही साथ अपने कृतित्व से हिन्दी साहित्य जगत् को समृद्ध किया। आपकी इस दृढ़ इच्छा शक्ति के विषय में डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा ने लिखा है - "आकारगत विशेषताओं से ऊपर उठ जाना ही सच्ची साधना और जीवन संघर्ष है। संकल्पनिष्ठ, संघर्षशील, स्वाभिमानी व्यक्ति शारीरिक और भौतिक विवशताओं को अतिक्रान्त करता हुआ उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच जाता है।.... मेरा विश्वास है कि शारीरिक विकलांगता और इससे उत्पन्न विवशता के तीखे बोध ने ही डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की प्रकृति को उत्कर्षोन्मुख, संघर्षशील, साहित्यसाधक और प्रज्ञा पुरुष बनाया है।" डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की इस अद्भुत जिजीविषामय व्यक्तित्व ने शारीरिक विकलांगता एवं अभावों को हेय सिद्ध कर दिया है। अस्तु डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अद्भुत जिजीविषामय व्यक्तित्व के स्वामी हैं जिन्होंने अपनी कमजोरियों को कभी भी मार्ग में बाधा नहीं बनने दिया है। प्रत्युत ऊर्जा और स्फूर्ति में परिणत कर सतत् संघर्ष करके अपने लक्ष्य को प्राप्ति करते रहे हैं।

डॉ. गुप्त का मानना है कि व्यक्ति का सबसे बड़ा धर्म है मानवता। 'मनुष्य है वही कि जो मनुष्य के लिए मरे', अर्थात् अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जियो, देश और धर्म के लिए जियो। भोजन इसलिए करो कि कर्मरत रह सकें, दूसरों के काम आ सकें। उनका सिद्धान्त है कि कोई हमें धोखा दे, ठग ले या मूर्ख बना ले, पर हमें दूसरों के प्रति उदार सरल और क्षमाशील ही रहना चाहिए। संत कबीर ने कहा है -

कबिरा आपु ठगाइए, और न ठगिए कोय।
आपु ठगे सुख ऊपजे, आन ठगे दुख होय।।

दूसरों की सहायता करना, उनके काम आना गुप्त जी का पुराना सिद्धान्त रहा है। आपातकाल के दौरान जेल में डाल दिए गए अपने मित्रों की आपने गुप्त रूप से सहायता की, आर्थिक सहायता भी देते रहे। आपसे सहायता प्राप्त एक मित्र ने अपने 11.12.1996 के पत्र में लिखा था -

"......ब्राह्मण हूँ, इसीलिए आपके वर्ग से सदा कुछ-न-कुछ पा लेने की ही चिन्ता अर्थात् जुगाड़ में रहता हूँ। वैसे, मेरे इस अभिशापग्रस्त अब तक के सम्पूर्ण

जीवन में आपका अपनत्व तथा आतिथ्य सर्वाधिक सुखद और आनंददायक रहा है। आयु में पर्याप्त अंतर होते हुए भी आप मेरे लिए अनेकविध प्रेरणास्रोत रहे हैं। अवसाद के क्षणों में आपकी अब तक की स्मृति ने मेरे लिए सम्बल का कार्य किया है।

आज आपको मैं विशेष प्रयोजन से कष्ट दे रहा हूँ। मेरे तीन पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं।"

इस पत्रांश को देने का अभिप्राय मात्र इतना है कि गुप्त जी की परोपकार की भावना को मिथ्या न समझा जाये। उनके मित्र और शिष्य गण भी साक्षी हैं कि किस उदारता और समानता के साथ वे सबके साथ व्यवहार करते हैं। उनका चुम्बकीय व्यक्तित्व सम्पर्क में आने वाले को भी प्रेरित करता है कि हमारा आचरण कैसा होना चाहिए। वे अपने दुःख के बारे में चिन्ता नहीं करते, उनकी चिंता का विषय रहता है – मनुष्य, हिन्दी और देश। 'चरैवेति चरैवेति' उनके व्यक्तित्व का मनमोहक सिद्धान्त है।

9. प्रेरणाप्रद और कर्मठ जीवन

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक व्यक्ति नहीं संस्था हैं। वे सतत् सक्रिय और जीवन से ओत-प्रोत ऐसे प्रेरणापुंज है, जो समीप आने वाले को भी क्रियाशील और जीवंत बनने को प्रेरणा देता है। वे मानते हैं कि कोई व्यक्ति बुरा नहीं होता, और हर व्यक्ति में असीम सम्भावनाओं के क्षितिज छिपे हुए हैं, इसलिए व्यक्ति से घृणा नहीं, प्रेम करना चाहिए। हताश, निराश और कर्म से विरत व्यक्ति को समझना, उसे प्रेरणा देना और छिपी ऊर्जा को जाग्रत करने में आप सभी की सहायता करते हैं। उनके पास कोई भी व्यक्ति, किसी भी प्रकार की समस्या लेकर मिल सकता है, और निराश नहीं लौटता। वे मानते हैं कि कोई व्यक्ति धोखा देता है, ठगता है या बेईमानी करता है, तो उसका कारण व्यक्ति स्वयं न होकर उसके संस्कार, परिवेश या परिस्थितियाँ होती हैं। मान-सम्मान और ईमानदारी से कौन नहीं जीना चाहता, फिर भी व्यक्ति अनुचित आचरण करता है, तो किसी विवशता के कारण। उदाहरणार्थ, कुछ वर्ष पूर्व एक पुराना छात्र अपनी बेबसी, परेशानी का रोना रोकर न केवल रुपए उधार माँग ले गया, अपितु गिलास भी चुरा ले गया। पर, आपने उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने से इनकार कर दिया, और पत्नी व पुत्रों से कहा कि उसकी कोई लाचारी रही होगी। अब उसके विरुद्ध कुछ भी करने से उसका अपमान होगा, वैसे भी गिलास मिलना नहीं है। वस्तुतः वह गिलास चाँदी का था और पत्नी के मौसा ने दिया था, इसीलिए वह विशेष रूप से नाराज़ थीं। पर, गुप्त जी ऐसी बातों में भी आनंद लेते हैं।

तुलसीदास जी ने कहा है – 'हानि लाभ जीवन-मरन, जस अपजस विधि हाथ', आशय है कि होनी बलवान है। मस्तिष्क पर अनावश्यक बोझ लादने की

आवश्यकता नहीं। मनुष्य को चाहिए कि हर स्थिति का सामना करने को तैयार रहे। विचलित न हो और हमेशा प्रसन्न रहने की मनोवृत्ति रखे। जब तक जीवन है, कर्म करते रहो, क्योंकि चलने का नाम ही जीवन है।

गुप्त जी मानते हैं कि आई.ए.एस., पी.सी.एस., सेना, बैंक आदि सभी प्रकार की नौकरियों में सर्वोत्तम शिक्षण कार्य है, क्योंकि इसमें शांति है और पढ़ने-लिखने के लिए समय भी। तथापि ग्राम्य जीवन और कृषक की दिनचर्या का रोमांच कुछ और ही होता है।

10. मान-सम्मान एवं पुरस्कार

मानवमात्र की सामान्य इच्छा होती है कि उसको सबसे अलग, विशिष्ट और श्रेष्ठ समझा जाये। माँ अपने बच्चों को नहला-धुलाकर स्वच्छ-सुन्दर वस्त्र पहनाकर घर से बाहर भेजती है, जिससे कि लोग बच्चे की और उसकी माँ की प्रशंसा करें। बालक स्कूल में जाता है तो अपने सहपाठियों और गुरुओं में प्रशंसित होने की चेष्टा में लगा रहता है। बालकों के आचरण और परीक्षा में उत्तम अंक लाने पर गुरुजन ही नहीं, माता-पिता और परिजन भी प्रशंसा करते हैं। सभी विद्यालयों में खेल, शैक्षिक कार्यक्रम आदि आयोजित होते रहते हैं और श्रेष्ठ छात्रों को सम्मानित तथा पुरस्कृत किया जाता है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बचपन से ही अपने परिवार, सम्बन्धियों और विद्यालयों में प्रशंसा प्राप्त करते रहे हैं। श्रुतिलेख, निबन्ध लेखन, कविता पाठ, अन्त्याक्षरी, वाद-विवाद जैसी प्रतियोगिताओं में उन्हें हाईस्कूल, इण्टर कॉलेज आदि की विभिन्न कक्षाओं में कई-कई प्रतियोगिताओं में अपने स्कूल तथा अन्य कॉलेजों में भाग लेने का अवसर मिला और पुरस्कृत हुए। पुरस्कार स्वरूप मिली कुछ पुस्तकें गुप्त जी के पास आज भी हैं। गीता का अनुवाद डायरी जैसी इनाम में प्राप्त 'गीता' पर ही किया गया है, जो 'अभिगीता' नाम से प्रकाशित है।

गुप्त जी जब गांधी फैजाम कॉलेज में बी.ए. के छात्र थे, तब उनमें मौलिक चिंतन की नींव पड़ गई थी। उन दिनों उन्होंने देशप्रेम, मद्य-निषेध जैसे विषयों पर मौलिक विचार रखे और पुरस्कृत हुए।

लखनऊ विश्वविद्यालय में ज्ञान का उन्मुक्त आकाश विचरण करने को मिला। यहाँ आकर कल्पना और चिन्तन को मानो नये पंख मिल गये। एम.ए. प्रथम वर्ष में जब प्रथम बार कक्षा में पहुँचे, तो शिक्षण के स्थान पर 'तुलसी जयंती' पर कार्यक्रम हो रहा था। इस प्रकार के कार्यक्रम विश्वविद्यालय में होते ही रहते थे। हिन्दी के कवि, आलोचक, प्रोफेसर, साहित्यकार आदि ही नहीं, राजनेता जैसे काका कालेलकर, नेताजी सुभाष के साथी कर्नल राम सिंह, महर्षि महेश योगी, जयप्रकाश नारायण,

राजनारायण, जनेश्वर मिश्र, पहलवान चंदगीराम आदि सैकड़ों महापुरुषों के दर्शन और उनके विचारों को सुनने का अवसर मिला। विश्वविद्यालय की स्वर्ण जयंती के अवसर पर सम्पूर्ण विश्वविद्यालय परिसर को भव्य स्वरूप प्रदान किया गया था और कई दिन तक सांस्कृतिक कार्यक्रम चलते रहे थे।

वैसे तो, मंगलसेन हाईस्कूल में ही सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने और पुरस्कृत होने की शुरूआत हो गई थी, पर जी.एफ. कॉलेज की पत्रिका 'न्यूज़ एण्ड व्यूज़' के छात्र सम्पादक भी बनाए गए। उसमें गुप्तजी की एक कविता और आलेख दोनों छपे थे। उन्हें पुरस्कृत और सम्मानित भी किया गया था।

लखनऊ विश्वविद्यालय में गुप्तजी की साहित्यिक सामाजिक गतिविधियों में नये पंख लग गये। वे विभिन्न प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत हुए। कविताएँ, लेख, समीक्षाएँ आदि लिखने लगे। विभागीय पत्रिका में छात्र-सम्पादक थे, तथा नवजीवन, स्वतंत्र भारत आदि समाचार पत्रों में प्रकाशित होने लगे। कई वार्ताएँ आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित हुईं। पीएच.डी. करने के दौरान आपने बांग्लादेश के कवि काजी अशरफ महमूद की कृति 'प्रसाद' का बंगला से हिन्दी में रूपान्तर किया। उन्हीं दिनों, 'हिन्दी-उर्दू काव्य समीक्षा' संज्ञक प्रथम पुस्तक प्रकाशित हुई। ईस्टर्न पब्लिशिंग हाउस, अमीनाबाद से कई पुस्तकें लिखने का अनुबंध हुआ था, अग्रिम राशि भी मिल गई थी, पर पुस्तकें प्रकाशित न हो सकीं।

आजीविकोपार्जन के संदर्भ में बरेली कॉलेज, बरेली में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हो जाने के बाद शिक्षक और साहित्यकार दोनों रूपों में यश आपके व्यक्तित्व का अंग बनता गया। आचार्य मम्मट ने लिखा है – 'काव्यं यशसे अर्थकृते.....।' काव्य के छः प्रयोजन हैं, जिनमें प्रथम है यश। गुप्त जी कर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं। 'काम करोगे तो नाम भी पाओगे' उक्ति को चरितार्थ करते हुए साहित्य सृजन के क्षेत्र में आप अनवरत सक्रिय रहे। प्रतिवर्ष नई-नई पुस्तकें प्रकाशित होती रहीं और स्थानीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित व पुरस्कृत होते रहे हैं।



गुप्त जी को प्राप्त होने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरस्कार 'पंत की दार्शनिक चेतना' शीर्षक पीएच.डी. के शोधप्रबंध के लिए मिलने वाला 'आत्रेय पुरस्कार' है। 27 नवम्बर 1997 को अमर उजाला में समाचार प्रकाशित हुआ था कि "आत्रेय स्मृति पुरस्कार प्रति दूसरे वर्ष की अमन सिंह आत्रेय की स्मृति में दिया जाता है।..... चयन के लिए देश के विश्वविद्यालयों द्वारा हिन्दी साहित्य में पीएच.डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत तथा प्रकाशित शोध प्रबंधों को आमंत्रित किया जाता है। इसके लिए 21000 रु0 नकद व स्मृति चिह्न प्रदान किया जाता है। इस वर्ष के पुरस्कार के लिए बरेली कॉलेज के

वरिष्ठ प्रवक्ता डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का चयन हुआ है।'

आत्रेय पुरस्कार का मिलना, सही अर्थों में साहित्य और साहित्यकार को साहित्यजगत् में स्वीकृति मिलना था। मम्मट ने – 'काव्यं यशसे....' कहा है, तो महाकवि जायसी, तुलसी आदि ने भी ऐसा ही कहा है। जायसी ने लिखा है कि 'पद्मावत' की कहानी का जो सुनेगा, वह उन्हें भी याद रखेगा – 'जो यह सुनई कहानी, हम सुमिरै दुई बोल।' और स्वान्तः सुखाय लिखने वाले तुलसी ने तो भगवान से प्रार्थना की थी कि विद्वत् समाज सम्मान दे –

होइ प्रसन्न डहु वरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू।।

डॉ. गुप्त प्रसन्न थे। उन्होंने सम्मानपत्र, गोल्ड प्लेटेड स्मृतिचिह्न आदि-आदि विभागीय साथियों और प्राचार्य जी को दिखाये, पर ईर्ष्यादिग्ध शिक्षकों ने उपेक्षा भाव ही दिखलाया। कविवर सुमित्रानन्दन पंत जी को भी ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलने पर ऐसा ही देखने को मिला था। तब बड़े मर्माहत होकर, किंचित् व्यंग्यात्मक स्वर में उन्होंने लिखा था –

पुरस्कार भगवान दिलावे नहीं किसी को
मित्र शत्रु बन जाते इससे और प्रशंसक
कटु आलोचक बन, कृतित्व के साथ अपने
लघु चरित्र को बना दूषणों का पहाड़ पृथु
आत्मतुष्टि पाते हैं तिल का ताड़ बनाकर।
पुरस्कार से इनको भी भगवान बचाये
इनको भी सुनना न पड़े, यह सब औरों से।।

कालान्तर में, डॉ. गुप्त को मान-सम्मान और पुरस्कार-प्राप्ति सामान्य बात हो गई। प्रतिवर्ष कोई-न-कोई पुस्तक प्रकाशित होती है, और कृति व गुप्त जी सम्मानित होते हैं। उनके व्यक्तित्व, कृतित्व, अदम्य जिजीविषा, लगनशीलता और विकलांग होने के बाद भी सतत् सक्रिय रहने के संदर्भ में पत्र-पत्रिकाओं में लेख, आलेख, सचित्र विवरण आदि प्रकाशित होते रहते हैं। सन् 2009 में गुप्तजी के सत्तरवें जन्मदिन पर 'शब्दांगन' संस्था ने आपके सम्मान में एक भव्य आयोजन रोटरी भवन में किया था, जिसमें गुप्त जी की तीन कृतियों – 'अभिगीता', 'आत्ममंथन' तथा 'लोकतांत्रिक भारत में' का लोकार्पण हुआ था। 'साहित्यायन' (त्रै) ने अपना प्रथम विशेषांक 'डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अंक' प्रकाशित किया था।

11. साम्प्रतिक गतिविधियाँ

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का अध्यापन और साहित्यसृजन का अभिन्न सम्बन्ध रहा है। जून 2000 में बरेली कॉलेज से सेवानिवृत्त होने के बाद से डॉ. गुप्त की सक्रियता पहले से अधिक बढ़ गई। पेंशन के रूप में मात्र आठ हजार रु. मासिक मिल रहे थे

और कनिष्ठ पुत्र को बी.टेक. कराना था, इसलिए अपने पुराने प्रकाशक 'प्रकाश बुक डिपो', जिनके लिए रायल्टी पर लिखते थे, के अतिरिक्त प्रति पृष्ठ बीस-पच्चीस अथवा जैसा 'तय' हो जाये के आधार पर कई प्रकाशकों के लिए लिखा। सन् 2007 में छोटे बेटे की भी नौकरी लग गई, तो अर्थोपार्जन के लिए लिखना पूर्णतः बन्द कर दिया। हाँ, शोधकार्य कराते रहे। 2007 में ही आपने साहित्य और शोध की त्रैमासिक पत्रिका 'साहित्यायन' का प्रकाशन शुरू किया। हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोधछात्र कुछ विशिष्ट कर सकें, इस प्रयोजन से शोधछात्रों-शिष्यों को ही 'सम्पादक-मण्डल' में स्थान दिया। डॉ. गुप्त को संतोष है कि उनके सम्पर्क में आये शिष्य, विशेषकर डॉ. लवलेश दत्त, डॉ. समराना फय्याज, डॉ. नितिन सेठी और डॉ. सुरजीत मौर्य अच्छा लिख रहे हैं।

डॉ. गुप्त के शोध-निर्देशन में तैंतीस शिष्यों को पीएच.डी. उपाधि प्राप्त हो चुकी है, और तीन शोधार्थियों को 2016-17 में पीएच.डी. उपाधि प्राप्त हो जाने की सम्भावना है।

प्रकाश बुक डिपो, राज बुक डिपो और शिक्षा प्रकाशन गृह-इन तीन बरेली के प्रकाशकों ने उनकी अधिकांश पुस्तकें छापी हैं। हल्द्वानी (उत्तरांचल) के यूनिवर्सिटी बुक डिपो ने भी छात्रापयोगी पुस्तकों का प्रकाशन किया है। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ के आग्रह पर आपने दो पुस्तकें लिखीं – 'कविवर सुमित्रानन्दन पंत' और 'बाबा नागार्जुन', ये दोनों पुस्तकें हिन्दी संस्थान से प्रकाशित है।

कुछ लेख, कविताएँ, शोध-पत्र आदि हिन्दी की कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं, और अब भी प्रकाशित होते रहते हैं। आपके कई आलेख विभिन्न प्रकार के 'संग्रहों', 'संकलनों' में भी प्रकाशित हुए हैं। डॉ. शिवशंकर कटारे, प्रो. रामप्रकाश गोयल, रईस इन्दौरी के अभिनन्दन ग्रन्थों में भी आपके आलेख प्रकाशित हुए हैं। बरेली के प्रो. रामप्रकाश गोयल के 'अभिनन्दन ग्रन्थ' का सम्पादन आपने ही किया है।

रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय के लिए बी.ए., एम.ए. की अनेक पाठ्य-पुस्तकों का सम्पादन भी गुप्त जी ने किया है। एम.ए. के छात्रों के लिए 'मौखिकी दर्शन' और 'पी.सी.एस. दिग्दर्शन' भी आपकी उल्लेखनीय कृति है।

आकाशवाणी में आप काव्यपाठ, संवाद, आलेख आदि के रूप में अपनी भागीदारी छात्रावस्था से निभाते रहे हैं। आकाशवाणी रामपुर में भी कई बार काव्यपाठ, विशिष्ट विषय पर आलेख पाठ आदि कई बार किया है। एक लेख आकाशवाणी पत्रिका में भी छपा था। कई आलेख डॉ. कौशलनन्दन गोस्वामी द्वारा सम्पादित-प्रकाशित 'आकाशवाणी वार्ताएं' में भी प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. गुप्त शारीरिक अक्षमता के कारण कहीं जाते नहीं, पर आकाशवाणी के अनुरोध पर

आलेख भेज देते हैं, जो प्रसारित हो जाता है।

सन् 2007 में 'साहित्यायन' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था, जो अद्यावधि अनवरत चालू है। डॉ. गुप्त ने अपने शोधछात्रों को संपादक मण्डल में स्थान दिया और उनकी भाषा, शैली आदि के क्षेत्र में समुचित मार्गदर्शन किया। 'साहित्यायन' के सम्पादक के रूप में नौ वर्षों तक कार्यरत रहकर डॉ. लवलेश दत्त ने अपनी पत्रिका अलग से प्रकाशित करनी शुरू कर दी, इस प्रकार 'साहित्यायन' ज्ञानालोक को विकीर्ण करने में प्रत्यक्षतः सफल रहा। 'साहित्यायन' ने सैकड़ों नये लोगों को मंच प्रदान किया, जो लिखते तो थे, पर कभी छपे नहीं, ऐसे अनेक लोगों की रचनाएँ आपने छापीं। डॉ. लवलेश दत्त की कविताओं का संग्रह 'भावत्रयी' छापा।

डॉ. गुप्त 'साहित्यायन' का प्रकाशन अपने ही संस्थान 'अभिलेख प्रकाशन' से कर रहे हैं। इस प्रकाशन से आप अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं।

इस प्रकार 'सेवनिवृत्त' होकर भी अब निरन्तर साहित्य साधना में सक्रिय हैं और अनेक साहित्यानुरागियों को मार्गदर्शन प्रदान करते हुए सारस्वत साधना में संलग्न हैं।

—डॉ. सुरजीत सिंह मौर्य एवं डॉ. नितिन सेठी

●●●



थी मुस्कान लबों पर उसके
लेकिन मेरा जी भर आया

द्वितीय सोपान

साहित्य सृजन एवं अवदान



साहित्य वह दर्पण है जिसमें समाज का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी देता है। इसमें मानव के जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों, आदर्शों, विचारों, क्रिया- प्रतिक्रियाओं तथा समस्याओं का दिग्दर्शन रहता है। मनुष्य समाज में रहकर जो अनुभव और ज्ञान प्राप्त करता है, उन सबका चित्रण साहित्य में रहता है। इस प्रकार क्रियाशील मानव के जीवन की प्रमुख घटनाओं-दुर्घटनाओं का संगठित रूप है साहित्य, जिसे साहित्यकार सुन्दर शैली में अभिव्यक्ति प्रदान करता है, जिससे पाठक अर्थ बोध के साथ-साथ आनन्द का भी अनुभव करता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने विकासशील मानव के महत्त्वपूर्ण अंशों की अभिव्यक्ति को साहित्य माना है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "ज्ञानराशि के संचित कोष का नाम साहित्य है।" ऐसे ही ज्ञान-कोष के मूर्तिमान स्वरूप है प्रख्यात शिक्षाविद एवं साहित्यकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त। आपका साहित्य बहुआयामी है। आपकी लेखनी विद्यार्थी जीवन से ही चलने लगी थी इसलिए अब तक आते-आते आपकी लेखनी पूर्ण प्रौढ़ हो चुकी है। परिणामस्वरूप आपने कविता, जीवनी, उपन्यास, शोध- समीक्षा, भाषा, व्याकरण, पत्रकारिता, अनुवाद आदि विधाओं में श्रेष्ठ साहित्य सृजन किया है। वस्तुतः आपकी प्रतिभा ने हिन्दी साहित्य को जो अमूल्य निधि प्रदान की है, वह अविस्मरणीय है। यहाँ हमारा अभीष्ट डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के समग्र साहित्य का क्रमशः परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करना है जिसे हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर प्रस्तुत कर सकते हैं।

1. काव्य संग्रह –

1. मन-पाँखी
2. स्वर्ण जयन्ती वर्ष
3. गीत श्री
4. ऋतु बसंती
5. आत्ममंथन

6. लोकतांत्रिक भारत में
7. देवी माँ सहचरी प्राण

2. काव्यानुवाद
   1. प्रसाद (बंगला से)
   2. अभिगीता (संस्कृत से)

3. जीवनी साहित्य
   1. विश्व के महान साहित्यकार
   2. कविवर सुमित्रानन्दन पन्त
   3. बाबा नागार्जुन

4. संस्मरण
   1. स्मृति के वातायन
   2. स्मृति सिन्धु से

5. बाल उपन्यास
   1. परीज़ाद

6. यात्रावृत्त
   1. जैसे उड़ि जहाज को पंछी

7. शोधग्रन्थ
   1. हंस जवाहिर : एक अध्ययन
   2. पंत की दार्शनिक चेतना
   3. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण

8. शोध समीक्षा
   1. आधुनिक हिन्दी-उर्दू काव्य समीक्षा
   2. शोधायन

9. निबन्ध
   1. उच्च स्तरीय साहित्यिक निबन्ध
   2. सामाजिक एवं साहित्यिक निबन्ध
   3. किंचित् मननीय

10. हिन्दी भाषा, व्याकरण तथा पत्रकारिता
   1. हिन्दी भाषा का इतिहास
   2. हिन्दी साहित्य का इतिहास
   3. हिन्दी साहित्य का इतिहास एवं काव्यशास्त्र
   4. भारतीय काव्य शास्त्र
   5. पाश्चात्य काव्य शास्त्र
   6. साहित्यशास्त्र और समालोचना

7. काव्यांग परिचय
8. हिन्दी भाषा ज्ञान एवं रचना
9. प्रारूप लेखन, अनुवाद, सम्पादक के नाम पत्र और सामयिक निबंध
10. व्यावहारिक व्याकरण और लेखन के विविध रूप
11. पत्रकारिता और सम्पादनकला
12. हिन्दी : एक व्यावहारिक धरातल
13. हिन्दी भाषा : एक ऐतिहासिक परिदृश्य
14. हिन्दी का स्वरूप एवं विकास और रचनात्मक हिन्दी के विविध आयाम
15. हिन्दी मौखिक परीक्षा दर्शन

11. समीक्षात्मक/आलोचनात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन

12. सम्पादन-प्रकाशन

(क) पुस्तकों का सम्पादन-प्रकाशन

1. प्रो. समप्रकाश गोयल अभिनन्दन ग्रन्थ
2. प्राचीन एवं मध्ययुगीन हिन्दी काव्य
3. भक्ति एवं रीतिकालीन हिन्दी काव्य
4. प्राचीन एवं भक्तिकालीन काव्य
5. नवीन हिन्दी निबन्ध संकलन

(ख) पत्रिकाओं का सम्पादन – प्रकाशन

1. छात्र सम्पादक-न्यूज़ एण्ड व्यूज़, ज्योत्सना
2. नागरी
3. पांचाली
4. साहित्य सम्पर्क
5. साहित्यायन

13. विविध अवदान

1. भूमिकाएँ
2. सम्पादकीय
3. आकाशवाणी – लेख, आलेख आदि
4. पुस्तकों में लेख-संकलित
5. पी.सी.एस. हिन्दी दिग्दर्शन

सतत् सृजनशील

1. कविता संग्रह

आधुनिक हिन्दी कवियों में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का अविस्मरणीय स्थान है। आपने न केवल गद्य के क्षेत्र में बल्कि पद्य के क्षेत्र में भी अपनी लेखनी की छाप छोड़ी है। आपने अपने अनुभव एवं जनजीवन की स्थितियों-परिस्थितियों से अनुप्राणित होकर काव्य सृजन किया है। आपके अब तक 7 काव्य संग्रहों का प्रकाशन हो चुका है। आपकी कविताओं में प्रेम, प्रकृति, जीवन की विडम्बनाओं, राजनीतिक विद्रूपताओं, टूटती परम्पराओं, संत्रास, विकृत मानसिकता, सांस्कृतिक अवमूल्यन जैसे विविध विषयों को बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है।

(1) मन पाँखी :- आज के नीरस हिन्दी कविता के समय में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की 'मन-पाँखी' रस की भीनी फुहार करके तन-मन की अभिसिंचित कर पुलकायमान करने वाली कृति है। यह आपका पहला काव्य-संग्रह है, जो अभिलेख प्रकाशन से सन् 1990 में प्रकाशित हुआ है। इसमें 50 कविताओं का संग्रह है।



इन कविताओं में कहीं जीवन की चेतनता का भाव व्यक्त हुआ है तो कहीं जड़ता का आभास, कहीं कवि 'कुमारिका की नियति' पर दुःख व्यक्त करता है तो कहीं 'प्रेम का पैमाना' मानने वाली प्रेमिकाओं पर करारा व्यंग्य, कहीं जीवन के प्रति आसक्ति दिखाई देती है तो कहीं विरक्ति, कहीं प्रेमिका 'धरती का कलंक' दिखाई देती है तो कहीं 'धरा का स्वर्ग', कहीं नारी वेश्या के रूप में प्रस्तुत हुई है तो कहीं माँ के रूप में। इस प्रकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की ये कविताएँ विविध आयामों की मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत करती हैं।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का 'मन-पाँखी' कितनी चंचल है, यह उनकी कविताओं को पढ़कर अच्छी तरह जाना जा सकता है। कभी तो वह 'रेशम की झील' में तैरता है तो कभी अमीनाबाद के 'दोलायमान प्रणय' को देखता है। कभी 'कैबरे गर्ल' को देखता है तो कभी 'ब्रीडा और प्रजनन' को। कभी उसे 'आदम और हौवा' का घर प्रिय है तो कभी 'नागफनी का फूल'। वस्तुतः मन-पाँखी इतना चंचल है कि पल भर में जीवन के विस्तृत धरातल को झाँक लेता है।

मानव-जीवन अनमोल है, इसकी 'सार्थकता' तभी है जब इसका सम्पूर्ण उपभोग किया जाये अर्थात् आनन्द उठाया जाये, चाहे सुख हो या फिर दुःख। इस संसार में जीवन का विकास सभी प्राणियों में अलग-अलग ढंग से होता है, जैसे 'भंवरा और नर' का। भँवरा रसपान करके उड़ जाता है परन्तु नर उस फूल से कोमल बदन को मसलता रहता है और दबाकर सो जाता है। यह उसकी अपनी नियति है। जब प्रिया बिछुड़ जाती है तो 'स्मृतियाँ' ही जीवन का सहारा बनती हैं फिर कवि

'मृत्यु-शर्त' रखता है कि मृत्यु भी आये तो उस समय उसकी प्रिया उसके बाहुपाश में हो। कवि संयोग के क्षणों को ब्रह्मानन्द मानता है। यही प्रेम की प्रगाढ़ता है और यही प्रेम की पराकाष्ठा।

प्रेम की भाषा शब्दातीत होती है। प्रेमीजन अपने भावोद्गार 'नयनालाप' के माध्यम से अभिव्यक्त करने में सक्षम होते हैं। वे इस प्रकार संकेतों में संवाद स्थापित कर लेते हैं कि आस-पास मौजूद लोग इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ ही रह जाते हैं, परन्तु जब किसी कारणवश प्रमिका का प्रत्युत्तर नहीं मिलता तो प्रेमी उद्विग्न, परेशान और बेचैन हो उठता है। वह अन्दर-ही-अन्दर छटपटाता रहता है और अन्त में उसकी वाणी मुखर हो जाती है। ऐसी स्थिति में प्रेमी के लिए प्रेमिका का उत्तर नकारात्मक हो अथवा सकारात्मक, स्वीकार्य होता है क्योंकि वह तो प्रेम रस में सरावोर होता है। ऐसी स्थिति में कवि प्रिया से कहता है कि 'ना' ही कह दो क्योंकि वह जानता है कि प्रेमिकाओं की 'हाँ' बराबर 'ना' और 'ना' बराबर 'हाँ' होती है। कुछ समय बाद 'मौनाराधना' टूटती है और प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है तो उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो सारे स्वप्न टूटकर बिखर गये हों। परन्तु जीवन यहीं समाप्त नहीं हो जाता है, कुमारिकाओं की तो नियति ही यही है, वे सामाजिक बन्धनों में जकड़ी हुई हैं। स्त्री जीवन की यह त्रासदी है कि वह सीधी-सादी गाय के समान है, परिवार वाले जिस खूँटे से चाहे बाँध दें। सामाजिक परिस्थितियों ने इन निर्दोष कुमारिकाओं को 'धरती का कलंक' बनाकर रख दिया है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने इन कविताओं में नारी जीवन की दुर्दशा, विडम्बना तथा निरीहता को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

नारी के अनेक रूप हैं। कभी वह माँ के रूप में अपनी सन्तानों को वात्सल्य से सराबोर करती हुई दिखाई देती है तो कभी पत्नी के रूप में अधिकार जमाती हुई दिखायी देती है। कभी वह बहन के रूप में रक्षासूत्र बाँधकर भाई की लम्बी उम्र की कामना एवं स्वयं की सुरक्षा का वचन लेती हुई दृष्टिगत होती है तो कभी पुत्री रूप में अपने माँ-बाप से लाड़ लड़ाती हुई नजर आती है। कभी वह मित्र रूप में प्रेरक शक्ति बनकर अच्छी सहचरी साबित होती है तो कभी वेश्या के रूप में कामासक्ति से त्रस्त व्यक्ति को तृप्ति प्रदान कर आनन्द की अनुभूति कराती है। ऐसे न जाने कितने ही रूप हैं नारी के, पर क्या इनमें 'नारी की पूर्णता' या 'नारी की सार्थकता' दिखाई देती है ? डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने जहाँ 'नारी की पूर्णता' केवल पत्नी रूप में पायी है तो 'सार्थकता' माँ के रूप में स्वीकार की है। आपने नारी की पूर्णता के विषय में लिखा है -

कितने ही रूप हैं नारी के
सभी मिथ्या

अपूर्ण और अधूरे
मुझे तो एक ही रूप लगता है पूर्ण-पत्नी का
माँ जैसा स्नेह देकर खिलाती-पिलाती है
चूड़ियों की झनकार से रिझाती है
सभी कुछ झेलती है पति-साथ
मरते दम साथ निभाती है। (नारी की पूर्णता, पृ. 66)

नारी पत्नी-रूप में पति का मरते दम तक साथ निभाती है। वह सुख-दुःख हर्ष-विषाद हर स्थिति, परिस्थिति में पुरुष का हर सम्भव सहयोग करती है। प्रेम एक पवित्र बन्धन होता है जो त्याग, बलिदान, समर्पण तथा धैर्य चाहता है। सच्चे प्रेमी जाति-बिरादरी, धर्म, सम्प्रदाय इत्यादि से ऊपर होते हैं। उनकी दृष्टि में ये सब चीजें कोई मायने नहीं रखती हैं क्योंकि प्रेम इन सबसे ऊपर है। आज के बदलते परिवेश में प्रेम का स्वस्थ विकास क्रम और विकृत रूप अधिक देखने को मिलता है। आधुनिक युग में प्रेमीजन धोखा, छल तथा टाइम पास कर रहे हैं। यही कारण है कि प्रेमीजनों के बीच शंका और अविश्वास का माहौल बनता जा रहा है। आज के प्रेमीजन पाश्चात्य अंधानुकरण कर 'यूज एण्ड थ्रो' की अनीति को प्रेम-रीति मान बैठे हैं। आज लैला-मजनूँ, शीरी फरहाद, हीर-राँझा जैसे दमदार चरित्रों का सर्वथा अभाव है। आधुनिक प्रेमिकाओं ने 'प्रेम का पैमाना' बना रखा है। उनकी अपने प्रेमियों के विषय में क्या मानसिकता है डॉ. गुप्त जी इस भेद को खोलने में सफल रहे हैं। ये प्रेमिकाएँ प्रेमी से नहीं बल्कि उसकी सम्पत्ति से प्यार करती हैं। यह नारी की मूल्यहीनता का ही संकेत है।

इस कविता-संग्रह से स्पष्ट है कि डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त छायावादी कवियों की तरह छायालोक में विचरण कर सपनों के महल बनाने वाले नहीं है, बल्कि जीवन के यथार्थ धरातल पर रहकर वास्तविक अनुभव को व्यक्त करने वाले हैं। आपने अपने 'मन-पाँखी' नामक कविता-संग्रह में प्रेम, प्रकृति, आर्थिक तंगी, मूल्यहीनता, नारी जीवन की त्रासदी एवं विविध रूप, उसका सौन्दर्य जैसे विविध विषयों का उद्घाटन किया है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के विचारों एवं संस्कारों में कोई मतभेद नहीं हैं। अज्ञेय ने कहा है – "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है।" यह बात काफी हद तक सही है पर बहुत से कवियों के विचार और संस्कार अलग भी होते हैं। वे अपने संस्कार अपने विचारों में व्यक्त करने से कतराते हैं और इसीलिए दोहरी नीति अपनाते हैं। उनमें अपनी हकीकत व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती है, किन्तु डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त अपनी सच्चाई को कहने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। वे बहुत बेबाक और पारदर्शी हैं। वशिष्ठ जी के शब्दों में – "कवि चाहे जो भी जैसा भी करे या रचे, अपनी हकीकत को खुलेआम मजूर करता चले, तो उसकी तरल-सरल सहजता

को तरजीह दी जानी चाहिए। वस्तुतः यह सहजता कवि की मूल पूँजी होती है। इसके बिना सृजनात्मक अनुभूति और संवेदनात्मक अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। मन पाँखी (कविता-संग्रह) के कवि डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के पास निश्चित रूप से यह मूल पूँजी है और भरपूर है।"

कुछ सम्मतियाँ

'मनपाँखी' पढ़ी जीवन की कटु सच्चाइयाँ, अनुभूतियों के उच्चशिखर एवं मन की गहनता अपनी पराकाष्ठा सहित विद्यमान है। अभिव्यक्ति की सच्चाई सर्वथा प्रशंसनीय है।

—डॉ0 धर्मध्वज त्रिपाठी, प्राचार्य, महात्मा गाँधी कॉलेज, फतेहपुर

आज की नीरस हिन्दी कविता के दौरान 'मन-पाँखी' की रस भीनी फुहार तन-मन को अभिसिंचित कर पुलकायमान कर गई। प्रेम, सौन्दर्य और वासना की यह निश्छल अभिव्यक्ति देखते ही बनती है। कुछ कविताओं में यथार्थ का अंकन और दर्शन का दिग्दर्शन 'मन-पाँखी' को नूतन दिशा-निर्देशन देता प्रतीत होता है।

—प्रो0 सुधाकर उपाध्याय, प्राचार्य के. बी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मीरजापुर

अतुकांत ये कवितायें जहाँ भावुक और युवा कवि की मानसिक चेतना को विविध संदर्भों में अभिव्यक्त करती हैं, वहाँ भाषा-शिल्प में अनेक लोक विषयों को उभार कर उसके मर्म को सरलता-सहजता से उजागर भी करती है। कविता की मार सहृदय के मन को झकझोरती है, इस दृष्टि से कुछेक कविताएँ बड़ी सुन्दर हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति के प्रलोभन से दूर संवेदनशील कलाकार का परिचय इनमें उपलब्ध होता है।

—डॉ0 त्रिलोकी नाथ 'प्रेमी', आगरा

इस संग्रह से आपके कवि रूप में परिचित हुआ। आपकी कविताएँ प्रेम और यौवन की कविताएँ हैं और कई स्थानों पर समुद्र का उफान है, जो पाठकों को अन्दर तक भिगो देता है। कुछ कविताओं में काम दृश्यों एवं अनुभूतियों का जीवंत वर्णन है, लेकिन मेरी जिज्ञासा है कि कवि क्यों अपनी कविताओं में इतना दिगम्बर हो जाता है ?

—डॉ0 कमलकिशोर गोयनका, दिल्ली

'मन-पाँखी' घर आते ही चाट गया। आपके भीतर की हरीतिमा और रसार्द्रता अब भी शेष है, इसका प्रमाण मिला। "सारी कवितायें प्रणयिनी के इर्द-गिर्द घूम रही है, प्रेयसी सबके केन्द्र में है। शरीर के चित्र परम्परागत होते हुए भी अच्छे थे, लेकिन मन के चित्र कम हैं, लगभग न के बराबर।" कुल मिलाकर पचास की वयस

ने 50 रागपगी कविताओं का मधुपर्क 'मन-पाँखी' उपलब्धि की दृष्टि से समाधान कारक हैं।

—डॉ0 भगवानशरण भारद्वाज, बरेली

कवि चाहे जो भी-जैसा भी करे या रचे, अगर अपनी हकीकत को खुले आम मंजूर करता चले, तो उसकी तरल-सरल सहजता को तरजीह दी जानी चाहिए। वस्तुतः यह सहजता कवि की मूल पूँजी होती है। इसके बिना सृजनात्मक अनुभूति और संवेदनाजनक अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। 'मन-पाँखी' (कविता-संग्रह) के कवि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के पास निश्चित रूप से यह मूलपूँजी है और भरपूर है। "आचरण चित्र (नदी में नहाने उतरी, प्रेम-भोग-मनन की मुद्रा में खड़ी एक अलमस्त औरत और आकाश से उसकी ओर ताकत एक नर पक्षी) इस कविता संग्रह के सत्य की उरेहने में काफी हदतक कामयाब है। प्रायः सभी रचनायें प्रेम (वासना) की कविताएँ हैं। 'नयी कविता' के ढाँचे में सपाट बयानी की रोमैंटिक रवानी पेश करती हर कविता में औरत है।"

—वशिष्ठ (माया, 30 नवम्बर 1990)

2. स्वर्ण जयन्ती वर्ष



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताओं का दूसरा संग्रह 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' के नाम सन् 1998 में अभिलेख प्रकाशन से प्रकाशित हुआ।

काव्य-संग्रह में एक वर्ष (15 अगस्त 1996 – 15 अगस्त 1997) में लिखित कविताएँ संग्रहीत हैं। इस काव्य-संग्रह का मूल स्वर राजनैतिक भ्रष्टाचार है, इसके साथ-साथ आपने सामाजिक अवमूल्यन, शोषण, दलितों की पीड़ा, आरक्षण की समस्या, सांस्कृतिक अनुरक्षण तथा राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे विभिन्न पहलुओं की ओर भी पाठक का ध्यान आकर्षित किया है। साहित्यकार समाज का स्रष्टा एवं द्रष्टा होता है। उसके पास शब्दों की अमूल्य पूँजी होती है। वह इन्हीं शब्दों को अस्त्र ही तरह प्रयोग करता है और समाज विरोधी शक्तियों का संहार करता है। उसकी दृष्टि में "शब्द तो ब्रह्मास्त्र हैं।" पहले गुप्त जी ने 'भावी पीढ़ी को सम्बोधन' किया है कि वह उस वट वृक्ष के समान नहीं बनना चाहते हैं जो दूसरे पौधों के विकास को अवरुद्ध कर देता है। वह तो नयी पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए उसे प्रोत्साहित करने के हिमायती हैं।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपनी कविताओं में 'भारतीय लोकतन्त्र' में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अराजकता तथा तानाशाही को उजागर कर लोकतंत्र के बदलते ढाँचे को प्रस्तुत किया है। लोकतंत्र में जिन सभ्य, नैतिक तथा सेवाभावी

जननायकों की कल्पना की गयी थी हकीकत इससे कोसों दूर है। आज हमारा लोकतंत्र दस्यु सुन्दरियों, हत्यारों और बलात्कारियों की सम्पत्ति मात्र बनकर रह गया है –

हमारे लोकतंत्र में
दस्यु सुन्दरियाँ और हत्यारे
सांसद बन जाते हैं
और बलात्कारी रक्षामंत्री बनकर
उनकी रक्षा करते हैं। *(भारतीय लोकतंत्र, पृ. 4)*

सामाजिक अव्यवस्था का मूल कारण 'भ्रष्टाचार की वह गंगोत्री' है जिसका न तो आदि है और न अन्त। राजनेता अपनी सुख-सुविधाओं, स्वार्थलाभ और महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जनता जनार्दन का शोषण करते जा रहे हैं। डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त राजनैतिक दबाव में जीने वाले कवि नहीं हैं वे सत्य को उद्घाटित करने में तनिक भी संकोच नहीं करते हैं, चाहें उन्हें इसका कितना भी बड़ा मूल्य क्यों न चुकाना पड़े ? आपने राजनैतिक भ्रष्टाचार में संलिप्त ए. आर. अन्तुले, पी. वी. नरसिंहा राव, वी. पी. सिंह, लालूप्रसाद यादव जैसे दिग्गजों तक को अपने व्यंग्य वाणों का शिकार बनाया है। भारत की राजनीति में एक तरफ तो ऐसे घोटालेबाजों-जो सत्तासीन हैं या सत्ताहीन-पर करोड़ों रुपये खर्च किये जाते हैं, उन्हें एस.पी.जी . की सुविधा उपलब्ध करायी जाती है तो दूसरी तरफ आम आदमी का शोषण किया जाता है। 'उनका आना', 'सुरक्षा कालोनी' आदि कुछ ऐसी ही कविताएँ हैं जिनमें राजनेताओं की तानाशाही, सरकारी धन का दुरुपयोग तथा सामाजिक अव्यवस्था को प्रस्तुत किया गया है। हम विकास के नाम पर 'बैलूनी विकास' कर रहे हैं। विकास के नाम पर कोरी भाषणबाजी की जाती है और विकास के लिए आवंटित धन को नेतागण हड़प कर जाते हैं और डकार तक नहीं लेते। इन खोखले आदर्शों पर इतराने वालों एवं दोहरी नीति को अपनाने वालों की कलई खोलने में डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त सफल रहे हैं।

'संवेदना का मूल्य' निरन्तर गिरता जा रहा है। समाज में अत्याचार, लूटपाट, हिंसा, बलात्कार जैसी घटनाओं का साम्राज्य स्थापित हो चुका है। आम आदमी बेबसी और बदहाली में जीवन जीने के लिए मजबूर है। ऐसी स्थिति में 'कार्य-दक्षता' की परिभाषा ही बदल गयी है। डॉ० गुप्त जी इस तथ्य को उद्घाटित करते हैं कि आज वही व्यक्ति कार्य-दक्ष है जो बिना किसी ना-नुकुर के कालाबाजारी करता रहे और सफेद कागज पर काले कारनामे अंकित करता रहे –

और फिर,
कुछ ही समय बाद, ईमानदार, कर्त्तव्यपरायण, सत्यनिष्ठ

और सच्चे बुद्धिजीवी को
किसी न किसी बहाने
निरर्थक कार्य में
व्यस्त (खत्म) कर दिया जाता है
और कमाऊ
व गोपनीय कार्य
सौंपे जाते हैं ऐसों को, जो
बिना किसी तर्क, ना-नुकुर के
कार्य में जुट जायें
(काला सफेद बनायें)
और जो,
गुणवत्ता, बचत
या बरबादी का
प्रश्न न उठायें। *(कार्यदक्षता, पृ. 36-37)*

समाज में 'महिला-लेखन-और आरक्षण' की भी समय-समय पर माँग की जाती रही है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त इसके विरोध में दिखाई देते हैं क्योंकि आपका मानना हैं कि साहित्य को धर्म, जाति, लिंग, सम्प्रदाय, वर्ग इत्यादि की परिधि में बाँधना सर्वथा गलत है। वह नितान्त स्वतन्त्र होता है। यदि ऐसा किया जाता है तो निश्चित रूप से साहित्य की दुर्गति होगी। लेखन क्षेत्र में आरक्षण प्रक्रिया से उच्च कोटि के साहित्य-सृजन में निश्चित रूप से गिरावट आयेगी।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त जी का विचार है कि समाज में समरसता लाने के लिए 'स्वतंत्रता का अर्थ' जानना आवश्यक है। इसके बिना स्वस्थ समाज की उन्नति असम्भव है। आपने अमीरी-गरीबी, जाति-पाँति आदि बन्धनों को तोड़ने की वकालत की है। इस तुच्छ, संकीर्ण एवं बीमार मानसिकता से छुटकारा पाये बिना नहीं कहा जा सकता है कि 'मेरा भारत महान है।' अंग्रेजी प्रेम दासता का प्रतीक है। आपने 'भारत छोड़ो' कविता में अंग्रेजी के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया की है।

'परिवर्तन-प्रक्रिया' में 'पीड़ा का यथार्थ' कहीं खो गया है। दलित समाज आज भी उपेक्षित शोषित तथा पीड़ित है। वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए छटपटा रहा है। यह तो 'माया की माया' है जो निम्न वर्ग का अस्तित्व बचा हुआ है अन्यथा गरीबी हटाओ अभियान में गरीबी हटान के बजाय इन निःसहाय लोगों को ही हटा दिया जाता। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने दलित समाज के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा है -

दलितों की पीड़ा को
क्या जाने

अधिकारी
नेता, व्यापारी
और जन सेवक
उनकी करुणा है
बौद्धिक विलासिता
सामंती उदारता। *(पीड़ा का यथार्थ, पृ. 27)*

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की 'स्वर्ण जयंती वर्ष' में जनता के शोषण राजनेताओं की चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार, षड्यंत्र, संवेदनहीनता, खोखले आदर्श, लेखन की समस्या आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। कुल मिलाकर स्वर्ण जयन्ती वर्ष राजनैतिक भ्रष्टाचार से उपजी सामाजिक अव्यवस्था, अमानवीयता, राजनेताओं की तानाशाही एवं अधिकारियों की मनमानी से त्रस्त, अधिकारों से वंचित दलित शोषित समाज के व्यापक धरातल की यथार्थवादी अभिव्यक्ति प्रदान करने में पूर्ण सफल एवं सक्षम रही है।

3. गीतश्री

'गीतश्री' डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का तीसरा काव्य-संग्रह है। इससे पहले 'मन-पाँखी', और 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' नामक दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'गीत श्री' का प्रकाशन सन् 2004 में अभिलेख प्रकाशन से हुआ। इसमें 50 कविताओं को संकलित किया गया है। ये सभी कविताएँ गेय पदों में हैं। 'गीत श्री' विषयवस्तु की दृष्टि से बहुआयामी हैं। इसमें कविमन की व्यथा, प्रेम, विरह, प्रकृतिप्रेम, राष्ट्रीयता, पारम्परिक त्यौहार, समाजवाद तथा दरकते रिश्ते आदि विविध पक्षों को उद्घाटित किया गया है।



'गीत श्री' का शुभारम्भ पारम्परिक शैली में 'सरस्वती वन्दना' से किया गया है। कवि ज्ञानदायिनी माँ सरस्वती से आशीर्वाद माँगता है कि वह हर परिस्थिति में दृढ़ रहे और आर्य संस्कृति का निरन्तर विकास होता रहे। 'गाऊँगा मैं दुःख में भी', 'मुझे ले लो राम', 'मुझे दुःख दिया क्यों', 'भटका बटोही', 'आँसू' आदि कविताओं में कवि ने अपने जीवन की समस्त पीड़ा को ही उड़ेल दिया है। 'मुझे ले लो राम' में शारीरिक अक्षमता को व्यक्त किया है, तो 'मुझे दुःख दिया क्यों' में विधाता से शिकायत करता है कि इस संसार में सभी सुखी हैं, पर उसी को इतने दुःख क्यों दिये हैं? चूंकि इन दुःखों को कवि ने स्वयं भोगा है, इसी कारण वह इतनी मार्मिक और सजीव अभिव्यक्ति कर सका। अन्यथा कोई भी कविता ऐसी कारुणिक अभिव्यक्ति देने में सफल नहीं हो पाती। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं – एक गुप्त जी की सहज

प्रतिभा और दूसरी, जीवन का सत्य। 'संकल्प', 'आह्वान', 'माँ की पुकार', 'गणतन्त्र दिवस', 'भारत है गणतन्त्र महान', 'शपथ हिन्दुस्तान के हिन्दुओं ! शपथ काली माँ के खप्पर की', 'आन राजपूत की' आदि कविताएँ राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। कवि राष्ट्रविरोधी शक्तियों को मुँहतोड़ जवाब देना चाहता है। वह नूतन निर्माण का अभिलाषी है। इसी कारण नवयुवाओं को राष्ट्र की रक्षार्थ कभी हिन्दुस्तान की, कभी माँ काली की तो कभी राजपूत की आन की शपथ देकर आह्वान करता है। 'आन राजपूत की' कविता में देशद्रोहियों, आतंकियों को चेतावनी देता हुआ कवि कहता है –

समझता हूँ कि किसकी आँख टेढ़ी।
समझता हूँ कि किसकी चाल टेढ़ी।।
शपथ लेता हूँ, उसकी आँख फोड़ूँगा।
शपथ लेता हूँ, अब वह टाँग तोड़ूँगा।।
(आन राजपूत की, पृ. 65)

'तुम क्या रूठे सजन', 'जमाने की बदली हवा', 'तुम्हारा ऋणी', 'आहत मन', 'प्रेम की पीड़ा', 'आज की रात', 'विरह गीत', 'जीवन गीत', 'पिपासा', 'निश्चय' आदि प्रेमपरक कविताएँ हैं। ये कविताएँ वियोग श्रृंगार से सरावोर हैं। कवि अपना सम्पूर्ण जीवन अपनी प्रियतमा को समर्पित करता है फिर भी उसकी प्रियतमा उससे दूर हो जाती है तो उसे ऐसा प्रतीत होता है मानो सारा जमाना ही दुश्मन हो गया हो। 'प्रेम की पीड़ा', 'आज की रात', 'विरह गीत', 'जीवनगीत' इत्यादि कविताओं में कवि की घनीभूत पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है। सारा जीवन प्रियतमा की याद में गुजार देने का निश्चय प्रेम की एकनिष्ठता का प्रतीक है। अपनी प्रियतमा से न मिल पाने की पीड़ा, कसक और टीस रह-रह कर कवि मन को व्यथित करती रहती है –

मैं वह गुलाब हूँ, कि जो खिलने नहीं पाया।
मै वह पराग हूँ, जो छलकने नहीं पाया।।
आती है मधुर याद कि जब मैं किशोर था।
आयी परी उठाने कि मैं उठ नहीं पाया।।
(जीवनगीत, पृ. 38)

'होली के नवाब', 'हुड़दंग', 'झोपड़ी और महल' आदि कविताओं में कवि का बचकाना प्रयास दिखाई देता है। यद्यपि इसमें कवि ने सरल, सहज, साधारण भाषा को अपनाया है, कलात्मकता बिल्कुल भी नहीं है तथापि रोचकता में कमी नहीं आने पायी है।

कवि ने प्रेमपरक कविताओं के अतिरिक्त भारतीय पारम्परिक त्योहारों –

होली, दीपावली, रक्षाबंधन तथा राष्ट्रीय पर्वों स्वतंत्रता दिवस एवं गणतंत्र दिवस आदि के विषय में भी कई कविताएँ लिखी हैं खासकर दीपावली के विषय में। 'दीपावली', 'मेरी दीवाली', 'दीपमालिके', 'दीवाली आज आई है', आदि कविताएँ हर्ष-विषाद को प्रकट करती हैं। दीवाली, 'दीपमालिके', 'दीवाली आज आई हैं' कविताएँ खुशियों का प्रकाश लेकर आयी हैं तो 'मेरी दीवाली' दुःखों का अंधेरा। मेरी दीवाली में कवि प्रेयसी की याद में रात भर दीपक की भाँति जलता रहता है।

तुमने दीप जलाए होंगे द्वार पर।
मैं तो दिल को जलाता रहा रात भर।।

(मेरी दीवाली, पृ. 47)

'प्रणय-प्रसार', 'पावस-गीत', 'भारत की धरती' आदि कविताओं में गुप्त जी ने प्रकृति का मनोहारी चित्रण किया है। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति की गोद में खेलने वाला कवि प्रकृति से अप्रभावित नहीं रह सकता। प्रकृति चित्रण काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित कर देता है, यह बात गुप्त जी की कविताओं को पढ़कर अच्छी तरह जानी जा सकती है।

'जवानी प्यार चाहती है' आज के युवावर्ग की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करती है। जवानी के जोश में सारे पारिवारिक रिश्ते-नाते टूटते नजर आ रहे हैं। यह प्यार वास्तविक प्यार नहीं बल्कि शारीरिक और यौनाकर्षण का वह पागलपन है जो सामाजिकता को तार-तार करता जा रहा है। 'वे समझे' कविता शैली की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें पुराने विचारों को ही नवीन शैली में प्रस्तुत किया गया है जिस कारण पाठक अनायास ही कविता की ओर आकर्षित हो जाता है।

इस प्रकार 'गीत श्री' में प्रेम, प्रकृति, विरह, राष्ट्रीयता, पारम्परिक त्यौहारों, राष्ट्रीय पर्वों, सामाजिक ह्रास जैसे विविध विषयों को बड़ी ही संजीदगी के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है जिसका प्रेम एवं राष्ट्रीयता मूल स्वर हैं। इस दृष्टि से यह काव्य-संग्रह निश्चित रूप से उच्च कोटि की कृतियों में परिगणनीय है।

4. ऋतुवसंती

'ऋतुवसंती' डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की 65 कविताओं का संग्रह है। यह पुस्तक सन् 2006 में अभिलेख प्रकाशन से प्रकाशित हुई है। संयोग से इस पुस्तक के प्रकाशन के समय आपकी आयु भी 65 वर्ष की थी। कुछ लोग इसे गीतों का संग्रह मानते हैं। डॉ0 लवलेश ने कहा है – "ऋतुवसंती कविमना डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के प्रारम्भिक गीतों से लेकर अब तक के गीतों का संग्रह है।" मेरी दृष्टि में यह काव्य-संग्रह है जिसकी अधिकांश कविताएँ गायी जा सकती हैं। ये कविताएँ लयात्मकता से युक्त होने के साथ-साथ बौद्धिकता से भी परिपूर्ण हैं। चेतन घोरले के

शब्दों में – "कविता भारतीय साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, यह समझ लीजिए कि ये साहित्य के शरीर की साँस है। देखा जाए, तो गीतों को साहित्य का अंग मानने में कोई बुराई नहीं है ? पर यह सोचना कि गीत कविता की जगह ले लेंगे, गलत होगा। गीत सादा और सरल है। गीत को सुन्दर बनाने में सुरों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। कविता असाधारण और जटिल होते हुए भी बिना किसी धुन के मधुर बनी रहती है।"

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की अधिकांश कविताएँ शृंगार रस से ओत-प्रोत हैं, और शृंगार ही इस काव्य संग्रह का प्रधान तत्त्व है बावजूद इसके आपने इस पुस्तक का श्रीगणेश 'सरस्वती वन्दना' से और अन्त ऋतुवसंती नामक कविता से किया है जिसमें एक ओर तो आध्यात्मिक प्रवृत्ति दिखाई देती है तो दूसरी ओर आशिकाना मिजाज। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताओं के दो छोर हैं एक अध्यात्म दूसरा शृंगार। आपकी अन्य कविताएँ इन्हीं दोनों छोरों के बीच झूलती हुई प्रतीत होती हैं। काव्य-संग्रह का प्रारम्भ 'सरस्वती वन्दना' से करके कवि ने भारतीय परम्परा का पूर्ण निर्वहन किया है।



डॉ0 गुप्त ने यद्यपि 'ऋतुवसंती' में प्रेमतत्त्व को प्रमुखता प्रदान की है तथापि यत्र-तत्र सामाजिक पर्वों, समाजवादी जीवन दृष्टि, रहस्यवादी भावना, ईश्वर-भक्ति, राष्ट्रीय चेतना, हिन्दी प्रेम, राजनीतिक विसंगतियों जैसे विभिन्न पक्षों का भी पूर्ण मनोयोग से चित्रण किया है।

ऋतुवसंती का मूल स्वर प्रेम होने के कारण इसकी अधिकांश कविताएँ शृंगार रस से सराबोर हैं जिनमें आयोग, विप्रयोग तथा संभोग तीनों ही प्रकार के भेद समुपलब्ध हैं। इसमें वर्णित शृंगार रस मन को, अभिसिंचित कर तन को पुलकित करने वाला है। शृंगार की इन मधुर मादक छवियों का आकर्षण इतना प्रबल है कि अनायास ही मन खिंचा चला जाता है।

ऋतुवसंती में ऐसे स्थल कम ही हैं जहाँ कवि ने अभिसार की अभिलाषा व्यक्त की हो क्योंकि कवि भी यह जानता है कि अभिसार में ही सब कुछ नहीं है। प्रेम की प्रगाढ़ता संयोग की अपेक्षा वियोग के क्षणों में अधिक होती है। यही प्रेम की कसौटी है। तभी प्रेमीजन के हृदय के वास्तविक उद्‌गार निकलकर आते हैं। प्रियतमा के रूठ जाने पर कवि-हृदय को ऐसा अनुभव होता है मानो उसको सारा संसार ही रूठ गया हो और संसार उसके लिए शून्यवत हो गया हो। विरह की यह तीव्र अभिव्यंजना आपकी कविताओं की खास विशेषता है। विरह व्यथित कवि हृदय से कुछ इस प्रकार भाव प्रस्फुटित होते हैं –

सुधि क्या आई तुम्हारी मैं बेसुध हुआ।
कैसे समझाऊँ मन को, न माने मेरी।।

ताप से तप्त तन क्षीण जर्जर हुआ।
नैन मोती जो मचले तो रुकते नहीं।। (ऋतु. 23)

प्रेमपरक कविताओं के साथ-साथ कहीं-कहीं कवि ने अपने मन की व्यथा भी कही है। 'गाऊँगा मैं दुःख में भी', 'निरर्थकता बोध', 'मुझे दुःख दिया क्यों?', 'आत्म बोध', 'सागर तट पर', 'जिजीविषा' जैसी कविताओं में कवि हृदय की पीड़ा सघनता से मुखरित हुई है। कवि ने न केवल श्रृंगार और दुःख को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है वरन् सामाजिक त्यौहार दीपावली पर्व के विषय में विशेष रूप से लेखनी चलायी है। 'दीपावली', 'मेरी दीवाली' और 'दीपमलिके' इत्यादि कविताएँ सामाजिक पर्व की ओर कवि की प्रतिबद्धता को प्रदर्शित करती हैं। उसकी यह प्रतिबद्धता भारतीय संस्कृति के अनुरक्षण की ओर भी संकेत करती है। कवि ने पूँजीवाद के बढ़ते वर्चस्व को देखते हुए 'पूँजीपतियों से निवेदन' किया है कि पूँजीवादी विचारधारा को त्यागकर समतावादी विचार अपनायें तभी सम्पूर्ण समाज का कल्याण सम्भव है। 'काव्य के हेतु' कविता के माध्यम से कवि ने स्पष्ट करना चाहा है कि प्रेम, श्रृंगार, प्रकृति आदि से कविता लिखने की प्रेरणा तो अवश्य मिलती है परन्तु अच्छी कविता वही होती है जिसमें सर्वे भवन्तु सुखिनः का सार छिपा हो। ऐसी कविता हर युग में प्रासंगिक होती है। उसकी उपादेयता कभी भी समाप्त नहीं होती है। 'गोधरा काण्ड की प्रतिक्रिया में' जहाँ कवि के विचार उत्तेजक दिखाई देते हैं वहीं 'माया महारानी' में व्यंग्यात्मक विचार प्रस्तुत हुए हैं।

इन कविताओं से स्पष्ट है कि कवि कितनी भी प्रेम श्रृंगार की कविताएँ लिखे परन्तु वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से अप्रभावित नहीं रह सकता है। कहीं न कहीं ये प्रभाव उसकी कविताओं में अवश्य ही परिलक्षित हो ही जाता है। निराशा, हताशा, पीड़ा, कुण्ठा की धूप से तपते हुए व्यक्ति के लिए ऋतुवसंती निश्चित ही रस की झमाझम बारिश के समान तापहारिणी सिद्ध होगी।

5. आत्ममंथन

'आत्ममंथन' डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का पाँचवाँ चर्चित काव्य संग्रह है जिससे आपकी 64 कविताओं को स्थान दिया गया है। इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन अभिलेख प्रकाशन द्वारा सन् 2008 में हुआ। 'आत्ममंथन में आपने न केवल काव्य क्षेत्र की व्यापकता, आशा-निराशा, आस्था-विश्वास, संत्रास, मानवीय अवमूल्यन, संवेदनहीनता, अवसरवादिता जैसे विविध पहलुओं को प्रस्तुत किया है बल्कि सामाजिक विघटन, जनसंख्या वृद्धि, आर्थिक संकट, भ्रष्टाचार लोकतंत्र की असफलता जैसी विकराल समस्याओं को बड़ी ही सच्चाई के साथ उद्घाटित किया है।



डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त काव्य-धरातल को अत्यन्त विशद् एवं व्यापक मानते हैं। आप आम आदमी के आचार-विचार, क्रिया-कलाप, हर्ष-विषाद, प्रेम-घृणा, उत्थान-पतन से युक्त समग्र जनजीवन को काव्य का विषय बनाने के हिमायती हैं। आप काव्य विषय के रूप में प्रेम-वासना, श्लीलता-अश्लीलता, ग्राह्य-अग्राह्य के सम्बन्ध में व्यापक जीवन दृष्टि अपनाते हुए प्रत्येक अनुभव को काव्य का विषय बनाने के अभिलाषी हैं। आपकी दृष्टि में काव्य का क्षेत्र अत्यन्त विशद् एवं व्यापक होने के कारण उसमें जीवन का प्रत्येक अनुभव प्रस्तुत किया जा सकता है। पाठक उसे किस रूप में ग्रहण करता है, यह उसकी अपनी सोचने की शक्ति पर निर्भर करता है, क्योंकि काव्य का कोई भी विषय त्याज्य नहींहोता। 'देखोगे वही होगी जो दृष्टि' कविता में आपने यही मन्तव्य व्यक्त किया है।

भारत सरकार की नयी आर्थिक नीतियों के चलते देश की तबाही, गरीबों की बदहाली के साफ मंजर देखे जा सकते हैं क्योंकि इस नयी व्यवस्था में जिसके पास प्रचुर पैसा है उसके लिए तो सारे मौज-मजे सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं परन्तु जो गरीब है उसके लिए कोई जगह नहीं है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की 'न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी' जैसी कविताओं में इसी आर्थिक संकट को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है जिससे जूझते-जूझते व्यक्ति आत्महत्या करने तक को विवश हो जाता है। आर्थिक संकट की भयावहता कितनी खतरनाक साबित हो सकती है, इन कविताओं को पढ़कर बखूबी जाना जा सकता है।

एक तरफ आर्थिक संकट तो दूसरी तरफ महँगाई की मार से परेशान आम आदमी के आपसी सम्बन्धों में अप्रत्याशित परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताओं में आसानी से देखा जा सकता है। आज का आदमी घर-गृहस्थी चलाने वाली सुशील, शान्त एवं गम्भीर विचारों वाली कुशल ग्रहणी को कम तवज्जो दे रहा है वह तो तेज तर्रार, उच्च शिक्षा सम्पन्न ऐसी स्त्री का अभिलाषी है जो नौकरी करके धनार्जन करने की क्षमता रखती हो। आदमी की इस अति महत्त्वाकांक्षावादी नीति के कारण उसके मान-सम्मान तथा प्रतिष्ठा में निश्चित तौर पर गिरावट आयी है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की 'कमाऊ पत्नी' में इसी विचार को अभिव्यक्ति मिली है।

आज भारतीय समाज अपने को नितान्त पिछड़ा समझता है। वह आगे बढ़ने की होड़ में इतिहास और संस्कृति से किनारा करता जा रहा है और स्वावलम्बन के नाम पर धड़ाधड़ पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करता जा रहा है। आधुनिक दिखने की इस होड़ में भारतीय जीवन मूल्य निरन्तर विघटित होते जा रहे हैं। 'अवमूल्यन संज्ञक' कविता में व्यक्त विचार दरकते मूल्यों का मुखर प्रमाण है।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त भारत में बेतहाशा बढ़ती हुई महँगाई और जनसंख्या वृद्धि

को आगामी बड़े संकट के रूप में देखते हैं परन्तु वर्तमान सरकार द्वारा उन्हें रोकने के लिए कोई कारगर उपाय नहीं अपनाये गये जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि धनी वर्ग मालामाल होता जा रहा है और गरीब वर्ग कंगाल। साथ ही साथ जनसंख्या विस्फोट के खतरे से भी भारत जूझ रहा है। डॉ0 गुप्त की 'यांत्रिक योनि' एवं 'संतति निग्रह' नामक कविताएँ इन्हीं भीषण समस्याओं की ओर संकेत करती हैं।

आम आदमी की दुर्दशा तथा पूँजीपतियों के ऐशोआराम की नुमाइश को देखकर अधिकांश कवियों का ईश्वर के प्रति जो विश्वास था वह टूट जाता है क्योंकि उनका विचार है कि यदि ईश्वर अस्तित्व में है तो फिर इस अन्याय को मूकदर्शक बनकर क्यों देख रहा है ? वह अन्याय का प्रतिकार क्यों नहीं करता ? बावजूद इसके डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त को यह 'आस्था-विश्वास' है कि ईश्वर इन बेबस, लाचार तथा असहाय लोगों की करुण पुकार को एक न एक दिन अवश्य सुनेगा।

आज कवि सुरक्षा के प्रति चिन्तित है क्योंकि संवैधानिक नियम किताबी सामग्री मात्र बनकर रह गये हैं। आम आदमी की समस्याओं को उठाने वाले एवं राजनेताओं की पोल खोलने वाले साहित्यकार को ये राजनेता या तो प्रतिबन्धित कर देते हैं या फिर जेल में ठूँस देते हैं। आपकी 'लोकतंत्र में' कतिवा को पढ़कर इसे अच्छी तरह जाना जा सकता है। आपने लिखा है –

पर, पुस्तकों पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है
शैतानी आयतें निषिद्ध हैं
तस्लीमा नसरीन निष्कासित हैं
नागरवाला जैसा देशभक्त एक्सीडेन्ट में मारा जाता है
हर्षद मेहता को जेल में डाला जाता है
ठोक पीट कर ठीक कर दिया जाता है
ईमानदारी अधिकारियों को
ठिकाने लगा दिया जाता है। *(लोकतंत्र में, पृ. 64)*

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपनी कविताओं में इन विषम समस्याओं को तो उठाया ही है, साथ ही साथ 'जीवन कुछ अनुभूतियाँ', 'पीड़ा का इठलाना', 'पता नहीं कब?', 'बोलती खामोशी', 'नियति बंधन', 'जिन्दा होने का भ्रम', 'चेतना बनाम पीड़ा', 'मर गयी संवेदना' जैसी कविताओं में जीवन के कटु यथार्थ को निर्धनता, अभाव, बेकारी, बीमारी, पीड़ा, संवेदनहीनता जैसे विषयों को अभिव्यक्ति प्रदान करके जीवनानुभवों से पाठक को रु-ब-रु कराया है। सहजिया सम्प्रदाय कलाकारों, साहित्यकारों, शिष्य, गुरुओं तथा राजनेताओं के स्त्री के प्रति बदलते दृष्टिकोण को व्यक्त करती है तो 'समय से बदला' बेरोजगारी को। 'अभाव आदमी का' नामक कविता अमानवीयता को अभिव्यक्ति प्रदान करती है, तो

'निरर्थकता-बोध' अध्यापकीय जीवन की कटु सच्चाई को। इन विविध भावों को व्यक्त करने के साथ-साथ आपने कविता की शैल्पिक दृष्टि को प्रतिपादित करने के उद्देश्य से 'मंत्र कविता' एवं मुक्त छन्द इत्यादि कविताएँ भी लिखी हैं।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त कृत 'आत्ममंथन' में जीवन के विविध पहलुओं पर बड़ी ही ईमानदारी से प्रकाश डाला गया है। आपने अपने काव्य कौशल से जीवनानुभूतियों एवं जन-जीवन की जटिल समस्याओं को उठाकर एवं कविता की शैल्पिक संरचना के विषय में विचार व्यक्त करके कवि दायित्व-बोध का पूर्ण निर्वहन किया है। भाव एवं भाषा दोनों ही दृष्टियों से 'आत्ममंथन' एक श्रेष्ठ काव्य कृति है जो समकालीन हिन्दी कविता में अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

6. लोकतांत्रिक भारत में

लोकतांत्रिक भारत में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का छठा काव्य-संग्रह है जो अभिलेख प्रकाशन से सन् 2009 में प्रकाशित हुआ है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की इन महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों में 'लोकतांत्रिक भारत में' एक चर्चित काव्य-कृति है, जिसमें आपने प्रेम, प्रकृति, एकाकीपन, नारी-दुर्दशा, बेरोजगारी, मूल्यों का विघटन, अंधविश्वास, आतंकवाद, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं, राजनैतिक भ्रष्टाचार जैसे विविध पक्षों को बड़ी ही संजीदगी के साथ उद्घाटित किया है।



प्रेम जीवन का आधार है इसके बिना जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की 'लोकतांत्रिक भारत में' में प्रेम के विविध सन्दर्भ प्रस्तुत किये गये हैं। 'प्यार एक ऊर्जा', 'दृष्टि-भेद', 'बदनामी', तथा 'प्रेम परिणति' इत्यादि कविताओं में प्रेम के सुखद एवं दुःखद पहलुओं के विषय को प्रस्तुत किया गया है तो 'अवमूल्यन', 'नारी की सार्थकता' में विघटित मूल्यों तथा मातृत्व ही नारीत्व कहकर नारी जीवन की सार्थकता को स्पष्ट किया गया है। डॉ0 गुप्त एक भावुक एवं संवेदनशील कवि हैं जो अपनी कविताओं को अपने चारों तरफ फैले हुए वातावरण से ही उठाते हैं। आपकी कविताओं में आदमी का जीवन संघर्ष, उसकी अवसरवादिता, चाटुकारिता, संवेदनहीनता, अंधविश्वास सभी कुछ एक साथ देखा जा सकता है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने 'एक महल कूड़े के ढेर पर' जैसी कविताओं में बड़े ही संश्लिष्ट तरीके से दलित शोषित नारी की त्रासदी, सती प्रथा, भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, यौन शोषण, बेरोजगारी, बंधुआ मजदूरी जैसी तमाम समस्याओं को उठाकर समाज में व्याप्त दुःख दर्द एवं विषम परिस्थितियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। आपने लिखा है –

भारत की देव संतानें
आधुनिक व्यवस्था में
दलित, शोषित और निरक्षर हैं।
महिलाएँ जीती हैं अतीत में
ललनाएँ जलाई जाती हैं जीवित
हो रही है राख सतीत्व के नाम पर
जन्म लेने से पूर्व अभिशप्त वरण करने को मरण
भ्रूण हत्या के रूप में
क्लीनिक बना दिये गये कत्लगाह
सद्यः विवाहिताएँ कर रही आत्मदाह
दहेज की बेदी पर।
यौन-शोषण के अजब अजब रूप
आरक्षी दल बने संगठित गिरोह
असुरक्षित जनजीवन इनकी अभिरक्षा में
बेरोजगारी
बंधुआ मजदूरी
कुसुमित शिशुओं का बन जाना बाल श्रमिक
लगता है-
हमारा गणतंत्र एक भग्न प्राय महल
जगमगा रहे कूड़े के ढेर पर। *(एक महल कूड़े के ढेर पर, पृ. 60)*

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त जी का विचार है कि हमारा देश भ्रष्टाचार के पंजों में बुरी तरह जकड़ता जा रहा है। नेता, अधिकारी, कर्मचारी सभी भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए हैं। यही लोग 'आराम हराम है' का नारा लगाकर हराम की खाते हैं। 'हमारा कालेज', 'उच्चतर शिक्षा', 'सत्ताधीश अकबर', 'शिक्षा में राजनीति', 'राहत कार्य' इत्यादि कविताओं में सरकारी एवं राजनैतिक क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार को उजागर किया गया है। आज गुरु-शिष्य के पवित्र रिश्ते तक कलंकित हुए बिना नहीं बच पा रहे हैं। नैतिकता का पाठ पढ़ाने वाले स्वयं अनैतिक, अराजक, अमानवीय तथा अय्याश होते जा रहे हैं। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपनी कविताओं में ऐसे भ्रष्टाचारियों का बेधड़क खुलासा किया है। 'हमारा कालेज' कविता में आपने लिखा है -

शिकायत पर कहता प्रशासन-
अनुशासन पर जोर है यहाँ
अश्लीलता-अभद्रता का
नाम नहीं यहाँ

पुनश्चः
समाचार छपा अखबार में-
प्राचार्य जी लिप्त पाये गये,
गैंग रेप में,
और कुलपति सस्पेंड हुए
हत्या के केस में। *(हमारा कॉलेज, पृ. 45)*

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताओं में जहाँ एक तरफ 'संवेदना का संरक्षण', 'हरीतिमा', तथा 'औरत का बयान' आदि कविताओं में पशु-पक्षियों, प्रकृति तथा स्त्री दुर्दशा के प्रति संवेदना व्यक्त हुई है वहीं दूसरी तरफ 'संवेदना की मृत्यु' में राजनेताओं के प्रति संवेदनहीनता।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताएँ पाठक का समाज से सीधा साक्षात्कार कराने की क्षमता रखती है। आपकी कविताओं में समाज के दुःख, दर्द तथा वास्तविक स्थिति का सजीव चित्रण मिलता है। समाज का एक बहुत बड़ा तबका आज भी अंधविश्वास का शिकार है। इस सन्दर्भ में शिक्षा या अशिक्षा कोई मायने नहीं रखती है। अशिक्षित वर्ग जितना अंधविश्वासी है शिक्षित वर्ग भी उससे कम अंधविश्वासी नहीं है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की 'ताबीज' कविता इसका खुला प्रमाण है। समाज में लिंग भेद की स्थिति आज भी बराबर बनी हुयी है। 'शिक्षिका' नामक कविता के माध्यम से डॉ0 गुप्त ने लिंग भेद से उपजे भेदभाव को व्यक्त किया है। भ्रष्ट तंत्र के चलते सरकारी योजनाएँ केवल फाइलों की शोभा बढ़ाती हैं। यही कारण है कि शोषित समाज को सरकारी योजनाओं का उचित लाभ नहीं मिल पा रहा है, जिस कारण लोग अपनी जिन्दगी वशर करने के लिए इधर-उधर काम की तलाश में सड़कों पर भटकते नजर आते हैं। डॉ0 गुप्त की 'संवेदना का अहं' नामक कविता में चित्रित भुट्टे बेचने वाली लड़की पूरे शोषित समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली है -

'भुट्टे ले लो भुट्टे.....'
साइकिल से उतरा, देखा
दस-बारह साल की,
प्रायः अर्द्धनग्न लड़की
भुट्टे भून रही है
मुँह लाल हो रहा लपटों से
'भुट्टे ले लो भुट्टे.....'
भुट्टे भूनती लड़की आवाज लगा रही थी
लोग रुकते
पल दो पल उसका अंकुराता बदन देखते
कोई कोई खरीद भी लेते। **(संबेदना का अहं, पृ. 91)**

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'लोकतांत्रिक भारत में' काव्य-संग्रह की कविताओं की वास्तविक जमीन समाज है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त जी ने समाज में व्याप्त भय, भ्रष्टाचार, संवेदनहीनता, अवसरवादिता भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, नारी शोषण, बेरोजगारी, बंधुआ मजदूरी, प्रकृति दोहन, प्रेम, व्यवहार, मानवीय अवमूल्यन, आर्थिक संकट, आतंकवाद जैसी विकट समस्याओं को बेधड़क प्रस्तुत किया है, जो आपकी पारदर्शिता, निर्भीकता, यथार्थपरकता एवं मानवतावादी दृष्टिकोण का सूचक है। अतः कहा जा सकता है कि 'लोकतांत्रिक भारत में' डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की समकालीन जीवन दृष्टि को प्रस्तुत करने वाली एक श्रेष्ठ काव्य-कृति है जिसने समकालीन हिन्दी कविता में अपना विशेष स्थान निर्धारित किया है।

7. देवी, माँ, सहचरी, प्राण



सन् 2014 में प्रकाशिक 'देवी माँ सहचरी प्राण' डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का नवीनतम काव्य-संग्रह है। कवि ने इस कृति का प्रकाशन अपनी अर्धांगिनी श्रीमती इन्दु गुप्त की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर किया था। सामान्यतः प्रतिष्ठित पुरुष, कवि, नेता आदि की साठवीं वर्षगाँठ पर विशिष्ट आयोजन करके दीर्घायु, स्वस्थ और सानंद जीवन की कामना से षष्ठिपूर्ति का आयोजन किया जाता है, पर गुप्त जी अपनी प्रिय पत्नी की साठवीं वर्षगाँठ पर भव्य आयोजन करके धर्मपत्नी का आभार प्रदर्शन करते हुए इस काव्य का लोकार्पण कराया।

कवि ने भूमिका के रूप में लिखा है –

"नारी विधाता की अनुपम सृष्टि है। पुरुष उसके बिना अपूर्ण है। मानव समाज का अस्तित्व नारी से है। कन्या, कामिनी, पत्नी, प्रेयसी, मामी, चाची, अर्द्धांगिनी आदि नए रूपों में वह पुरुष-जीवन को संचालित एवं प्रभावित करती है। अपने समस्त स्वरूपों में वह श्रद्धा और सम्मान की अधिकारिणी है। व्यक्ति और समाज के लिए वह प्राण स्वरूपा देवी है।....मेरा मन नारी के विभिन्न रूपों के चुम्बकीय व्यक्तित्व से सदा आकर्षित रहा है। मेरे पुरुष मन को सर्वाधिक आकर्षित और उद्वेलित प्रेयसी और पत्नी रूप ने किया है। सम्भवतः प्रेयसी और पत्नी के व्यामोह और द्वन्द्वात्मक प्रभाव में ही कवि मन को आत्मसृजन की प्रेरणा दी है।"

इस कृति में तुकान्त-अतुकान्त, गेय अथवा स्वच्छन्द छन्दों में लिखित पचास कविताएँ हैं। इनमें कुछ नयी हैं तो कुछ पुरानी भी हैं। कवि ने एक कविता में नारी को इन शब्दों में परिभाषित किया है –

नारी देवी कल्याणी है, साकार मूर्ति सुन्दरता की।
अनुपमा विभा आलोकमयी, अद्‌भुत कृतित्व प्रभु सष्टा की।। (पृ. 48)

डॉ0 गुप्त का मानना है कि एकाकी जीवनी अत्यन्त दुरुह और पीड़ादायक होता है। जीवनपथ पर यदि पत्नी का साथ मिल जाये, तो कंटकमय मार्ग भी फूलों की सेज बन जाता है।

हो जीवन सहचरि साथ,
सुगम जीवन हो जाता।
हो कितना भी कंटकित,
पंथ मधुमय बन जाता।। (पृ. 64)

इस संग्रह की सभी कविताएँ सरस, रोचक और हृदय को स्पर्श करने वाली हैं। सरल, प्रवाहमयी भाषा में लिखित इन कविताओं को पढ़ते ही मन को सन्तुष्टि मिलती है। इन कविताओं में कवि ने नारी जीवन के सन्दर्भ में अपने मनोभावों को जिस प्रकार व्यक्त किया है, उसे देखकर माना जा सकता है कि ये कविताएँ कवि के नारी विमर्श की द्योतक हैं। स्वयं गुप्त जी ने लिखा है, "नारी केन्द्रित इन रचनाओं को मेरा नारी विमर्श माना जा सकता है।"

2. काव्यानुवाद

अनुवाद की प्रक्रिया कोई नई नहीं है। किसी ग्रन्थ का एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपान्तरण करना अनुवाद कहलाता है। इसके अन्तर्गत कृति का अनुवाद अन्य भाषा में किया जाना एक सहज और सरल प्रक्रिया है। इसके लिए अनुवादक को दो भाषाओं का यथेष्ट ज्ञान होना परम आवश्यक है। अनुवाद के अंतर्गत साहित्य में भावानुवाद की पद्धति भी प्रचलित है। भावानुवाद की प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए अनुवादक को दो भाषाओं का विद्वान होने के साथ-साथ दार्शनिक, चिंतक एवं उच्च कोटि का भाषाविद् और साहित्य का ज्ञाता होना अनिवार्य है। अनुवाद के अनेक रूप हो सकते हैं, जैसे भावानुवाद, काव्यानुवाद, शब्दशः अनुवाद। सामान्यतः अनुवाद में किसी कृति का अनुवाद दूसरी भाषा में करता है, तो न केवल भाषा, व्याकरण, संस्कृति आदि का ध्यान रखता है, अपितु पात्रों, स्थानों आदि के नाम भी यथावत् रखता है। पर प्रेमचन्द ने विदेशी भाषाओं के उपन्यासों, कहानियों आदि का अनुवाद करने में पात्रों व स्थानों के नाम भारतीय कर दिए हैं। इसी तरह कविता का अनुवाद, सामान्यतः स्वच्छन्द छन्द में अथवा गद्य में किया जाता है, पर श्रेष्ठ कवि काव्य का अनुवाद भी कविता में कर सकता है। अच्छा अनुवादक वही हो सकता है, जिसे कम-से-कम दो भाषाओं का भाषा ज्ञान पूरी तरह से हो, अर्थात् व्याकरण, मुहावरे, लोकोक्तियों आदि का पूर्ण ज्ञान भी हो।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त को हिन्दी और अंग्रेजी के साथ ही उर्दू, बंगला आदि का सामान्य ज्ञान भी है। लखनऊ विश्वविद्यालय में पीएच.डी. करने के दौरान आपने

पंजाबी, उर्दू और बंगला भाषा सीखी थी। स्वाभाविक ही आपने इन भाषाओं की रचनाओं के अनुवाद हिन्दी में किए होंगे, पर प्रकाशित कृतियाँ दो ही हैं –

1. अभिगीता, 2. प्रसाद

1. अभिगीता

सन् 1952-53 की बात है, जब डॉ0 गुप्त कक्षा छः या सात के छात्र थे। नैतिक शिक्षा की दृष्टि से छात्रों को गीता की शिक्षा और गीता कण्ठस्थ करने पर पुरस्कार की व्यवस्था थी। प्रतियोगिता में विजयी होने पर डॉ0 गुप्त को 'गीता डायरी' पुरस्कार स्वरूप प्रदान की गई थी।



संधिवात से ग्रस्त होकर जब किशोर गुप्त जी बीमार पड़े, तो प्रायः गीतापाठ किया करते थे। वृद्धा माँ के मृत्यु पूर्व के क्षणों में गीता का पाठ करके सुनाया था। यह सन् 1964की बात है। इन्हीं दिनों उस 'गीता डायरी' में एक-एक छन्द का काव्यानुवाद किया गया। डायरी में संस्कृति में श्लोक छपा था, नीचे अनुवाद किया गया, जैसे –

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रे समवेता युयत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।

काव्यानुवाद :-धर्मक्षेत्र इस कुरुक्षेत्र में, आगन्तुक इन वीरों ने।
बोलो संजय किया यहाँ क्या, पाण्डु और मम पुत्रों ने।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि।।

काव्यानुवाद :- हो मात्र कम फल अधिकारी, फल की न कभी इच्छा रखना।
हो सभी कर्म निष्काम, वासना न कर्म फल की रखना।।

'अभिगीता' एक प्रकार से अभिनव गीता है, क्योंकि इसमें नई नई बातों का समावेश किया गया है।

1. पद्यानुवाद 1964 में किया गया था, लेकिन प्रकाशन 2008 में किया गया। यत्किंचित् संशोधनों के बाद भी कुछ त्रुटियाँ, अशुद्धियाँ रह गई हैं।
2. प्रारम्भ में 'श्रीमद् भागवद्गीता और यह काव्यानुवाद' शीर्षक आलेख है जिसमें गीता के इस अनुवाद के कारण और प्रयोजन पर प्रकाश डाला गया है।
3. सामान्य पाठक 'रामायण' की भाँति 'गीता' को भी एक स्वतंत्र ग्रंथ मानता है, जबकि आठ हजार आठ सौ श्लोकों वाले माहाकव्य'महाभारत' के अठारह अध्यायों में से षष्ठ पर्व (भीष्म पर्व) के तेरहवें अध्याय के बयालीसवें अध्याय अर्थात् अठारह अध्यायों को 'श्रीमद् भागवद्गीता' संज्ञक उपपर्व कहा गया है।

4. इस आलेख में सम्पूर्ण महाभारत की कथा का संक्षेप में उल्लेख किया गया है।
5. काव्यानुवाद में सबसे पहले प्रत्येक अध्याय की भूमिका स्वरूप सारांश दिया गया है, जैसे प्रथम अध्याय 'विषाद योग' है, तो विषायोग के बारे में समझाया गया है।
6. अंत में, दो परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में प्रमुख पात्रों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और द्वितीय परिशिष्ट में 'पारिभाषिक शब्दावली' है, जिसमें प्रमुख पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या की गई है।

कुल मिलाकर 'अभिगीता' अत्यन्त उपयोगी और श्रेष्ठ साहित्यिक कृति है, जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। कई विश्वविद्यालयों में 'अभिगीता' पर लघु प्रबंध लिखे जा चुके हैं।

2. प्रसाद



लखनऊ विश्वविद्यालय में शोधकार्य के दौरान अपने प्रिय शिष्य को विभागाध्यक्ष डॉ0 सरला शुक्ल ने एक पुस्तक पढ़ने को दी और निर्देश दिया कि पढ़कर सुनाओ। उन्हें पता था कि इन दिनों गुप्त जी बंगला सीख रहे हैं। गुप्त जी 'प्रसाद' नामक उस पुस्तक का एक गीत पढ़कर सुनाया, तब आदेश हुआ कि सभी गीत लिखकर लाओ। एक-दो दिन बाद, सारे अनूदित गीत सुने और बंगला पुस्तक अपने पास रख ली।

गुप्त जी ने उस पुस्तक के आधार पर दो लेख लिखे - 'कृष्णभक्ति के गायक काजी अशरफ़ महमूद' और 'बांग्लादेश के हिन्दी कवि काज़ी अशरफ महमूद' ये दोनों लेख लखनऊ के दैनिक समाचार पत्रों, प्रकाशित हुए थे।

सन् 2008 में उस बंगला पुस्तक का प्रकाशन अभिलेख प्रकाशन से किया गया। इसके पुरोवाक् में सूचित है कि "वस्तुतः 'प्रसाद' बंगला लिपि में लिखित हिन्दी पुस्तक थी। मैंने उसका देवनागरी में लिप्यान्तरण किया। उसी पुस्तक की भूमिका के आधार पर एक समीक्षात्मक लेख लिखा जो 'नवजीवन' के 28 मई 1972 के विवास्पदीय अंक में प्रकाशित हुआ था।

हिन्दी में रूपान्तरित 'प्रसाद' नवजीवन में प्रकाशित यह आलेख अविकल रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस लेख में बताया गया है कि 'प्रसाद' अप्रैल 1972 में प्रकाशित हुआ था, इससे पूर्व भी काज़ी साहब की तीन काव्यकृतियाँ छप चुकी थीं - 'वियोगी', 'निवेदन' और 'कुटज'।

'प्रसाद' में कुल आठ गीत हैं - हरि आये, वियोगिनी, उन्मन, रहस्य, ब्रजदर्शन, आह्वान और अभिलाषा।' भाव और शिल्प सौन्दर्य का अनुमान लगाने की दृष्टि से कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

एक यही है मनोकामना,
एक यही उर में अरमान।
जन्म-जन्म में बनकर आऊँ,
जननि! तुम्हारी ही संतान।। (अभिलाषा, पृ. 31)

पुरोवाक् में व्यक्त उल्लेख के अनुसार गुप्त जी को लगता है कि काज़ी अशरफ महमूद निकट अतीत में ही धर्मान्तरित होकर मुसलमान बने थे। भगवद्गीता, पुर्नजन्म में आस्था, कृष्ण भक्ति आदि तत्व यही सूचित करते हैं।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त द्वारा अनुमादित साहित्य की प्रकाशित कृतियाँ केवल यही हैं, जबकि इण्टर कॉलेज में दामोदर बांध निर्माण पर लेख लिखा था। प्रकाशक के आग्रह पर अंग्रेजी की कई पुस्तकें, निबन्धों, लेखों आदि का अनुवाद आपने किया था। किन्तु उस अनूदित साहित्य में डॉ0 गुप्त जी का नामोल्लेख नहीं हैं, इसलिए उसे खोजने का भी कोई लाभ नहीं। वस्तुतः वह कार्य आर्थिक प्रयोजन से किया गया था। जब रचनाकार मौलिक लेखन में सक्षम हो जाता है, तो उसे अनुवाद कार्य में रुचि नहीं रहती। प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि सृजनात्मक लेखन करने वाले को केवल मौलिक सृजन में लगना चाहिए, अनुवाद कार्य में नहीं। वैसे भी अनुवाद कार्य या तो स्वान्तः सुखाय किया जाता है, अथवा अर्थोपार्जन के प्रयोजन से। 'अभिगीता' और 'प्रसाद' का अनुवाद स्वान्तःसुखाय किया गया था और आर्थिक प्रयोजन जब गौण हो गए तो दूसरों के लिए किया जाने वाला अनुवाद कार्य स्थगित हो गया, और डॉ0 गुप्त पूर्णतः सृजनात्मक लेखन में तल्लीन हो गये।

3. जीवनी साहित्य

उपन्यास, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी आदि ऐसी विधाएँ हैं जिनमें किसी-न-किसी रूप में व्यक्ति (पात्र या चरित्र) विशेष के जीवनवृत्त को प्रस्तुत किया जाता है। इनमें दो विधायें प्रमुख हैं – आत्मकथा और जीवनी। जब लेखक स्वयं अपने जीवन वृत्त के बारे में लिखता हैतो 'आत्मकथा' का सृजन होता है, और दूसरे के जीवनवृत्त के बारे में लिखना 'जीवनी' कहा गया है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की सृजन-यात्रा का फलक अत्यन्त व्यापक है। आपने न केवल कविता के क्षेत्र में अपनी लेखनी की छाप छोड़ी है, बल्कि आलोचना, जीवनी, समीक्षा, अनुवाद, सम्पादन आदि अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन कर हिन्दी साहित्याकाश में अपना स्थान सुनिश्चित किया है। आपने अब तक अनेक जीवनियाँ लिखी हैं। पुस्तक आकार में मात्र तीन ही जीवनी ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं-विश्व के महान साहित्यकार, कविवर सुमित्रानन्दन पंत और बाबा नागर्जुन।

1. विश्व के महान साहित्यकार

यह आपका प्रथम जीवनी संग्रह है जो सन् 1998 में प्रकाश बुक डिपो, बरेली से प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत जीवनी-संग्रह में तेरह विश्व प्रसिद्ध साहित्यकारों की जीवनियाँ संकलित हैं। इसमें कालिदास, कबीरदास, तुलसीदास, शेक्सपियर, कीट्स, मिर्जा गालिब, टॉलस्टॉय, जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, टैगोर, महर्षि अरविन्द, टी.एस. इलिएट, पंत और अज्ञेय जैसे महान साहित्यकारों के जीवनवृत्त पर प्रकाश डाला गया है। 'प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य' है काव्य रस के प्रणेता साहित्यकारों से पाठक का साक्षात्कार कराना। प्रस्तुत जीवनी संग्रह की विशेषता यही है कि इसमें केवल भारत के साहित्यकारों की जीवनी प्रस्तुत न कर देश-विदेश के चर्चित साहित्यकारों को अपने अध्ययन का विषय बनाया गया है।



2. कविवर सुमित्रानन्दन पंत

यह जीवनीपरक पुस्तक सन् 2006 में उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित की गयी है। प्रस्तुत जीवनी में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने पंत जी के समग्र जीवन पर प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया है। कवि के वैयक्तिक जीवन के साथ-साथ उसके पारिवारिक जीवन, प्रेरक प्रकृति, पंत का कवि रूप, जीवन दर्शन तथा उनकी समस्त रचनाओं का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया है। वस्तुतः यह कृति साहित्य जगत में शोध के विविध आयामों का पथ आलोकित करती है। सोम ठाकुर का कथन है कि "हिन्दी साहित्य के अध्येताओं/शोधार्थियों के बीच इस पुस्तक का पर्याप्त समादर होगा।"



3. बाबा नागार्जुन

बाबा नागार्जुन आपका अगला जीवनीपरक ग्रन्थ है। इसमें आपने बाबा नागार्जुन के जीवन की प्रमुख घटनाओं एवं प्रमुख कृतियों का संक्षेप में विवेचन किया है। आपने बाबा नागर्जुन के जीवन संघर्षों, प्राप्त अनुभवों, विसंगतियों, विडम्बनाओं, अमानवीय व्यवहार, आर्थिक तंगी एवं बदहाली का चित्रण करने के साथ ही साथ उनके (नागार्जुन) द्वारा विरचित विविध विधाओं की रचनाओं का भी परिचय दिया है। इस ग्रन्थ में आपने एक तरफ तो नागार्जुन को आर्थिक तंगी के शिकार होने पर भी अद्भुत जिजीविषामय व्यक्तित्व के रूप में देखा है तो दूसरी तरफ एक श्रेष्ठ जनवादी साहित्यकार के रूप में। आपका यह ग्रन्थ



यद्यपि जीवनीपरक है तथापि वह जीवन एवं साहित्य के तमाम अनछुए पहलुओं को उजागर करने में सफल रहा है। हिन्दी संस्थान के निदेशक डॉ. सुधाकर अदीब ने इस कृति की उपादेयता के बारे में लिखा है, "हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी/शोधार्थी ही नहीं, समाज के विकास के वैज्ञानिक चिंतन और प्रतिबद्ध लेखन के प्रति श्रद्धाभाव रखने वाले सभी पाठकों के बीच भी यह पुस्तक उपयोगी होगी।"

पुस्तकाकार प्रकाशित इस जीवनी साहित्य के अतिरिक्त भी डॉ0 गुप्त ने निबंध व आलेखों के रूप में अनेक जीवनियाँ लिखी हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय में शोधकार्य करते समय कार्ल मार्क्स, काज़ी अशरफ महमूद आदि पर जो लेख लिखे थे, वे स्वतंत्र भारत, नवजीवन आदि में छपे थे। बरेली कॉलेज में सेवारत रहते समय यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर आदि साहित्यकारों पर आलेख लिखे थे, जो अमर उजाला में प्रकाशित हुए थे। तदनन्तर, 'साहित्यायन' के प्रकाशित होने पर कामिल बुल्के, महात्मा ज्योतिबा फुले आदि पर लेख लिखे। अपने आलेखों में डॉ0 गुप्त जी ने जो जीवनियाँ प्रस्तुत की हैं, वे पाठकों का ज्ञानवर्द्धन कराने की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। आशा की जा सकती है कि स्फुट रूप से यत्र-तत्र प्रकाशित ये जीवनियाँ निकट भविष्य में पुस्तकाकार कलेवर में प्रकाशित होंगी।

4. संस्मरण

आधुनिक गद्य साहित्य में 'संस्मरण' एक ऐसी विधा है, जिसमें रिपोर्टाज, रेखाचित्र और जीवनवृत्त का सरस-रोचक शैली में समवेत मिश्रण रहता है। अपने सुदीर्घ जीवनकाल में संवेदनशील रचनाकार ऐसे अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है, जिन्हें वर्षों बीत जाने के बाद भी भुला नहीं पाता, और जब तक सम्बद्ध घटनाओं, चरित्रों को 'संस्मरण' के रूप में अभिव्यक्ति नहीं दे देता, मन अशांत रहता है। ऐसे ही अविस्मरणीय चरित्रों, घटना प्रसंगों आदि को डॉ. गुप्त जी ने समय-समय पर लिपिबद्ध किया है। समय की शिला पर अंकुरित इन प्रसंगों-चरित्रों को गुप्त जी ने पहले 'साहित्यायन' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया और अब ये पुस्तकाकार छप चुके हैं। सम्प्रति, आपके संस्मरणों की दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं – 1. स्मृति के वातायन, 2. स्मृति सिन्धु से।

1. 'स्मृति के वातायन'

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की स्मृति पर आधारित अतीत के अविस्मरणीय झरोखों से झाँकते चरित्रों का संचित कोष है 'स्मृति के वातायन'। 'स्मृति के वातायन' की विधा संस्मरण है, इस बात को स्वयं गुप्त जी ने स्वीकार किया है। आपने कहा है – "ये संस्मरण मेरी निजी अनुभूतियों और साथ में जिये गये आत्मीय क्षणों के अविस्मरणीय प्रसंग हैं।" 'स्मृति के वातायन' में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के नौ संस्मरण

संकलित हैं। ये संस्मरण डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त को जीवन में प्राप्त खट्टे-मीठे अनुभवों को तीव्र अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। 'माता बिनु आदर कौन करे? पहला संस्मरण है। इस संस्मरण में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपनी माता श्रीमती चमेली देवी जी के त्याग, करुणा, दया, क्षमा, उदारता इत्यादि गुणों से सम्पन्न होने का उल्लेख किया है और यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि संसार में माँ का स्थान सर्वोपरि है। माँ गुणों की खान होती है और उसमें इतनी सहनशीलता होती है कि बेटे की तमाम गलतियों को माफ कर दे। उसका कभी प्रतिकार नहीं करती और स्वयं कष्ट झेलती रहती है। 'मेरे दादा' आपका दूसरा संस्मकरण है जो आपके अग्रज स्व0 श्री सूरजप्रसाद गुप्त के जीवन की प्रमुख घटनाओं, संघर्षों और चरित्र से सम्बन्धित है।



इसमें भ्राता के जीवन संघर्ष, उदारता, धर्मपरायणता जैसे विविध गुणों के साथ-साथ आपने अपने परिवार की आर्थिक स्थिति के विषय में भी प्रकाश डाला है। 'तान के सीना चली हसीना' आपका तीसरा संस्मरण है जो हमारे सामाजिक सांस्कृतिक जीवन की त्रासदी का रोचक, सरस लेकिन बिडम्बनापूर्ण स्थिति का चित्रण है। इसमें आपने हसीना नामक नवयुवती के विवाहपूर्व एवं विवाहोपरांत जीवन की स्थिति, परिस्थितियों में फलीभूत प्रेम प्रसंगों का जीवन्त चित्रण किया है। चतुर्थ संस्मरण 'बिछुरत एक प्रान हरिलेही' में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने अध्यापकीय जीवन के उन पलों को प्रस्तुत किया है जब पहली बार ब्रह्मावर्त डिग्री कालेज, मंधना कानपुर में पढ़ाने का अवसर प्राप्त हुआ और अचानक ही बरेली कालेज, बरेली महाविद्यालय से प्रवक्ता के पद हेतु पत्र प्राप्त हुआ था। मंधना डिग्री कालेज में प्राप्त सहानुभूति, आत्मीयता तथा सहयोग को डॉ0 गुप्त ने इस संस्मरण का आधार बनाया है। 'ईश्वर मुझे परीक्षा में मत डाल' डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का पाँचवाँ संस्मरण है। इसमें आपने शिक्षा जगत् की विडम्बनापूर्ण स्थितियों का नग्न चित्रण किया हैं। यह संस्मरण विशेष रूप से बरेली कालेज बरेली में व्याप्त भ्रष्टाचार, गुण्डाराज तथा अनैतिकता का पर्दाफाश करता है। 'पुरस्कार भगवान दिलाये नहीं किसी को' आपके पीएच.डी. के शोधग्रन्थ को सर्वश्रेष्ठ प्रकाशित शोधग्रन्थ के सन्दर्भ में 'आत्रेय पुरस्कार' मिलने से सम्बन्धित है। 'एक विद्वान ने तो इसे रिपोर्ताज घोषित किया है। 'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः' नामक संस्मरण निरूपित करता है कि जीव का आवागमन एक निरन्तर प्रक्रिया है जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य पर मरेगा वही जिसकी मृत्यु आ गयी है अन्यथा मृत्यु चाहने या मरने की कितनी भी कोशिश कर ली जाये मौत गले से नहीं लगाती। इसमें लेखक ने यह मान्यता व्यक्त की है कि जीवन-मरण व्यक्ति के वश में नहीं बल्कि किसी अदृश्य शक्ति के हाथ में है, व्यक्ति तो उसकी कठपुतली मात्र है। अन्तिम दो संस्मरण सहपाठी 'सुन्दर' और 'रामचन्द्र सिंह' से सम्बन्धित हैं जिन्हें

क्रमशः 'सुन्दर' और 'ठाकुर' नाम दिया गया है। सुन्दर लगभग 57-58 वर्ष पूर्व कक्षा दो तीन में आपका सहपाठी था और रामचन्द्र सिंह लखनऊ विश्वविद्यालय में एक ही छात्रावास में एक ही कक्ष में प्रायः साल भर साथ रहा था। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के ये संस्मरण रोचक, सरस, प्रवाहपूर्ण तथा अविस्मरणीय हैं। अस्तु 'स्मृति के वातायन' आपकी एक श्रेष्ठ संस्मरणात्मक रचना है।

2. 'स्मृति-सिन्धु से'

मानवमन सदैव ही स्मृतियों के सागर में हिलोरें लेता रहता है। सामान्य व्यक्ति के लिए दैनिक क्रियाकलाप आई-गई बातें होती हैं। पर, संवेदनशील रचनाकार के मन में एक-एक बात सागर की लहर की तरह मन को उद्वेलित करती रहती है।

'स्मृति-सिन्धु से' में डॉ0 गुप्त ने अपने शिक्षावाल के संघर्षों, दुःखद स्मृतियों, सफलताओं आदि पर रोचक शैली में प्रकाश डाला है। शिक्षा के दो स्वरूप हैं - औपचारिक शिक्षा और अनौपचारिक शिक्षा। प्रथम आलेख 'नैसर्गिक पाठशाला : मेरा शहर शाहजहाँपुर' में आपने प्रारम्भिक जीवन, नगर की स्थिति और सामाजिक पारिवारिक परिवेश में अनौपचारिक शिक्षा ग्रहण के संदर्भ में प्रकाश डाला है। 'मेरी प्रारम्भिक शिक्षा' नामक अगले अध्याय में प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक पाठशाला शिक्षकों आदि के बारे में भावुक होकर लिखा है।



आगामी अध्याय में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से सम्बन्धित प्रसंगों, चरित्रों का स्मरण किया गया है। लम्बी बीमारी के कारण औपचारिक शिक्षा बाधित रही, इसलिए सन् 1956 में हाईस्कूल उत्तीर्ण करने के पश्चात् 1966 में इंटर उत्तीर्ण कर पाने के दुःखद प्रसंग को अभिव्यक्ति दी गई है।

'उच्च शिक्षा की ओर' संज्ञक अध्याय में गांधी फैजाम कॉलेज में बी.ए. में प्रवेश लेने, कॉलेज की गतिविधियों आदि का रोचक स्मरण किया गया है।

सन् 1968 में बी.ए. करने के पश्चात् डॉ. गुप्त जी ने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिए और 1970 में एम.ए. उत्तीर्ण करने के बाद पीएच.डी. करने में संलग्न हो गए। डॉ0 गुप्त में लखनऊ विश्वविद्यालय के हबीबुल्ला छात्रावास में पाँच वर्ष तक नाना प्रकार के अनुभवों के साथ अविस्मरणीय जीवन जिया, जिनके बारे में रोचक संस्मरण पढ़ते ही आनंद की अनुभूति होती है।

पीएच.डी. करने के दौरान आजीविकोपार्जन हेतु विभिन्न कालेजों में साक्षात्कार हेतु जाने, उनके अनुभवों, फिर मंधना के ब्रह्मवर्त डिग्री कॉलेज में नौकरी मिलने और फिर वहाँ मात्र दो माह पढ़ाने के बाद ही 30 अक्टूबर 1973 से बरेली

कॉलेज में नियुक्ति हो जाने और सत्ताइस वर्ष तक पढ़ाने के बाद 30 जून 2000 में सेवानिवृत्त हो जाने के अनुभवों को जीवंत किया है। इस दौरान विभिन्न प्राचार्यों और विभागाध्यक्षों के साथ कार्य करने, कॉलेज की गतिविधियों, भ्रष्टाचार आदि के रोचक संस्मरण भी लिखे हैं।

इन दिनों, डॉ० गुप्त जी 'स्मृति के विहग' शीर्षक से अपने संस्मरण 'साहित्यायन' में प्रकाशित कर रहे हैं। इस प्रकार पुस्तक रूप में प्रकाशित संस्मरणों की दो कृतियाँ हैं – 'स्मृति के वातायन', 'स्मृति सिन्धु से'। इन संस्मरणों के पढ़ने से डॉ० गुप्त के सम्पर्क में आये चरित्रों के बारे में ही पता नहीं चलता, अपितु समय, समाज और शिक्षा व्यवस्था के बारे में भी पता चलता है।

5. बाल उपन्यास

'परीज़ाद' उपन्यास के देखने-पढ़ने से पता चलता है कि गुप्त जी जन्मजात प्रतिभाशाली रचनाकार हैं। परीज़ाद उनका किशोरावस्था में लिखा गया बाल उपन्यास है। स्वयं लेखक के शब्दों में, "यह 18 जनवरी 1957 से 18 मार्च 1957 के मध्य मात्र दो माह के अंतराल में लिखा गया था। प्रकाशित ' परीज़ाद' में कुल 15 परिच्छेक हैं, लेकिन मूल पाण्डुलिपि में तेरह परिच्छेद थे।....स्कूल की कापी में लिखित बारह परिच्छेद एक कापी में हैं, और तेरहवें के बारे में सूचना दी गई है कि 'शेष अन्य कापी में।' विषय सूची से अंतिम अध्याय का नाम पता चल गया – 'राज्याभिषेक', पर कापी नहीं मिली। अस्तु, अंतिम अध्याय के तीन अध्यायों को पुनः लिखा गया और नाम दिए – राज्याभिषेक, राजा विक्रमाँक देव सिंह, शासन-व्यवस्था। प्रारम्भ के बारह अध्यायों के नाम इस प्रकार हैं – 1. परीदेश, 2. परियों पर संकट, 3. नरदेवपुर, 4. राजप्रासाद, 5. परीज़ाद, 6. देशत्याग, 7. वेनतभोगी परीज़ाद, 8. रोगिणी रानी, 9. व्याघ्रनख, 10. शेरनी का दूध, 11. मृगचर्म।



'परीज़ाद' लिखने से पूर्व डॉ० गुप्त जी हाईस्कूल उत्तीर्ण कर चुके थे, पर नाना कारणों से इंटर में प्रवेश नहीं ले सके थे। इन दिनों किस्सा हातिमताई, किस्सा तोता मैना, गुलवकावली आदि कृतियाँ घर में उपलब्ध थीं, अतः उन्हें पढ़ा करते थे। सम्भवतः उन्हीं से प्रेरित होकर यह बाल उपन्यास लिखा गया।

इस उपन्यास का कथानक पूर्णतः काल्पनिक है। परियों, राजाओं, जादू-टोने, तंत्र-मंत्र, रहस्य-रोमांच आदि के प्रसंगों से बुने हुए कथानक को लेखक ने अंत में सार्थक परिणति प्रदान की है। 'परीज़ाद' शासक बनता है, और प्रजापालक नरेश के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। राजा विक्रमांकदेव सिंह के रूप में वह एक आदर्श

शासक बनता है। उसके शासनकाल में, नरदेवपुर महान साम्राज्य की राजधानी बन जाता है। राज्य में लक्ष्मी बरसने लगती है और सभी प्रजाजन सुखी एवं समृद्ध जीवन व्यतीत करने लगते हैं। महाराज नरदेव सिंह भी अपनी प्रजा का सुख और समृद्धि देखकर परम संतुष्ट है।

इस उपन्यास को पढ़कर लेखक के बारे में कहना असंगत न होगा – 'होनहार विरवान के होत चीकने पात'।

6. यात्रा साहित्य

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जिज्ञासु प्रवृत्ति के यायावर हैं। वे जहाँ भी जाते हैं, वहाँ के इतिहास, भूगोल, संस्कृति, समाज और वर्तमान परिवेश को भी जानना-समझना चाहते हैं। उनके यात्रावृत्त की एकमात्र प्रकाशित कृति, 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' है।

मनुष्य आदिकाल से यायावर रहा है। "हमारा देश ऋषि-संस्कृति का अनुगामी है और ऋषिगण परम यायावर थे। महर्षि नारद समस्त ब्रह्माण्ड में निर्बाध विचरण किया करते थे, क्योंकि यायावरी से श्रेष्ठ कोई अन्य हितकारी धर्म, कर्म नहीं है। संवेदनशील लेखक जब यायावरी के अनुभवों को लिखता है तो उसे 'यात्रावृत्त' कहा जाता है। यायावरी नाना प्रयोजनों से की जाती है, जैसे तीर्थों में जाकर पुण्य लाभ के लिए, पढ़ने के लिए, नौकरी के लिए, मनोरंजन के लिए, ज्ञानार्जन के लिए आदि। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने बचपन में धार्मिक प्रयोजन से यात्राएँ कीं, फिर आजीविकोपार्जन, दर्शनीय स्थलों के दर्शन आदि के लिए। सन् 2010 में प्रथम बार विमान यात्रा का अवसर मिला। ज्येष्ठ पुत्र के साथ, लेखक सपरिवार विमान से बंगलौर गया, और टैक्सी द्वारा दोनों पुत्रों, बहुओं, पौत्री के साथ सपत्नीक मैसूर, रंगपट्टनम, निसर्गधाम, कुर्ग, बंगलौर आदि का भ्रमण किया। 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' में चार यात्रावृत्त हैं – मैसूर की यात्रा, कुर्ग की यात्रा, बंगलौर की यात्रा और मेरी विमान यात्रा। 'यात्रावृत्त का वृत्तान्त' शीर्षक परिशिष्ट अत्यंत ज्ञानवर्धक है। विभिन्न दर्शनीय स्थानों के चित्र और अंत में दिए गए चार मानचित्र इस कृति को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं। सर्वाधिक रेखांकित करने वाली बात यह है कि गद्य की इस कृति में भी डॉ0 गुप्त का कवि रूप व्यक्त हुआ है। थके-हारे पथिक को अंततोगत्वा शान्ति घर में ही मिलती है। कवि के शब्दों में –



यदि पत्नी सुखदा कल्याणी
तो घर ही है सुख-शान्ति धाम।
यदि क्लान्त विहग को श्रांति मिले,
तो घर ही है सच्चा स्वर्गधाम।।

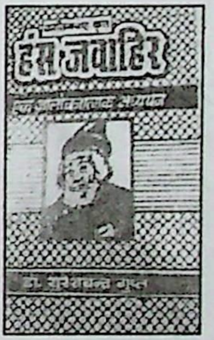
उस कृति के अतिरिक्त भी उनके यात्रापरक आलेख यत्र-तत्र प्रकाशित होते रहे हैं, जिनमें 'स्वप्नलोक की सैर' बड़ा ही सरस और ज्ञानवर्द्धक

7. शोधग्रन्थ

तत्कालीन उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री को एकत्रित करके विभिन्न दृष्टिकोणों का समायोजन करते हुए किसी विशिष्ट तर्क संगत निष्कर्ष पर पहुँचना शोधकर्ता का प्रमुख ध्येय होता है। इस सन्दर्भ में उसके द्वारा लिखित ग्रन्थ शोधग्रन्थ कहलाता है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त प्रारम्भ से ही खोजी प्रवृत्ति के रहे हैं। आपके पुस्तकाकार में अब तक तीन चर्चित शोध ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनका विवरण निम्नवत् है -

1. हंस जवाहिर : एक आलोचनात्मक अध्ययन

यह डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का लघु शोधप्रबन्ध है, जो लखनऊ विश्वविद्यालय से एम0 ए0 करते समय डॉ0 प्रभाकर शुक्ल के निर्देशन में लिखा गया था। इसका प्रकाशन प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली से सन् 1996 में हुआ। इस शोधप्रबंध को 9 अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में कवि (कासिमशाह) के 'व्यक्तित्व और कृतित्व' के सम्बन्ध में चर्चा की गयी है। 'हंस जवाहिर का कथानक और चरित्र चित्रण' नामक द्वितीय अध्याय में 'हंस जवाहिर' की कथावस्तु की विवेचना की गई है साथ ही साथ प्रमुख पात्रों का चरित्रांकन भी किया गया है। तृतीय अध्याय 'प्रेरक उत्स एवं दार्शनिक विचारधारा' में कवि को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों तथा उसके दर्शन सम्बन्धी विचारों का निदर्शन हुआ है। 'कासिमशाह की साधना का स्वरूप' नामक चतुर्थ अध्याय में कवि की आध्यात्मिक साधना के स्वरूप का निर्धारण किया गया है। पंचम अध्याय में 'हंस जवाहिर' में व्यक्त तात्कालिक समाज का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।



'कासिमशाह की बहुज्ञता' नामक षष्ठ अध्याय में कवि के व्यावहारिक ज्ञान की समीक्षा की गई है। सप्तम् अध्याय में 'कासिमशाह की वर्णनाभिव्यंजना' पर विचार किया गया है। 'हंस जवाहिर' का भावपक्षीय सौन्दर्य नामक अष्टम अध्याय में आलोच्य कृति के महाकाव्यत्व तथा भावाभिव्यंजना पर विचार किया गया है। नवम् अध्याय कृति के शिल्प सौन्दर्य से सम्बन्धित है जिसमें भाषा, शैली, छन्द, अलंकार आदि की यथेष्ट विवेचना की गई है। इस प्रकार नौ अध्यायों में हंस जवाहिर का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के पश्चात् सम्प्राप्त तथ्यों का 'उपसंहार' में निष्कर्षात्मक विवेचन किया गया है। यद्यपि डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त जी का यह पहला शोधग्रन्थ है तथापि यह प्रौढ़ एवं सशक्त कृति है।

2. पंत की दार्शनिक चेतना

यह डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का पीएच.डी.के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय की डॉ0 सरला शुक्ल के निर्देशन में सन् 1973 में लिखा गया शोधग्रन्थ है, जो सन् 1996 में प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली से प्रकाशित हो चुका है। यह आपका विद्वतापूर्ण शोधग्रन्थ है, जिसे सन् 1996 और 1997 में प्रकाशित हिन्दी शोधग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के आत्रेय पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इस शोधग्रन्थ को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में पंत जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है, और यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि कवि ने कब, क्यों और क्या लिखा? द्वितीय अध्याय में पंत की दार्शनिक चेतना को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का विवेचन किया गया है। इसमें दार्शनिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक आदि विविध तत्त्वों के साथ ही वैज्ञानिक तत्त्वों का विवेचन भी किया गया है। तृतीय अध्याय है – पंत साहित्य में औपनिषदिक दर्शन जिसमें वैदिक वाङ्मय में प्राप्त दार्शनिक प्रवृत्तियों तथा उससे मिलती-जुलती प्रमुख प्राच्य एवं पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य में पंत-साहित्य की समीक्षा की गई है। चतुर्थ अध्याय में गांधी दर्शन की कसौटी पर पंत के साहित्य को परखा गया है तथा सर्वोदय दर्शन व रामराज्य की परिकल्पना के सन्दर्भ में पंत जी की साहित्यिक अभिव्यक्ति को विवेचित किया गया है। पंचम अध्याय में 'मार्क्स-दर्शन का पंत साहित्य पर प्रभाव' तथा 'भौतिक जीवन में मार्क्सवाद की उपयोगिता' पर पंत जी के विचारों को वाणी दी गई है। षष्ठ अध्याय में अरविन्द दर्शन को अपनाने के बाद पंत की दार्शनिक चेतना के प्रकार और उससे सम्बन्धित प्रचलित व मौलिक प्रपत्तियों का अध्ययन व स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। अंतिम अध्याय में उन छः प्रमुख दार्शनिक पक्षों का विवेचन हुआ है, जो न्यूनाधिक, पंत की दार्शनिक चेतना का अंग, प्रारम्भ से अंत तक रहे हैं। बाद में, इन सात अध्यायों का सारांश प्रबन्ध के 'उपसंहार' में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कवि की दार्शनिक चेतना का विवेचन संक्षिप्त तथा निष्कर्षात्मक है। यह आपकी उच्च स्तरीय शोधदृष्टि एवं बुद्धिमत्ता का ही सुपरिणाम है जो इतने कम समय में ही यह ग्रन्थ अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुआ है।



3. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण

यह डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का तीसरा शोधग्रन्थ है। आपने डी.लिट्. की उपाधि के लिए इस विषय का चयन किया है। यह शोधग्रन्थ सन् 1999 में प्रकाश बुक डिपो,

बड़ा बाजार, बरेली से प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थ को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय 'छायावादोत्तर काव्य की पृष्ठभूमि' में सर्वप्रथम छायावादोत्तर काव्य के स्वरूप और सीमा पर विचार किया गया है। इस अध्याय में काव्य और दर्शन के अन्तःसम्बन्धों का विहंगावलोकन करने के उपरांत छायावादोत्तर काव्य की पृष्ठभूमि का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'छायावादोत्तर काव्य में वेदोपनिषदिक् दर्शन नामक द्वितीय अध्याय में वेदों में 'दर्शन का आशय' और 'दर्शन का विषय' पर सम्यक् दृष्टिपात करने के पश्चात् ब्रह्म, जीवात्मा, माया, सृष्टि और मोक्ष के बारे में छायावादोत्तर काव्य के संदर्भ में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'छायावादोत्तर काव्य में मार्क्स-दर्शन' नामक चतुर्थ अध्याय में



पहले भौतिकवादी दर्शनों की परम्परा में मार्क्सवाद का स्थान निरूपित किया गया है, तत्पश्चात् मार्क्सवाद की वैचारिक पीठिका और मार्क्सवाद के प्रमुख आदर्शों पर दृष्टिपात किया गया है। अंत में छायावादोत्तर कविता में मार्क्सवादी दर्शन के प्रमुख तत्त्वों, पुरातन के पतन की कामना, शोषण और दमन का विरोध, साम्प्रदायिकता का खण्डन, दलित-शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन, नारी के संदर्भ में नूतन दृष्टि, वर्ग-संघर्ष और क्रान्ति को प्रोत्साहन, साम्यवादी देशों का गुणगान, पूँजीवादी-साम्राज्य के ध्वंस का संकल्प, नये साम्यवादी समाज की संरचना आदि को विश्लेषित किया गया है। पंचम अध्याय में 'छायावादोत्तर काव्य में अरविन्द दर्शन' का अन्वेषण-विश्लेषण किया गया है। इसमें अरविन्द दर्शन के तीनों पक्षों ज्ञानमीमांसा, तत्त्व मीमांसा और मूल्य मीमांसा का सम्यक् अध्ययन करने के पश्चात् नूतन विश्वमानवता की संरचना के सन्दर्भ में अरविन्द दर्शन की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। षष्ठ अध्याय में 'छायावादोत्तर काव्य में अस्तित्ववादी दर्शन' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम अस्तित्ववाद से आशय, उद्भव, विकास और परम्परा पर प्रकाश डाला गया है और फिर अस्तित्ववादी दर्शन की अवधारणाओं के आलोक में छायावादोत्तर कविता का विश्लेषण करने की चेष्टा की गयी है। सप्तम अध्याय 'छायावादोत्तर काव्य में निरूपित अन्य प्रमुख दर्शन' में आपने पाँच दर्शनों-रहस्यवाद, दुःखवाद, नियतिवाद, भोगवाद और मानवतावाद का विशेष रूप से विश्लेषण किया है। अंत में 'उपसंहार' के अन्तर्गत छायावादोत्तर काव्य में विभिन्न दर्शनों की अभिव्यक्ति का क्रमिक मूल्यांकन और उसकी प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है। छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में सम्प्राप्त दार्शनिक विचारों की दृष्टि से यह समीक्षात्मक ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है।

८. शोध-समीक्षा

शोध व समीक्षा के क्षेत्र में डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त ने प्रचुर लेखन किया है। इस दिशा में प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ इस प्रकार हैं –

1. शोधायन –

गहन अध्ययन और शोध-समीक्षा के प्रति डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त में प्रारम्भ से ही अभिरुचि रही है। उन्होंने गोष्ठियों में अपने शोधपत्रों को पढ़ा है, और प्रशंसा प्राप्त की है। आपके अनेक शोधपत्र समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। इनमें से कुछ शोधपत्रों का संकलन कर 'शोधायन' की रचना की गई है। सरस शैली और प्रांजल भाषा में लिखित ये शोधपत्र पढ़ने में आनंद का बोध कराते हैं, साथ ही ये ज्ञान से भी आपूरित हैं।

इन शोध पत्रों में आपने चर्चित-अचर्चित साहित्य साधकों की साहित्य सामग्री की जाँच पड़ताल करते हुए हिन्दी साहित्य में उनके अमूल्य योगदान को निर्धारित करते हुए तथा उनके महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए साहित्य जगत में उनका आंकलन किया है। 'शोधायन' में आपने अपने शोधपत्रों के माध्यम से धर्म, दर्शन, संस्कृति, मनोविज्ञान, राष्ट्रीयता जैसे विविध पहलुओं की सम्यक् दृष्टि से चर्चा की है। इसमें प्रकाशित शोधपत्रों के नाम इस प्रकार हैं – 1. हंस जवाहिर : एक अध्ययन, 2. पंत की दार्शनिक चेतना, 3. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, 4. पंत काव्य में भावी संस्कृति का स्वरूप, 5. हिन्दी में राष्ट्रीय एकता के स्वर, 6. मुंशी प्रेमचन्द का नाट्य साहित्य, 7. आत्मकथाओं के आलोक में मैत्रेयी पुष्पा, 8. डॉ. राही मासूम रजा की सांस्कृतिक चेतना, 9. यशपाल के उपन्यासों में मनोविज्ञान। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के ये शोधपत्र उच्च स्तरीय दृष्टि एवं गम्भीर चिन्तन शैली के सुपरिणाम हैं। इनमें से कई शोधपत्र सप्तसिन्धु (हरियाणा), पुरोधा (पाण्डिचेरी), साहित्यायन (उ. प्र.) जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनका प्रकाशन शोधपत्रों की प्रासंगिकता, उपादेयता, महत्ता तथा शोधदृष्टि को प्रदर्शित करता है।



डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का 'शोधायन' उच्च गुणवत्ता से युक्त, गम्भीर चिन्तन से परिपूर्ण, उच्च स्तरीय शोध सामग्री से लबरेज एक महत्वपूर्ण शोध पत्र संकलन है जो शोध की विभिन्न दिशाओं को तो खोलता ही है, साथ ही नवीन शोधार्थियों के लिए पथ प्रदर्शक साबित होगा। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का यह एकदम नया प्रयास है जो नये शोध छात्रों के लिए निश्चित रूप से मील का पत्थर सिद्ध होगा।

पुस्तकाकार रूप में मात्र 'शोधायन' ही प्रकाशित है, पर कई संकलनों,

पत्रिकाओं आदि में भी आपके शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आपके शोधपत्रों की सबसे बड़ी विशेषता विषय के सूक्ष्म विश्लेषण के साथ ही उसे रससिक्त बना देना है।

2. आधुनिक हिन्दी-उर्दू काव्य समीक्षा

इस कृति का प्रकाशन उसी समय हो गया था, ज़ब लेखक पीएच.डी. कर रहा था। ऊपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस से आठ-दस अन्य पुस्तकें लिखने का अनुबंध भी हुआ था। दो पुस्तकें लिखी भी गई थी, पर किसी कारणवश वे आज तक नहीं प्रकाशित नहीं हो सकी, जबकि आधुनिक हिन्दी-उर्दू काव्य समीक्षा के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम संस्करण लखनऊ के प्रकाशक ने पाया था और द्वितीय संस्करण बरेली के प्रकाश बुक डिपो ने प्रकाशित किया था।



इस पुस्तक के दो भाग हैं - एक भाग में उर्दू साहित्य का इतिहास, प्रगतिवाद, राष्ट्रप्रेम, प्रकृति चित्रण आदि की समीक्षा को विषय बनाया गया है, और दूसरे भाग में द्विवेदी युग और छायावादी युग के कुछ प्रमुख कवियों और उनके सृजन की समीक्षा की गई है।

9. निबन्ध/आलेख

गद्य को काव्य की कसौटी माना गया है और निबन्ध को गद्य की। कविता लिखना स्वतः स्फूर्त प्रेरणा से आता है, जबकि 'निबंध' लिखना प्रारम्भिक कक्षाओं से ही सिखाया जाता है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त 'निबंध' विधा में सृजन करने वाले श्रेष्ठ रचनाकार हैं। उन्होंने धर्म, दर्शन, राजनीति, सामाजिक समस्याओं और साहित्य के विविध पक्षों पर सैकड़ों निबन्ध लिखे हैं। उनके अनेक निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। 'नवजीवन', 'पुरोधा', 'सप्तसिन्धु', 'वीणा', 'अमर उजाला', 'विश्वमानव' आदि पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेखों का प्रकाशन हो चुका है। आपके कुछ आलेखों का प्रसारण आकाशवाणी के लखनऊ और रामपुर केन्द्रों से हुआ है। डॉ0 कौशलनन्दन गोस्वामी द्वारा सम्पादित 'आकाशवाणी वार्ताएँ' में आपके कुछ आलेख प्रकाशित भी हो चुके हैं। डॉ0 गुप्त निबन्धों/आलेखों के तीन संग्रह पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं -

1. उच्चस्तरीय साहित्यिक निबन्ध
2. सामाजिक एवं साहित्यिक निबन्धं
3. किंचित् मननीय

1. उच्चस्तरीय साहित्यिक निबन्ध

हिन्दी साहित्य का सम्पूर्ण युग लगभग एक हजार वर्षों का है, जिसे साहित्येतिहासकारों ने चार खण्डों में विभाजित किया है - आदिकाल या वीरगाथा



काल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल। इस संकलन में विभिन्न कालों से सम्बन्धित विषयों पर निबन्धों को सम्मिलित किया गया है, जैसे काव्य की आत्मा, काव्य प्रयोजन, संत काव्य और कबीर, प्रेमाख्यानक काव्य, हिन्दी नाटक और रंगमंच, हिन्दी काव्य में रहस्यवाद, नयी कविता और समकालीन कविता, सत्यं, शिवं, सुन्दरम्, देवनागरी लिपि आदि। ये निबन्ध एम.ए. के छात्रों को ध्यान में रखकर लिखे गए हैं किन्तु हिन्दी प्रेमियों के लिए भी उपयोगी हैं।

2. सामाजिक एवं साहित्यिक निबन्ध

स्नातक स्तर के छात्रों को समसामयिक समस्याओं से परिचित कराने, उनका समाधान खोजने और हिन्दी साहित्य के विविध पक्षों का ज्ञान कराने की दृष्टि से लिखे गए ये निबन्ध छात्रों तथा जिज्ञासु पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी हैं। मद्यपान, जनसंख्या वृद्धि की समस्या, राष्ट्रप्रेम, हिन्दी साहित्य में प्रकृति चित्रण, पर्यावरण सुरक्षा, आतंकवाद जैसे समसामयिक विषयों के साथ ही हिन्दी भाषा और साहित्य के विविध पक्षों पर प्रकाश डालने वाले निबन्ध भी इस पुस्तक में हैं। इस पुस्तक के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और विविध संस्करणों में तीस के पचास निबन्ध तक हैं।

3. किंचित् मननीय

विगत् छः वर्षों से 'साहित्यायन' के सम्पादकीय आलेखों को गुप्त जी ने 'किंचित् मननीय' शीर्षक से लिखना प्रारम्भ किया था। इनमें से तेईस आलेखों को पुस्तकाकार रूप में 'किंचित् मननीय' संज्ञक कृति के नाम से प्रकाशित किया है। इस कृति के कुछ आलेखों के शीर्षक इस प्रकार हैं, 'काम, अध्यात्म और वैलेन्टाइन डे', 'महिला आत्मकथा लेखन और नारी विमर्श', 'स्वयंवर : संघर्ष एवं दासता का प्रस्थान बिन्दु', 'वृद्धावस्था में प्रेमासिक्त', 'तसलीमा नसरीन की अदम्य जिजीविषा और 'द्विखंडित', 'गांधी का हिन्दुस्तान और जिन्ना का पाकिस्तान', 'हादसे : अपराजेय नारी की दुर्द्धर्ष संघर्षगाथा',



सम्पादकीय के रूप में प्रस्तुत ये आलेख गहन अध्ययन और सूक्ष्म चिंतन का परिचायक हैं। आत्मकथाओं और उपन्यासों को आधार बनाकर लिखे गए आलेखों से लेखक का प्रयोजन है कि प्रबुद्ध पाठक इन कृतियों को पढ़े और इन जैसी अन्य विचारोत्तेजक रचनाओं को पढ़कर देश-काल और समाज के प्रति सतर्क और जागरुक हों। हर आलेख के अंत में, लेखक ने किंचित्, मननीय प्रसंगों का उल्लेख कर पाठकों को प्रबुद्ध बनाने की चेष्टा की है।

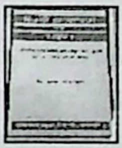
निबन्ध के अनेक रूप हैं। छात्र और रचनाकार समान रूप से निबन्ध/आलेख पढ़ते और लिखते हैं। डॉ0 गुप्त के आलेख न केवल 'साहित्यायन' में प्रकाशित हो रहे हैं, अपितु कई ग्रन्थों में सम्मिलित हो रहे हैं, कुछ आलेख आकाशवाणी से भी प्रकाशित हो रहे हैं। सम्भावना है कि निकट भविष्य में 'निबन्ध' विधा की एक अन्य कृति पाठकों के सम्मुख होगी।

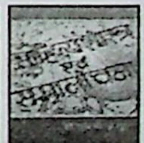
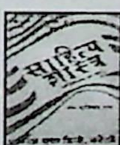
10. हिन्दी भाषा, व्याकरण तथा पत्रकारिता

आजकल हिन्दी का पाठ्यक्रम समय की अपेक्षाओं के अनुरूप उपयोगी और सार्थक बनाया जा रहा है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मानदण्डों के अनुरूप विभिन्न विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम को अधिकाधिक अद्यतन बनाते जा रहे हैं। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने प्रकाशकों के अनुरोध पर हिन्दी भाषा व साहित्य के विविध पक्षों पर अनेक पाठ्य पुस्तकें व सहायक पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं –

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास — 1984
2. हिन्दी भाषा का इतिहास — 1984
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास एवं काव्यशास्त्र — 1987, 2013
4. भारतीय काव्यशास्त्र — 1988
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र — 1988
6. साहित्यशास्त्र और समालोचक — 1988
7. काव्यांग परिचय — 1986
8. हिन्दी भाषा ज्ञान एवं रचना — 1994
9. हिन्दी व्याकरण एवं रचना — 1995
10. पत्रकारिता और सम्पादन कला — 1990
11. हिन्दी : एक व्यावहारिक धरातल — 2003
12. हिन्दी भाषा : एक व्यावहारिक परिदृश्य — 2003
13. प्रारूप लेखन, अनुवाद, सम्पादक के नाम पत्र और सामाजिक निबन्ध — 1983
14. हिन्दी का स्वरूप एवं विकास और रचनात्मक हिन्दी के विविध आयाम — 2009
15. हिन्दी मौखिकी दर्शन — 1982






लगभग 25–30 वर्षों के अंतराल में लिखित प्रकाशित ये पुस्तकें छात्रों को हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विविध पक्षों, आयामों का ज्ञान कराने की दृष्टि से उपयोगी हैं। इनमें से कुछ पुस्तकें एम.ए. के छात्रों को ध्यान में रखकर तथा कुछ बी.ए. के छात्रों को ध्यान में रखकर लिखी गई हैं। आधुनिक छात्रों के लिए हिन्दी के

साथ ही अंग्रेजी का ज्ञान होना भी अत्यावश्यक समझा गया है, इसीलिए 'अनुवाद' को पाठ्यक्रम में रखा गया है। पत्रकारिता, विज्ञापनकला, मुद्रणकला आदि का सामान्य ज्ञान भी हिन्दी छात्रों के लिए अपेक्षित है, इसलिए इन विषयों को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। ये पुस्तकें छात्रों को हिन्दी का सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं कराती, अपितु व्यावहारिक धरातल पर भी सक्षम बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

11. समीक्षात्मक, आलोचनात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन

विश्वविद्यालय के स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में विभिन्न स्तरों पर उपन्यास, नाटक, निबन्ध, एकांकी, संस्मरण आदि को पाठ्यक्रमों में शामिल किया गया है। पाठ्यक्रम का परिवर्तित होना एक सामान्य प्रक्रिया है। छात्रोपयोगी पुस्तकों के प्रकाशक अपने लेखकों से नये-नये उपन्यासों, नाटकों आदि पर समीक्षात्मक पुस्तकें तैयार कराके प्रकाशित करते हैं। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने भी समय-समय पर राज बुक डिपो, प्रकाश बुक डिपो, यूनीवर्सिटी बुक डिपो, शिक्षा प्रकाशन गृह आदि के लिए छात्रोपयोगी समीक्षात्मक पुस्तकें लिखी हैं, इनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं -

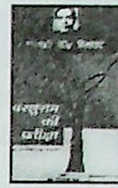
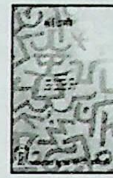
1.	अमृत और विष (उपन्यास)	अमृत लाल नागर
2.	मानस का हंस (उपन्यास)	अमृत लाल नागर
3.	बूँद और समुद्र (उपन्यास)	अमृत लाल नागर
4.	नाच्यो बहुत गोपाल (उपन्यास)	अमृत लाल नागर
5.	सबहि नचावत राम गुसाई (उपन्यास)	अमृत लाल नागर
6.	भूले बिसरे चित्र (उपन्यास)	भगवतीचरण वर्मा
7.	चित्रलेखा (उपन्यास)	भगवतीचरण वर्मा
8.	अमिता (उपन्यास)	यशपाल
9.	दिव्या (उपन्यास)	यशपाल
10.	निर्मला (उपन्यास)	प्रेमचन्द
11.	कर्मभूमि (उपन्यास)	प्रेमचन्द
12.	गोदान (उपन्यास)	प्रेमचन्द
13.	गबन (उपन्यास)	प्रेमचन्द
14.	स्कन्दगुप्त (नाटक)	जयशंकर प्रसाद
15.	ध्रुव स्वामिनी (नाटक)	जयशंकर प्रसाद
16.	चन्द्रगुप्त (नाटक)	जयशंकर प्रसाद
17.	अजातशत्रु (नाटक)	जयशंकर प्रसाद
18.	कंकाल (उपन्यास)	जयशंकर प्रसाद
19.	कामायनी (काव्य)	जयशंकर प्रसाद

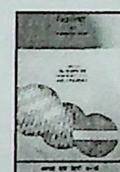


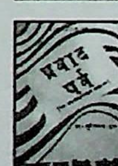




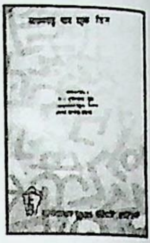
20.	आँसू (काव्य)	जयशंकर प्रसाद
21.	साकेत (काव्य)	मैथिलीशरण गुप्त
22.	यशोधरा (खण्डकाव्य)	मैथिलीशरण गुप्त
23.	उर्वशी (खण्डकाव्य)	रामधारी सिंह दिनकर
24.	कुरुक्षेत्र (खण्डकाव्य)	रामधारी सिंह दिनकर
25.	परशुराम की प्रतीक्षा (काव्य)	रामधारी सिंह दिनकर
26.	अतीत के चलचित्र (संस्मरण)	महादेवी वर्मा
27.	स्मृति की रेखाएँ (संस्मरण)	महादेवी वर्मा
28.	मेरा परिवार (रेखाचित्र)	महादेवी वर्मा
29.	क्षणदा (गद्य)	महादेवी वर्मा
30.	स्मारिका (रेखाचित्र)	महादेवी वर्मा
31.	संधिनी (काव्य)	महादेवी वर्मा
32.	रश्मिबंध (काव्य)	सुमित्रानन्दन पंत
33.	गुंजन (काव्य)	सुमित्रानन्दन पंत
34.	मैला आँचल (उपन्यास)	फणीश्वर नाथ रेणु
35.	सूरज का सातवाँ घोड़ा (उपन्यास)	धर्मवीर भारती
36.	मुक्तिबोध (उपन्यास)	जैनेन्द्र कुमार
37.	त्यागपत्र (उपन्यास)	जैनेन्द्र कुमार
38.	चिंतामणि (निबन्ध)	रामचन्द्र शुक्ला
39.	पांचाली (नाटक)	गंगा सहाय प्रेमी
40.	प्रियप्रवास (काव्य)	अयोध्या सिंह उपाध्याय
41.	जल टूटता हुआ (उपन्यास)	रामदरश मिश्र
42.	महाभोग (उपन्यास)	मन्नू भण्डारी
43.	लेकिन दरवाजा (उपन्यास)	पंकज विष्ट
44.	गाँठ (उपन्यास)	हृदयनारयणी मेहरोत्रा 'हृदयेश'
45.	अशोक के फूल (निबन्ध)	हजारी प्रसाद द्विवेदी
46.	कोणार्क (नाटक)	जगदीशचन्द्र माथुर
47.	पहला राजा (नाटक)	जगदीशचन्द्र माथुर
48.	प्रवाद पर्व (खण्डकाव्य)	नरेश मेहता
49.	महाप्रस्थान (खण्डकाव्य)	नरेश मेहता
50.	संशय की एक रात (काव्य)	नरेश मेहता
51.	आत्मजयी (काव्य)	कुँवर नरायण
52.	मेवाड़ मुकुट (काव्य)	सोहन कमल द्विवेदी

53. कुणाल (काव्य) — सोहन लाल द्विवेदी
54. उद्धव शतक (काव्य) — जगन्नाथ दास रत्नाकर
55. शंबूक वध (काव्य) — जगदीश गुप्त
56. पद्मावत समय (काव्य) — चन्द्र वरदाई
57. पद्मावत (काव्य) — मलिक मुहम्मद जायसी



58. युगे-युगे क्रान्ति (नाटक) — विष्णु प्रभाकर
59. टूटते परिवेश (नाटक) — विष्णु प्रभाकर
60. आषाढ़ का एक दिन (नाटक) — मोहन राकेश
61. आधे अधूरे (नाटक) — मोहन राकेश
62. लहरों के राजहंस (नाटक) — मोहन राकेश
63. सारा आकाश (उपन्यास) — राजेन्द्र यादव
64. तमस (उपन्यास) — भीष्म साहनी



65. तुलसी पंचामृत (काव्य) — डॉ. जैन (सं)
66. विनय पत्रिका (काव्य) — तुलसीदास
67. भ्रमरगीत सार (काव्य) — सूरदास
68. स्वयंवरा (नाटक) — डॉ. रामकुमार वर्मा
69. जयवर्धमान (नाटक) — डॉ. रामकुमार वर्मा
70. भस्मांकुर (काव्य) — नागार्जुन
71. भूमिजा (काव्य) — नागार्जुन



72. कालजयी (काव्य) — भवानीप्रसाद मिश्र
73. काल विजय (नाटक) — लक्ष्मीनारायण मिश्र
74. ज्योति पुरुष : कबीर (काव्य) — रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
75. पत्थर-अल-पत्थर (उपन्यास) — उपेन्द्रनाथ अश्क
76. भिखारिणी (उपन्यास) — विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'
77. निराला की आत्मकथा (जीवनी) — डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित
78. उभरी गहरी रेखाएँ (रेखाचित्र) — सं. डॉ. नगेन्द्र



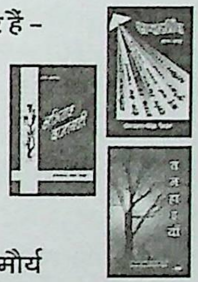
79. कविश्री (काव्य) — निराला
80. आत्महत्या के विरुद्ध (काव्य) — रघुवीर सहाय
81. आन का मान (नाटक) — हरिकृष्ण प्रेमी
82. राष्ट्र की विभूतियाँ (जीवनी) — यशपाल जैन
83. सर्गान्त (खण्ड काव्य) — केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'
84. अधूरी मूर्ति (नाटक) — गोविन्दबल्लभ पंत
85. सुख-दुःख (उपन्यास) — अमृत राय



ये आलोचनात्मक पुस्तकें विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में निर्धारित विषय के अनुरुप लिखी गईं हैं। इनका सृजन प्रकाशकों के आग्रह पर आगरा, रुहेलखण्ड एवं कुमायूँ विश्वविद्यालय के बी.ए. भाषा एवं साहित्य तथा एम.ए. के छात्रों को दृष्टिगत् रखकर लिया गया है। अधिकांश आलोचनात्मक पुस्तकों के दो खण्ड हैं, प्रथम खण्ड में प्रश्नोत्तरों के रूप में आलोच्य पुस्तक की समीक्षा की गई है और द्वितीय खड में महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। ये पुस्तकें स्वतंत्र रूप से प्रकाशित हुई है, किन्तु बाद में 'दिग्दर्शन' में संग्रहीत कर लिया गया है। इनके अतिरिक्त एकांकी संकलनों, कहानी संकलनों, निबंध संकलनों, ललित लेखों के संकलनों, काव्य संकलनों आदि से सम्बन्धित समीक्षात्मक पुस्तकों की संख्या भी लगभग 25-30 होगी। इन्हें भी आवश्यकतानुसार दिग्दर्शनों में शामिल कर लिया गया।

12. सम्पादन-प्रकाशन

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त एक साहित्यकार ही नहीं, सस्था भी है। आपने अन्य प्रकाशकों के लिए ही नहीं लिखा, अपितु अपने लेखन तथा अन्य लेखकों के लिए 'अभिलेख प्रकाशन' खोलकर एक मंच प्रदान किया और बिना किसी लाभ के उनकी पुस्तकें प्रकाशित कीं। अन्य लेखकों की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं -



1. भावत्रयी (काव्य) — डॉ0 लवलेश दत्त
2. अभिनव कामायनी (गीतिनाट्य) — श्री मन्नारायण दीक्षित
3. तनहाइयाँ (काव्य) — श्री मन्नारायण दीक्षित
4. सप्तरश्मि (काव्य — श्री मन्नारायण दीक्षित
5. घने बादलों से (काव्य) — डॉ0 अंजना राठौर
6. उपन्यासकार बाबा नागार्जुन (शोधग्रन्थ) — डॉ0 मोहनलाल मौर्य
7. कविवर डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त और ऋतुवसंती (शोधग्रन्थ) — डॉ0 सुरजीत सिंह मौर्य

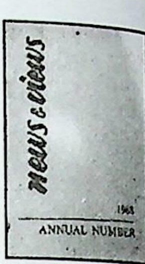
इसके अतिरिक्त प्रो0 रामप्रकाश गोयल अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन-प्रकाशन भी अभिलेख प्रकाशन ने किया है।



आपने बी.ए. और एम.ए. के छात्रों के लिए कुछ पाठ्य पुस्तकों का सम्पादन भी किया है। ये इस प्रकार हैं -

1. व्यावहारिक व्याकरण तथा लेखन के विविध तत्व (1983)
2. प्राचीन एवं मध्य युगीन हिन्दी काव्य (प्रबन्ध काव्य) 1989
3. प्राचीन एवं मध्य युगीन हिन्दी काव्य (मुक्तक काव्य) 1989
4. भक्ति एवं रीतिकालीन काव्य (1999)
5. प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य (2012)
6. नवीन हिन्दी निबन्ध संकलन (2013)

पत्रिका सम्पादन एवं प्रकाशन





डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का एक बड़ा गुण है – कुशल प्रबंधन, जो आपके पत्र–पत्रिका सम्पादन–प्रकाशन में दृष्टिगोचर हुआ है। जब आप श्री मंगलसेन उच्चतर माध्यमिक स्कूल के छात्र थे, तभी स्कूल–पत्रिका के छात्र सम्पादक बना दिए गए थे। उसमें आपका एक गीत और दामोदर घाटी योजना पर लेख छपा था। (पत्रिका अनुपलब्ध है) बी.ए. करते समय सन् 1968 में 'न्यूज एण्ड व्यूज़' पत्रिका के प्रधान सम्पादक प्रो. राजेश्वर सहाय वेदार ने गुप्तजी को हिन्दी अनुभाग का सम्पादक बनाया था। उसमें आपकी एक कविता 'कवि' और एक आलेख 'केशव की काव्य कला' छपा था। एम.ए. करते समय लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विषय की पत्रिका 'ज्योत्सना' के आप छात्र सम्पादक थे और आपका एक आलेख 'साठोत्तर हिन्दी कहानी' छपा था।



बरेली कॉलेज में प्रवक्ता नियुक्त होने पर विभागाध्यक्ष डॉ0 कुन्दन लाल जैन 'शास्त्री' ने आपको विभाग का सभापति नियुक्त किया और कहा था कि कुछ करो। उनकी अभिलाषा 'कवि सम्मेलन' कराने की थी। डॉ. गुप्त वह नहीं करा सके, पर दिमाग में साहित्यिक गतिविधियों का सूत्रपात कर दिया और 'नागरी' नामक पत्रिका प्रकाशित की। उसमें छात्रों की कविताएँ, कहानियाँ, आलेख आदि प्रकाशित हुए। 44 पृष्ठों की इस पत्रिका का लोकार्पण और विजेता छात्रों को पुरस्कार वितरण का कार्य एक भव्य आयोजन में प्रथम कुलपति डॉ0 आनन्दशरण रतूड़ी ने किया था। 'नागरी' का वह प्रथम और अंतिम अंक था, क्योंकि उसके अस्तित्व में आने से पूर्व मित्रों (?) ने बाधाएँ उत्पन्न करनी शुरू कर दी थीं। 'नागरी' की व्यथा यहाँ द्रष्टव्य है–

मैं,
मेरा 'मैं' जागता है
जब उसे कुचला जाता है
मुझे देते हैं प्रेरणा –
फैले हुए काँटे
मुझे पालती है प्रतारणा
और बनता है व्यक्तित्व
मुझे देते हैं प्रोत्साहन
मेरे साथी

जब बनते हैं बाधक,
उनका असहयोग
सहयोग बन जाता है
मेरा जागता है 'मैं'
जब उसे कुचला जाता है। *('नागरी' का निवेदन)*

जैसे-तैसे 'नागरी' प्रकाशित की गई, पर व्यर्थ के विवादों और संघर्षों से बचने के लिए नागरी का दूसरा अंक नहीं निकला। वस्तुतः हिन्दी विभाग से ही कोई पत्रिका नहीं निकली।

डॉ. गुप्त के विभागीय सहयोगी डॉ. भगवानशरण भारद्वाज ने जब 'पांचाली' निकालने का प्रस्ताव किया, तो प्रबंध सम्पादक डॉ. गुप्त को बनाया। गुप्त जी ने उसमें आर्थिक सहयोग भी दिया। जून 1976 के उस प्रवेशांक के पश्चात् 'पांचाली' बंद हो गई और 'शोधस्वर' नामक नयी पत्रिका निकाली गई। कुछ अंकों के प्रकाशन के बाद वह भी बंद हो गई।



डॉ0 गुप्त की पुस्तकों के प्रकाशक श्री प्रेमप्रकाश सिंघल पुस्तकों की बिक्री के प्रति प्रयत्नशील थे। गुप्त जी के परामर्श पर 'साहित्य सम्पर्क' के प्रकाशन का निश्चय किया। राजकमल प्रकाशन-समूह की पत्रिका 'प्रकाशन-समाचार' की तरह सन् 1996 में इसका प्रथम अंक प्रकाशित किया गया। 28 पृष्ठों की इस पत्रिका में 'गांधी का अराजकतावाद', 'हंस जवाहिर : एक अध्ययन', 'पंत की दार्शनिक चेतना', 'प्रसाद काव्य में मिथक प्रतीक', 'छायावादी काव्य में संगीत तत्व', 'हिन्दी कविता में ग़ज़ल', 'व्यावहारिक व्याकरण तथा लेखन के विविध', 'कसक', 'आँखिन देखी' आदि भाषा, साहित्य, शोधग्रन्थ आदि पुस्तकों की परिचयात्मक समीक्षाएँ प्रकाशित हुई थीं। शोधग्रन्थ और पुस्तकों के प्रकाशन के लिए लेखकों को विशेष छूट के साथ आमंत्रित किया गया था। सम्भवतः समुचित प्रसार-प्रचार के अभाव में प्रबुद्ध वर्ग ने इसका स्वागत नहीं किया। इस पत्रिका का सम्पूर्ण लेखन डॉ. गुप्त ने किया था। दुर्भाग्य से इस पत्रिका का एक अंक ही प्रकाशित हो सका था। डॉ. गुप्त का मन पत्रिका-प्रकाशन के लिए व्यग्र रहने लगा। अंततः 'साहित्यायन' की योजना बनी।

'साहित्यायन' त्रैमासिक के प्रवेशांक अप्रैल-जून 2007 का लोकार्पण, साहित्यभूषण प्रो. रामप्रकाश गोयल के आवास पर उन्हीं के कर-कमलों से हुआ था। डॉ0 गुप्त ने अपने शोधछात्रों को सम्पादक/सह सम्पादक बनाया था। प्रयोजन था, शोधार्थियों में साहित्य के पठन-पाठन और लेखन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करना और नये-पुराने साहित्यकारों को एक श्रेष्ठ मंच प्रदान करना। आपके छात्रों में डॉ0

लवलेश और डॉ0 समराना में कारयित्री प्रतिभा के बीज विद्यमान हैं। प्रिय शिष्य डॉ0 लवलेश इतने योग्य और उत्साही सिद्ध हुए कि अपनी पत्रिका अलग से प्रकाशित-सम्पादित करने लगे हैं।



'साहित्यायन' में लगभग तीन सौ रचनाकारों के गीत, ग़ज़ल, आलेख, शोधपत्र आदि प्रकाशित हो चुके हैं। समीक्षार्थ आई पुस्तकों और पत्रिकाओं की संक्षिप्त समीक्षाएँ और सम्पादकीय 'किंचित् मननीय' इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। देशभर में लोकप्रिय 'साहित्यायन' के पाठकों की कुछ प्रतिक्रियाएँ द्रष्टव्य हैं –

"लघुकाय पत्रिका में अपने महत्वपूर्ण सामग्री का समायोजन किया है। कविता, कहानी आदि तो हैं ही, शोधात्मक सामग्री की अपनी महत्ता है।"

—डॉ0 रामप्रसाद दाधीच, नेहरू पार्क, जोधपुर (राजस्थान)

"'साहित्यायन' अपने अंदाज़ में आकर्षक ढंग से चल रही है। इस बार मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा का अंश पूरा पढ़ गया और इस अति विशिष्ट कथा लेखिका के निजी जीवन के बारे में जाना और जाना कि बचपन की अभावग्रस्तता और कठिनाइयाँ ही ऊँचाइयों पर पहुँचाने में सोपान का काम करती हैं और भी बहुत कुछ पढ़ा। सबके लिए आपको बधाइयाँ।

—डॉ0 विवेकीराय, बड़ा बाग, लंका, गाजीपुर (उ.प्र.)

"पत्रिका का निखार देखकर इसके पुनीत, मौलिक एवं ऐतिहासिक रूपों के साथ जिजीविषा की जो मुहिम आपने चला रखी है, यह निश्चय ही वरेण्य है। मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।"

—विश्वयात्री डॉ0 कामता कमलेश, अमरोहा (उ.प्र.)

"आपके द्वारा प्रेषित 'साहित्यायन' (वर्ष 5 अंक 1) की प्रति सादर प्राप्त हुई। तद् हेतु धन्यवाद। पत्रिका में प्रकाशित सभी साहित्य – आलेख, कहानी, कविता, गीत, ग़ज़ल, शोधपत्र आदि पत्रिका में चार चाँद लगाते हैं। सभी रचनाकारों ने अपनी रचनाधर्मिता को निभाया है। सुदूर दक्षिण में जहाँ हिन्दी प्रेमियों को ऐसी पत्रिकाओं के दर्शन दुर्लभ हैं, आपका पत्रिका ने एक नयी रोशनी देकर पथ प्रदर्शन किया है।"

—डॉ. पी. आर. वासुदेवन 'शेष', आफिस आफ द एकाउन्टेंट जनरल, ए.ई. चेन्नई (तमिलनाडु)

"साहित्यायन हेतु इतने सुधी पाठक श्री धर्मपाल गुप्त 'शलभ' आपको प्राप्त हैं, यह सौभाग्य की बात है। बारीकी से पढ़ना और फिर तटस्थ होकर प्रतिक्रिया व्यक्त करना। सहृदय एवं संवेदनशील पाठक ही यह करेगा।"

—श्री चन्द्रसेन विराट, बैकुण्ठ धाम, इन्दौर (म.प्र.)

"'साहित्यायन' जैसी उत्कृष्ट पत्रिका का विशिष्ट स्थान इसलिए है कि इसे

आप जैसे चिन्तक, मनीषी का गुरु गम्भीर सम्पादकत्व प्राप्त है। साहित्यिक पत्रिका सम्पादन, प्रकाशन एवं वितरण असिधाराव्रती के समान है। हिन्दी पत्रकारिता का सौभाग्य है कि उसे आप जैसे असिधाराव्रतो का सम्पादकत्व प्राप्त है।"

–डॉ0 जितेन्द्र कुमार सिंह 'संजय', असि. प्रोफेसर,
श्री भगवान सिंह महाविद्यालय, मिर्जापुर

"'साहित्यायन' पढ़ते समय मेरे मन में एक बात आई कि लोग अपनी पत्रिकाओं के नाम कैसे-कैसे रख लेते हैं – मैकलसुता, लल्लू जगधर, मरु गुलशन, भिलाई प्रकाश, पत्नी प्रलाप, हाइफन, दालरोटी, आल राउंड, चर्वणा आदि। आपने 'साहित्यायन' पत्रिका के अनुरूप सौम्य, सुन्दर और गम्भीरता प्रदर्शित करने वाला नाम रखा है। दरअसल, विद्वान की हर बात विद्वतापूर्ण होती है। आपके सम्पादकीय ज्ञानवर्धक एवं पठनीय होते हैं, साथ ही अगले अंक की प्रतीक्षा भी कराते हैं।"

–श्री मोहन भारतीय, मैत्रीनगर, भिलाई, छत्तीसगढ़

"साहित्यायन को निरन्तर प्रकाशित करके आप हिन्दी की महान सेवा कर रहे हैं। आपके सम्पादकीय समयानुकूल प्रेरक तथा विचारोत्तेजक होते हैं। संस्मरणों में आपके व्यक्तिगत जीवन के साथ सामयिक परिस्थितियों, शिक्षा जगत तथा सामयिक परिवेश का भी जीवंत चित्रण रहता है। इन्हें पुस्तक रूप में भी प्रकाशित कराना चाहिए।"

–डॉ0 रामस्वरूप आर्य, नई बस्ती, बिजनौर

ख्वाबों का आइना : त्रैमासिक साहित्यायन

हर तिमाही में, वह पैगाम नया लाती है,
रूह को अम्न का संदेश सुना जाती है।
हुस्न और रूह के अहसास का संगम है यह,
जो इरादों को, तमन्ना को जगा जाती है।।

–श्री कृष्णकुमार चतुर्वेदी 'सोज़' बदायूँनी, 143, राजेन्द्रनगर, बरेली

विषम परिस्थितियों में भी 'साहित्यायन' का यथासमय प्रकाशित होना और समय से वितरित हो जाना एक बड़ी बात है। आशा की जानी चाहिए कि 'साहित्यायन' भविष्य में भी इसी प्रकार हिन्दी जगत् की सेवा करता रहेगा।

13. सृजन-अवदान के अन्य रूप

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त लेखन-सृजन के अवदान के अनेक रूप हैं, जिन्हें इन वर्गों में बाँटा जा सकता है –

1. **पुस्तकों की भूमिकाएँ, आशीर्वचन आदि**
2. **सम्पादकीय आलेख**

3. आकाशवाणी से प्रसारण
4. विविध संकलनों में लेख सम्मिलित
5. हिन्दी दिग्दर्शनों का लेखन

आपने अनेक कृतियों की भूमिकाएँ लिखी हैं, तथा प्रियजनों की प्रकाशित होने वाली कृतियों में आशीर्वचन, शुभाशीष के रूप में संक्षिप्त आलेख लिखे हैं।

आपके सम्पादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं, यथा 'नागरी', 'साहित्यायन' के सम्पादकीय भी आपने लिखे हैं। 'साहित्यायन' त्रैमासिक के सम्पादकीय इतने लोकप्रिय हुए हैं कि पुस्तकाकार प्रकाशित कराया गया है।

आकाशवाणी के लखनऊ और रामपुर केन्द्रों से आपकी कविताएँ, आलेख, गोष्ठियाँ आदि उसी समय से प्रसारित होती रही हैं, जब आप लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्र थे। बरेली कॉलेज में नियुक्ति प्राप्त करने के बाद, रामपुर केन्द्र से कविताएँ और आलेख प्रसारित होते रहे हैं। एक आलेख *'विकलांगों को सहानुभूति नहीं, सहयोग चाहिए'* आकाशवाणी पत्रिका में छपा था, और कुछ आलेख डॉ0 कौशलनन्दन गोस्वामी द्वारा सम्पादित 'आकाशवाणी' विविध संवाद में संकलित किए गए हैं।

डॉ0 गुप्त के कुछ आलेख जैसे 'सूर की काव्य कला', 'भवानीप्रसाद मिश्र के काव्य में मानवतावाद' आदि विविध संकलनों में प्रकाशित हुए हैं। कुछ अभिनन्दन ग्रन्थों जैसे 'शिवशंकर कटारे अभिनन्दन ग्रन्थ', 'प्रो. रामप्रकाश गोयल अभिनन्दन ग्रन्थ' आदि में भी आपके आलेख प्रकाशित हुए हैं।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने 'राज बुक डिपो', 'प्रकाश बुक डिपो', 'यूनीवर्सिटी बुक डिपो' आदि प्रकाशनों के लिए हिन्दी दिग्दर्शन भी लिखे हैं। संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –



1. राज बुक डिपो – राज हिन्दी भाषा प्रकाश
   (बी.ए. I, बी.ए. II, बी.ए. III)
2. यूनीवर्सिटी बुक डिपो (हल्द्वानी) –
   1. हिन्दी भाषा गाइड (बी.ए. I, II, III)
   2. हिन्दी साहित्य गाइड (बी.ए. I, II)
3. प्रकाश बुक डिपो –
   1. प्रकाश हिन्दी भाषा दिग्दर्शन (बी.ए. I, II, III)
   2. प्रकाश हिन्दी साहित्य दिग्दर्शन (बी.ए. I, II, III)
   3. प्रकाश हिन्दी दिग्दर्शन (एम.ए. I, II)

'पी.सी.एस. हिन्दी दिग्दर्शन' – संज्ञक गाइड उन छात्रों के लिए लिखी गई है, पीसीएस जैसी प्रशासकीय सेवा की प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करते हैं।

समाहार

डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त सतत साधनाशील साहित्यकार है। आप बचपन से ही सृजनधर्मी रहे हैं। हाईस्कूल भी नहीं कर पाया था कि स्कूल की पत्रिका में कविता छप गई थी। हाईस्कूल करने के बाद एक कविता 'मैं नूतन निर्माण करूँगा' हिन्दुस्तान के रविवासरीय संस्करण में छपी थी। सत्रह वर्ष की अवस्था में उपन्यास 'परीज़ाद' और कुछ कहानियाँ लिखीं। कुछ कहानियों और नाटकों की पाण्डुलिपि अभी भी सुरक्षित है। 'डायरी' भी प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। जब से प्रवक्ता के रूप में नियुक्ति प्राप्त हुई, तब से हिन्दी की विविध विधाओं में सतत् सृजन करते रहे। प्रकाशकों की माँग पर छात्रोपयोगी पुस्तकें लिखीं और आत्मतुष्टि के लिए सर्जनात्मक सृजन किया। कई पत्रिकाओं का प्रकाशन सम्पादन कर नये-नये रचनाकारों को आगे बढ़ाया। इतना प्रचुर लेखन करने के बाद भी आप निरन्तर सक्रिय हैं और प्रायः हर वर्ष कुछ-न-कुछ नया प्रकाशित होता रहता है।

●●●

–डॉ. नितिन सेठी एवं डॉ. सुरजीत सिंह मौर्य



घर के आगे पूजा घर है
देखो उसको कितना डर है

तृतीय सोपान

सृजन – समीक्षा

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के बहुआयामी सृजन पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षात्मक आलेख प्रकाशित होते रहे हैं। यहाँ कुछ प्रकाशित – अप्रकाशित आलेखों को प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे सामान्य पाठकों और प्रशंसकों को गुप्तजी के साहित्य को समझने और समीक्षकों के दृष्टिकोण को जानने में सहायता मिलेगी।

1. 'मन पाँखी' एक समीक्षात्मक अध्ययन
2. 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' : विहंगावलोकन
3. समकालीन हिन्दी कविता और 'ऋतु बसंती'
4. समकालीन हिन्दी कविता और 'आत्म मंथन'
5. 'लोकतांत्रिक भारत में' : युग जीवन की आख्या
6. 'देवी माँ सहचरी प्राण' : नारायणी नमोऽस्तुते का काव्य रूप
7. 'प्रसाद' : बांग्लादेश के कवि की उत्कृष्ट कृति
8. 'परीज़ाद' : होनहार बिरवान के
9. संस्मरण विधा की अनुपम कृति 'स्मृति के वातायन'
10. 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' : एक अप्रतिम यात्रावृत्त
11. डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की शोध दृष्टि – 'शोधायन' के विशेष संदर्भ में
12. 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' : दर्शन का विश्वकोष

1

मनपाँखी : एक समीक्षात्मक अध्ययन

अद्‌भुत प्रतिभा के धनी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त आज बहुचर्चित साहित्याकार हैं। आप एक साथ कवि, निबंधकार, समीक्षक, अनुवादक, संस्मरण तथा डायरी लेखक सब कुछ हैं। आपके इन तमाम रूपों में दो रूप अधिक लोकप्रिय हैं। वे हैं – कवि एवं समीक्षक। आपने लगभग चार दर्जन पुस्तकों का सृजन कर हिन्दी साहित्यजगत् को अमूल्य योगदान दिया है। एक कवि के रूप में आप जितने सरल हृदय के स्वामी हैं, एक समीक्षक के रूप में उतने ही अधिक सूक्ष्म अध्ययन के प्रस्तोता। आपकी कविताओं में प्रेम, प्रकृति, राष्ट्रीयता, राजनीतिक विद्रूपता, स्वार्थपरता, मूल्यहीनता, भ्रष्टाचार, विसंगति, षड्यंत्र, शोषण के प्रति विद्रोह, लोकतंत्र की विडम्बना जैसे तमाम स्वर मुखरित हुए हैं। इन विभिन्न स्वरों की अनुगूँज मन-पाँखी, स्वर्ण जयन्ती वर्ष, गीतश्री, ऋतुबसंती, आत्ममंथन, लोकतांत्रिक भारत में इत्यादि कविता संग्रहों में स्पष्ट रूप से सुनाई देती है।

'मनपाँखी' प्रेरक कविताओं का चर्चित काव्य संग्रह है, जो मुक्तक रचना शैली में लिखित है। आज के नीरस हिन्दी कविता के समय में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की 'मनपाँखी' रस की भीनी फुहार करके तन-मन को अभिसिंचित कर पुलकायमान करने वाली है। यह कवितासंग्रह अभिलेख प्रकाशन से सन् 1990 में प्रकाशित हुआ है। इस कविता-संग्रह में 50 कविताओं को संग्रहीत किया गया है। 'मनपाँखी' के प्रकाशित होते ही काव्यजगत् में हलचल मच गयी क्योंकि यह कविता-संग्रह मानव मन का यथार्थ मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्‌घाटन करता है। प्रेम मानव हृदय का शाश्वत भाव है। इसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता है क्योंकि प्रेम की उपेक्षा जीवन की उपेक्षा है। काव्य के साधारणीकरण से काव्यानन्द में श्रीवृद्धि होती है। जितना अधिक साधारीकरण होगा, उतनी ही अधिक आनन्दोपलब्धि होती है, चूँकि 'मनपाँखी' का मूल विषय प्रेम, जनसाधारण के हृदय का उद्‌गार है, अतः तीव्र साधारणीकरण होने के कारण पाठक काव्य के रस से सराबोर हो जाता है। यही कवि की सार्थकता है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का 'मनपाँखी' कितना चंचल है, उनकी कविताओं को पढ़कर अच्छी तरह जाना जा सकता है। कभी तो वह 'रेशम की झील' में तैरता है, तो कभी अमीनाबाद के 'दोलायमान प्रणय' को देखता है। कभी 'कैबरे गर्ल' को देखता है तो कभी 'क्रीड़ा और प्रजनन' को। कभी उसे 'आदम और हौवा' प्रिय लगता है, तो कभी 'नागफनी का फूल'। वस्तुतः मनपाँखी इतना चंचल है कि पल भर में जीवन के इस विस्तृत धरातल को झाँक लेता है।

मानवजीवन अनमोल है। इसकी सार्थकता तभी है जब इसका सम्पूर्ण उपभोग किया जाए अर्थात् आनन्द उठाया जाये, चाहे सुख हो चाहे दुःख। जिन्दगी रस का उफनता ज्वार है, लेकिन इसकी सार्थकता तभी है, जब प्रियतम के पास जाकर गले लग जाये –

जिन्दगी
रस का उफनता ज्वार
मगर, किस काम की
जब तलक
यह जी किसी पर आ न जाये। *(सार्थकता, पृ. 3)*

इस संसार में जीवन का विकास सभी प्राणियों में अलग-अलग ढंग से होता है। खासतौर से 'भँवरा और नर' का भँवरा रसपान करके उड़ जाता है, परन्तु आदमी उस फूल से कोमल बदन को दबाये सो जाता है। यह उसकी अपनी नियति है। जब प्रिया बिछुड़ जाती है, तो उसकी स्मृतियाँ ही जीवन का सहारा बनती हैं फिर भी कवि यह अभिलाषा व्यक्त करता है कि मृत्यु भी आये तो उसकी प्रिया उसकी बाहुपाश मे हो –

यदि मरना भी पड़े
चाहूँगा --
अंक में प्रिया हो
बाहें बाहों में हों
आँखें आँखों को पी रही हों
और,
साँसें साँसों को
और,
चूम रहा हो एकांग प्रिया को। *(मृत्युशर्त, पृ. 56)*

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने इस प्रकार के अन्तरंग चित्रण कई स्थानों पर किये हैं। 'दोलायमान प्रणय' में भी कुछ इसी तरह का दृश्य दिखायी देता है –

एक युवक

एक युवती
आलिंगनबद्ध
सुयुग्म कुक्कुर से
मौन, लवलीन
जगत से परे
ब्रह्मानन्द को भोगता
दोलायमान प्रणय। (पृ. 31)

प्रेम की भाषा शब्द रहित होती है, फिर भी कवि उत्सुकतावश प्रेम प्रस्ताव रखते हुए प्रिया से आग्रह करता है कि 'हाँ' न कह सकती हो तो 'न' ही कह दो क्योंकि लड़कियों की हाँ बराबर न और न बराबर हाँ होती है। यह बात उनके स्वभाव का स्वाभाविक सूक्ष्म अध्ययन का परिचायक है, पर संवाद अघटित रहता है। कुछ समय बाद मौनाराधना टूटती है, अर्थात् प्रस्ताव अस्वीकृत हो जाता है। प्रेम की राह में अक्सर यही होता है। परन्तु जीवन यहीं समाप्त नहीं हो जाता है। कुमारिकाओं की नियति ही यही होती है, क्योंकि वे सामाजिक बंधनों में जकड़ी हुई होती है। वे सीधी-सादी गाय की भाँति होती हैं कि परिवार वाले चाहे जिस खूँटे से बाँध दें। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी इन विवश कुमारिकाओं की स्वतंत्रता के प्रति चिन्तित दिखाई पड़ते हैं।

नारी के अनेक रूप हैं, पर क्या इनमें नारी की पूर्णता दिखाई देती है ? नारी की पूर्णता गुप्त जी केवल और केवल पत्नी के रूप में स्वीकारते हैं। जो सुख-दुःख, हर्ष-विषाद हर स्थिति में पुरुष का साथ देती है। आपका विचार है कि सच्ची अर्धांगिनी वही जिसमें नारीत्व का लक्षण हो--

कितने ही रूप हैं नारी के
सभी मिथ्या
अपूर्ण और अधूरे
मुझे तो एक ही रूप लगता है पूर्ण --
पत्नी का
माँ जैसा स्नेह देकर खिलाती-पिलाती है
चूड़ियों की झन्कार से रिझाती है
सभी कुछ झेलती है पति-साथ
मरते दम तक साथ निभाती है। (नारी की पूर्णता, पृ. 66)

आधुनिक पत्नियों की क्या मानसिकता है, डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त इस भेद को खोलने में भी सफल रहे हैं। इन पत्नियों ने प्रेम का पैमाना बना रखा है। वें नारी की मूल्यहीनता पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखते हैं --

मैं प्रिया हूँ
तुम्हारी
तुम्हारी
और तुम्हारी
मैं प्यार करती हूँ
तुम्हें
तुम्हें
और तुम्हें ही (भी)
मैं चाहती हूँ
उतना
उतना
ठीक उतना
पे करते हो जितना। *(प्रेम का पैमाना, पृ. 40)*

इस कविता संग्रह से स्पष्ट है कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी छायावादी कवियों की तरह छायालोक में विचरण करके सपनों के महल बनाने वाले नहीं हैं बल्कि जीवन के यथार्थ धरातल पर रहकर वास्तविक अनुभव व्यक्त करने वाले हैं। आपकी ये कविताएँ अनुभवजन्य ज्ञान पर आधारित हैं। अज्ञेय भी कहते हैं -- "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है।" यह बात काफी हद तक सही है। पर कवियों के विचार और संस्कार अलग-अलग होते हैं। वे अपने संस्कार अपने विचारों में व्यक्त करने से कतराते हैं। वे दोहरी नीति अपनाते हैं। उनमें अपनी हकीकत व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती है, पर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अपने हृदय की बात कहने में ज़रा भी संकोच नहीं करते हैं। वे बहुत बेबाक और पारदर्शी हैं। आपने जो भी कहा है, बड़े ही सहज एवं ईमानदारीपूर्वक कहा है। इस दृष्टि से 'मनपाँखी' मानव-मन के यथार्थ को उद्घाटित करने वाला एक उच्चस्तरीय कविता-संग्रह ठहरता है, तो डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक उच्चस्तरीय साहित्यकार एवं कवि।

●●●

–डॉ. सुरजीत सिंह मौर्य

2

स्वर्ण जयंती वर्ष : विहंगावलोकन

महान साहित्यकार और कवि डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष एवं कठिनाइयों से जूझते हुए बीता है। आपका जन्म एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। पिता के निधन के पश्चात् इनके परिवार की आर्थिक स्थिति, इतनी दयनीय हो गई थी कि समय पर विद्यालय की फीस जमा कर पाना कठिन हो जाता था। कालान्तर में, संधिवात् रोग से पीड़ित होने पर समय से एवं सही उपचार न होने के कारण स्थायी विकलांगता आ गयी। इन असुविधाओं से संघर्षरत रहकर आपने पढ़ाई नहीं छोड़ी। बचपन में अनेक पुस्तकें पढ़ीं। बी.ए. तथा एम.ए. में पत्रिकाओं के सम्पादन का कार्यभार भी सँभाला।

आप प्रारम्भ से ही अपार प्रतिभा सम्पन्न एवं मेधावी छात्र रहे हैं। शिक्षार्जन के पश्चात् आपने अध्यापक जीवन को चुना। अध्ययन- अध्यापन के दौरान आपने छात्रों का यथासम्भव मार्गदर्शन किया। 1997 में आपको अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के 'आत्रेय पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। आज भी आप अनेक काव्य एवं समीक्षात्मक ग्रन्थों का सृजन कर रहे हैं।

कवि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के सभी काव्य-संग्रहों ने हिन्दी साहित्य की समकालीन हिन्दी कविता में महत्त्वपूर्ण योगदान देकर उसकी श्रीवृद्धि की है। आपके इन संग्रहों में समकालीन हिन्दी काव्य की विभिन्न विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं। गुप्तजी ने अपनी कविता में स्पष्ट रूप से अपनी बात कही है। कवि, समाज में व्याप्त संकटग्रस्त परिस्थितियों से असुरक्षा के बोध को दर्शाता है। समकालीन वातावरण में कवि को चारों ओर एकाकीपन ही नजर आता है, वह इससे ग्रस्त नजर आता है। आपकी कविता में प्रेम की अनुभूति प्रबल होती है। आपके इस प्रेम में स्वस्थ एवं स्वच्छन्द रोमांस के दर्शन होते हैं। यह प्रेम आपकी पवित्रता को दर्शाता है। राजनीतिक विद्रूपता तो आज समाज के प्रत्येक वर्ग में अपना घर बना चुकी है। उसके प्रभाव से कोई अछूता नहीं है। सुख-दुःख जीवन के दो पक्ष होते हैं। कभी कवि दुखित होकर अनास्था प्रकट करता है, तो कभी ईश्वर के प्रति आस्था प्रकट करता है। कवि

को सभी जगह से निराशा ही निराशा मिलती है, तो वह वापस ईश्वर की शरण में आकर आस्था प्रकट करता है और आस्थावादी बन जाता है।

गुप्तजी की कविताओं में राष्ट्रीय निर्माण की चेतना देखने को मिलती है। वह युवाओं का आह्वान कर नव राष्ट्रीयता को प्रेरित करता है, जिससे भारत में भय, आतंक, विद्रूपता न हो। कवि ने स्थूल-सौन्दर्य चित्रण को रोचकता से प्रस्तुत किया है। वह ऐसे स्थूल सौन्दर्य का चित्रण करता है कि आलोचक भी उसका आनंद लेने लगे। डॉ. गुप्त के काव्य ने समकालीन हिन्दी काव्य के विकास में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भाव साहित्यकार की मूल पूँजी होती है। ये भाव उसके नितान्त वैयक्तिक होते हैं। साहित्यकार के ये भाव साहित्य में आ जाने पर साधारणीकृत हो जाते हैं। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की "स्वर्ण जयन्ती वर्ष" में प्रधान स्वर राजनीतिक विद्रूपता के दिखायी देते हैं, जो राजनीति कभी राष्ट्रीय निर्माण के लिए थी, वही राजनीति आज राष्ट्रपतन की ओर उन्मुख है। भ्रष्टाचार अपनी सभी सीमाओं को तोड़ते हुए, व्यापक रूप धारण कर चुका है। यह समाज के सभी वर्गों में संलिप्त हैं। राजनीतिज्ञों की राजनीति की उथल-पुथल ने आरक्षण को गहरी समस्या के रूप में खड़ा किया है। आरक्षण पाने के लिए आपा-धापी मची हुई है। इस स्वार्थपरता के वशीभूत नेता, अधिकारी, व्यापारी सभी आम जनता का शोषण कर उसका खून चूस रहे हैं। कवि को आधुनिकता के इस युग में विकास की कोई खास उपलब्धि नजर नहीं आती है। यह सब दिखावटी ही है। इसमें केवल खोखलापन ही है।

इन सभी अनैतिकताओं का विरोध कर कवि राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख होकर अपनी संस्कृति के प्रति सजग रहने एवं अपने कर्तव्य का पालन करने को कहता है। कवि ने राजनीतिक विद्रूपता के साथ समाज की विभिन्न विद्रूपताओं को भी चित्रित किया है। कवि राजनीतिक विद्रूपता को समाज में बढ़ते भ्रष्टाचार का मूल कारण मानता है। राजनीति ने समाज के प्रत्येक वर्ग पर अपना प्रभाव छोड़ा है। समकालीन परिस्थितियों में इसके प्रभाव से कोई अछूता नहीं रह सका है। 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' राजनीतिक चिन्तन की दृष्टि से उत्तम कलाकृति है।

"काव्य को आनन्दमूलक स्वीकार करने की यह प्रवृत्ति आधुनिक युग के अन्य विचारकों में भी यथावत् उपलब्ध है। 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' का काव्य-सौन्दर्य अतीव अतुलनीय है। काव्य में साहित्य और समाज के सम्बन्ध को स्थापित किया गया है। आधुनिक हिन्दी काव्य के सामाजिक परिदृश्य का चित्रण भी गुप्त जी ने 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' में किया है। 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' में समकालीन हिन्दी कविता की समसामयिकता को वर्तमान सन्दर्भों के साथ उभारा गया है।

'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' में कवि ने गिने-चुने रसों को ही अपनाया है। कवि ने मूल

रूप से वीभत्स रस को प्रधानता दी है। इसके अलावा यत्र-तत्र अन्य रस भी देखने को मिलते हैं। वह राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से बार-बार घृणित हो उठता है। अतः निःसंकोच कह सकते हैं कि 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' में प्रधान रस वीभत्स है, जिसके प्रभाव से पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते हैं।

कवि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के काव्य-संग्रह का शिल्प विधान निश्चय ही उत्कृष्ट कोटि का है, जिसमें कवि भाषा की संस्कारशीलता के प्रति पूर्ण सचेत दिखायी देता है। आपने मुख्य रूप से संस्कृतनिष्ठ शब्दावली को अपनाया है। यह आपकी संस्कृतनिष्ठता का प्रमाण है। भावों को प्रवाहमय बनाये रखने के लिए आपने सामान्य बोलचाल की भाषा को अपनाया है, तो आपने आवश्यकतानुसार विदेशी-शब्दों को भी अपनाने में संकोच नहीं किया है। जहाँ-जैसे शब्दों की आवश्यकता पड़ी, आपने अपनाया। आपने अरबी-फारसी के शब्दों के साथ अंग्रेजी शब्दों को भी अपनाने में संकोच नहीं किया है।

भावों के परिवर्तन के साथ-साथ शैली में भी परिवर्तन आ जाना स्वाभाविक ही है क्योंकि "सभी तरह के अनुभूत वस्तु-तत्त्व एक ही प्रकार की अभिव्यक्ति शैली में नहीं बाँधे जा सकते।" आपने कविता-कामिनी को नवीन प्रतीकों से बाँधने का प्रयत्न किया है। आपके विम्ब विधान में माधुर्यता कुछ कम दिखायी देती है। अतः काव्य-सौन्दर्य के आँकलन से 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती है।

महान साहित्यकार कवि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त विरचित 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' आधुनिक सन्दर्भों के यथार्थ को चित्रित करती हुई, युगों तक जीवन्त रहने वाली काव्यकृति है। जिस प्रकार आत्मा अजर-अमर होती है, उसी प्रकार कवि के भाव भी अजर-अमर होते हैं। 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' में भी वर्णित भाव शाश्वत है। भले ही 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' एक वर्ष में लिखा गया काव्य-संग्रह हो, लेकिन उसकी कवितायें भारतीय स्वतंत्रता की प्रथम वर्षगाँठ से लेकर आज के राजनीतिक परिवेश को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता रखती है। राजनीतिक एवं सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' एक उच्चकोटि की काव्य-कृति है।

●●●

—रामानन्द मिश्र
ब्रह्मपुरी, उसाँवा, बदायूँ

(श्री रामानंद मिश्र ने 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' पर लघु प्रबंध लिखा है यह आलेख उसका 'उपसंहार' है)

3

समकालीन हिन्दी कविता और 'ऋतुबसंती'

अपनी सौम्य मेधा और अद्भुत जिजीविषा के बल पर शारीरिक विकलांगता को पराजित कर अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा आत्ममंथन करके हिन्दी साहित्य-क्षितिज को स्पर्श करने वाले आत्रेय पुरस्कार से सम्मानित डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। आपने अपनी समीक्षा-शक्ति से न केवल हिन्दी साहित्य जगत् में विशिष्ट पहचान बनायी है, बल्कि 'मन-पाँखी', 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'गीत श्री', 'ऋतुबसंती', 'आत्ममंथन' तथा 'लोकतांत्रिक भारत में' जैसी अनेक काव्यकृतियाँ प्रदान कर हिन्दी काव्य जगत् को समृद्ध बनाया है। आपकी इन काव्योपलब्धियों में प्रेम, प्रकृति, सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रीय चेतना, भ्रष्टाचारी राजनीतिकों के प्रति आक्रोश जैसे अनेक स्वर मुखरित हुए हैं। इन काव्य रचनाओं में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त कृत 'ऋतुबसंती' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुछ विद्वान इसे गीतों का संग्रह कहना ज्यादा पसंद करते हैं। डॉ. लवलेश ने कहा है, "ऋतुवसंती कविमना डॉ. गुप्त के प्रारम्भिक गीतों से लेकर अब तक के गीतों का संग्रह है।" पर मेरी दृष्टि में यह कविता संग्रह है जिसकी अधिकांश कविताएँ गायी जा सकती हैं। ये कविताएँ लयात्मकता से युक्त होने के साथ-साथ बौद्धिकता से भी परिपूर्ण हैं। गीत फिल्म की आत्मा हैं तो कविता साहित्य की साँस। पर, हाँ सोद्देश्य गीत को साहित्य का अंग मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। चेतन घोरले के शब्दों में, "कविता भारतीय साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, ये समझ लीजिए कि ये साहित्य के शरीर की साँस हैं। इसी प्रकार गीत एक फिल्म की आत्मा है। देखा जाये तो गीतों को साहित्य का अंग मानने में कोई बुराई नहीं है। पर यह सोचना कि गीत कविता की जगह ले लेंगे, गलत होगा। गीत सादा और सरल है। गीतों को सुन्दर बनाने में सुरों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। कविता असाधारण और जटिल होते हुए भी बिना किसी धुन के मधुर बनी रहती है।"

समकालीन हिन्दी कविता का प्रादुर्भाव सन् 1940 से माना गया है। डॉ. अशोक त्रिपाठी जी ने समकालीन हिन्दी कविता का प्रारम्भ सन् 1943 से मानकर 30 वर्षों के हिन्दी साहित्य को अध्ययन का विषय बनाया है, परन्तु इसका यह अर्थ

कदापि नहीं है कि सन् 1973 के बाद समकालीन हिन्दी कविता का अस्तित्व समाप्त हो गया। समकालीन हिन्दी कविता साहित्य जगत् में नवीन भावभूमि एवं कला विशिष्टता लेकर उपस्थित हुई है। इसका स्वरूप अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है।

समकालीन हिन्दी कविता के कवि का सबसे बड़ा संकट है – होने न होने की गिरफ्त में जकड़ा हुआ कवि-व्यक्तित्व। वह सच्चाई को अच्छी तरह समझता है पर कह सकने में अपने को नितान्त असमर्थ पाता है। सच्चाई को समझते हुए भी वह सच्चाई के साथ सच्चाई व्यक्त नहीं कर पाता है क्योंकि आज की एकदम मौजूदा परिस्थितियों की विसंगतियों में-- 'सच्चाई को जानना विरोध में होना है।'

वास्तव में सच्चाई को कह पाना बहुत ही बहादुरी की बात है। कभी-कभी तो साहित्यकार को सच्चाई व्यक्त करने का बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ जाता है। अथक परिश्रम के बाद निर्मित किसी पुस्तक पर सरकार द्वारा रोक लगा देना कवि की भावनाओं को दण्डित करने से कम नहीं है। ऐसी ही अन्तर्वेदना 'मुक्तिबोध' जैसे साहित्यकार झेल चुके हैं। परन्तु परिस्थितियाँ सदैव एक जैसी नहीं रहती हैं। आज का कवि सच्चाई को कहने में तनिक भी संकोच नहीं करता है। वह अपनी बात स्पष्ट शब्दों में कहना चाहता है। वह किसी बाहरी दबाव को स्वीकार नहीं करता है। यहाँ तक कि राजनेताओं तक की भी उसे कोई परवाह नहीं है। उसे जो कहना है वह कहना है। ऐसा ही जज्बा डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त में दिखाई देता है। आपने वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया है। आप सुश्री मायावती जी की भी व्यंग्यात्मक लहजे में खबर लेते हैं –

चला यूँ राजनीति का चक्र
सहारा हटते ही मुँह फक्क
गयी कुर्सी, मुँह गिरी धड़ाम
हुआ पलभर में काम तमाम
भागे साथी, धन-दौलत छिनी, कालगति ऐसी न जानी।
ठगिनि यह माया महारानी। *(ऋतुबसंती, पृ. 107)*

समकालीन हिन्दी कविता का कवि अपनी और समाज की सुरक्षा के संकट से गुजरता दिखाई दे रहा है। बारूद पर टिकी दुनिया न जाने कब भस्म हो जाये यह संकट कवि को सताता रहता है। कवि आणविक युद्धों की भयंकरता को देखकर चिंतित है। आखिर इस संकट को उत्पन्न करने वाला कौन है ? उत्तर होगा मानव। 'असुरक्षा का बोध आज के कवि को भी कम नहीं है, हाँ इतना अवश्य है कि संकट का स्वरूप अवश्य परिवर्तित हुआ है। वर्तमान समय में भारत में दो प्रबल विरोधी संस्कृतियाँ मौजूद हैं जिनमें एक है इस्लामिक और दूसरी है हिन्दुत्ववादी। अधिकांश आतंकवादी इस्लामिक संस्कृति को मानने वाले हैं। अतः

इस आतंकवादी संस्कृति के कारण भारत में कभी भी गृहयुद्ध हो सकता है। यही आशंका डॉ. गुप्त ने व्यक्त की है --

होगा जब गृहयुद्ध यहाँ तब
ध्वंस मात्र हिन्दू का होगा
पाकिस्तान में मुसलमान को
मुजाहिरों सा जीना होगा....
ऐसा कभी न सोचा होगा।' (पृ. 103)

समकालीन हिन्दी कविता में एकाकीपन एक प्रमुख विशेषता रही है। यह एकाकीपन या अजनबीपन का बोध अनायास ही समकालीन हिन्दी कविता का संवाहक नहीं बन गया। इसके पीछे एक समुचित कारण स्वार्थ के बढ़ते हुए पंजों ने व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की आत्मीयता को दबोच लिया है। आत्मीयता की सम्पूर्ण जीवनशक्ति का रस चूस लिया है। अपने ही लोग बेगाने हो जाते हैं। कवि जिन्हें अपना जीवन-साथी मानता था, जो जीवन-यात्रा में साथ रहने वाले थे, वे सब कवि की आँखों के सामने से ओझल हो गये। अकेले ही सारा लम्बा रास्ता तय करने की कैसी खौफनाक स्थिति है --

लम्बे रास्ते पर
कोई भी नहीं देता साथ
सब आँखों के सामने ही
अनुपस्थित हो जाते हैं। *(डॉ. विनय) निषेध, पृ. 69*

ऐसा ही अकेलापन डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी की कविताओं में स्पष्ट झलकता है जिसको उन्होंने अपने प्राणों से भी अधिक चाहा, जिस पर स्वयं से भी ज्यादा भरोसा किया, जिसको अपना हमसफर समझा आज वे ही दगा दे गये। कवि का अन्तर्मन व्यथित हो उठा --

थे हमारे हमसफर जो
पा चुके मंजिल सभी तो
बात भी करते नहीं वो,
चाहने वाले रहे जो। (पृ. 50)

समकालीन हिन्दी कविता में रोमांस के अनेक रूप-विरूप देखने को मिलते हैं। इन यौन मानसिकताओं के संघर्ष के पीछे प्रायः पश्चिमी मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव माना जाता है। अज्ञेय तो मनुष्य को यौन वर्जनाओं का पुंज मानते हैं। समकालीन हिन्दी कविता में रोमांस मूल प्रवृत्ति के रूप में उभर कर आया है। प्रारम्भ में तो स्वस्थ रोमांस ही था लेकिन बाद में विकृत रोमांस अधिक दिखाई देने लगा। सामयिक कवि रोमांस या प्यार को जीने की अनिवार्य शर्त मानता है --

जब जब रिक्त होता हूँ/प्यार करता हूँ
वही एक शर्त है/जिन्दा रह जाने की।

(कैलाश वाजपेयी, संक्रांत पृ. 19)

समकालीन हिन्दी कविता में स्वस्थ रोमांस कम ही दिखाई पड़ता है, विकृत रोमांस के तो अनेक उदाहरण उपलब्ध हो सकते हैं, पर उन्हें यहाँ प्रस्तुत करना ठीक नहीं। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की 'ऋतुवसंती' में स्वस्थ रोमांस ही दिखाई देता है। उसमें विद्रूपता या असंगति कहीं भी परिलक्षित नहीं होती है --

दहक रहा तन मन बसंत से
अंग अंग पीड़ित अनंग से
आज बना प्राणों का ग्राहक
सैन्य सहित सर मारे, प्यारे।
कब तक देखूँ राह, पिया रे! *(ऋतुवसंती, पृ. 75)*

सामयिक कवि जहाँ जड़ हो जाना चाहता है वहीं आज का कवि और अधिक चेतनाशील होना चाहता है। आज का कवि उस कारण की खोज करना चाहता है जिस कारण सामयिक कवि को अचेतावस्था में जाने के लिए बाध्य होना पड़ा। वह जानना चाहता है उन शक्तियों को जो उसके और समाज के लिए खतरनाक हैं। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की यही चेतना संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। वे उन शक्तियों का समूल नाश कर देना चाहते हैं --

शासक जन भारत के भ्रान्त हैं
शायद पर चींटीं के उग आये हैं
गांधी के भक्त रक्त पीते हैं
गोली से बात आज करते हैं
हम भी कम नहीं उठो! जागो!
धरती के वीर पुत्र! जागो!! *(ऋतु. पृ. 33)*

समकालीन हिन्दी कविता में मानव चेतना पर पड़ने वाले दबावों के कारण उत्पन्न आस्था-अनास्था अनेक रूपों में रूपायित हुई है। कहीं-कहीं दबावों के कारण व्यक्ति-मन में अनास्था का भाव जाग्रत होता है तो कहीं-कहीं अपराजेय जिजीविषा के कारण आस्थावादी स्वर दिखाई देता है। ईश्वर के ईश्वरत्व को लेकर समकालीन हिन्दी कविता में अनास्था के अनेक स्वर अन्तः संघर्षात्मक स्तर पर विस्तार पा सके हैं। समाज में व्याप्त विडम्बनाओं को देखकर कवि का मन आशंका से भर उठता है। सत्य के मार्ग पर चलने वालों को कष्ट तथा असत्य मार्ग पर चलने वालों को सुख मिल रहा है, यह देखकर उसकी आशंका यकीन में बदल जाती है। तब वह ईश्वर के प्रति संदेह व्यक्त करता है --

तुम ईश्वर नहीं हो,
तुम हमारे प्रश्न का विस्तार, पर उत्तर नहीं हो।

(कुँवर नारायण चक्रव्यूह पृ. 84

जीवन में सुख-दुःख तो आते ही है। कोई व्यक्ति दुःखों को सहन न कर पाने के कारण ही अनास्थावादी बन जाता है, पर कोई व्यक्ति अपार दुःख सहकर भी आस्थावादी बना रहता है। दुःख में भी आस्थावादी बना रहने वाला व्यक्ति ही सच्चे अर्थों में आस्तिक होता है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का रूप आस्थावादी दिखाई देता है --

समदर्शी हो सबके पालक
पर जो मरा तुम्हारे कारण
होगी तब बदनामी, स्वामी
अब मत यूँ अलसाओ
आओ, प्रियतम आओ। *(ऋतुवसंती, पृ. 61)*

वर्तमान परिवेश में भीड़ के बढ़ते दबावों के कारण व्यक्ति का निजी अस्तित्व खतरे में पड़ता दिखाई दे रहा है। वह इतना विखण्डित होता जा रहा है कि जैसे निज का कोई अस्तित्व ही नहीं है। मानव लगातार कोशिश करता है कि वह अपना निजीपन बनाये रख सके पर चाहते हुए भी ऐसा कर पाने में अपने को नितान्त असमर्थ पाता है। अपने को निरीह महसूस करने का भाव और कुछ न कर पाने की विवशता उसे कचोटती रहती है। आज के जटिलतम यांत्रिक युग में एक ही क्षण में अनेक स्तरों पर जीवन जीने की विवशता के क्षणों में यह पहचानना मुश्किल हो गया है कि अपना वास्तविक अस्तित्व क्या है? उसका सही रूप क्या है? डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष करते दिखाई दे रहे हैं। यद्यपि वे स्वयं को अकिंचन कवि मानते हैं तथापि अपना अस्तित्व बनाए रखने के अभिलाषी भी हैं। वे आत्मसम्मान के बिना जीवित ही नहीं रहना चाहते -

हूँ धरा का कवि, अकिंचन
भाव-सुमनों को सजाता
पीर जग भर की समेटे
एक नई दुनिया बनाता
यशाकांक्षी साधनारत, मान बिन न रह सकूँगा
अब न मैं यूँ जी सकूँगा। *(ऋतुवसंती, पृ. 50)*

समकालीन हिन्दी कविता में परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति विभिन्न प्रकार के नकारात्मक तेवर दिखाई देते हैं। अनेक प्रकार के प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से कवियों ने नष्टप्राय परम्पराओं के बोझ को उतार फेंकने के लिए संकल्पबद्ध दिखाई दे रहे हैं। इन पुरानी घिसी-पिटी परम्पराओं के प्रति कवियों में आक्रोश है

और वे हर हाल में इनसे छुटकारा पाना चाहते हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताएँ भी टूटती हुई सामाजिक परम्पराओं को व्यक्त करने में सफल रही हैं। आज का व्यक्ति अपने प्रेम-पात्र को पाने के लिए अपने सभी रिश्ते नातों की कुर्बानी देने को तैयार है --

बहनें भाई नहीं चाहती भाई बहनों को न चाहें।
पुत्र पिता को नहीं चाहता संताने तजती माताएँ।।
नारी चाहे मात्र पुरुष को
रिश्ता एक यही युग-युग का,
सृष्टि चाहती है।
जवानी प्यार चाहती है। *(ऋतु., पृ. 26)*

डॉ. गुप्त जी की इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि वर्तमान परिवेश में पारिवारिक रिश्ते टूटते चले जा रहे हैं। नयी पीढ़ी पाश्चात्य सभ्यता का अनुसरण करने लगी है। वे पारिवारिक बंधनों में बँधकर नहीं रहना चाहते हैं। आज का व्यक्ति नितान्त व्यक्तिवादी हो गया है।

समकालीन हिन्दी कविता की भावभूमि अत्यन्त व्यापक है। सामयिक कवि में जहाँ एक ओर सच्चाई को व्यक्त करने की छटपटाहट दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर उसे व्यक्त न कर पाने की विवशता भी दिखाई देती है, परन्तु डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त में वह अदम्य साहस है जिसके बल पर उन्होंने अपने हृदय की बात को स्पष्ट और वज़नदार शब्दों में प्रस्तुत किया है। समकालीन कवियों पर असुरक्षा का बोध तथा पाश्चात्य प्रभाव भी दिखाई देता है। वह उनका भोगा हुआ यथार्थ नहीं वरन् पाश्चात्य कवियों का अनुकरण मात्र है। 'ऋतुबसंती' में असुरक्षा का बोध है, वह सम्पूर्ण भारत के लिए एक ज्वलंत समस्या है। डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त की ऋतुबसंती में जो रोमांस प्रस्तुत हुआ है, वह एकदम निश्छल एवं पवित्र है। आपने नैतिक मूल्यों का पूरा ध्यान रखा है। समकालीन कविता के तमाम सामयिक कवियों ने तो रोमांस के नाम पर घृणित दृश्य तक प्रस्तुत कर दिये हैं लेकिन गुप्त जी इन सबसे कोसों दूर हैं। जहाँ समकालीन कवि आस्थावादी कम अनास्थावादी अधिक दिखायी देते हैं, वहीं गुप्त जी हर विषम से विषम परिस्थिति में भी आस्थावादी प्रतीत होते हैं। डॉ. गुप्त जी अपना अस्तित्व तो बनाए रखना ही चाहते हैं, साथ ही साथ यश के आकांक्षी भी हैं। समकालीन कविता की भाँति टूटती परम्पराओं को व्यक्त करने में आप पूर्णतः सफल रहे हैं। अतः निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी कविता में 'ऋतुवसंती' का विशिष्ट स्थान है।

●●●

–डॉ. सुरजीत सिंह मौर्य

4

समकालीन हिन्दी कविता और 'आत्ममंथन'

समकालीन हिन्दी कविता सन् 1960 के बाद विविध कविता आन्दोलनों के संघर्ष को झेलते हुए अपनी विजय पताका फहराते हुए काव्य-जगत् में स्वयं को प्रतिस्थापित करने में सफल रही है। समकालीन कवियों ने आम जन-जीवन की विभिन्न समस्याओं को कविता के कैनवास पर इतनी संजीदगी से व्यक्त किया है जिससे प्रतीत होता है कि हम कविता नहीं पढ़ रहे हैं, बल्कि समाज से सीधा साक्षात्कार कर रहे हों। कविता में प्रदर्शित समस्या केवल समाज की ही नहीं, वह हमारी भी समस्या है। शचीन्द्र भटनागर ने स्पष्ट कहा है, "साहित्यकार का दायित्व है कि वह ऐसी रचनाओं का सृजन करें जिसमें लोककल्याण की प्रेरणा मिल सके और आदर्श समाज की स्थापना हो सके।" आदर्श समाज की स्थापना के लिए आदर्श साहित्य होना अनिवार्य शर्त है जबसे मंचीय कविता को बढ़ावा मिला है, तब से लगातार स्तरीय कविता का पतन हुआ है। आज कविता के नाम पर जो चुटकुले, फूहड़पन, तुकान्तक छन्द तथा हास्य परोसा जा रहा है, उसमें श्लीलता तथा शिष्टता का अभाव है और ऐसे मंचीय कवि श्रोताओं की डिमाण्ड के हिसाब से काव्य पाठ करके खूब सम्मान प्राप्त कर रहे हैं। आज स्थिति यह है कि, "चुटकुलेबाज मंचों पर छा रहे हैं, अभिनन्दन करा रहे हैं, पुरस्कार पा रहे हैं और साहित्य के राणाप्रताप आज भी घास की रोटियाँ खा रहे हैं।" आज अध्यात्म, दर्शन तथा गहन चिन्तन से ओत-प्रोत कविताएँ लिखने वाले कवियों के प्रति पाठक उदासीन दिखाई दे रहा है। वह इन कविताओं को पढ़कर अर्थ की गम्भीरता को खोजकर उसमें अभिव्यक्त समाज के दुःख-दर्द को सुनहर आह! आह! करने वाला नहीं बल्कि फूहड़पन से भरपूर और अश्लील हास्य को सुनकर वाह! वाह! करने वाला है, ऐसी विषम स्थिति में स्तरीय काव्य रचनाकारों के सामने दो प्रमुख समस्याएँ देखने को मिलती हैं एक तो सही पाठक वर्ग की तलाश, दूसरे कवि की अपनी अस्तित्व रक्षा।

समकालीन कवियों में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक ऐसा चिरपरिचित नाम है जो उच्चस्तरीय काव्य लेखन के लिए जाना जाता है। आपने अपनी उत्कृष्ट रचनाधर्मिता एवं सृजनशीलता के बल पर इतने कम समय में समकालीन कवियों में जो स्थान

प्राप्त किया है वह किसी कवि के लिए सहज नहीं है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने 'मन-पाँखी', 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'गीत श्री', 'ऋतुबसंती', 'आत्ममंथन' तथा 'लोकतांत्रिक भारत में' जैसी काव्य कृतियों का प्रणयन कर धमाकेदार उपस्थिति दर्ज करायी है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की इन महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों में 'आत्ममंथन' एक चर्चित काव्य कृति है जिसमें आपने न केवल काव्य क्षेत्र की व्यापकता, आशा-निराशा, आस्था-विश्वास, संत्रास, मानवीय अवमूल्यन, संवेदनहीनता, अवसरवादिता जैसे विविध पहलुओं को प्रस्तुत किया है, बल्कि सामाजिक विघटन, जनसंख्या वृद्धि, आर्थिक संकट, भ्रष्टाचार, लोकतंत्र की असफलता जैसी विकराल समस्याओं को भी बड़ी ही सच्चाई के साथ उद्घाटित किया है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त काव्य धरातल को अत्यन्त विशद् एवं व्यापक मानते हैं। वह आम आदमी के आचार-विचार क्रिया-कलाप, हर्ष-विषाद, प्रेम-घृणा, उत्थान-पतन से युक्त समग्र जनजीवन को काव्य का विषय बनाने के पक्षधर हैं, पाठक उसे किस रूप में ग्रहण करता है, यह उसकी देखने की शक्ति पर निर्भर करता है, क्योंकि "रूप तो देखने वालों की आँखों में है वैसे वह कहीं नहीं है। अध्यापक के लिए जो लड़की निकम्मी है, प्रेमी के लिए अप्सरा है।" डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताओं में यह अवधारणा अभिव्यक्त हुई है --

सब कुछ है दुनिया में
कविता में
जो चाहो-पढ़ो
फूलों को देखो
सूँघ लो सुरभि
अथवा
दुर्गन्ध नाली की
.........होगी दृष्टि जो तुम्हारी।

(देखोगे वही होगी जो दृष्टि, पृ. 71)

भारत सरकार की नयी आर्थिक नीतियों के चलते देश की तबाही, गरीबों की बदहाली के मंजर साफ देखे जा सकते हैं, क्योंकि "भारत जैसे बड़े गरीब और विषमता वाले देश में मुक्त बाजार का साफ मतलब है कि जिसके पास खरीदने के लिए इफरात पैसा है वे सारे मौज-मजे, सारी सुख सुविधा उसी के लिए हैं। जिसके पास कुछ शक्ति नहीं इस ढाँचे में उसके लिए कोई जगह नहीं है।" डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताएँ इस भयंकर तबाही में फँसे आम आदमी की जिन्दगी की कहानी हैं। जब उसकी पीड़ा असहनीय हो जाती है तो वह गरीबी और भुखमरी से तंग आकर खुदकुशी करने तक के लिए विवश हो जाता है --

तुमने सब कुछ दिया
तो क्यों नहीं दे देते एक छुरी--
आँते निकाल बाहर फेंक दूँ
आमाशय उधेड़ दूँ

अथवा
गला ही काट लूँ
सुला दूँ भूख-प्यास को/गहरी नींद

(आत्ममंथन, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी, पृ. 7)

आम आदमी की इस दुर्दशा तथा पूँजीपतियों के ऐशोआराम की नुमाइश को देखकर समकालीन कवियों का ईश्वर के प्रति जो विश्वास था वह टूट जाता है, क्योंकि उसका विचार है कि यदि ईश्वर अस्तित्व में है तो फिर इस अन्याय को मूकदर्शक बनकर क्यों देख रहा है? वह अन्याय का प्रतिकार क्यों नहीं करता है? बावजूद इसके डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त को विश्वास है कि ईश्वर इन बेबस, गरीब, लाचार एवं असहाय लोगों की आवाज को एक न एक दिन अवश्य सुनेगा --

लौट आओ
धैर्य रखो
अपने प्रेम विश्वास और श्रद्धा पर
निश्चय ही यदि ईश्वर मर नहीं गया
तो
आएगा यहीं तेरे पास
रखो विश्वास

(आत्ममंथन, आस्था-विश्वास, पृ. 26)

महँगाई की मार से परेशान आम आदमी के आपसी सम्बन्धों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। यह परिवर्तन डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कविता में आसानी से देखा जा सकता है। आज का आदमी घर-गृहस्थी चलाने वाली सुशील, शान्त स्वभाव एवं गम्भीर विचारों वाली कुशल गृहिणी को कम तवज्जो दे रहा है, वह तो तेज तर्रार, उच्च शिक्षा सम्पन्न ऐसी स्त्री का अभिलाषी है जो नौकरी करके धनार्जन करने की क्षमता रखती हो। आदमी की इसी महत्त्वाकांक्षा के कारण उसके मान-सम्मान तथा प्रतिष्ठा में निश्चित रूप से गिरावट आयी है। डॉ. गुप्त की कविताएँ इसका खुला प्रमाण हैं --

एक मुर्गी
हर महीने अंडे दे
सोने के

और पति को
चैन से सोने न दे।

(आत्ममंथन, कमाऊ पत्नी, पृ. 37)

आदमी के इस बदलते दृष्टिकोण ने निश्चित तौर पर आपसी सम्बन्धों में दूरियाँ बनाने का काम किया है, एक कुशल गृहिणी को कम तथा एक कमाऊ पत्नी को अधिक महत्त्व देने का दुष्परिणाम यह हुआ कि उनकी अपनी जिन्दगियाँ समानान्तर पटरियों की भाँति हो गयीं, जो कभी आपस में मिल नहीं पातीं। आज यह कथन सत्य प्रतीत होता है, पति-पत्नी नमक पानी नहीं कि इस तरह घुल मिल जायें कि न पानी पानी रहे न नमक नमक।" धन की इस महत्त्वाकांक्षावादी नीति के कारण परिवार के सदस्यों के बीच आत्मीयता घटती जा रही है, और अहं भाव बढ़ता जा रहा है, जो पारिवारिक विघटन के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है।

आज भारतीय समाज अपने को नितान्त पिछड़ा मानता है, और आगे बढ़ने की होड़ में वह अपने इतिहास और संस्कृति को भूलता जा रहा है, और पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करता जा रहा है। आधुनिक दिखने की इस दौड़ में भारतीय जीवन मूल्य निरन्तर विघटित होते जा रहे हैं, जिनकी खुली अभिव्यक्ति डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताओं में हुई है --

प्रौढ़ा महिलाएँ बनी मेनका
मोहती कुदृष्टि डाल युवकों पर
बहनें बनी घूमती अभिसारिका
मत दोषी ठहराओ युवकों को।

(आत्ममंथन, अवमूल्यन, पृ. 47)

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त भारत में दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हुई महँगाई एवं जनसंख्या को आगामी बड़े संकट के रूप में देखते हैं, परन्तु वर्तमान सरकार द्वारा इन्हें रोकने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए। इसका दुष्परिणाम हुआ कि धनी वर्ग मालामाल होता जा रहा है, तो गरीब वर्ग कंगाल। साथ ही साथ जनसंख्या विस्फोट होने के खतरे से भी भारत जूझ रहा है। डॉ. गुप्त इन समस्याओं के प्रति अधिक गम्भीर और चिन्तित हैं --

ओह!
भारत की दुर्दशा
बढ़ती महँगाई और
बढ़ती जनसंख्या
काश!
पहली प्रधानमंत्री इन्दिरा हुई होती

(नेहरू का बाप इन्दिरा हुई होती)
लूप लगा चुका होता कभी का
सभी के
या फिर
नसबन्दी हो चुकती सभी की
और बढ़ती जनसंख्या
समस्या न बनती।"

(आत्ममंथन, संतति निग्रह, पृ. 49)

आज समकालीन कवि असुरक्षा बोध एवं अस्तित्व के संकट से गुजर रहा है। सवैधानिक नियम किताबी सामग्री मात्र बनकर रह गये हैं। विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का जो प्रावधान है उस पर अंकुश लगा दिया जाता है क्योंकि लोकतंत्र की शक्ति गलत लोगों के हाथों में पहुँच चुकी है, ये राजनेता सच्चाई की वकालत करने वाले व्यक्ति को या तो प्रतिबन्धित कर देते हैं या फिर जेल में ठूँस देते हैं। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कविताओं में इसी अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति हुई है --

पर
पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है
शैतान आयतें निषिद्ध हैं
तस्लीमा नसरीन निष्कासित हैं
नागरवाला जैसा देशभक्त एक्सीडेंट में मारा जाता है
हर्षद मेहता को जेल में डाला जाता है
ठोक पीट कर ठीक कर लिया जाता है
ईमानदार अधिकारियों को
अथवा ठिकाने लगा दिया जाता है।

(आत्ममंथन, लोकतंत्र में, पृ. 64)

निष्कर्षतः डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक श्रेष्ठ समकालीन कवि हैं, जिनकी चर्चित काव्यकृति 'आत्ममंथन' में समकालीन जनजीवन की समस्याओं को बड़ी ही ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त किया गया है। डॉ. गुप्त ने समाज की समस्याओं मात्र को उठाकर ही अपने उद्देश्य की इतिश्री नहीं मान ली है, बल्कि उनका समाधान खोजने का भी महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है। इस दृष्टि से डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक उच्च कोटि के समकालीन कवि ठहरते हैं, तो 'आत्ममंथन' एक उच्चस्तरीय काव्यकृति।

●●●

—डॉ. सुरजीत सिंह मौर्य

5

लोकतांत्रिक भारत में : युग जीवन की आख्या

बहुमुखी प्रतिभा के सारस्वत मनीषी, अप्रतिम जिजीविषामय व्यक्तित्व के धनी, प्रज्ञापुरुष डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक महान चिंतक, श्रेष्ठ कवि-लेखक, चर्चित समालोचक तथा सुविख्यात् शोधनिर्देशक हैं। आपने अपने समीक्षात्मक ग्रन्थों एवं शोध-कृतियों का प्रणयन कर न केवल समीक्षा-जगत् में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है, वरन् 'मन-पाँखी', 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'गीत-श्री', 'ऋतुबसंती', 'आत्ममंथन' तथा 'लोकतांत्रिक भारत में' जैसी महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों का सृजन कर समकालीन हिन्दी काव्य-जगत् में स्वयं को उच्चासन पर स्थापित किया है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने इन श्रेष्ठ काव्य-कृतियों का सृजन कर न केवल समकालीन हिन्दी साहित्य को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है वरन् समकालीन साहित्य के स्वरूप को और अधिक विशद्ता एवं व्यापकता प्रदान की है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी ने अपनी कविताओं में सामाजिक ह्रास, मानवीय अवमूल्यन, प्रेम, प्रकृति, मार्क्सवादी जीवन दृष्टि, उपेक्षिता नारी, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विघटन, आरक्षण जैसे विविध पहलुओं के साथ-साथ भ्रष्टाचार, आतंकवाद, सतीप्रथा, भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, यौन-शोषण, आर्थिक संकट जैसी भयानक समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है। डॉ. गुप्त जी ने समस्याओं का समाधान भी तलाशने का प्रयास किया है। आपने भारतीय लोकतंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को इन समस्याओं का जनक माना है। लोकतंत्र की असफलता को देखते हुए आप लोकतंत्र की प्रासंगिकता पर ही प्रश्नचिह्न लगा देते हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की इन महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों में 'लोकतांत्रिक भारत में' एक चर्चित काव्य-कृति है, जिसमें आपने प्रेम, प्रकृति, एकाकीपन, नारी दुर्दशा, बेरोजगारी, मूल्यों के विघटन, अंधविश्वास, आतंकवाद, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं, राजनैतिक भ्रष्टाचार जैसे विविध पक्षों को बड़ी ही संजीदगी से उद्घाटित किया है।

"प्रेम सृष्टि की चिरन्तन आदि शक्ति है।" प्रेम की उपेक्षा जीवन की उपेक्षा है।

प्रेम के बिना जीवन कहाँ? प्रेम जीवन का आधार है या यूँ समझिए कि सृष्टि का आधार ही प्रेम है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी प्रेम के लिए त्याग, समर्पण, तथा बलिदान अनिवार्य शर्त मानते हैं, यदि व्यक्ति के हृदय में इन गुणों का वास नहीं है तो वह प्रेम करने में सफल नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रेम एक पूजा है जो निष्काम भाव से की जाती है -- "त्याग, बलिदान, समर्पण और पूजा है प्यार।" (लोकतांत्रिक.....) पृ. 19

आधुनिक युग मशीनी युग है। आज व्यक्ति के पास इतना समय नहीं है कि वह पलभर भी बैठकर अपने प्रिय से उसका सुख-दुःख पूछ सके। महँगाई के इस दौर में आदमी आपाधापी और भागदौड़ भरी जिन्दगी जी रहा है। आज का आदमी मशीन बनकर रह गया है, जिस कारण सामाजिकता का क्षरण होने लगा है और व्यक्ति स्वार्थी एवं स्वकेन्द्रित होता जा रहा है। ग्रामीणांचल में तो कुछ सामाजिकता एवं प्रेम-भाव बचा है, परन्तु महानगरीय सभ्यता में तो सामाजिक मूल्यों का पूरी तरह विघटन हो चुका है। शशि शेखर जी कहते हैं कि "इंसान सामाजिक प्राणी है, लेकिन आधुनिक समाज में उसकी असामाजिकता बढ़ गयी है। दूसरों का ख्याल रखना उसके दुःख-सुख में शिरकत करना कम होता जा रहा है। महानगरों में तमाम किस्म की असुरक्षा झेलने के लिए अक्सर इंसान अकेला होता है। परिवार, बिरादरी, समाज की सुरक्षा का ढाँचा यहाँ कमजोर होता जा रहा है और उन मानसिक बीमारियों की समझ समाज में नहीं है, जो इस असुरक्षा और अकेलेपन से पनपती है। एक अजीब बात है कि शहरों की आबादी जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, आदमी का अकेलापन भी बढ़ता जाता है।" डॉ. गुप्त एक भावुक एवं संवेदनशील कवि हैं। आप अपने इष्ट मित्रों के साथ अपना समय गुजार कर उसे यादगार बनाना चाहते हैं परन्तु उनकी प्राणप्रिया तो उनसे दूर है, उसका अभाव डॉ. गुप्त को अखरता रहता है। वह बार-बार अपनी प्रियतमा को याद करते हैं, और वे जितना याद करते हैं उनका अकेलापन और गहराता जाता है। इस अकेलेपन की पीड़ा इतनी कष्टप्रद हो जाती है, कि असहनीय होने लगती है --

एकान्त बहुत सालता है
बिना मौत मारता है -- एकाकीपन
जब भी नहीं मिलता साथ, तेरा
बहुत दुःख देता है -- एकान्त।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 16)

स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात् भारतवर्ष को सुचारू रूप से विकास के मार्ग पर प्रशस्त करने के उद्देश्य से यहाँ लोकतंत्र की व्यवस्था लागू की गयी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत शक्तियों का विकेन्द्रीकरण हुआ। शासन को चलाने वाले शासक जनता के माध्यम से चुने जाने लगे। संविधान बनाकर भारतीय जनता के लिए समानता का

भाव रखते हुए उन्हें स्वतंत्रताएँ दी गईं --

लोकतांत्रिक भारत में
है छूट सभी को मिली हुई
सब कुछ करने की
संविधान देता आजादी
मनमानी सबको करने की
सभी हैं स्वतंत्र
कि चाहें जैसे रहें यहाँ पर
मन चाहें सो, खा सकते हैं
गालियाँ भी दे सकते हैं,
भारत माँ को। *(लोक, पृ. 16)*

भारतीय लोकतंत्र की यह बहुत विडम्बना है कि जिस लोकतंत्र ने सभी को बराबरी का दर्जा दिया जिस लोकतंत्र ने सभी को विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी, आज उसी लोकतंत्र को राजनेता हकीकत बयान करने से रोकता है।

लोकतंत्र की व्यवस्था जिस विकास के उद्देश्य से लागू की गयी थी वह अपने उद्देश्य से भटक गयी है। क्योंकि लोकतंत्र की शक्तियाँ ऐसे व्यक्तियों के हाथों में जा चुकी हैं, जो स्वयं का विकास चाहते हैं, समाज का नहीं। यही कारण है कि समाज के हित की वकालत करने वाले व्यक्ति पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है। आज जनसेवक, जनसेवक नहीं रह गये हैं, अब वे तानाशाह बन चुके हैं। ये तानाशाही शासक भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए हैं। ये भ्रष्टाचारी शासक जमकर अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रहे हैं और भोली-भाली जनता इनके चंगुल में फँसी हुई है। इन शासकों की गलत नीतियों के कारण ही अमीरी-गरीबी की खाई लगातार बढ़ती जा रही है। स्थिति इतनी बिगड़ चुकी है कि हम लोग स्वतंत्र होकर भी आज स्वतंत्र नहीं हैं और नाना प्रकार के बंधनों में बँधे हुए हैं। यही कारण है कि समाज में समता का अभाव है, "समता उसी समाज में होती है, जो स्वतंत्र हो और समाज वही स्वतंत्र होता है जिसका आम व्यक्ति स्वतंत्र हो और अपने स्वातंत्र्य के उपयोग के लिए ही सामाजिकता का वरण करता हो।" (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी)

आज ईमानदार एवं सत्यवादी व्यक्ति परतंत्र है जबकि गुण्डे मवाली, बलात्कारी, भ्रष्टाचारी जैसे अराजक तत्त्व खुलेआम घूम रहे हैं। इन अराजक तत्त्वों की करतूतों के कारण समाज भय, आशंका, दहशत से आतंकित हो रहा है। इस घुटन भरी जिन्दगी को हम कब तक जीते रहेंगे? डॉ. गुप्त की कविताओं में समाज के इस दर्द को आसानी से महसूस किया जा सकता है --

भारत की देव संतानें
आधुनिक व्यवस्था में
दलित शोषित और निरक्षर हैं।
महिलाएँ जीती हैं, अतीत में
मयनाएँ जलाई जाती हैं जीवित
हो रही हैं राख सतीत्व के नाम पर
जन्म लेने से पूर्व अभिशप्त वरण करने को मरण
भ्रूण हत्या के रूप में
क्लीनिक बना दिए गये कत्लगाह
सद्यः विवाहिताएँ कर रही आत्महत्या
दहेज की वेदी पर।
यौनशोषण के अजब-अजब रूप-
आरक्षी दल बने संगठित गिरोह
असुरक्षित जनजीवन उनकी अभिरक्षा में
बेरोजगारी
बंधुआ मजदूरी
कुसुमित शिशुओं का बन जाना बाल श्रमिक
लगता है --
हमारा गणतंत्र एक भग्न प्राय महल
जगमगा रहा कूढ़े के ढेर पर।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 50)

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का विचार है कि हमारा देश भ्रष्टाचार के पंजों में बुरी तरह जकड़ता जा रहा है। नेता अधिकारी, कर्मचारी सभी भ्रष्टाचार में संलिप्त हैं। यही भ्रष्ट लोग 'आराम हराम है' का नारा लगाकर हराम की खाते हैं। हर विभाग में भ्रष्टाचार इस तरह काबिज हो चुका है कि ईमानदार कर्मचारी का काम कर पाना मुश्किल हो गया है और नेतागिरी, चमचागिरी करने वाले अयोग्य होने पर भी पुरस्कारों से सम्मानित किये जा रहे हैं। डॉ. गुप्त इन भ्रष्टाचारियों की पोल खोलने में कतई संकोच नहीं करते हैं। अपने मुखर शब्दों में वे लिखते हैं --

यहाँ, पुरस्कृत होते हैं वे --
जो अध्यापक हैं - पर पढ़ाते नहीं
हो जाते हैं रीडर - पर पढ़ना छोड़ देते हैं
वर्षों तक धंधों में लगे रहते हैं -
करते हैं कोचिंग, पत्रकारिता या नेतागिरी
करते हैं नवनीत-लेपन, चमचेबाजी, गिरोहबाजी

और पाते हैं –

पुरस्कार, प्रशंसापत्र, प्रतिष्ठा
हमारे देश में सम्मानित हैं केवल ये
केवल ये

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 29)

भारत की सरकारों की गलत आर्थिक नीतियों के कारण अमीर आदमी और अमीर होता जा रहा है, और गरीब आदमी और गरीब। महँगाई लगातार बढ़ती जा रही है। आम आदमी का जिन्दगी बसर कर पाना मुश्किल होता जा रहा है। भारतीय राजनीति में नई आर्थिक नीति के नाम पर जो कुछ भी हो रहा है, वह एक तरह से नई आर्थिक गुलामी का ही संकेत हैं। डॉ. राम पाण्डे के अनुसार, "हम एक बार फिर गुलामी की तरफ बढ़ रहे हैं। गुलामी का पिछला अनुभव यह था कि पहले राजनीतिक गुलामी आती है फिर आर्थिक गुलामी। इस बार क्रम उल्टा होगा। पहले आर्थिक गुलामी आयेगी, फिर राजनीतिक गुलामी।" डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त आने वाली आर्थिक गुलामी के प्रति चिन्तित दिखाई देते हैं। उनकी कविताओं में आम आदमी को आर्थिक संकट से जूझते हुए देखा जा सकता है। इस आर्थिक विपन्नता ने बच्चों से उनका बचपन छीन लिया है और वे मासूम बच्चे इसी उधेड़बुन में लगे रहते हैं कि किस प्रकार दो वक्त की रोटी का जुगाड़ किया जाये --

"भुट्टे ले लो, भुट्टे'
साइकिल से उतरा, देखा --
दस-बारह साल की
प्रायः अर्द्धनग्न लड़की
भुट्टे भून रही है,
मुँह लाल हो रहा लपटों से
'भुट्टे ले लो, भुट्टे'
भुट्टे भूनती लड़की, आवाज़ लगा रही थी।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 91)

हमारा देश देवताओं की कर्मस्थली रहा है। भारतीय ग्रन्थों में वर्णित है, "यत्र नार्यस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवता।" अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। यह सूक्त वाक्य सैद्धान्तिक रूप से अच्छा लगता है परन्तु व्यावहारिक रूप से इसकी चमक गायब है। व्यावहारिक रूप से नारी पहले भी शोषित थी और आज भी शोषित है। नारी सशक्तिकरण के लिए तमाम संस्थाएँ बनीं, आन्दोलन चलाए गए, परन्तु सभी के सभी खोखले साबित हुए। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने 'लोकतांत्रिक भारत में' इसी अलोकतांत्रिक व्यवस्था का पर्दाफाश किया है

कि नारी आज भी उपेक्षित, पीड़ित, शोषित तथा बंदिशों की शिकार है --

बालिका,
युग-युग उपेक्षिता
मार-पीट, काम करे घर भर का
और ऊपर से सीख --
चले सिर झुकाकर
बने स्त्री, यानी देह
यानी कोख कि होना है रजस्वला।
कशा प्रतिबंधों की --
लाँघें न देहरी कभी घर की लज्जा की
बनी रहे कठपुतली, शील-मर्यादा की
जन्मी पली इस घर में, है लेकिन पर घर की
चले झुककर,
नहीं करे प्रतिशोध अनाचार का भी
होकर गृहस्वामिनी करती काम दासी-सा।

(लोक, पृ. 77)

आजकल अखबारों में आये दिन निकलता रहता है कि नारी सशक्तीकरण हो रहा है, नारी उत्थान किया जा रहा है, नारी प्रगति के पथ पर अग्रसर है, जैसे तमाम नारे लगाए जाते हैं, परन्तु सवाल इस बात का है कि क्या वास्तव में नारी-उत्थान हुआ है? क्या उसकी स्थिति में कुछ सुधार आया है? क्या उसका शोषण नहीं किया जा रहा है? तमाम सवाल डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के हृदय को झकझोर देते हैं। आपका विचार है कि केवल नारे लगाने भर से नारी-उत्थान नहीं हो जाता है क्योंकि नारी आज भी पीड़ित और शोषण का शिकार है –

वह चिल्ला रही थी
चीख रही थी और तड़प रही थी
मार डाला
जलाकर मार डाला पति ने
हत्यारा है वह। *(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 35)*

आतंकवाद आज के युग की ज्वलन्त समस्या है। इन आतंकवादियों ने भारतवर्ष को अपना निशाना बनाया है। चूँकि साहित्यकार युग बोध से प्रभावित होता है तो भला इस ज्वलंत मुद्दे से कैसे अप्रभावित रह सकता है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी ने भी अपनी कविताओं के माध्यम से इस विकराल समस्या की ओर पाठक वर्ग का ध्यान आकर्षित किया है। आपका विचार है कि इस समस्या को जन्म देने

वाले अधिकांश मुसलमान लोग ही हैं क्योंकि ऐसी हरकतें करने वाले मुसलमान आतंकवादी ही निकलते हैं। इन मुसलमान आतंकवादियों ने देश और दुनिया का सर्वनाश कर रखा है। ये आतंकवादी लोग न जीते हैं और चैन से जीने देते हैं --

बहाते हैं खून निरपराधों का
लगाते हैं आग घरों-गलियों में
जलाते हैं निर्दोषों को जिन्दा ही
नमाजी ये उपज मस्जिदों की
जीने में कम, मारने में विश्वास रखते हैं अधिक
ये जहाँ भी हैं, दुनिया में, यही करते हैं
न जीते हैं, न जीने देते हैं।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 85)

आज भारत की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है क्योंकि मुस्लिम आतंकवाद से देश थर्रा रहा है। आज हिन्दू और मुसलमान धुर विरोधी शक्तियाँ बन चुके हैं। मुसलमान अल्पसंख्यक कहलाए जाते हैं जबकि बहुसंख्यक होते जा रहे हैं। बार-बार समझौता करने के बाद भी एक-दूसरे की बात को मानने को बिल्कुल भी तैयार नहीं है --

मन का रहा न आचरण, जीवन बारह वाट।
हिन्दू-मुस्लिम हो गये, नदिया के दो पाट।।

- डॉ. महेश दिवाकर

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का विचार है कि ये मुसलमान आतंकवादी लगातार देश विरोधी गतिविधियों को अंजाम देते जा रहे हैं। इनसे हिन्दुस्तान और हिन्दुत्व को बहुत बड़ा खतरा है क्योंकि इन आतंकवादियों ने उन्हीं स्थानों पर विशेष रूप से आतंकवादी घटनाओं को अंजाम दिया जहाँ हिन्दू बहुल क्षेत्र थे। इसीलिए डॉ. गुप्त का मन आशंका से पीड़ित है। आप जीवन की रक्षा जीवन के लिए अनिवार्य मानते हैं। आपका विचार है कि जब तक हिन्दुत्व सुरक्षित है, तभी तक हम जीवित हैं और जब तक हम जीवित हैं, तब तक हिन्दुत्व सुरक्षित है। आपकी कविताओं में आपके देश के प्रति दायित्व-बोध का निर्वहन मुखरित देखा जा सकता है --

मुझे प्यार है/अपने से
पत्नी और सन्तानों से /सम्बन्धियों-पड़ोसियों से
पर सबसे पहले हिन्दुत्व से
और सर्वोपरि हिन्दुस्तान से
हम तभी तक जीवित हैं/सुरक्षित हैं
जब तक हिन्दू हैं
हिन्दू न रहने से/न रहेगा देश

न हिन्दुस्तान
बदल जाएँगे हम/हमारी संस्कृति
आस्था, अस्मिता, ईमान
देश को नाम दिये जाएँगे--
पाकिस्तान/अफगानिस्तान/वजीरिस्तान
मंगोलिस्तान
अथवा
कोई भी लैण्ड या स्तान।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 72)

डॉ. सुरेशंचन्द्र गुप्त का विचार है कि इन तमाम समस्याओं को उत्पन्न करने वाला भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार के मूल से ही ये तमाम समस्याएँ उपजी हैं। यदि भ्रष्टाचार पर काबू पा लिया जाये तो निश्चित रूप से मानव सुखमय जीवन बिता सकता है और देश में अमन चैन स्थापित किया जा सकता है। पर क्या भ्रष्टाचार पर काबू पाना इतना आसान है? हाँ आसान तो नहीं है पर असम्भव भी नहीं है। इसके लिए हमें स्वयं भ्रष्टाचार से दूर रहने का संकल्प लेना होगा और अपने दायित्व-बोध को जानना होगा तथा ईमानदारी से अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन करना होगा --

क्यों न लेते संकल्प --
कि गलत काम न करेंगे, न करने देंगे
झूठ, बेईमानी और भ्रष्टाचार से घिरे रहने पर भी
भ्रष्टाचार न ही करेंगे, न सहेंगे
अधीनस्थों को सताएंगे नहीं
नहीं सहेंगे शोषण रंचक भी
नहीं फँसने देंगे युवकों को चक्र में
शोषण-बेईमानी के
करेंगे काम-कायदे-कानून से
नहीं लेंगे रिश्वत न देंगे
निर्वहन दायित्वों का शुचिता से करेंगे।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 21)

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक संवेदनशील कवि हैं, जिन्होंने वर्तमान युग-बोध को अपनी कविताओं का विषय बनाया है। आपने न केवल सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक समस्याओं को अपनी कविताओं में उठाया है, वरन् नारी-शोषण, दहेज-हत्या, भ्रूण हत्या, बेरोजगारी, बँधुआ मजदूरी, बाल मजदूरी,

आतंकवाद जैसी समस्याओं को काव्य का विषय बनाकर समसामयिक परिदृश्य उपस्थित कर दिया है। मानवीय मूल्यों का विघटन, मशीनीयुग में व्यक्ति का अकेलापन, लोकतंत्र की असफलता तथा ईमानदार एवं सत्यवादी व्यक्ति की विचार अभिव्यक्ति पर लगे प्रतिबंध तथा लगातार होते जा रहे वनों के कटान के प्रति डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी ने गहरा दुःख व्यक्त किया है। आपने अपनी कविताओं में मात्र समस्याओं को उठाकर ही अपने उद्देश्य की इतिश्री नहीं मान ली बल्कि इनका समाधान खोजने का भी सफल प्रयास किया है। निःसंदेह डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक उच्च कोटि के समकालीन कवि हैं और 'लोकतांत्रिक भारत में' एक उच्च स्तरीय समकालीन काव्य कृति।

●●●

—डॉ. सुरजीत सिंह मौर्य



बँटवारे में भूल न जाना
तू अपने हिस्से में आना

6

देवी, माँ, सहचरी, प्राण

(नारायणी नमोऽस्तुते का काव्यरूप)

शास्त्रों में नारी की महत्ता का वर्णन विभिन्न रूपों में किया गया है। उसे शक्तिस्वरूपा, प्रेममयी, ममतामयी आदि रूपों में सम्मान दिया जाता है। नारी का योगदान जीवन के आरम्भ से लेकर मृत्युपर्यन्त रहता है। जन्मदात्री माँ की भूमिका में नारी बालक को कुछ ऐसे संस्कार प्रदान करती है जो जीवनपर्यन्त उसका मार्गदर्शन करते हैं। पत्नी के रूप में नारी कदाचित् दूसरी माता का रूप ही निभाने आती है। वास्तव में नारी स्वयं सृष्टिविधायिनी शक्ति है। ऋग्वेद् में नारी को सृष्टिकर्ता ब्रह्मा कहा गया है – 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' (ऋग्वेद 8/33/19)। मनुस्मृति में कहा गया है – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'। हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी कालखण्डों में नारीवादी कविताओं को महत्त्व दिया गया है। आधुनिक युग में तो स्त्री-विमर्श नामक एक विशिष्ट वाद ही बन चुका है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कृति 'देवी, माँ, सहचरी, प्राण' इसी विमर्श की प्रखर वाहक कविताओं का संग्रह है। प्रस्तुत संग्रह कुल 50 कविताओं (अतुकान्त व तुकान्त) का संग्रह हैं। ये कविताएँ नारी को विभिन्न रूपों में प्रतिष्ठित करती हैं। पत्नी, माँ, पुत्री, प्रेयसी, सहचरी जैसे रूपों में झाँकने की एक काव्यमयी कोशिश प्रस्तुत पुस्तक में की गई है। पहली कविता 'प्यार का पाथेय' में ही मार्मिक अभिव्यक्ति दर्शनीय है –

तुम मेरा सर्वस्व और तुम्हारा प्यार
मेरे जीवन का ध्येय, जीवन-पाथेय। (प्यार का पाथेय, पृ.1)

इसी विषय पर लिखी गई कविता है 'नारी की पूर्णता'। कवि नारी के विभिन्न रूपों यथा माँ, कामिनी, मित्र, बहन, सहचरी आदि कवि को पत्नी का रूप ही सर्वांगपूर्ण व सार्थक है –

मुझे तो एक ही रूप लगता है पूर्ण-पत्नी का
माँ जैसा स्नेह देकर खिलाती-पिलाती है
चूड़ियों की झनकार से रिझाती है

सभी कुछ झेलती है पति साथ
मरते दम साथ निभाती है
माँ बनती वंश को चलाती है
इसीलिए पत्नीत्व ही पूर्णता है। *(नारी की पूर्णता, पृ. 13)*

'प्रेमिका बनाम पत्नी' में कवि अर्थान्तर से इंगित कर कहता है प्रेमिका व पत्नी में मूलभूत अंतर है –

प्रेमिका होती है करने को प्यार
और पत्नी बनाती घर गृहस्थी
सार्थकता देती है जीवन को,
घर को, समाज को। *(प्रेमिका बनाम पत्नी, पृ. 21)*

कवि नारी जीवन की सार्थकता को 'माता की भूमिका' के निर्वहन में ही मानता है। उसकी दृष्टि में नारीत्व की सार्थकता तभी है जब वह मातृत्व की गरिमा से मंडित होती है –

नारी जीवन की सार्थकता है – मातृत्व में
विधाता ने सौंपा है पहला दायित्व
मातृत्व ही नारीत्व। *(नारी की सार्थकता, पृ. 22)*

प्रेम मानव जीवन की पवित्रतम अनुभूति है। यह रागात्मक चेतना कामना, अनुरक्ति, प्रीति, अनुराग आदि विभिन्न रूपों में महसूस की जा सकती है। मम् की ममेतर के प्रति बलिदान व त्याग की भावना ही प्रेम की सच्ची कसौटी है। नर व नारी के सांसारिक कर्त्तव्यों को संचालित करने वाली शक्ति प्रेम ही तो है। प्रेम विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों के रूप में जीवित रहता है परन्तु उसका मुख्य रूप प्रेमिका या पत्नी के रूप में ही विशिष्टता से उजागर होता है। आलोच्य संग्रह में प्रेम के पवित्र भाव से सम्बन्धित अनेक कवितायें प्राप्त होती हैं। इनके केन्द्र में प्रेयसी या पत्नी को रखा गया है। 'प्यार एक ऊर्जा' कविता भी इसी केन्द्रीय भाव की द्योतक है –

प्यार एक ऊर्जा है
नहीं है प्रस्थान, या समापन बिन्दु इसका
जब से मिला मीत, मिली ऊर्जा
गीत मुखर हुए होठों से,
झरते हैं शब्द प्रणय गीत। *(प्यार एक ऊर्जा, पृ. 19)*

'प्रेम और अपवाद' तथा 'प्रेम परिणति' दो ऐसी कविताएँ हैं जो प्रेम का नकारात्मक पक्ष प्रस्तुत करती हैं। यहाँ प्रेम की परिणति भयावह रूप में दर्शायी गयी है –

आर्तनाद करता रहा युवा प्रणयी

संत वैलेंटाइन रो रहे होंगे स्वर्ग में
देख, प्रेम-परिणति यूँ धरती में। (प्रेम परिणति, पृ. 25

एक कविता में नारी का अनुरागिनी रूप भी रेखांकित किया जा सकता है पल-पल विश्राम देती मीठी यादों के पुनः-पुनः आगमन में कवि को प्यार का भा नज़र आता है। आप भी देखिये –

प्रियतम रह-रहकर आते क्यों, यूँ मधुर-मधुर मुस्काते क्यों?
प्रस्तुत हूँ आलिंगन ले लो, हाँ शरद घनों सा भागे क्यों?
लुकने-छिपने का कारण क्या, यह प्यार नहीं तो है फिर क्या?

(प्रणय बोध, पृ. 420

प्रेम विह्वलता के क्षणों में कवि प्रिय का मुख देखकर सुख प्राप्त करना चाहत है। आतुर हृदय अधीरता से प्रियतम को 'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै' वाले भाव से पुकारता है –

प्रेम बीज जो बोया तुमने, वह विटप बना पर सूख रहा
हा! हा! चातक सा तड़प रहा
दे जीवन इसे जिलाओ, आओ प्रियतम आओ। (प्रियतम आओ, पृ. 47

संयोग श्रृंगार का भाव सर्वाधिक पुष्ट व आनंददायक होता है। प्रेम की अतिरेकी अवस्था का वर्णन कवि ने पूरे मन से किया है। संयोग श्रृंगार में पाँच प्रका की रति का वर्णन मिलता है। 'देवी, माँ, सहचरी, प्राण' में कवि ने कान्ता विषयक रति का प्राधान्य रखा है। 'प्रिय मिलन की मधुर वेला' नामक गीत इसी आस्वाद का अनुभव करवाता है। निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये –

पुष्प उन्मीलित अधर से, पवन सर सर सर स्वरों से
वह दिशा नीरव नयन से, कह रही प्रियतम खड़े हैं
आ गयी चिर मधुर बेला, प्रिय मिलन की मधुर बेला।

(मिलन बेला, पृ.49

प्रकृति के उद्दीपक चित्रों की सहायता से प्रस्तुत गीत में श्रृंगार का सुन्दर समन्वय हुआ है। वास्तव में, स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध केवल पति और पत्नी का नहीं अपितु एक गतिशील सम्बन्ध है। इन्हीं सम्बन्धों की निगूढ़ अनुभूतियों को कवि ने अभिव्यक्तियाँ प्रदान की हैं। उल्लेखनीय है कि ये अभिव्यक्तियाँ प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों ही रूपों में शब्दांकित की गई हैं। 'बाज उठी बाँसुरिया' में तो जैसे कवि ने भावोन्मेष के क्षणों को आत्मस्थ-सा ही कर लिया है। यहाँ भावों की तन्मयता तीव्रता, विदग्धता व प्रभविष्णुता दर्शनीय है –

पुलिनों पर ठिठक गई धूप
उरझ गया झँझा का मृदु आँचल

बिखर गया दिनमणि का हास, कुंजों में
बाज उठी बाँसुरिया वन-वन में। *(बाज उठी बाँसुरिया, पृ. 52)*

आचार्य भवभूति ने दाम्पत्य प्रणय को उदात्त कल्पना कहा है। वे दाम्पत्य प्रणय को दुग्ध के समान धवल और गंगाजल के समान पवित्र बतलाते हैं –

स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते।
धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः।।

दाम्पत्य के इसी प्रणय भाव को प्रस्तुत-प्रमाणित करती एक विशिष्ट कविता है 'सृजन प्रक्रिया के दौरान'। संतानोत्पत्ति की प्रक्रिया का अनुभव देखिए –

बन रहा है, बढ़ रहा है, ढल रहा है पिंड में जो
है हमारे प्रणय का परिणाम
प्रीतिकर वह, प्राण है वह
बूँद में भी सिन्धु है जो, ब्रह्म है वह।

(सृजन प्रक्रिया के दौरान, पृ. 33)

दामिनी काण्ड की भयावहता आज भी सबको उद्वेलित कर जाती है। कवि ने उसी व्यथा की अभिव्यक्ति 'दामिनी चली गयी' नामक कविता में की है। कवि दामिनी की वीरता व साहस की प्रशंसा करता है –

शौर्य की प्रतीक वीर, साहस की मूर्ति धीर
डरी नहीं, झुकी नहीं, दानवदल अड़ी रही
मृत्यु से छली गयी, दामिनी चली गयी

(दामिनी चली गई, पृ. 63)

वास्तव में 'देवी, माँ, सहचरी, प्राण, सरस, प्रणयानुभूतियों का एक पुष्पगुच्छ है जिसकी सुरभि दो प्रेमासिक्त हृदयों को महकाती रहती है।

भावाभिव्यंजना और शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह कृति महत्त्वपूर्ण है। छन्दयुक्त और छन्दबद्ध – दोनों प्रकार की कविताओं लयात्मकता विशिष्ट रूप से द्रष्टव्य है। उल्लेखनीय है कि इसका शीर्षक छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की प्रसिद्ध कृति 'पल्लव' की निम्नलिखित कविता से लिया गया है –

तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अन्तर्धान
देवि! माँ! सहचरी! प्राण *(पल्लव, पृ. 66)*

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त भी अपने परिमार्जित सौन्दर्यबोध की सबल दृष्टि से भोगविलास की मूर्ति समझी जाने वाली नारी देह में दिव्यता, ममता, प्रेय, सहचर्य, समर्पण, त्याग जैसी पावन भावनायें खोज लेते हैं। 'देवी, माँ, सहचरी, प्राण' की रचना उन्होंने अपनी जीवनसहचरी श्रीमती इन्दु गुप्त की षष्ठिपूर्ति के पावन अवसर

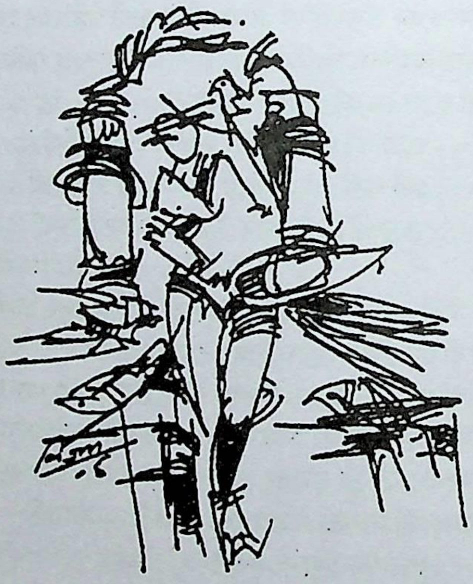
पर की थी। अलौकिक आभा से युक्त प्राणी के रूप में नारी को कवि पुकारकर कहता है -

'देवी, माँ, सहचरी, प्राण'

आलोच्य कृति डॉ. गुप्त जी की नारीभावना की भी द्योतक है। नारी के अन्तः और बाह्य सौन्दर्य को पूर्ण वैभव से व्यंजित करने वाली इस कृति के माध्यम से नारी के असीम रूपात्मक सौन्दर्य और अगाध भावनात्मक माधुर्य को सामने रखकर कवि ने जो चित्र निर्मित किये हैं, वे पाठक के मन को रसाप्लावित तो करते ही हैं, साथ ही साथ उसे दिव्य कल्पनालोक में भी पहुँचाते हैं। इतनी सूक्ष्म-परिष्कृत- भावोद्रेकित अनुभूतियाँ निश्चित ही हिन्दी साहित्य के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करती हैं।

●●●

—डॉ. नितिन सेठी



हाज़िर रोज़ बहाना भी
रोज़ाना आ जाना भी

7

'प्रसाद' : बांग्लादेश के कार्य की उत्कृष्ट कृति

लीला बिहारी रसिकराज कृष्ण के मनहर चरित्र ने देश-विदेश के भावुक हृदय मनीषियों, भक्तों, कवियों आदि को सदा ही प्रभावित किया है। पाश्चात्य जगत् हरे राम हरे कृष्ण की स्वर लहरी में निमग्न है, तो अपने पड़ोसी देश में भी कृष्ण भक्ति की सरस पयस्विनी प्रवाहित देखी जा सकती है। उपलब्ध जानकारी के अनुसार बांग्लादेश के महाकवि काजी नजरुल इस्लाम ने हिन्दी में भी आठ गीत लिखे हैं, जिनमें कृष्ण भक्ति का स्वर ही प्रमुख है, पर बांग्लादेश के हिन्दी कवि काजी असरफ महमूद का अधिकांश काव्य कृष्णपरक ही है।

काजी असरफ महमूद का एक काव्य-संग्रह 'प्रसाद' अप्रैल 1972 में प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व तीन अन्य काव्य-संग्रह 'वियोगी', 'निमन्त्रण' और 'कुटज' भी निकल चुके हैं। इन काव्य संग्रहों की भाषा हिन्दी है, पर लिपि बंगला। डॉ. शिवनाथ (अध्यापक, विश्व भारती, हिन्दी भवन) ने इन पुस्तकों की प्रशंसा में लिखा है, "आपकी सरल रचनाओं से हिन्दी के सुधी और रसिक न जाने कब से परिचित हैं। छायावादी काव्य के जितने उत्कर्षशील गुण हो सकते हैं वे सभी इनमें भरे हैं। 'वियोगी' में वेदना की जो काव्यमय अभिव्यक्ति आपने की है वह कम लोगों से बन पड़ी है। 'कुटज' में 23 कविताएँ हैं, जो विभाजन से पूर्व सन् 1944 से 1946 के मध्य लिखी गयी थीं। छायावादी शैली में लिखित इस काव्य में प्रेम और भक्ति का जो उदात्त रूप प्रस्तुत हुआ है, वह दर्शनीय है --

उसकी ही मंजुल मुख छवि का।
यह मन मेरा चिर ध्यानी है।
उसके ही मुख की मधुता से।
मुखरित मेरी वाणी है।

मेरे जीवन के प्रियवर!
मेरे काव्य शिला तल पर
किसी दिवस आ लिख जाना -
'जग में हैं बस प्रेम अमर' (कुटज)

'प्रसाद' कवि का नवीनतम काव्य संग्रह है। इसमें काजी साहब का भावुक हृदय प्रेम, भक्ति और पराधीनता की पीड़ा से त्रस्त कान्तिद्रष्टा भक्त के रूप में सामने आता है पर मूल स्वर भक्ति का ही है। भावुक भक्त के रूप में कवि अपना यह संग्रह 'प्रसाद' प्रभुचरणों में अर्पित करता हुआ गीता का एक श्लोक उद्धृत करता है -

पत्रं पुष्पं फलं तोयं, यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। (गीता)

'प्रसाद' में छोटी-बड़ी आठ कविताएँ हैं, जिनमें कृष्ण भक्ति की सतरंगी धारा नूतन रूप में प्रस्तुत हुई है। 'हरि आए' नामक प्रथम गीत में कवि कहता है -

भव भय भंजन
जनमन रंजन,
भक्त भवन हरि आए।
हो, हो भक्त भवन हरि आए।
मेरे प्राण भुलावन आए।
मेरे नयन लुभावन आए। (हरि आये, पृ. 17)

'वियोगिनी' नामक द्वितीय गीत में कवि ने स्वयं को विरहव्यथिता ब्रजबाला के रूप में प्रस्तुत किया है और सखी से संतप्त स्वर में पूछा है, कि प्रिय ने क्यों भुला दिया है और पुनः दर्शन कब होंगे --

जिनकी मंजुल मुरली थी नित बजती मंजुल बन में-
कब फिर उनके दर्शन होंगे, सजनी! वंशीवन में?
कब फिर सुन्दर स्वर से गाते,
पग-पग में ही मधु बरसाते
आएँगे वे मृदु मुस्काते गोपन कुंज भवन में?
कब फिर उनके दर्शन होंगे सजनी, वंशीवन में? (वियोगिनी, पृ. 18)

'उन्मन' में विरहिणी ब्रजांगना प्रिय के बिना चैन नहीं पाती, अतः सखी से आग्रह करती है कि चल, निर्भय होकर चलें, कृष्ण कुंज भवन में अवश्य मिलेंगे--

चल सखि चल जल भरने, प्रभु के दर्शन करने।
प्रिय हरि का मन हरने, मन्मथ के मधुबन में।।
मन में हरि को भजकर, मन की शंका तजकर।
चल सखि सुन्दर सजकर, गोपन कुंज भवन में।। (उन्मन, पृ.21)

'रहस्य' नामक एक अन्य गीत में स्नेह सुवासित वरमाला लिए खड़ी बनबाला कोकिल की कूजन, लताओं के थिरकने, मृगदल के मचलने, यमुना के विहँसने और मधुकर के नाचने आदि का रहस्य उद्घाटित करते हुए बतलाया गया है कि समीप ही

किसी सघन कुंज में मनमोहन कृष्ण के छिपे होने की सम्भावना है। 'ब्रज दर्शन' नामक गीत तो वृन्दावन में ही लिखा गया है। वृन्दावन ही कृष्ण की लीलाभूमि रहा है, अतः उसकी ललित क्रोड़ में आकर कवि अपने को कृतार्थ समझता है और प्रणाम करता हुआ कहता है --

हे ब्रज तेरे कण-कण में है,
अंकित प्रभु के पद-पावन
तुमको ही मैं आज प्रेम से,
करता हूँ शतवार नमन! *(ब्रज दर्शन, पृ. 26)*

ब्रजभूमि जो कभी शस्यश्यामल और रास-रंग में डूबी अमित आनन्द से परिपूर्ण थी आज नाना व्याधाओं से पीड़ित है। न कृष्ण है, न वे रंगभरी पिचकारियाँ, न सुधबुध बिसरा घूमने वाली गोपियाँ हैं और न दूध दही के मतवाले गोप। कवि ब्रज भूमि की यह दशा देख व्यथित हो उठता है, और एक बालक के समान भोले भाले शब्दों में माँ से कहता है -

माँ! ब्रज के इस दुर्दिन में
कब होगा फिर परिवर्तन!
नंदरानी फिर कब पायेंगी
अपना खोया नील रतन?
माँ! अब मेरे इस जीवन में
कब आयेगा वह शुभ क्षण
सहसा ही जब दर्शन देंगे
मुझको भी आ मनमोहन *(शुभ क्षण, पृ. 29)*

बंगाल क्रान्तिधर्मा भूमि कही जाती है। बंगभूमि का काजी कवि 'आह्वान' नामक गीत में कृष्ण से भी अपेक्षा करता है कि वे अब अपना विश्व-विमोहन रूप त्यागकर युगानुरूप रुद्र रूप धारण कर लें, क्योंकि धरती अब और अत्याचार नहीं सह सकेगी --

अब तो रुद्र बनो नंदलाल
कब तक ब्रज में छिपे रहोगे, बनकर यूँ ब्रज-ग्वाल?
कब तक भारत वहन करेगा, यह दुःखद दुष्काल?
सकल देश में धधक रही है, विषम क्षुधा की ज्वाल।
सभी ओर दीख रहा है, केवल काल कराल!
दुःशासन नित बिछा रहा है, पग-पग में भय जाल।
राव-रंक सब बिता रहे हैं, रो-रोकर निज काल। *(आह्वान, पृ. 25)*

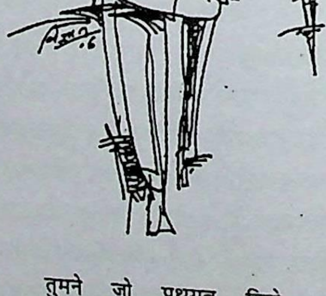
ज्ञातव्य है कि इस संग्रह की कुछ कविताएँ तब की लिखी हुई हैं, जब बंगलादेश

भारत का ही एक अंग था।

ढाका के काजी शाह आलममीर द्वारा प्रकाशित और काजी अनवर हुसैन द्वारा मुद्रित 'प्रसाद' कृति में भी भारतीय मानस को ही अभिव्यक्ति दी गयी है। आखिर सांस्कृतिक, भौगोलिक और साहित्यिक रिक्थ की दृष्टि से बांग्लादेश भारत का ही अंग है, भले ही राजनीतिक दृष्टि से यह एक स्वतंत्र देश है। पाकिस्तान बनने पर यह उसका अंग बन गया था, पर शेख मुजीब के नेतृत्व में इस देश ने पाकिस्तानी चोले को उतार फेंका और भारत व बांग्लादेश के मध्य पारस्परिक सद्भावना के स्रोतों को पुनः खोल दिया। दुर्भाग्य कि पाकिस्तानी और सी.आई.ए. के षड्यन्त्रों ने वहाँ घृणित सत्ता परिवर्तन करा दिया, जिसमें शेख मुजीब, उनके परिवारजनों और सहयोगी मित्रों की नृशंस हत्या कर दी गयी। जो भी हो सदियों से रहीम, रसखान, आलम आदि मुसलमान कृष्ण भक्ति में डूबकर अपनी मनोभावनाओं को अभिव्यक्ति देते रहे हैं। उनकी भक्ति भावना और भाषा प्रेम को लक्षित कर ही भारतेन्दु जी ने लिखा था, "इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन्ह हिन्दू वारिए।" बीसवीं सदी में खड़ी बोली हिन्दी में मुसलमान कवियों द्वारा, वह भी एक दूसरे देश से, कृष्ण भक्ति का गायन निश्चय ही सुखद आश्चर्य है। हम विश्वास कर सकते हैं कि बांग्लादेश के अन्य कवि भी इसी प्रकार का भक्ति काव्य सृजन कर माँ सरस्वती की आराधना कर रहे होंगे क्योंकि त्रिविध ताप संबलित कष्टों और भौतिकवाद संत्रस्त मानवता का कल्याण आध्यात्मिकता के वरण में ही है।

●●●

सुचग



तुमने जो पथराव जिये
हमने उनके घाव जिये

8

परीज़ाद : होनहार बिरवान के....

समकालीन हिन्दी साहित्य में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त रुहेलखण्ड मण्डल के ऐसे लोकप्रिय रचनाकार हैं, जिन्होंने राष्ट्रवादी चिंतन के साथ-साथ अपनी रचनाओं में प्रेम, करुणा, दया, स्नेह, वासना, श्रद्धा, बदलते जीवन मूल्य, सांस्कृतिक बदलाव तथा अन्य मानवीय संवेदनाओं को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। जिजीविषापूर्ण दृष्टि आपकी रचनाओं की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। डॉ. गुप्त ने अपनी समस्त रचनाओं में वर्तमान सामाजिक विडम्बनाओं, राजनीतिक विद्रूपताओं एवं सांस्कृतिक पतन को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। परिणामस्वरूप उसके शिथिलपक्ष भी खुलकर सामने आये हैं। आपने कविता, आलोचना, संस्मरण, निबंध, आत्मकथा, उपन्यास आदि अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन कर समकालीन रचनाकारों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। काव्य-लेखन के साथ-साथ गद्य-लेखन में भी आपकी दृष्टि पैनी व तीक्ष्ण रूप में दिखाई देती है। गद्य-पद्य की लम्बी रचना-यात्रा के पड़ाव में आपने एक मात्र बाल उपन्यास 'परीज़ाद' की रचना कर अपने उपन्यासकार होने का परिचय दिया है।

'परीज़ाद' एक लघु उपन्यास है, जो मूलतः बाल एवं किशोरवय को ध्यान में रखकर सृजित किया गया है। उपन्यास की रचना लेखक ने अपनी किशोरावस्था में ही की थी, परन्तु इसका उत्तरार्द्ध वृद्धावस्था में लिखा गया। अन्त में तीन परिच्छेदों ने उपन्यास की सार्थकता को सिद्ध कर दिया है। इसकी कथाभूमि पूर्णतः मिथकीय है। पूर्व प्रचलित कथाओं का प्रभाव इसके कथानक पर परिलक्षित होता है। जैसा कि स्वयं लेखक स्वीकारता है, "किस्सा हातिमताई, गुलवकावली, तोतामैना, शुकबहत्तरी आदि का ही प्रभाव रहा होगा, जो परीज़ाद की रचना कर बैठा।" (पुरोवाक्)

इसका कथानक पूर्णतः चरित्रप्रधान और विभिन्न चमत्कारिक घटनाओं से संयुक्त होने के कारण किशोर मन को बलात् ही आकर्षित किये रहता है। इसका संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है –

"परीरानी अपने परीदेश झनकपुर में स्वार्गिक जीवन का आनन्द ले रही है। एक दिन नरदेवपुर के राजा नरदेव सिंह अपनी वर्षगाँठ के अवसर पर परीरानी को अपने यहाँ आमंत्रित करते हैं। परीरानी राजा के यहाँ उत्सव में पहुँचती है। राजा उस पर मोहासक्त हो जाते हैं, और वे परीरानी को अपने महल में ही रोक लेते हैं। परीरानी गर्भवती हो जाती है। राजा भयभीत होते हैं, अतः गर्भिणी परीरानी अपने देश वापस लौट आती है। वह एक सुन्दर पुत्र को जन्म देती है। पुत्र युवावस्था में प्रवेश करता है। वह अनजाने में परीदेश के नियमों का उल्लंघन कर बैठता है। अतः उसे देश छोड़ने की सजा मिलती है। वह परीदेश छोड़कर चल देता है। बीहड़ क्षेत्रों को पार करता हुआ परीज़ाद अन्ततोगत्वा नरदेवपुर आ पहुँचता है। राजा नरदेवसिंह उसे अपने यहाँ वेतनभोगी सेवक के रूप में रख लेते हैं। राजा परीज़ाद को पहचान लेते हैं कि यह मेरी ही संतान है, परन्तु यह बात वह गोपनीय रखते हैं। वे उसे अपार स्नेह करते हैं, परिणामस्वरूप राजा की बड़ी रानी वाकुला परीज़ाद से ईर्ष्या करने लगती है। वह सोचने लगती है कि यदि परीज़ाद को युवराज बना दिया गया तो उसका पुत्र नयनजीत राजसत्ता से वंचित रह जाएगा। अतः वह उसे मरवाने के षड्यंत्र रचने लगती है। रानी वाकुला परीज़ाद को मरवाने के लिए दासी वानिली की सहायता से तीन षड्यंत्र रचती है, परन्तु एक में भी सफल नहीं हो पाती। परीज़ाद अपनी निष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता, वीरता, सेवाभावना आदि मानवीय गुणों से सभी का हृदय जीत लेता है। अन्ततः रानी का हृदयपरिवर्तन हो जाता है। स्वयं रानी वाकुला ही उसे राजसत्ता सौंपने की बात कहती हैं। अन्त में राजा नरदेव सिंह द्वारा उसका राज्याभिषेक किया जाता है और नामकरण किया जाता है, राजा विक्रमांकदेव सिंह। राजा विक्रमांकदेव सिंह राजसत्ता का पुनर्गठन करता है। उसका राज्य पहले की अपेक्षा अधिक समृद्ध और शक्तिशाली बनता है।"

वस्तुतः उपन्यास का कथानक पूर्णतः काल्पनिक और लेखक की मौलिक उद्भावनाओं की संसिद्धि है। बाल उपन्यास में प्रासंगिक कथाएँ अपेक्षित नहीं होतीं, अतः इसका पूर्णतः पालन किया गया है। उपन्यास का कथानक एकदम सपाट बयानी है। कथा सीधी-सरल, ऋजुरेखा में आगे बढ़ती है। कथानक में तीन चमत्कारिक घटनाओं का संयोजन बालमन को आकर्षित करने में पूर्णतः सफल सिद्ध हुआ है। बाल मन क़ी उत्कण्ठा को उद्दीप्त करने हेतु लेखक का यह अभिनव प्रयोग है। यहाँ कथानक अपने चरम उत्कर्ष पर ही नहीं पहुँचता, बल्कि बालमन की जिज्ञासा को भी प्रदीप्त करता है। यह जिज्ञासा ही रचना को आकर्षक बनाए हुए हैं।

'परीज़ाद' उपन्यास का कथानायक है। उसके चरित्र का विकास बालमन के अनुरूप हुआ है। वह सम्पूर्ण कथाक्रम में बालमन को आकर्षित करने में सक्षम है। वह वीर, साहसी और मानवीय सौन्दर्य से युक्त है। उसमें राजपुरुषोचित सभी गुण

विद्यमान हैं, "वह युवराज सा लगने लगा। उसका ऊँचा-चौड़ा ललाट, विशाल नेत्र, उठे हुए गाल, लम्बी ठोड़ी, ऊँची नाक उसकी मुखाकृति को सुन्दर बना रहे थे। वह गौर वर्ण का था। उसका विशाल वक्ष प्रदेश, भरी हुई बाहें और जंघाएँ एवं उसका सुदृढ़ शरीर उसे पूर्ण युवा वीर पुरुष सूचित कर रहा था।.....सिंह, रीछों से वह निशस्त्र लड़ सकता था।"

परीज़ाद का चरित्र 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कहावत को चरितार्थ करता है। वह अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण राजसत्ता का अधिकारी बनता है। वह शील की साक्षात् प्रतिमा है, "परीज़ाद एक वीर, सर्वगुण सम्पन्न, सुन्दर युवक है। सुन्दरता उसके अंग में समा नहीं रही है। उसके शील, सरल स्वभाव ने नगरी के प्रत्येक व्यक्ति पर अपना अधिकार जमा लिया है।.....वे उसे प्राणों से अधिक चाहते हैं। वही उसका राम है, श्रवण है। यही नहीं परीज़ाद भी उनकी मन लगाकर सेवा करता है।" परीज़ाद अपनी सेवा भावना, सद्व्यवहार एवं शिष्टता से ईर्ष्याग्नि में जलती रानी वाकुला के हृदय को भी जीत लेता है। रानी का हृदयपरिवर्तन हो जाता है। अतः वह स्वयं क्षमा याचना करने लगती है, "बेटा ! परीज़ाद ! मैं अभागिनी हूँ। मैंने तुम्हें व्यर्थ ही कष्ट दिये हैं। बेटा यदि क्षमा कर सको तो क्षमा कर देना। यद्यपि, वैसे तो मैं क्षमा पाने योग्य हूँ ही नहीं। फिर भी तुम सुशील हो, दयालु हो, क्षमा कर सकते हो। कर दोगे न ?" रानी वाकुला यह भी भलीभाँति जानती है कि कि परीज़ाद शासन सूत्र सँभालने के पूर्णतः उपयुक्त व सक्षम है। इसलिए वह स्वयं भी उसी को सत्ता सौंपने की बात कहती है, "इस स्थिति में परीज़ाद को ही शासनसूत्र सौंप देना उचित होगा।"

उपन्यास के पुरुष पात्रों में परीज़ाद के अतिरिक्त महाराज नरदेव सिंह का चरित्र उल्लेखनीय है। वे विलासी और प्रजावत्सल हैं, परन्तु लेखक ने इस पात्र के चरित्रविकास के लिए यथेष्ट समय और अवसर प्रदान नहीं किया है। सारा ध्यान परीज़ाद पर ही केन्द्रित किया गया है। अन्य पुरुष पात्रों का उपन्यास में अभाव-सा है।

स्त्री पात्रों में मात्र तीन ही पात्र-परीरानी, रानी वाकुला और दासी वानिली उल्लेखनीय है। परीरानी अलौकिक सौन्दर्य से मण्डित है। तभी तो महाराज नरदेव सिंह उसकी ओर खिंचे चले आते हैं। परीरानी गर्भवती होती है और फिर उसका परित्याग कर दिया जाता है। इतने पर भी वह विद्रोह नहीं करती, तो शायद इसलिए कि उसे अपनी नारी शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। परीरानी के चरित्र से कोणार्क की सारिका का स्मरण हो आता है। भिन्नता मात्र इतनी है कि सारिका एक मजदूरिन थी। परीरानी के माध्यम से लेखक ने नारी जीवन की विडम्बना पर प्रकाश डाला है। रानी वाकुला ईर्ष्या की साक्षात् ज्वाला है। उसके चरित्र से मानस की कैकयी की

स्मृति हो आती है। कैसी विडम्बना है? प्रत्येक युग में एक कैकेयी जन्म लेती रही है। मानस की कैकेयी अपने षड्यंत्र में सफल होती है, किन्तु रानी वाकुला असफल। उसका हृदय परिवर्तन कराकर लेखक ने आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की है। दासी वानिली मन्थरा की भाँति सलाहकार की भूमिका अदा करती है। वस्तुतः उपन्यास के पात्रों और कथानक पर रामचरितमानस का स्पष्ट प्रभाव देख जा सकता है।

किसी समय दादी माँ की लोरियों और कहानियों का अपना विशिष्ट महत्त्व था। बच्चे बड़े चाव से इन्हें सुना करते और सुनते-सुनते निद्रा रानी की गोद में निढाल होकर लुढ़क जाया करते थे। आज टी.वी., कम्प्यूटर और दूरसंचार क्रान्ति ने बच्चों का यह सुख छीन लिया है। हमारी यह सांस्कृतिक परम्परा बुरी तरह नष्ट हो चुकी है। अब बच्चे वीडियो गेम्स और कार्टून चैनलों से चिपके रहते हैं। अतः उनमें पहले जैसे पारिवारिक संस्कारों का अभाव होता जा रहा है। घर-परिवार में जो महत्त्व दादी माँ का हुआ करता था, वह अब समाप्त हो चुका है। दादी माँ अब उपेक्षित हो चुकी है। परिवार का यह सदस्य अब अनपेक्षित बोझ बन गया है। दादी माँ द्वारा सुनाई गई कहानियाँ पूर्णतः सपाट बयानी कहानी-शैली पर आधारित हुआ करती थीं। इस उपन्यास के कथा-विन्यास में भी इसी कहानी-शैली का प्रयोग किया गया है, जो बाल पाठकों की दृष्टि से उपयुक्त ही है। क्योंकि, इसमें पात्रों की अपेक्षा लेखक ही अधिक बोलता है। परिणामस्वरुप इसमें संवादों का कम-से-कम प्रयोग हुआ है। जहाँ आवश्यक हुआ है, वहाँ संवादों को स्थान दिया गया है। परीज़ाद के संवाद बड़े ही संक्षिप्त, रोचक और प्रभविष्णु बन पड़े हैं। पात्रानुकूल होने के साथ-साथ वे लेखक के मन्तव्य को प्रस्तुत करने में सफल सिद्ध हुए हैं, यथा --

"निःसंकोच कहो।"

"मैं परदेश का रहने वाला हूँ, लोग मुझे परीज़ाद कहते हैं, और....."

"और, और क्या?" महाराज ने उत्सुकता से पूछा।

"और मुझे देश त्याग करना पड़ा।"

"क्यों, क्या कुछ अपराध किया था?"

परीज़ाद के शिल्प विधान में जहाँ वैचारिक भावबोध की पीठिका पर कथ्य आधृत है, वहीं भाषा की सजगता कथ्य को नूतन आयाम प्रदान करती है। शब्दावली चयन में विशेष सावधानी तथा बोलचाल की सामान्य भाषा में जिस साहित्यिकता का सृजन डॉ. गुप्त ने किया है, वह प्रशंसनीय है। परीज़ाद के शिल्प की लघुता में इसके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। जैसे एक छोटी-सी पतली धारा कछार को काटकर अपने साथ बहा ले जाती है, उसी प्रकार इसकी सरस, सरल भाषा बालमन को बहा ले जाने में समर्थ है। मुहावरों और कहावतों के प्रयोग ने परीज़ाद की भाषा में प्राण फूँकने का सार्थक कार्य किया है। प्रसंगानुकूल मुहावरों, सूक्तियों

एवं कहावतों का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है। ऐसे स्थलों पर भी लेखक ने भाषा की सरलता, सहजता और सरसता को उपेक्षित नहीं किया है। उदाहरणार्थ कुछ सूक्तियाँ देखें, "जीत हार एक अपूर्व शक्ति के ही अधीन है।" "जहाँ प्रेम है, अमृत है, वहाँ द्वेष एवं विषकुम्भ पहले से ही रखा है।" मुहावरों और कहावतों के प्रयोग से भाषा की अर्थवत्ता देखते ही बनती है, यथा, 'गूलर के फूल होना', 'पैरों से धरती खिसकना', 'तकदीर के आगे तदबीर नहीं चलती आदि।'

कहीं-कहीं अनपेक्षित एवं क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग हृदय को खटकता है, क्योंकि संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग किशोर एवं बाल पाठक के अनुकूल नहीं होता। उसे तो सरस व सरल शब्द ही चाहिए। हर्षातिरेक, स्वर्णिम, द्विगुणित, निर्दिष्ट, जागृति, पुत्रोत्पत्ति, प्रच्छन्न, वाग्धारा, भूत-भृंगिणी, किंकर्त्तव्यविमूढ़ आदि अनेक ऐसे शब्द हैं, जिन्हें हम बाल मन के अनुकूल नहीं कह सकते। चूँकि लेखक एक कवि भी है, इसलिए ऐसे शब्द उसकी लेखनी से अनायास ही निकल पड़ते हैं। यह उसके कविकर्म का ही प्रतिफलन है कि उपन्यास में प्रकृति चित्रण के बहाने एक गीत भी प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत गीत बाल पाठक के रसास्वादन में बाधा उत्पन्न करने के कारण अनपेक्षित ही है।

कोई भी रचनाकार जब अपनी रचनाधर्मिता में निमग्न होता है, तो वह सृजन के क्षणों में लोकोत्तर प्राणी बन जाता है। परिणामस्वरूप उसकी लेखनी से अनायास ही उसका जीवन-दर्शन अभिव्यक्ति पा जाता है। डॉ. गुप्त भारतीय साहित्य, धर्म और दर्शन के गम्भीर अध्येता रहे हैं। इसलिए उनका जीवन-दर्शन भारतीय मनीषा के अनुरूप ही निर्मित हुआ है। परीज़ाद में उन्होंने अपने जीवनदर्शन को अनायास एवं सहज भाव से अभिव्यक्ति प्रदान की है। आप छायावादी काव्य-दर्शन से अधिक प्रभावित हैं। प्रसाद ने कामायनी में नियतिवाद को अभिव्यक्ति दी है। वे नियति को विश्व का नियमन करने वाली शक्ति मानते हैं, "नियति चलाती कर्म-चक्र यह" (कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ. 266)। डॉ. गुप्त भी कामायनीकार के इस नियतिवाद को स्वीकारते हुए कहते हैं, "जीत, हार एक अपूर्व शक्ति के ही अधीन हैं" माया एक ऐसी सूक्ष्म, अलौकिक और सर्वव्यापी शक्ति है, जो भेद का कारण बनती है। माया-मोह के जाल में फँसने के बाद व्यक्ति अपने पराये का भेद करने लगता है। अतः वह अतिवादी स्वार्थी और संकीर्ण मानसिकता से घिर जाता है। प्रसाद के शब्दों में, "अपने में सब कुछ भर कैसे, व्यक्ति विकास करेगा।" (कामायनी, कर्म सर्ग, पृ. 136)। गुप्त जी ने रानी वाकुला के माध्यम से इसी भेददृष्टि की ओर संकेत किया है। वह मोहग्रस्त है। घोर स्वार्थी है। लेखक के शब्दों में "कदाचित् ही ऐसा कोई होगा जो सांसारिक माया-मोह से परे हो।.....मानवता पर दानवता का आधिपत्य हो जाता है। द्वेष का रूप कलह, विद्वेष आदि में परिणत हो जाता है। प्रलयारम्भ हो

जाता है। यही है मायाजाल का कृत्य।"

उपन्यास का उद्देश्य मात्र दार्शनिक प्रपत्ति ही नहीं है, वरन् बाल मन का मनोरंजन करना इसका प्रधान उद्देश्य है, जो कि ऐसे उपन्यासों का मुख्य आधार हुआ करता है। लेखक अपने इस प्रधान उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णतः सफल हुआ है। उपन्यास के कथानक में तीन चमत्कारिक घटनाओं का संयोजन तथा तीन रंग की तीन पुड़ियों के माध्यम से समस्या-समाधान की प्रस्तुति बाल मनोरंजन के लिए ही है, जो सार्थक बन पड़ी है। कथानक का यह अंश बालमन को पूर्णतः बाँध रखने में सफल हुआ है। तीन चमत्कारिक घटनाओं में तिलिस्म का परिवर्तित रूप देखा जा सकता है, तथा भूत-भृंगिणी सेना का सरदार एवं उसके अनुचरों के क्रिया-कलापों में ऐय्यारी के दर्शन पाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि तिलिस्म और ऐय्यारी के इस संक्षिप्त रूप के माध्यम से लेखक ने देवकीनन्दन खत्री की परम्परा को पुर्नजीवित करने की चेष्टा की है। ऐसे स्थलों पर जिज्ञासा और उत्सुकता का भाव भी तीव्र से तीव्रतर होता दिखाई पड़ता है।

निष्कर्षतः, डॉ. गुप्त द्वारा रचित परीज़ाद नवीन विषयवस्तु एवं कल्पना का चमत्कारिक प्रयोग करने के कारण महत्त्वपूर्ण बन जाता है। तिलिस्म और ऐय्यारी की छाया प्रस्तुति, उद्देश्य पूर्ति में सक्षम तथा विशेष संवेदनक्षमता समेटने के कारण परीज़ाद अपना मानक स्वयं बनाता हुआ दीख पड़ता है।

●●●

—डॉ. मोहनलाल मौर्य



सारा जीवन घर बनवाया
लेकिन कितना घर रह पाया

9

संस्मरण विधा की अप्रतिम कृति : 'स्मृति के वातायन'

जीवित लोगों में डॉ. विवेकी राय, डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. काशीनाथ सिंह, डॉ. कमलकिशोर गोयनका, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' एवं डॉ. कान्ति कुमार जैन के बाद संस्मरणकार के रूप में यदि मुझे किसी ने सबसे अधिक प्रभावित किया है तो निश्चित रूप से डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने। उनकी भाषा, शैली, प्रस्तुतिकला, स्पष्टवादिता, तटस्थता, निष्पक्षता और उनकी रचनात्मक ईमानदारी मुझे बहुत भाती है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक बहुआयामी प्रतिभा के धनी है। कवि, समीक्षक, सम्पादक, निबन्धकार आदि के रूप में तो वे विख्यात हैं ही अपने संस्मरण संग्रह 'स्मृति के वातायन' से वे एक उत्कृष्ट संस्मरणकार के रूप में भी पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में सफल रहे हैं। स्मृतियों के झरोखों से अपने पात्रों के जीवन, परिवेश और घटनाओं की जो सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अनुरंजक एवं मनोहारी परिचय स्मृतिकार करते हैं, वह प्रशंसनीय है। पात्रों सहित संस्मरणकार का जो अन्तर्वाह्य खुलता है, पाठक उससे पूरी तरह तादात्म्य स्थापित कर लेता है। उनके संस्मरणों में चित्रित पात्र पाठकों के इर्द-गिर्द घूमते, बातचीत करते, हाथों में हाथ डाले टहलते दिखाई देते हैं। पाठक को इस बात का पता ही नहीं चलता कि वह आभासित सत्य को पढ़ रहा है, अपितु उसे सर्वत्र यही लगता है कि वह संदेह संस्मरणकार की अँगुली पकड़े उसकी रचना-यात्रा की वीथियों में उसके साथ सहज भ्रमण कर रहा है।

संस्मरण की परिभाषा देते हुए डॉ. धीरेन्द्र वर्मा कहते हैं, "संस्मरण में लेखक जो स्वयं देखता है, जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन मिलता है। उसके वर्णन में उसकी अपनी अनुभूतियाँ और संवेदना भी रहती है।" डॉ. रामचन्द्र तिवारी के अनुसार, "संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे सन्दर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है, जो महत् विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी

अंकित होता चलता है।" ऐसा ही डॉ. गुप्त के संस्मरणों में हुआ है। यदि यह कहा जाए कि 'स्मृति के वातायन' में संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मकथा की अद्भुत त्रिवेणी बहती है, तो अतिशयोक्ति न होगी। यही कारण है कि डॉ. गुप्त किसी विधा विशेष के लेखक नहीं हैं, बल्कि सच्चे अर्थों में एक ऐसे रचनाकार हैं, जिनकी हर रचना अद्भुत होती है, विशिष्ट होती है और मन को आन्दोलित करने वाली होती है।

विशिष्ट व्यक्तियों को केन्द्र में रखकर संस्मरण को रचने का मिथक डॉ.गुप्त तोड़ते हैं। उन्होंने अपने जीवन के अभिन्न अंग अपनी माँ, बड़े भाई, चाचा आदि के साथ-साथ अपने मोहल्ले, कार्यक्षेत्र से जुड़े लोग और सम्पर्क में आने वाले लोगों में भी विशिष्टता देखी और अपने कृति में एक अनुपम रूप दे दिया। 'स्मृति के वातायन' में आये संस्मरणों की विशेषता है कि इसमें युगीन परिवेश और समय की भीषणता को चित्रित करने वाले कुछेक संस्मरण भी हैं। 'ईश्वर ! मुझे परीक्षा में मत डाल', 'पुरस्कार भगवान् दिलाए नहीं किसी को' एवं 'जातस्य ही ध्रुवं मृत्युः' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'ईश्वर ! मुझे परीक्षा में मत डाल', संज्ञक संस्मरण यथार्थ के धरातल पर चित्रित एक ऐसा युगीन सत्य है, जो वर्तमान में व्याप्त शिक्षा-परीक्षा प्रणाली की पूरी खोखली एवं विध्वंसकारी व्यवस्था को उजागर करता है। यह संस्मरण, संस्मरण कम आज की परीक्षा व्यवस्था पर व्यंग्य अधिक जान पड़ता है।

22 सितम्बर 1975 की अपनी डायरी में डॉ. गुप्त अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं, "आज से पुनर्परीक्षा प्रारम्भ हो गयी। मई-जून की परीक्षाएँ जितने गलत ढंग से चली थीं, ये परीक्षाएँ उतने ही सही ढंग से प्रारम्भ हुईं और लगता है कि अन्त तक इसी प्रकार भली-भाँति चलती रहेंगी।" (स्मृति के वातायन, पृ. 58) संस्मरण में बहुत स्वाभाविक और आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। जिससे यह सर्वसुलभ और समय-सापेक्ष बन पड़ा है। यद्यपि इसमें कहीं-कहीं पर गालियों और अभद्र शब्दों का प्रयोग है, जो संकीर्ण मानसिकता वाले लोगों की आँखों में खटक सकते हैं, लेकिन इससे लेखक की स्पष्टवादिता, निर्भीकता और 'बोल्डनेस' का प्रमाण मिलता है।

'तान के सीना चली हसीना' डॉ. गुप्त का एक उत्कृष्ट संस्मरण है। उक्त संस्मरण को पढ़ना एक सुखद अनुभूति प्रदान करने जैसा है।

भरी वासना सरिता का वह, कैसा था मदमत्त प्रवाह।
प्रलय-जलधि में संगम जिसका, देख हृदय था उठा कराह।।
-जयशंकर प्रसाद, कामायानी, पृ. 18

हसीना को देखकर जिनका हृदय उसे पाने की पीड़ा से कराह उठे ऐसे अनेकानेक मनु उपलब्ध थे, यह वर्णन पढ़कर बेहद रोमांच होता है। डॉ. गुप्त द्वारा

हसीना के पीनोन्नत वक्ष, पार्वती के वक्षोज-चूचक, इंग्लैण्ड की 16 वर्षीया कीलर जलपरी के पीनोन्नत दीर्घ वक्षों आदि के वर्णन को पढ़कर सहज ही कुचकवि विद्यापति की याद आती है, जिन्हें नारी सौन्दर्य के कुछ खास अंगों में उरोजो और कुचाग्रों ने ही विशेष प्रभावित किया है। डॉ. गुप्त का उरोज वर्णन देखें, "हम यहाँ जिस सुन्दरी की बात करने जा रहे हैं, वह भी तब सोलह-सत्रह की ही थी, वक्ष कठोर और अपेक्षाकृत अधिक उठे हुए। रेशमी कुर्ते के आवरण से बाहर निकलने को आतुर, भाले की नोंक जैसे वे उरोज ऐसे लगते जैसे उसके हर कदम के साथ युगल कपोत उड़ान भरने के लिए चोंच मार रहे हों, ऊपर से उसका नाम भी हसीना था।" वर्णन पढ़ने के बाद लगता है कि अज्ञेय ने जिन प्रतीकों और उपमानों को मैले, अर्थहीन और अप्रासंगिक होने की बात की है, उससे प्रेरणा लेकर डॉ. गुप्त ने हसीना के सौन्दर्य-वर्णन को बिल्कुल नये उपमानों और प्रतीकों से सजाया है। "क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपेति, तदैव रूपं रमणीयतायाः" की प्रतीक हसीना का हसीन वर्णन मनोमुग्धकारी ही नहीं, मनोलुब्धकारी भी है। बिना ब्रा के हसीना के मनचले-से कपोत-युग्म दूर से ही नहीं (पढ़ने मात्र से ही) संस्मरणकार और उसके मोहल्ले के अन्यान्य लोगों की तरह मनचले पाठकों के मन भी चुरा लेते हैं।

स्वभाव से भीरु और शाकाहारी होने के कारण बनियों के लड़के हसीना के अधरामृत का पान करने से वंचित रह गये और सर्वभक्षी ब्राह्मण-कुमार सफल हो गये। जो बातें नहीं कही गयी हैं, वह यह हैं कि बनियों के लड़कों के बहाने संस्मरणकार का अत्यन्त चतुराई से अपने को बचा लेना, लेकिन एक ब्राह्मण-कुमार होने के नाते जहाँ तक मैं अनुभव कर पा रहा हूँ, उस आधार पर यह लिख सकता हूँ कि, "कज्जल की कोठरी में कैसेहू सयानो जाय, एक लीक कज्जल की लागिहैं, पै लागि हैं," बदनामी के डर से डॉ. गुप्त अब इस बात को स्वीकारें अथवा नहीं, यह अलग बात है। बनियों के लड़कों में ही एक लड़के हैं, डॉ. जगदीश गुप्त, जिन्होंने लिखा है --

दूसरा तट है मगर दिखता नहीं,
कवि बिना अनुभव किये लिखता नहीं है।

हसीना के सौन्दर्यहीन होने का वर्णन भी डॉ. गुप्त ने किया है, "....देखते ही देखते हसीना का सौन्दर्य ढल गया--हिमालय के उत्तुंग शिखर धराशायी, लुढ़कते-पुढ़कते। साज-शृंगार भी नहीं।" (वही, पृ. 36) आशय स्पष्ट है कि डॉ. गुप्त हसीना की तरुणाई से लेकर उसकी ढलाई तक के सहज साक्षी हैं, सुधी भोक्ता हैं, अच्छे द्रष्टा हैं और समग्रतः प्रस्तोता हैं।

'बिछुरत एक प्रान हरि लेंही' एक उत्कृष्ट कोटि का संस्मरण है, जिसमें कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध 'ब्रह्मावर्त डिग्री कॉलेज, मंधना' में अपने

प्राध्यापकीय जीवन की शुरूआत और मात्र वहाँ की दो महीने की नौकरी के बाद कालेज छोड़ने की घटना, कॉलेज छोड़ते समय का सम्मान-समारोह आदि को अत्यन्त भावुकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। बरेली कॉलेज, बरेली में सत्ताईस वर्ष बिताने के बाद 30 जून 2000 को आयोजित डॉ. गुप्त के विदाई समारोह पर भारी पड़ी मंधना कॉलेज की मात्र दो माह की नौकरी, केवल एक घण्टे की तैयारी में आयोजित विदाई समारोह की अविस्मरणीय यादें, ब्रह्मावर्त डिग्री कॉलेज के छात्र, शिक्षक, प्राचार्य और प्रबन्धक के प्रति अभिभूत होकर लिखा गया संस्मरण डॉ. गुप्त के अच्छे, ईमानदार, अनुशासनप्रिय अध्यापक होने के साथ-साथ ईमानदार और सहृदय लेखक होने का प्रमाण है।

'पुरस्कार भगवान दिलाए....' संज्ञक संस्मरण में डॉ. गुप्त लिखते हैं, "सच तो यह है कि हमारे अधिकांश विभागीय बन्धु ईर्ष्यादग्ध हैं। कुछ ने प्राचार्य जी को अनुचित रूप से प्रभावित कर रखा है, पर इससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। स्वाभाविक है कि सहयोगियों और समकालीनों में ईर्ष्या-द्वेष रहता ही है। जब निराला, महादेवी, बच्चन आदि समकालीनों को न मिलकर ज्ञानपीठ पुरस्कार कविवर सुमित्रानन्दन पन्त को मिला, तो निकटवर्ती साहित्यकारों ने भी ईर्ष्याभाव ही व्यक्त किया था। उन दिनों पंत जी ने बहुत व्यथित होकर किंचित् व्यंग्य के रूप में लिखा था -

पुरस्कार भगवान् दिलाये नहीं किसी को
मित्र शत्रु, हो जाते इससे, और प्रशंसक
कटु आलोचक बन, कृतित्व के साथ अपने
लघु चरित्र को बना दूषणों को पहाड़ पृथु
आत्मतुष्टि पाते हैं, तिल का ताड़ बनाकर।
कौन न्याय कर सकता, कौन बड़ा सर्जक है ?
पुरस्कार पा क्या लेखक महान् हो जाता ?
मैं उसका अनुमोदन करता-पुरस्कार से
लेखक कभी महान नहीं हो सकता निश्चित,
वर कृतियाँ ही शाश्वत कीर्ति स्तम्भ स्रष्टा का।
पुरस्कार से इनको भी भगवान बचाये
इनको भी सुनना न पड़े यह सब औरों से।

'सुमित्रानन्दन पंत'

गुप्त जी ने लिखा है, "माना कि पुरस्कारों की अपनी राजनीति है, यशलिप्सु रचनाकार पुरस्कार खरीदते हैं, संस्थाएँ खड़ी करके पुरस्कारों का आदान-प्रदान करते हैं, और भी नाना प्रकार के दाँव-पेंच चलते हैं। मुझे संतोष है कि मेरा पुरस्कार

वस्तुतः मेरे श्रम का प्रतिफल है, ईश्वरीय अनुकम्पा का वरदान है। यशलिप्सा मुझमें भी है। पुरस्कार प्राप्ति हेतु समय-समय पर आवेदन भी करता रहता हूँ। पर पुरस्कार की राजनीति से बचता हूँ।" (स्मृति के वातायन)

'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः' एक लम्बा संस्मरण है, जिसमें कुल जमा पाँच लोगों को अत्यन्त भावुक क्षणों में याद किया गया है। पिता की मृत्यु, सहपाठी श्याम की मृत्यु, ककुआ अर्थात् काका (चाचा) की मृत्यु, बुलाकी धोवी की पत्नी विमला का आत्महत्या का असफल प्रयास एवं दादा अर्थात् बड़े भाई की महाप्रयाण यात्रा के बाद, पर लिखे गये संस्मरणों को इस शीर्षक के अन्तर्गत संकलित किया गया है।

पिता की मृत्यु के बारे में डॉ. गुप्त लिखते हैं, "वह पहली मृत्यु थी, जिसका साक्षात्कार मैंने किया था। उस समय नहीं समझ सका था, पर बाद में पग-पग पर अनुभव हुआ कि पिता क्या होता है? पिता के अभाव में विधवा माँ को किन-किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है? अबोध बच्चों को पालना, उनकी शिक्षा, संरक्षण आदि कितना दुष्कर है?....भगवान किसी बच्चे के सिर से उसके माता-पिता का साया न हटाए।" (स्मृति के वातायन, पृ. 71)

श्याम जी डॉ. गुप्त का सहपाठी था, की ठोकर लगकर गिरने के बाद हुई मृत्यु की घटना को याद करते हुए डॉ. गुप्त लिखते हैं, "मैं, तब कक्षा आठ का छात्र था।... आज याद करता हूँ तो दुखी होता हूँ कि साथ वाला लड़का गिर गया, मैंने उठाया भी नहीं। इतना संवेदनहीन हो गया था कि दिन भर कक्षा में पढ़ा, न उसे देखने गया, न घर वालों से जाकर मिला, जबकि वह मेरे ही मुहल्ले का था, सहपाठी था। सच तो यह है कि तब तो उसके बारे में कोई भी विचार नहीं आया था, पर आज मृत्यु का वह रूप मुझसे भुलाए नहीं भूलता।" डॉ. गुप्त की यह स्पष्टवादिता और रचनात्मक ईमानदारी मन मोह लेती है। ककुआ की मृत्यु के बारे में डॉ. गुप्त लिखते हैं, "वह पहली मौत थी जो मैंने समझदार होने पर अपनी आँखों के सामने घटित देखी थी। वह मृत्यु अप्रत्याशित थी।....वह दिन और आज का दिन। उन पलों का स्मरण मात्र दिल को हिला देता है।" जीवन सभी को प्रिय है, कोई भी मरना नहीं चाहता। बूढ़ा हो जाना मंजूर, बीमार-परेशान रहना स्वीकार पर मरना नहीं। लेकिन, कभी-कभी परिस्थितियाँ ऐसी हो जाती हैं कि जीवन दुर्वह हो जाता हैं, संत्रास, कुंठा आदि ऐसे अनेक कारण हैं, जो जीवन के प्रति मोह समाप्त कर देते हैं। अवसाद, बेचैनी और हताशा से ग्रस्त होकर व्यक्ति मानसिक संतुलन खो बैठता है, और अचानक ही आत्महत्या कर बैठता है। कुछ ऐसी ही परिस्थिति में बुलाकी धोबी की 22-23 वर्षीया पत्नी विमला, जो तीन माह के पेट से थी, आत्महत्या करने की गरज से कुएँ में छलांग लगा लेती है। पर, ईश्वर की लीला। न उसे कुछ हुआ, न गर्भस्थ शिशु को। इस पर डॉ. गुप्त लिखते हैं, "मरते हैं आरज़ू में मरने की/मौत आती है पर नहीं

आती।" कुछ ऐसी ही हसरत अवसाद के क्षणों में कभी स्वयं लेखक ने भी पाल रखी थी, जब उसने अपनी लम्बी बीमारी से घबराकर 1964 में 'मरण का वरण' शीर्षक कविता लिखी। कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं --

अब बहुत ऊब चुका जग से
प्रिय ! तेरा साथ चाहता हूँ
शीघ्र भव-बंधन से कर दूर
मरण का वरण चाहता हूँ।।

लेकिन कर्मयोगी डॉ. गुप्त ने परिस्थितियों से हार नहीं मानी और 'चरैवेति, चरैवेति' को अपने जीवन का मूलमंत्र बनाया तथा जीवेम शरदः शतम् की भावना में विश्वास रखने लगे। डॉ. गुप्त स्वयं लिखते हैं, "दुख, पीड़ा, विषाद, अवसाद, कुंठा, संत्रास आदि मेरे प्रिय सहचर रहे हैं। प्रायः सात वर्ष तक रोगाक्रान्त होने के कारण शय्यासीन रहा, इतना भी नहीं कि अपने पैरों पर खड़ा ही हो सकूँ।....मुझमें अनेक बार टूट-फूट हुई। दोनों घुटनों का आपरेशन सन् 1965 में हो चुका था। सन् 1993 में पथरी निकालने के लिए पेट का आपरेशन हुआ। मोतियाबिन्द के सन्दर्भ में दोनों आँखों का आपरेशन हो चुका है और अभी दो-तीन वर्ष पूर्व 25 मई 2007 को (अब नौ वर्ष पूर्व) स्नानगृह में गिर जाने से जाँघ की हड्डी टूट गयी। अब वाकर की सहायता से चलता हूँ। नेत्र ज्योति क्षीण हो गयी है, पर कर्मशीलता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। सामान्य स्वास्थ्य अच्छा है, यद्यपि मधुमेह, सोराइसिस, संधिवात् जैसे अनेक रोगों ने आक्रान्त कर रखा है, पर तन-मन से मैं अत्यन्त स्वस्थ और सबल हूँ। कभी सोचता था कि 70-72 तक जी सकूँगा--आर्थिक-पारिवारिक विषयों से सम्बन्धित योजनाएँ 70 तक की ही बनाई थीं। पर, अब विश्वास है कि 85 वर्ष तक जिऊँगा ही, 90-92 तक भी जी सकता हूँ।

जब तक मृत्यु को पराभूत रख सकूँगा, तभी तक तो पत्नी सुहागवती रह सकेगी। उसे दुख क्यों दूँ? पुत्रों को संरक्षण-रहित क्यों छोड़ूँ? मुझे जीना है, जब तक सम्भव है, खुशी-खुशी जीना है। हे प्रभु ! भय से अभय की ओर, और मृत्यु से अमृत की ओर ले जाओ--मृत्योऽमृतम और शत वर्ष तक जीने की सामर्थ्य दो--'जीवेम शरदः शतम्।'

पुस्तक का सबसे महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ संस्मरण है, 'माता बिनु आदर कौन करे' जो लेखक की पूजनीया माँ पर केन्द्रित है। अम्मा अर्थात् माँ को याद करते समय उसके विभिन्न रूप, संघर्ष, त्याग, तपस्या, ममत्व आदि को स्मरण करते हुए लेखक भावुक हो उठता है। कबीर आदि को उद्धृत करने के साथ ही माँ द्वारा बार-बार कही जाने वाली बात, 'माता बिनु आदर कौन करे, धरती बिनु धीरज कौन धरे' की याद आती है और अचानक लेखक का चिन्तन उस समय उत्कर्ष को प्राप्त

करता है, जब वह पत्नी इन्दु के त्याग, तपस्या व लगन को माँ का त्याग, तपस्या और लगन के समतुल्य आँकने लगता है। उसे लगता है कि उसकी पत्नी उसके लिए उसकी अम्मा ही है।

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि पुस्तक में संग्रहीत सभी संस्मरण अपनी भाषिक क्षमता और शिल्प-विधान के बल पर जादुई संस्पर्श का अहसास कराते हैं। इन संस्मरणों को एक बार पढ़ लेने के बाद बार-बार पढ़ने का मन करता है। जैसे डॉ. गुप्त अपने संस्मरणों के विषय में लिखते हैं कि, 'मन उड़ि जात अजौ वहाँ' वैसे ही पुस्तक पढ़ने के बाद मुझे कहने का जी करता है कि 'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावे।'

●●●

–डॉ. चन्द्रशेखर तिवारी



कब से एक अदालत में हूँ
लेकिन मुझ पर जिरह न हो तो

10

'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' : एक अप्रतिम यात्रावृत्त

आदिकाल से ही मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु घुमन्तू जीवन व्यतीत करने लगा था। आधुनिक युग तक आते-आते मानव न केवल देश-विदेश की यात्राएँ करता आया है, अपितु अंतरिक्ष में भी विचरण करने लगा है। पुष्पक विमान का उल्लेख रामायण में मिलता है। आज व्यक्ति अंतरिक्षयान द्वारा चन्द्रमा व मंगल ग्रह पर भी पहुँच गया है। यही नहीं मंगल पर जीवन की सम्भावना होने के कारण वहाँ पर तो मनुष्य ने नई दुनिया बसाने की भी सोच ली है। यह सब मनुष्य के यायावरी स्वभाव के कारण ही सम्भव हुआ है।

यात्राएँ मनुष्य में एक नई ऊर्जा का संचार करती हैं। आधुनिक युग में मानव मात्र एक मशीन बनके रह गया है। घर परिवार, आफिस आदि के कार्य व जिम्मेदारियों से घबराकर मनुष्य कुछ दिन इनसे दूर भागकर आराम करना चाहता है और इसके लिए उसके पास सबसे अच्छा विकल्प है पर्यटन। भारत जैसे प्राचीन व सांस्कृतिक देश में पर्यटन व यात्राओं को अधिकांशतः तीर्थाटन से जोड़कर देखा जाता है क्योंकि पौराणिक मान्यताओं के अनुसार यह मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है किन्तु समय के साथ सोच बदली, मान्यताएँ टूटीं। आज पर्यटन को केवल तीर्थाटन से ही जोड़कर नहीं देखा जाता बल्कि वर्तमान दौड़-धूप की जिन्दगी से कुछ समय अपने लिए निकालकर आज का "आधुनिक व्यक्ति सपरिवार हिल स्टेशन जाना पसंद करता है, गोवा-बम्बई-पांडिचेरी आदि के तटों, बीचों और सागर की लहरों के साथ अठखेलियाँ करना पसन्द करता है, दिल्ली-आगरा-लखनऊ-हैदराबाद-कलकत्ता आदि महानगरों की ऐतिहासिक इमारतों को देखना चाहता है।'

यात्रा करने वाले को यात्री, घुमक्कड़, पर्यटक आदि नाना नाम दिये गये हैं। यात्रा के गंतव्य व्यक्ति-विशेष की रुचि व संसाधन आदि पर निर्भर करते हैं। इतिहास प्रेमी ऐतिहासिक स्थलों का चुनाव करते हैं तो धर्मानुरागी पर्यटक धार्मिक स्थलों पर जाना पसंद करते हैं। 'अथातो घुमक्कड़ जिज्ञासा' ने यायावर मनुष्य के गोचर अनुभवों को पहले सुनने-सुनाने को प्रेरित किया और जब लेखन कला का

विकास हुआ तो उन्हें लिखने लगा। आगे चलकर यही लेख यात्रावृत्त में बदल गए। आधुनिक हिन्दी गद्य में साहित्य-सृजन का श्रीगणेश करते हुए भारतेन्दु ने 'सरयूपार की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा' आदि अनेक रोचक यात्रा वृत्तान्त लिखे। तत्पश्चात् यात्रावृत्तान्तों को पुस्तकाकार प्रकाशन की अखण्ड परम्परा का सूत्रपात हुआ और लेखकों ने देश-विदेश की यात्राओं के वृत्तान्त पुस्तकाकार प्रकाशित कराए। पं० दामोदर शास्त्री कृत 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर कृत 'हमारी जापान यात्रा', राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'मेरी लद्दाख यात्रा', अज्ञेय कृत 'एक बूँद सहसा उछली' आदि हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण यात्रा वृत्तान्त हैं। अब तक हजारों यात्रावृत्तान्त प्रकाशित हो चुके हैं। यह परम्परा अब तक जारी है। इसी परम्परा की श्रृंखला की ही अगली कड़ी है, डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त कृत 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी।'

हिन्दी साहित्य जगत् के महान कवि, अनेक समीक्षात्मक और शोधग्रन्थों के प्रणेता डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' महत्त्वपूर्ण व उत्कृष्ट कोटि का यात्रावृत्तान्त है। अपने अनूठे व आकर्षक आवरण पृष्ठ से ही पाठकों का ध्यान स्वतः खींचने वाली पुस्तक में डॉ. गुप्त ने दक्षिण भारत के अन्तर्गत आने वाले पर्यटन स्थलों विशेषकर मैसूर, कुर्ग व बंगलौर का केवल शब्दांकन ही नहीं अपितु छायाचित्रांकन भी प्रस्तुत किया है, जिस कारण उनकी इस कृति के सौन्दर्य और आकर्षण में और अधिक वृद्धि हो गयी है। आकाश में उड़ते पक्षियों को देखकर प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि वह भी इन पक्षियों की भाँति उन्मुक्त गगन में स्वच्छन्द विचरण करे। लेखक की भी बचपन से यह अभिलाषा थी कि वह खुले गगन में उड़ान भरें। लेखक की इस इच्छा का सम्मान करते हुए उनके बड़े पुत्र डॉ. अभिनव ने उन्हें विमान द्वारा दक्षिण भारत की यात्रा कराने का न केवल आश्वासन दिया, बल्कि उनकी इस इच्छा को पूरा करने हेतु 28 दिसम्बर 2010 को पूरे परिवार की विमान यात्रा के टिकट भी बुक करा दिये।

यात्रा का आनन्द तो सपरिवार घूमने में ही है। लेखक ने अपनी पत्नी श्रीमती इन्दु गुप्त के साथ 26 दिसम्बर 2010 को प्रातः 9 बजे अपने ड्राइवर राजेन्द्र के साथ कार द्वारा दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। शाम 4 बजे वह अपने बड़े बेटे अभिनव के नोएडा (आवासीय परिसर जे.पी.आई.आई.टी. नोएडा) आवास पहुँचे। 27 को विश्राम किया तथा 28 दिसम्बर को अपने बेटे अभिनव तथा पुत्रवधू नेहा व पौत्री शुभांगी के साथ विमान द्वारा अपने छोटे बेटे अभिलेख व पुत्रवधू प्रिया के घर बंगलौर पहुँचे। वहाँ आराम करने के पश्चात् लेखक सपरिवार रंगपत्तम मैसूर, कुर्ग आदि की त्रिदिवसीय यात्रा सम्पन्न कर 31 दिसम्बर की रात बंगलौर वापस आ गए। 1 व 2 जनवरी 2011 को बंगलौर भ्रमण करने के पश्चात् सभी लोग 4 जनवरी (लेखक का

जन्मदिन) रात 1 बजे वापस दिल्ली आ गए और दो दिन बाद बरेली।

"यात्रावृत्तान्त लेखन स्वान्तः सुखाय रचना प्रक्रिया है। सामान्यतः लेखक अपने यात्रानुभावों को समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराता रहता है, फिर कालान्तर में उन्हें पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत करता है।" ताकि उसे पढ़कर केवल वह ही नहीं बल्कि पाठकगण भी आनन्दित हो सकें। यह प्रवृत्ति विश्वभर के साहित्यकारों में मिलती है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त भी इससे अछूते नहीं रहे। उन्होंने भी अपने यात्रानुभव को पुस्तकाकार रूप में अभिलेख प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कराया ताकि उनके द्वारा लिये गये यात्राआनन्द का अनुभव उनके पाठकगण भी कर सकें।

पुस्तक के प्रथम अध्याय में गुप्त जी ने अपने विमान यात्रा (दिल्ली-बंगलौर) का अनुभव बड़े ही रोचक अंदाज में करवाया है। "दिल्ली के इन्दिरा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे का अपना अलग सौन्दर्य है। एक अद्भुत लोक।" इतना ही नहीं इस बीच उन्होंने विमान से जुड़ी कई जानकारियों से भी पाठकों को अवगत कराया है।

अध्याय दो में लेखक ने हमें दक्षिण भारत की ऐतिहासिक व भौगोलिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए दक्षिण भारत के महत्त्वपूर्ण नगर मैसूर की यात्रा करायी है। आज का मैसूर नगर कर्नाटक प्रदेश का मुख्य नगर है, बंगलौर राजधानी और कुर्ग पर्वतीय नगर है। विमान सेवा दिल्ली से मैसूर तक सीधे उपलब्ध न होने के कारण लेखक पहले दिल्ली से बंगलौर विमान द्वारा गये। फिर दोनों बेटे-बहुओं, पत्नी व पौत्री के साथ टैक्सी से मैसूर।

17वीं शती में एक हिन्दू योद्धा ने वाडियार वंश की स्थापना की जिसे मुगल सम्राट औरंगजेब ने 1704 ई0 में मान्य कर लिया। मैसूर राज्य के कोलार जिले में सन् 1722 ई0 में जन्मे हैदर अली को उसकी माँ मैसूर लायी जो अपनी वीरता, कूटनीति और रणकौशल के बल पर प्रधान सेनापति और सेनापति से सम्राट बन गया। हैदर अली के बाद उसका पुत्र टीपू सुल्तान मैसूर का राजा बना किन्तु अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करते हुए टीपू सुल्तान की हत्या के साथ ही मैसूर साम्राज्य का अन्त हो गया।

अतीत का मैसूर साम्राज्य अब मैसूर नगर तक सीमित रह गया है। आज के मैसूर नगर में अनेक दर्शनीय स्थान हैं। पर वास्तविक सौन्दर्य, महलों, मनोरम उद्यानों, म्यूज़ियम, झीलों और मंदिरों आदि में है। नगर में सर्वाधिक दर्शनीय स्थान महाराज चामराज वाडियार का भव्य प्रासाद है। इन्डो-सेरासेनिक शैली में निर्मित यह प्रासाद मैसूर के वाडियार नरेशों की प्रशासनिक राजधानी था। मैसूर से लगभग 15 किमी. उत्तर-पूर्व में टीपू सुल्तान की प्रशासनिक राजधानी श्रीरंगपट्टम है जहाँ अनेक दर्शनीय स्थान हैं, जैसे रंगनाथ जी का भव्य मंदिर, टीपू सुल्तान का महल

(जो अब संग्रहालय का रूप ले चुका है), श्री रंगनाथिपत्तु, बर्ड सेंचुरी आदि।

मैसूर के उत्तर-पश्चिम में वृन्दावन गार्डन है। मैसूर पैलेस से दक्षिण-पूर्व में रेसकोर्स है, जहाँ कई छोटी-बड़ी झीलें हैं, जिसमें से तीन झीलें लिंगाम्बुधि, कुक्कुराहल्ली और करंजी बहुत बड़ी है। इसके अतिरिक्त संत फिलोमिना गिरिजाघर, काँदीपुर राष्ट्रीय पार्क, नागरहोल राष्ट्रीय पार्क, रेलवे पार्क, होयसल मंदिर, त्रिकुटाचल मंदिर, भगवान कीर्तिनारायण स्वामी का भव्य मंदिर, श्रवण बेलगोला जैन तीर्थस्थल, गगनाचुक्की व भाराचुक्की झरने आदि अन्य दर्शनीय स्थल हैं। साथ ही मैसूर नगर में स्थित महिषासुर व नन्दी की विशाल प्रतिमा पर्यटकों का ध्यान बरबस ही अपनी ओर खींच लेती हैं।

मैसूर घूमने के पश्चात् लेखक सपरिवार कुर्ग की ओर चल दिया। कर्नाटक प्रदेश के पश्चिमाँचल में कुर्ग एक पर्वतीय जिला है जिसका वास्तविक नामक कोडागू है। कुर्ग अपनी सुन्दरता के कारण दक्षिणी कश्मीर के नाम से विख्यात् है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी कुर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पांड्य, गंग, चोल, होयसल, हलेरी आदि अनेक राजवंशों के नरेशों ने समय-समय पर शासन किया है। वर्तमान कोटागू जनपद में तीन तालुके अर्थात् तहसीलें हैं - मदिकेरी, वीराजपेट और साम्बर पेट। मदिकेरी में जनपद का मुख्यालय है।

लेखक मुख्य मार्ग से होते हुए तिब्बती शरणार्थियों के मठ स्वर्ण मंदिर गया। सन् 1959 में दलाईलामा द्वारा भारत में शरणस्थली के रूप में प्रदान किये गये स्थानों में एक है पिल्जोर। पिल्जोर में निर्मित मठ का नाम पिल्जोर धार्जेलिंग मानेस्टरी है। यह मठ बाइला कुप्पी गाँव में बनाया गया है जहाँ तिब्बती शरणार्थी निवास करते हैं। यह गाँव एक लघु तिब्बत के समान है। यहाँ के विभिन्न मठों में भगवान बुद्ध की अनेक छोटी-बड़ी मूर्तियाँ हैं। मुख्य मंदिर को स्वर्ण मंदिर कहा जाता है। यहाँ भगवान बुद्ध की 60 फीट ऊँची अत्यन्त भव्य और मनोहारी प्रतिमा है। डॉ. गुप्त को आश्चर्य हुआ कि तिब्बती शरणार्थियों के पास इतनी सम्पदा कहाँ से आती है कि सोने के मंदिर बना सकें, व उनका इतना सुन्दर संचालन कर सकें।

भगवान बुद्ध के दर्शनोपरान्त लेखक निसर्गधाम पहुँचे। निसर्गधाम कावेरी नदी पर बने बाँध और मुख्यमार्ग के बीच में बाँस का सघन वन है जिसे सजा-सँवार कर पिकनिक स्पाट बना दिया गया है। निःसर्ग धाम से मदिकेरी की ओर प्रस्थान करने पर उत्तर दिशा में कई दर्शनीय स्थान हैं, जिनमें हरगी बाँध, होनम्मा झील, पाँडव गुफा आदि प्रमुख हैं।

मदिकेरी कस्बे के चौक से दो-तीन किमी. की दूरी पर राजा-सीट नामक स्थान है। लेखक ने राजा सीट पर सपरिवार बैठकर सूर्यास्त का स्वर्णिम सौन्दर्य देखा और फव्वारों फूलों आदि का आनन्द लिया। राजा सीट से वापस चौक होते हुए

उत्तर दिशा में स्थित हलेरी राजवंशों के राजाओं द्वारा बनवाया गया किला और महल देखने गये। यह किला पारम्परिक और आधुनिक शिल्प कला का अद्‌भुत प्रतिमान है। दुर्ग परिसर में अधिक देर तक न रुककर वापस मुड़कर चौक से दो किमी. पूर्व में स्थित ओमकारेश्वर मंदिर भी गये जिसे हिलेरी वंश के राजा लिंगराज द्वितीय ने निर्मित कराया था।

दूसरे दिन सब नालकंद राजमहल देखने गये। मदिकेरी से दक्षिण-पश्चिम में 45 किमी. दूर कोटागू के अतीत का गौरव कहा जाने वाला 1908 मीटर की ऊँचाई पर सन् 1792 में डोडा वीर राजेन्द्र द्वारा बनवाया गया महल है। पर्वत पर बने इस महल के परिसर में हरियाली का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है।

पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण यहाँ अनेक जलप्रपात हैं जैसे इरपू, एबी, चेलवरा, मल्लहली आदि। जिसमें से एबी झरना लेखक को सर्वाधिक मनोहारी लगा। पहाड़ी ढालों पर कॉफी और केले के पेड़ों के बीच से गुजरती हुई ढालू संकीर्ण सड़क से होते हुए लेखक दुबारे पहुँचे। दुबारे मदिकेरी से 40 किमी0 दूर कई एकड़ में फैला एक नैसर्गिक द्वीप है। द्वीप में पेड़-पौधों और जल प्रवाह से अद्‌भुत दृश्य दीख पड़ता है। राजकीय वन विभाग ने यहाँ हाथियों का प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया है। लेखक ने जब दुबारे से प्रस्थान किया तो साँझ घिर आई थी। लगभग आठ बजे लेखक का परिवार मैसूर वापस पहुँचा। होटल कामत में भोजन करने के पश्चात् कर्नाटक प्रदेश की राजधानी बंगलौर चल पड़ा।

भारत की सिलीकान वैली के नाम से विख्यात इस महानगर में अनेक भारतीय कम्पनियाँ स्थापित हैं तथा अमेरिका की गूगल, याहू, आईबीएम, माइक्रोसाफ्ट आदि कम्पनियों के कार्यालय हैं। ये सब लगभग डेढ़ लाख करोड़ रुपये का योगदान करती हैं जो भारतवर्ष के सूचना प्रौद्योगिकी की समस्त आय का एक तिहाई हैं।

भारतवर्ष की दूसरे नम्बर की आई.टी. कम्पनी इन्फोसिस का मुख्यालय बंगलौर में है। लेखक के कनिष्ठ पुत्र अभिलेख गुप्त इस कम्पनी में साफ्टवेयर इंजीनियर के पद पर कार्यरत थे। बंगलौर की 80% जनसंख्या हिन्दू है और 13% मुस्लिम। शेष अन्य धर्म के हैं। यहाँ कन्नड़, कोंकणी, तमिल, तेलगू, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाएँ बोली जाती हैं। हिन्दी सभी के लिए सम्पर्क भाषा का काम करती है।

अध्याय चार में बंगलौर की उत्पत्ति, विकास तथा इस महानगर के सामाजिक आर्थिक जीवन पर ढेर सारी सूचनाएँ पाठकों को उपलब्ध कराई गई हैं।

बंगलौर का प्राकृतिक सौन्दर्य देखने योग्य है। नगर के उत्तर में नदी पहाड़ियाँ हैं, जहाँ से एक नदी वृषभवती बहती है। हेसराघट्टा झील के अतिरिक्त अन्य छोटी-छोटी झीलें भी हैं। हरियाली, उद्यानों और पार्कों के कारण ही बंगलौर को गार्डन

सिटी कहा गया है जिनमें लाल बाग और वन्य जीव उद्यान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। लाल बाग में बनाया गया ग्लास हाउस रात्रि की चकाचौंध में पुष्प प्रदर्शनी आदि के लिए विख्यात् है।

बनटघट्टा राष्ट्रीय उद्यान एक महत्त्वपूर्ण पिकनिक स्थल है। यहाँ का बटर फ्लाई पार्क रंग-बिरंगी तितलियों की शोभा दिखाने और बाल क्रीड़ाओं के लिए दूर-दूर तक विख्यात् राष्ट्रीय उद्यान है। लाल बाग से दूसरी ओर राजपथ पर अनेक भव्य प्रशासकीय भवन हैं जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधान सौंध है, जिसे उत्तर प्रदेश में विधान सभा कहते हैं।

बंगलौर में एक प्रमुख दर्शनीय स्थल 'गौतम बुद्ध साधना केन्द्र' है। यहाँ मिस्र के पिरामिडों जैसा एक विशाल पिरामिड बनाया गया है। इसके अतिरिक्त सर्वाधिक चर्चा में आये स्वामी नित्यानन्द का सेवाधाम आश्रम व सत्य साईं बाबा का कार्यालय भी बंगलौर में है। "अपने परिवार के साथ जाने-अनजाने अद्भुत नगरों, प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन यद्यपि आत्मिक संतोष तो प्रदान करता है पर वास्तविक आनन्द धाम तो अपना घर है।" यदि पत्नी सुखदा कल्याणी तो घर ही है 'सुख शान्ति धाम' यदि क्लांत विहग को शांति मिले, तो घर ही सच्चा स्वर्गधाम।" यात्री रूपी पक्षी कितनी भी ऊँची उड़ान भर ले पर आना तो घर ही पड़ता है ठीक वैसे ही "जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै।"

तीन दिन बंगलौर घूमने के बाद लेखक भी अपने छोटे बेटे व बहू को वहीं छोड़ विमान द्वारा वापस दिल्ली और फिर बरेली आ गये।

प्रस्तुत पुस्तक उपरोक्त पर्यटन स्थलों की यात्राओं का विस्तृत यात्रावृत्तान्त है। यह पर्यटन पर केन्द्रित अनूठी किताब है जिसमें पूरा दक्षिण भारत समाया हुआ है। लेखक ने इसमें अपनी यात्रा के रोचक और विभिन्न सूचनाओं से भरे विवरण दिये हैं। इसमें मैसूर, कुर्ग व बंगलौर का वर्तमान, इतिहास, संस्कृति ही नहीं बल्कि भूगोल और समाजशास्त्र भी है। इस यात्रावृत में लेखक की भाषा और शिल्प सौष्ठव, काव्यानुराग और सरस हृदय भी स्पष्ट अंकित दिखता है। वह प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य का अनुरागी है तो केवल नेकर-बनियान पहने विदेशी पर्यटक भी आकर्षण का केन्द्र बन जाती है-"चतुर्दिक बिखरे सौन्दर्य को अपनी आँखों से पीती अपने आपमें मग्न और निर्भीक।" प्रस्तुत यात्रावृत्तान्त सूचना और रचनात्मकता की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध नजर आता है। इतना ही नहीं लेखक ने पुस्तक के अन्त में इन जगहों से सम्बन्धित मानचित्र भी प्रस्तुत किये हैं।

अपनी अभिव्यक्ति में यात्रावृत्तान्त तभी सफल माना जा सकता है जब पाठक को लगे हम केवल इन स्थानों के बारे में पढ़ नहीं रहे हैं बल्कि इन स्थानों की यात्रा भी कर रहे हैं और यात्रा के सुख की अनुभूति कर रहे हैं। कहना न होगा कि डॉ. सुरेशचन्द्र

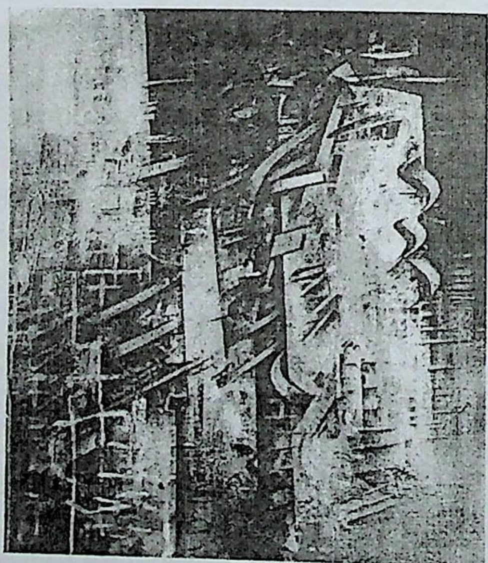
गुप्त इसमें शत-प्रतिशत सफल हुए हैं। दक्षिण भारत पर लेखक ने जो सचित्र जानकारी दी है, वह पाठकों के लिए उपयोगी व रोचक है।

इस कृति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और वैशिष्ट्य 'परिशिष्ट' में है। इसमें लेखक ने 'यात्रावृत्त का वृत्तान्त' शीर्षक में जहाँ आदिकाल से अब तक की प्रमुख ऐतिहासिक-धार्मिक-व्यापारिक यात्राओं का वर्णन किया है, वहीं दूसरी ओर हिन्दी गद्य साहित्य में यात्रा साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करते हुए प्रमुख यात्रावृत्त लेखकों व उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है। इसके साथ ही विश्वप्रसिद्ध यात्रियों के चित्र भी दिये गये हैं।

पुस्तक के अंत में चार मानचित्र भी दिए गए हैं। पहला मानचित्र 'यात्रापथ' शीर्षक से है, जिसमें दिल्ली से बैंगलोर (विमान यात्रा), बंगलौर से मैसूर और कुर्ग के यात्रापथ को प्रदर्शित किया गया है। इसके पश्चात् मैसूर नगर, मदिकेरी नगर (कुर्ग) और बैंगलोर नगर के मानचित्र दिए गए हैं। सबसे अंत में, पौत्री शुभांगी द्वारा पाठकों का अभिवादन की मुद्रा में रंगीन चित्र हैं, जो दर्शनीय और प्रशंसनीय है। अस्तु, 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' केवल यात्रावृतान्त ही नहीं है, अपितु यात्राविषयक उपयोगी कृति भी है।

●●●

—डॉ. समराना फय्याज़



11

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की शोधदृष्टि

(शोधायन के विशेष संदर्भ में)

हिन्दी गद्य एवं पद्य साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में, एकमात्र नाटक-विधा को छोड़कर, समान रूप से कलम चलाने वाले आचार्यवर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त को पढ़ना सुखद लगता है। ईमानदारी की बात कहूँ तो गाजीपुर के बाहर की दुनिया में गिने-चुने नाम ही हैं, जिनसे मैं उस कदर प्रभावित हूँ, जिस कदर आदरणीय डॉ. गुप्त से। वे एक साथ कवि, समीक्षक, सम्पादक, आलोचक, संस्मरणकार, निबंधकार, उपन्यासकार, रिपोर्ताज लेखक, जीवनीकार और यात्रावृत्तकार आदि रूपों में न केवल मुझे बेहद प्रभावित करते हैं, अपितु आकर्षित भी करते हैं। उनका लेखन सर्वत्र चकितकारी, बेहद प्रीतिकर एवं प्रभावशाली है। 'साहित्यायन' पत्रिका के माध्यम से भी उन्होंने अपनी एक अच्छी पहचान निर्मित की है। व्यक्ति के रूप में तो वह कितने भले एवं अच्छे हैं, इस पर यदि पृथक् से लिखना चाहूँ तो शायद एक पूरी-की-पूरी पुस्तक लिख डालूँ तो भी शायद कुछ बातें लिखने को बाकी ही रह जाएँ। उनसे जुड़े घनेरों ऐसे प्रसंग और संस्मरण हैं जिन पर आसानी से बहुत कुछ लिखा जा सकता है। मेरे जैसे अदना व्यक्ति (पाठक, लेखक या समीक्षक, मैं हूँ या नहीं, यह तो नहीं जानता पर व्यक्ति जरूर हूँ, यह अच्छी तरह जानता हूँ) को जितना उनका स्नेह, शील-सौजन्य और आशीर्वाद प्राप्त है, उतना कम ही लोग निर्बल और उपेक्षित लोगों को दे पाते हैं। कहा गया है, "सबै सहायक सबल को, निबल न कोउ सहाय/पवन जगावत आग को दीपहिं देत बुझाय।" आशय स्पष्ट है कि बरती आग को तो सब तापते हैं, सिराई आग के पास कोई बैठे तब तो उसके धैर्य, संतोष और त्याग का पता चले। आदरणीय गुप्त जी ऐसे ही व्यक्ति हैं। वे लेखन को जीने वाले व्यक्ति हैं। साहित्य उनका व्यवसाय नहीं व्यसन है। वे उसी को जीते हैं, खाते-पहनते, ओढ़ते-बिछाते हैं। डॉ. गुप्त की लगभग सौ कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। विगत् वर्ष प्रकाशित शोधपरक कृति शोधायन विद्वान् लेखक की शोधदृष्टि और शोधकार्य से साक्षात्कार कराती है। उनकी यह कृति निष्पक्ष, तटस्थ और पूर्वाग्रहरहित हैं, जो सुधी पाठकों एवं सहृदय समीक्षकों को बरबस ही अपनी ओर

आकर्षित करती है।

पन्त जी के सन्दर्भ में की गयी उनकी टिप्पणी मेरे कथन के आलोक में द्रष्टव्य है--"महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त छायावाद के प्रस्तोता और विचारक थे। वे कबीर, सूर, तुलसी आदि मंत्रद्रष्टा कवियों की श्रेणी में आते हैं। उनका समस्त साहित्य उनकी दार्शनिक चेतना को अभिव्यक्ति देने वाला उदात्त वाङ्मय है। उनके अनुसार मानव अपनी पूर्णतः में ईश्वर का प्रतिनिधि है। जीवन (चेतना) अधोमुखी होने पर जड़ पदार्थ और ऊर्ध्वमुखी होने पर ब्रह्म हो जाता है। जड़ चेतन की एकता में सतत् प्रवाहमान जीवन को परिलक्षित करते हुए पन्त जी ने विरोधी प्रतीत होने वाले तत्त्वों में समन्वय, रागभावना के परिष्कार, सांस्कृतिक संयोजन और विश्वशासन की स्थापना का स्वप्न देखा है। उनकी समस्त दार्शनिक चेतना का केन्द्र-बिन्दु 'मानव' है। उनका 'लोकायतन' दिव्य मानवता को साकार करने वाला महाकाव्य है।" मुझे नहीं पता कि हिन्दी साहित्य में कितने समीक्षकों के पास यह दृष्टि और समझ पंत जी के व्यक्तित्व और उनके साहित्य को लेकर है, जो डॉ. गुप्त में दिखाई देती है।

डॉ. गुप्त की इस समर्थ दृष्टि का प्रमाण है शोध और आलोचना की सद्य: प्रकाशित उनकी कृति 'शोधायन', जिसमें समय-समय पर लिखे गये उनके कुल नौ शोधपत्र संकलित हैं। कृति आद्योपान्त विषय-वैविध्य से पूर्ण है। कारण, इसमें संकलित सभी निबंध पृथक्-पृथक् विषयों पर केन्द्रित हैं। पुस्तक के शोध-निबन्ध को पढ़ते समय अनुसंधित्सुओं एवं साहित्य के सुधी एवं गम्भीर पाठकों को निश्चित रूप से सुख की प्रतीति होगी, ऐसा मैं कृति को पढ़ने से प्राप्त अपने अनुभवों के आधार पर दावे के साथ कह सकता हूँ।

हिन्दी के विद्वान् कहे जाने वाले तथाकथित महापुरुष कितने दंभी, संकीर्ण और कुंठित मनोवृत्ति के होते हैं, डॉ. गुप्त ने अपने पीएच.डी. और डी.लिट्. प्रकरण के माध्यम से तथ्य को भी बखूबी उद्घाटित किया है। इस प्रकरण को पढ़ने के बाद हमें अपने साहित्य-देवताओं के अन्दर बैठे देवत्व (?) का दर्शन होता है। साथ ही विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत और धैर्य न टूटने देने की प्रेरणा मिलती है।

ध्यातव्य है कि डॉ. गुप्त के जिस शोधकार्य को डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने अत्युत्कृष्ट कार्य मानते हुए उसमें मौखिकी-परीक्षा कराने की आवश्यकता भी नहीं समझी, उसी कार्य को दूसरे परीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा ने कूड़ा-कचरा कहते हुए न केवल खारिज किया अपितु शोधप्रबंध फिर से लिखे जाने की आवश्यकता तक बता डाली जबकि तीसरे परीक्षक डॉ. रघुवंश ने भी उक्त कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। यही नहीं उसी कार्य को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का आत्रेय पुरस्कार भी दिया गया, जो शोध के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ प्रबंध को दिया जाता है।

'शोधायन' में छोटे-बड़े कुल नौ शोधपत्र संकलित हैं। इनमें पहला शोधपत्र 'हंस जवाहिर : एक अध्ययन' एम. ए. उत्तरार्द्ध में लघुप्रबंध के रूप में प्रस्तुत

शोधकार्य (वर्ष 1969-70) का संक्षिप्त रूप है। यह शोधपत्र भाषा विभाग हरियाणा की मासिक पत्रिका 'सप्त सिन्धु' (जुलाई 1976) में प्रकाशित हो चुका है। इस कार्य को उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी के विद्वान् प्राध्यापक डॉ. प्रभाकर शुक्ल के मार्गदर्शन में सम्पन्न किया था। यह लघुप्रबंध कासिमशाह कृत 'हंस जवाहिर : एक आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक से प्रकाश बुक डिपो, बरेली से पुस्तक रूप में वर्ष 1996 में प्रकाशित हुआ था। सौभाग्य से मेरे पास प्रथम संस्करण वाली पुस्तक उपलब्ध है। पुस्तक को पढ़ने के बाद यह कहीं से नहीं लगता कि एम.ए. में पढ़ने वाले किसी छात्र ने यह पुस्तक लिखी है। मौलिक और अछूता विषय, गम्भीर अध्ययन, चिन्तन-मनन, विश्लेषण और भाषा देखकर यही लगता है कि कृति को विषय के किसी विद्वान् अध्यापक ने लिखा है।

लघु प्रबंध के प्रकाशन के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए गुप्त जी लिखते हैं, "भारत की सूफी प्रेमाख्यान परम्परा में महाकवि जायसी पद्मावत के पश्चात् कासिमशाह कृत हंस-जवाहिर ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रेमाख्यान है। विश्वविद्यालयों में केवल 'पद्मावत' पढ़ाया जाता है। इस कारण हिन्दी जगत् अन्य सूफी प्रेमाख्यानों को पढ़ने की प्रेरणा दे सके और शोधार्थी अन्य सूफी कवियों को शोध का विषय बना सकें - इसी प्रयोजन से यह लघु प्रबंध प्रकाशित किया जा रहा है।"

पूरा शोधपत्र कुल आठ शीर्षकों - कवि परिचय, कृति परिचय, कथानक, कथा-स्वरूप, चरित्र-चित्रण, अध्यात्म और दर्शन, संस्कृति चित्रण, शिल्प सौन्दर्य-- में विभक्त है। शोधपत्र को पढ़ने के बाद एक बात सम्पूर्णतः दावे के साथ कही जा सकती है कि कासिमशाह और उनकी अमूल्य कृति हंस जवाहिर के विषय में पृथक् से पढ़ने अथवा स्रोत-सामग्री जुटाने के लिए कोई जरूरत नहीं, यह शोधपत्र अपने आप में इस कार्य के लिए पर्याप्त है।

पुस्तक में संग्रहीत दूसरा शोधपत्र 'पंत की दार्शनिक चेतना' लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में सन् 1973 में इसी शीर्षक से प्रस्तुत पीएच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोधप्रबंध का संक्षिप्त रूप है। यह वही शोधप्रबंध है जिसके संदर्भ में मैं ऊपर चर्चा कर चुका हूँ और प्रसंगवश बता चुका हूँ कि इस कार्य (प्रबंध) को आत्रेय हिन्दी विकास संस्थान, मेरठ से सर्वोत्तम शोधप्रबंध का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। स्वाभाविक है कि कृति महत्त्वपूर्ण व स्तरीय है, जिसका प्रमाण उसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का पुरस्कार प्राप्त होना है।

विवेच्य शोध-पत्र में पंत के बारे में, खासकर उनके दर्शन-पक्ष को लेकर, प्रस्तुत डॉ. गुप्त की अनुसंधित्सु-दृष्टि की दाद देनी पड़ती है। अपने विभिन्न अध्ययन-मनन और चिन्तन के विश्लेषणोपरान्त डॉ. गुप्त द्वारा प्रस्तुत निष्कर्ष इस बात का प्रमाण है कि पंत के दर्शन पक्ष के विषय में उन बहुत सारी अनसुलझी

गुत्थियों को सुलझाया गया है, जिन पर उनके पूर्व के विद्वानों ने कलम भी चलाने की आवश्यकता नहीं समझी, फलतः बहुत सारे पक्ष (बिन्दु) अनावृत्त होने से रह गये थे।

डॉ. गुप्त लिखते हैं, "दर्शन दो रूपों में सम्प्राप्त है -- अध्यात्म दर्शन और व्यावहारिक दर्शन। ब्रह्म, जीव, जगत्, माया और मोक्ष को अध्यात्म दर्शन का विषय कहा गया है तथा मानव और जगत् को ही मुख्य प्रतिपाद्य मानकर सक्रिय चिन्तन व्यावहारिक दर्शन होता है। मुख्यतः अध्यात्म चिंतन ही दर्शन का मूल आधार है। ब्रह्म, माया और मोक्ष की प्रधानता अध्यात्म दर्शन की ओर ले जाती है, और जीव-जगत् के प्रति चिन्तन की सक्रियता व्यावहारिक दर्शन को जन्म देता है। सभी का एक ही लक्ष्य है – मानवता का विकास, दुःखों से निवृत्ति और परम सुख की अनुभूति अर्थात् प्राणिमात्र का सर्वांगीण विकास एवं कल्याण।" (शोधायन, पृ. 35)

अपने इस कथन के आलोक में पंत का मूल्यांकन करते हुए डॉ. गुप्त लिखते हैं, "महाकवि सुमित्रानन्दन पंत द्रष्टा कवि हैं। उनका समस्त साहित्य उनकी दार्शनिक चेतना को अभिव्यक्ति देने वाला उदात्त काव्य है। वे सूर, तुलसी, प्रसाद आदि उच्च कोटि के मंत्र-द्रष्टा कवियों की श्रेणी में आते हैं। उनकी कविता में सम्प्राप्त दार्शनिक उक्तियों को मंत्र कहा जा सकता है। महर्षि अरविन्द ने मंत्र को सर्वश्रेष्ठ कविता कहा है। औपनिषदिक दर्शन, गांधीवाद, नवचेतनावाद आदि को अभिव्यक्ति देने वाली उनकी कविता मंत्र-प्रणेता दार्शनिक छवि प्रस्तुत करती है।" (वही, पृ. 35-36)

वे लिखते हैं, पंत की दार्शनिक चेतना सतत् ऊर्ध्वमुखी रही। अपनी किशोरावस्था में वे कल्पनाजीवी भावुक कवि थे, किन्तु उस समय भी वे अन्तर्मन में जीवनमूल्यों के स्वीकार के प्रति संघर्षरत थे। वे मात्र सोलह वर्ष की किशोरवय में लिखित 'हार' नामक उपन्यास में नायक के रूप में संन्यासवृत्ति को अपनाकर विश्वमांगल्य का पथ अपनाते हैं। उनके इस प्रयत्न के बारे में आलोचकों ने आरोप लगाया है कि उन्होंने वैदिक मंत्रों का भावानुवाद किया है, मार्क्सवाद को पचाने से पूर्व ही कविता में अभिव्यक्त कर दिया है, अथवा यह कि अरविन्द दर्शन की कार्बन कापी है नवचेतना काव्य। पर, पंत का गहन अध्ययन-विश्लेषण स्पष्ट करता है कि उनकी दार्शनिक चेतना न भावानुवाद है, न कार्बन कापी। उनकी मूलचेतना आद्योपान्त एक रही है और वास्तव में आलोचकों और पंत जी को समग्रतः न देखकर, खण्ड-खण्ड करके देखने के प्रयास के चलते ऐसा हुआ है।

पंत जी का दर्शन "बौद्धिक क्रीड़ा न होकर, जीवनसत्य के प्रति यथार्थ दृष्टि है। उनकी दार्शनिक चेतना जीवन के शाश्वत व सामयिक प्रश्नों के समाधान का प्रारूप ही नहीं प्रस्तुत करती, अपितु दिव्य जीवन प्राप्ति की चेतना भी उद्बुद्ध करती है। वह

भौतिक जीवन की समृद्धि के साथ ही भू-स्वर्ग स्थापन की रूपरेखा भी प्रस्तुत करती है। आज का जीवन-दर्शन, वैमनस्य, कुंठा, संत्रास, भय, धनोन्माद, बाहुबल, अहं और वैज्ञानिक आविष्कारों के पैशाचिक प्रयोग से अभिशप्त है। पंत की दार्शनिक चेतना इनका शमन कर भौतिक जीवन-यापन करते हुए ही नवीन मानवता के सृजन का संधान प्रदान करती है"। पंत जी अपनी प्रथम कृति 'हार' से लेकर महाकाव्य 'लोकायतन' तक इसी चेष्टा में संलग्न रहे हैं। विश्वमांगल्य और मानवता का जो बीज उनके अन्तर्मन में प्रारम्भ से विद्यमान था, वही विभिन्न दार्शनिक विचारों से पल्लवित-पुष्पित होकर धरा-स्वर्ग की संरचना में लीन हुआ और नवमानवतावाद के सृजन में सक्षम हुआ।" (शोधायन, पृ. 52)

पुस्तक में तीसरा शोधपत्र 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' डी.लिट्. उपाधि के लिए रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय में प्रस्तुत शोधप्रबंध का संक्षिप्त रूप है। शोधपत्र में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने छायावादोत्तर काल को दो भागों--प्रगति-प्रयोग काल और नवलेखन काल में बाँटते हुए छायावादोत्तर काव्य का निर्धारण 1938 से किया है।

बड़े ही तार्किक ढंग से छायावादोत्तर शब्द की व्याख्या करते हुए विवेच्य शोधपत्र में डॉ. गुप्त लिखते हैं, "छायावादोत्तर का शाब्दिक अर्थ है छायावाद के बाद। छायावाद को कुछ आलोचकों ने दो भागों में बाँटा है -- पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। छायावाद के उत्तरार्द्ध को उत्तर छायावाद भी कहा गया है। कुछ लोग भ्रमवश उत्तर छायावाद और छायावादोत्तर को एक ही समझ लेते हैं। छायावाद का पूर्वार्द्ध जहाँ कवि के व्यक्तित्व के आस्फलन और विश्वदृष्टि के उन्मेष का काव्य है, वहीं उसका उत्तरार्द्ध उसके संकुचन और सीमाबद्ध होने का इतिहास है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, पृ. 422)।" उत्तर छायावाद को छायावाद और प्रगतिवाद का संधिकाल माना जा सकता है। समय सीमा की दृष्टि से 1936 से 38 तक का काल उत्तर छायावाद कहा गया है। इसके बाद की सम्पूर्ण हिन्दी कविता को छायावादोत्तर हिन्दी कविता कहा जा सकता है।

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण करते-करते डॉ. गुप्त अत्यन्त बारीकी से गांधीवाद को भी स्पष्ट करते चलते हैं। वे अपने अध्ययन के द्वारा यह स्थापित करते हैं कि आध्यात्मिक और व्यावहारिक, दोनों पक्षों का संस्पर्श करने के कारण गांधीवाद को सम्पूर्ण दर्शन कहा गया है। शायद यही कारण है कि गांधीवाद आज विश्वदर्शन बन चुका है। सीमान्त गांधी (खान अब्दुल गफ्फार खाँ), अफ्रीकी गाँधी (नेल्सल मण्डेला), अमेरिकन गांधी (मार्टिन लूथर किंग) आदि के रूप में गांधीवाद विश्वभर में वरेण्य है, तो इसलिए कि वह व्यावहारिक है। डॉ. गुप्त ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि "प्रायः सभी छायावादोत्तर हिन्दी कवियों ने औपनिषदिक दर्शन को अभिव्यक्ति दी है, और पारम्परिक मान्यताओं को ही

स्वीकार किया है।" (शोधायन, पृ. 63)

छायावादोत्तर हिन्दी कविताओं के अध्ययनोपरान्त डॉ. गुप्त इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, "छायावादोत्तर हिन्दी कविता में व्यक्त मानव की प्रतिष्ठा, मानव की स्वतंत्रता, अस्मिता और चयन का अधिकार, ईश्वर-धर्म-आस्तिकता आदि का विरोध, आदर्शवाद और आस्था के प्रति अनास्था, अमरत्व और आत्मरक्षा का प्रयास, एकाकीपन और अजनबीपन की अनुभूति, ऊब, निरर्थकताबोध, वेदना का वरण, समाज और व्यवस्था में विलगाव, कुंठा और संत्रास का चित्रण, आक्रोश और चीख की अभिव्यंजना, विसंगति और विद्रूपता, मृत्युबोध और आत्महत्या आदि के स्वर अस्तित्ववादी कविता में मुखरता से अभिव्यक्त हुए हैं। छायावादोत्तर हिन्दी कवियों ने जहाँ निराशा, पलायन, आत्महत्या, मृत्युबोध जैसे निषेधात्मक तत्त्वों को अभिव्यक्ति दी है, वहीं ईश्वरीय सत्ता में आस्था, जिजीविषा और उदीषा के स्वरों को भी मुखरित किया है।....छायावादोत्तर हिन्दी कविता में जिन अन्य प्रमुख दर्शन्नों को अभिव्यक्ति मिली है, वे पाँच है -- रहस्यवाद, दुःखवाद, नियतिवाद, भोगवाद और मानवतावाद।" (शोधायन, पृ. 66)

'पंत-साहित्य में भावी संस्कृति का स्वरूप' संज्ञक चतुर्थ शोधपत्र में डॉ. गुप्त स्पष्ट करते हैं कि "महाकवि पंत स्रष्टा ही नहीं द्रष्टा भी हैं। उन्होंने विश्व-वाङ्मय, विशेषकर दर्शन-ग्रन्थों का प्रगाढ़ अध्ययन-मनन कर उसमें अनुभूति और चिन्तन का समावेश कर जगज्जीवन के प्रति नूतन दृष्टि दी है। उनका साहित्य सांस्कृतिक चेतना का साकार फलक है। उनकी सांस्कृतिक चेतना जीवन के शाश्वत प्रश्नों के समाधान का प्रारूप प्रस्तुत करने के साथ ही दिव्य जीवन प्राप्ति की संचेतना भी उद्‌बुद्ध करती है। आज का जीवन संघर्ष, वैमनस्य, कुंठा, संत्रास, भय, शक्ति प्रदर्शन, धनोन्माद अहं और वैज्ञानिक आविष्कारों के पैशाचिक प्रयोग से पीड़ित है। पंत की दार्शनिक चेतना इनका शमन कर भौतिक जीवन-यापन करते हुए ही नवीन मानवता के उत्थान की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। उनकी धारणा है कि मानवमात्र की आवश्यकताओं की पूर्ति तो होनी ही चाहिए, पर आत्मिक विकास ही अन्तिम सीमा हो सकती है, क्योंकि आत्मोन्नति के बिना देवों-सा समृद्ध जीवन भी दानवीय ही रहेगा। पंत की अभिलाषा है कि मानव न तो आध्यात्मिक उड़ानों के फेर में लौकिक जीवन को नकार दे, और न ही भौतिकता के गर्त में जा गिरे, अपितु भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक उन्नयन के द्वारा धरती को ही मानवता का स्वर्ग बना दे।" (शोधायन, पृ. 69)

पंत जी की इस नवचेतनावादी संस्कृति का मुख्य उपादान डॉ. गुप्त ने उनके अन्तर्वाह्य के समन्वय को माना है, जिसे आध्यात्मिकता-भौतिकता या प्राच्य-पाश्चात्य का समन्वय भी माना जा सकता है। (पृ. 71) अपने कथन के पक्ष में उन्होंने पंत की नवनवोन्मेषशालिनी कुछ पंक्तियाँ भी प्रस्तुत की हैं --

ज्ञान-विज्ञान अर्ध युग सत्य समन्वित बन सकते थे पूर्ण,
ज्ञान आत्मा, विज्ञान शरीर अर्थ-वाणी से सतत अभिन्न,
अंध विज्ञान, ज्ञान चिर पंगु रहे जग में, यदि वे विच्छिन्न।
(लोकायतन, पृ. 272)

पंत जी ने इस अनुपम सांस्कृतिक आयोजन में वैसे तो वैदिक, गांधीवादी, मार्क्सवादी आदि प्रायः समस्त प्राच्य व पाश्चात्य संस्कृतियों के उदात्त तत्त्वों को अंगीकार किया है, पर मूलाधार श्री अरविन्द दर्शन का सांस्कृतिक पक्ष ही है (शोधायन, पृ. 70)। पंत जी ने समन्वय की भावना को सदा प्रश्रय दिया है। समन्वय का उत्स कवि वैदिक वाङ्मय में ही देख चुका था, पर इसकी प्रेरणा गांधी जी से मिली, जो श्री अरविन्द-दर्शन के सम्पर्क से पूर्णता पा सकी।

'हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय एकता के स्वर' पाँचवा आलेख है, जो शासकीय उच्चतर महाविद्यालय, भिंड (म.प्र.) में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में डॉ. गुप्त द्वारा 26 मार्च 1993 को पढ़ा गया एक उत्कृष्ट शोधपत्र है। इस पत्र में 'राष्ट्र' शब्द का उल्लेख करते हुए डॉ. गुप्त ने बताया है कि इसका वर्णन सबसे पहले ऋग्वेद में मिलता है, जबकि इसे परिभाषित करने का पहला प्रयास ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। साहित्य और राष्ट्र का सम्बन्ध सदा से अभिन्न रहा है। वैदिक साहित्य में भारत की राष्ट्रीय एकता पर बल दिया गया है। अथर्ववेद के 'भूमि सूक्त' को भारत का पहला राष्ट्रगीत कहा गया है। आदिग्रंथ ऋग्वेद में राष्ट्र के नष्ट न होने (ऋग्वेद, 10/173/1), राष्ट्र की रक्षा करने (ऋग्वेद, 10/173/2) और राष्ट्र के अभ्युत्थान के लिए वरुण, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं की वन्दना की गयी है (ऋग्वेद, 10/173/5) यजुर्वेद में राष्ट्रप्राप्ति की कामना व्यक्त हुई है (यजुर्वेद, 10/2-3) और अथर्ववेद में दैवी-शक्तियों से प्रार्थना की गयी है कि सुखपूर्वक रहने के लिए एक विशाल राष्ट्र प्रदान करें (अथर्ववेद, 3/8/1)। वैदिक ऋषि की कामना है कि --

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य में दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।
(अथर्ववेद, भूमिसूक्त, 12/1/45)

अर्थात् विविध भाषाएँ बोलने वाले तथा नाना धर्मों को मानने वाले लोग राष्ट्र में इस प्रकार प्रेम से मिलकर रहें जैसे एक घर के लोग रहते हैं। प्रेम से रहने वाले लोगों के लिए राष्ट्र की भूमि सहस्रों प्रकार की सम्पत्ति की धाराएँ बहा देती हैं (शोधायन, पृ. 79)। आशय स्पष्ट है कि हमारा सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय राष्ट्रीय ऐक्य की ध्वनि (अनुगूँज) से ध्वनित (अनुप्राणित) है। विभिन्न उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और वेदों के सम्यक् आलोड़न-विलोड़न से डॉ. गुप्त ने इस निष्कर्ष को प्रमाणपूर्वक प्रस्तुत किया है एवं हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय एकता के स्वर को एक विस्तृत आधारभूमि प्रदान की है।

विवेच्य शोधपत्र में डॉ. गुप्त ने राष्ट्र और साहित्य एवं साम्प्रदायिक संघर्ष की पीठिका पर प्रकाश डालने के बाद हिन्दी काव्य के सन्दर्भ में विभिन्न उपशीर्षकों, जैसे – (क) आदिकाल के काव्य में राष्ट्रीय एकता के स्वर, (ख) भक्तिकाल के काव्य में राष्ट्रीय एकता के स्वर, (ग) रीतिकाल के काव्य में राष्ट्रीय एकता के स्वर एवं (घ) आधुनिक काल के हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय एकता के स्वर -- में बाँटकर राष्ट्रीय एकता के स्वर को विवेचित करने का जो स्तुत्य प्रयास किया है, उससे सम्पूर्ण हिन्दी वाङ्मय का राष्ट्रवादी चिन्तन सम्बन्धी स्वर मुखर हो उठा है।

इस लेख के माध्यम से डॉ. गुप्त की राष्ट्रवादी सोच कट्टरता की हद तक प्रकट होती दीखती है, जिसके चलते संकीर्ण मानसिकता के लोग उन पर राष्ट्रवादी परकोटे में कैद होने का आरोप लगाकर विश्व के पांक्तेय चिन्तकों-आलोचकों की कोटि से खारिज करने का कुत्सित प्रयास कर सकते हैं, लेकिन 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के आदर्श को समझने वाले एवं 'जिसको न निज गौरव तथा निज देश पर अभिमान है/वह नर नहीं, नर-पशु निरा है, और मृतक समान है' के मर्म को समझने वाले डॉ. गुप्त के राष्ट्रीय ऐक्य की भावना से तादात्म्य स्थापित (एकाकार) कर सकते हैं। हमारे साहित्य में कहा गया है --

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं, वह पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।

यह वही स्वदेश का प्यार है जो डॉ. गुप्त के पूरे शोधपत्र में जादूरूप में उनके सिर चढ़कर बोलता है। यही वह देश है, जहाँ कामना की गयी है कि 'मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक/मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जायें वीर अनेक।' इस त्याग, समर्पण और राष्ट्रनिष्ठा की भावना को कोई स्वार्थी और दुच्ची राजनीति करने वाला व्यक्ति, विश्व-मानव का झूठा दम्भ भरने वाला, क्या समझेगा? ऋग्वेद से लेकर कादम्बिनी, फरवरी 1993 के अंक में प्रकाशित बशीर अहमद मयूख तक की कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय मनोभावों की जो मनोमय यात्रा डॉ. गुप्त ने विचारों के उच्च धरातल पर करायी है, वह मन मोहती है।

'मुंशी प्रेमचन्द का नाट्य साहित्य' संज्ञक शोध-निबंध में डॉ. गुप्त ने प्रेमचंद की अमर नाट्य कृतियों-संग्राम (1922), कर्बला (1924) एवं प्रेम की वेदी (1933) के सन्दर्भ में, लीक से हटकर, उनके नाटककार रूप को स्थापित किया है एवं इस तथ्य को निरूपित किया है कि प्रेमचन्द का नाट्य साहित्य हिन्दी नाट्य साहित्य में ऐतिहासिक योगदान है। साथ ही उनके उपर्युक्त नाटकों के अध्ययन-विश्लेषणोपरान्त यह निष्कर्ष दिया है कि प्रेमचन्द के नाटक इस बात के परिचायक हैं कि उनका आदर्श यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखित उनके ये नाटक उन्हें युगद्रष्टा रचनाकार निरूपित करते हैं। उनके नाटक वैचारिक प्रखरता के परिचायक हैं। दुःख की बात है कि साहित्य-जगत् ने प्रेमचन्द के

नाट्य साहित्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। अच्छा होता यदि प्रेमचन्द के उपन्यासों और और कहानियों की भाँति नाटक भी विभिन्न कक्षाओं में पाठ्यक्रम में शामिल किये जाते। 'कर्बला' नामक नाटक को तो स्नातकोत्तर-कक्षाओं में पढ़ाएं जाने की आवश्यकता है और नहीं तो प्रेमचन्द के नाटकों पर शोधकार्य ही किया जाना चाहिए। (शोधायन, पृ. 105)।

यह बात तो सर्वविदित है कि प्रेमचन्द ने अपने लेखन का श्रीगणेश एक नाटक से किया था। प्रेमचन्द जी की नाटककार के रूप में स्थापना विवेच्य शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य है जिसे पाने में डॉ. गुप्त पूर्णतः सफल हैं।

शोधायन का सबसे महत्त्वपूर्ण व उल्लेख्य शोधपत्र है -- 'आत्मकथाओं के आलोक में मैत्रेयी पुष्पा।' डॉ. गुप्त के शब्दों को उधार लेकर कहें तो आज की सर्वाधिक लोकप्रिय, विवादित और पढ़ी जाने वाली लेखिका हैं -- मैत्रेयी पुष्पा। उनकी दो आत्मकथाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं -- 'कस्तूरी कुण्डल बसै' और 'गुड़िया भीतर गुड़िया'। आत्मकथाओं के आलोक में मैत्रेयी पुष्पा नामक शोधपत्र में लेखिका के व्यक्तित्व, चरित्र-विकास और सृजन-संदर्भों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

डॉ. गुप्त ने उनका मूल्यांकन करते हुए मैत्रेयी की 'पारिवारिक पृष्ठभूमि', जन्म-स्थान, जन्मतिथि एवं बचपन, नामकरण, प्रणय प्रसंग, विवाह और गृहस्थ जीवन, उनका व्यक्तित्व, सृजनकर्म, भाषा-शैली एवं उद्देश्य संज्ञक कुल 9 उपशीर्षकों में लेखिका को उनकी समग्रता में उभारने एवं उकेरने का कार्य किया है। जहाँ तक मेरे अध्ययन की सीमा है, उस आधार पर मैं यह बात पूरे दावे के साथ कह सकता हूँ कि आत्मकथाओं के आलोक में मैत्रेयी पुष्पा जी का इतना सुन्दर एवं सफल मूल्यांकन आज तक किसी ने नहीं किया था, आगे भी कोई कर पायेगा, इसमें संदेह ही है। मैत्रेयी जी के ऊपर शोध करने वालों को इस निबंध से पर्याप्त मदद मिलेगी यह विश्वास है। मैत्रेयी जी की महत्ता प्रतिपादित करते हुए डॉ. गुप्त लिखते हैं, "मैत्रेयी ने खूब लिखा, साहस के साथ लिखा, आँसुओं में डूबकर लिखा और इसका प्रतिफल भी मिला।..... वे लेखिकाओं की अस्मिता की पहचान बन गयी हैं। (शोधायन, पृ. 131)"

'डॉ. राही मासूम रज़ा की सांस्कृतिक चेतना' और 'यशपाल के उपन्यासों में मनोविज्ञान' संज्ञक शोधपत्र पूर्व के पत्रों की अपेक्षा काफी छोटे हैं। कारण, ये दोनों लेख कम समय में लिखे गये हैं, फिर भी हम कह सकते हैं कि कृति (शोधायन) का यह उत्तर पक्ष कहीं से कमजोर, हल्का या स्तरहीन नहीं है। यह 'शोधायन' का उतार नहीं अपितु उत्कर्ष है, जहाँ कम शब्दों (पृष्ठों) में बीजमंत्र की भाँति बड़ी बातें कही गयी हैं। यह लिखते हुए खुशी हो रही है, साथ ही गर्व का अनुभव भी हो रहा है कि राही की सांस्कृतिक चेतना पर केन्द्रित आलेख उन्होंने स्वयं मेरे आग्रह पर मेरी

कॉलेज पत्रिका के लिए वर्ष 2007 में लिखा था। कतिपय कारणों से पत्रिका न छप सकी। बाद में उक्त आलेख गुरुवर डॉ. मांधाता राय एवं डॉ. हितेन्द्र मिश्र के सम्पादन में विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी से वर्ष 2011 में डॉ. राही मासूम रज़ा : कृतित्व एवं मूल्यांकन संज्ञक पुस्तक में छपा।

इस शोधपत्र में डॉ. गुप्त लिखते हैं, "अपनी सांस्कृतिक चेतना में डॉ. राही मासूम रज़ा शिया मतावलम्बी और राष्ट्रवादी मुसलमान थे।.....सम्भवतः शिया होने के कारण ही क़ट्टरता से रहित, सहनशील और संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी थे (शोधायन पृ. 132)।" निष्कर्ष रूप में उन्होंने लिखा है कि "डॉ. राही मासूम रज़ा भारत की समन्वयवादी संस्कृति के प्रतीक थे (शोधायन, पृ. 134)।" उनकी जन्मभूमि गाज़ीपुर प्राचीनकाल में गाधिपुरी थी, जिसे सुल्तान तुगलक के एक सरदार सय्यद मसऊद गाज़ी ने पदाक्रान्त कर गाज़ीपुर नाम दे दिया था। अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया, फलतः प्रायः सभी मियाँ लोगों के घर में कलमी संतानें हैं। उनके घर-परिवारों में पुरातन परम्पराएँ और रीति-रिवाज़ प्रचलित हैं। मन्नत-मनौतियाँ मानते हैं। प्रसाद चढ़ाते हैं, जिन्न और प्रेत पूजते हैं, यहाँ तक कि छुआछूत और जातिपाँति भी मानते हैं। (पृ. 135)।

डॉ. राही का मानना है कि धर्म बदलता रहता है, कौम नहीं बदलती। धर्म वस्त्र है, आत्मा नहीं। ये पर्व-त्यौहार भारतीय सांस्कृतिक चेतना की जीवंत आत्मा हैं। (शोधायन, पृ. 136) डॉ. गुप्त के इस तर्क (कथन) से भला कौन असहमति जता सकता है कि "डॉ. राही मासूम रज़ा अपने व्यक्तित्व, कृतित्व और अन्तर्मन से भारतीय संस्कृति के प्रस्तोता थे। वे भारतीय संस्कृति के समस्त आधारभूत तत्त्वों, यथा पुनर्जन्म, अवतारवाद, नियतिवाद, आदर्शवाद, समन्वयवाद आदि में सघन आस्था रखते थे। वे भाषा, लिपि, वर्णमाला, धर्म, सम्प्रदाय आदि के भेदभाव से परे थे और किसी भी प्रकार की संकीर्णता व कट्टरता से रहित थे। वे अपने पारिवारिक, सामाजिक और साहित्यिक परिदृश्य में भी सांस्कृतिक चेतना के मूर्त प्रतिमान थे। इनमें भारतीय संस्कृति सर्वांगतः जीवन्त थी।" (शोधायन, पृ. 136)। विवेच्य शोधपत्र में जिस प्रकार अध्ययन के जो बिन्दु सामने आते हैं, और उनके विश्लेषणोपरान्त जो निष्कर्ष प्राप्त होता है, उससे डॉ. गुप्त की अनुसंधित्सु-वृत्ति एवं गवेषणात्मक क्षमता का सहज ही पता चलता है।

'यशपाल के उपन्यासों में मनोविज्ञान' शीर्षक शोधपत्र में डॉ. गुप्त ने यशपाल के बहुआयामी व्यक्तित्व, कथाकार-रूप एवं उपन्यासों की सूक्ष्म पड़ताल की है। वे लिखते हैं, "अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति वही कर सकता है, जो समय और अवसर का लाभ उठाना जानता है।" (शोधायन, पृ. 139)। कहना असंगत न होगा कि यशपाल ऐसे ही लेखक थे। उन्होंने समय और अवसर की महत्ता को पहचाना भी और उसका लाभ भी उठाया। उनका मानना था कि "अवसर को पहचानने में

सतर्कता और तत्परता आवश्यक है।" (दिव्या, यशपाल, पृ. 46)। समीक्षक और आलोचक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के शब्दों में, "कथाकार यशपाल क्रान्तिकारी, मार्क्सवादी चिन्तक, मनोविज्ञानवेत्ता और संघर्षशील व्यक्ति थे। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक आदि अनेक प्रकार के उपन्यास लिखे हैं और सभी में मानवमन की सूक्ष्म व्याख्या की गयी है। दादा कामरेड, देशद्रोही, पार्टी कामरेड और झूठा सच प्रमुख राजनीतिक उपन्यास हैं। इनमें यशपाल जी ने क्रान्तिकारी युवामन का विश्लेषण किया है। महाकाव्यात्मक उपन्यास 'झूठा सच' में देश-विभाजन और तज्जन्य परिस्थितियों का मनोविज्ञान प्रस्तुत किया गया है।" (शोधायन, पृ. 137) 'दिव्या' और 'अमिता' यशपाल जी के ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

निष्कर्ष रूप में डॉ. गुप्त लिखते हैं, "यशपाल मानव-मनोविज्ञान के सूक्ष्म अध्येता थे। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, पौराणिक आदि विविध प्रकार के उपन्यास लिखकर मनुष्य के विविध रूपों और उसके मनोविज्ञान को सरस अभिव्यक्ति दी है। नर-नारी, बाल-वृद्ध, सफल-असफल, राजा-रंक, श्रमिक-पूँजीपति आदि सभी वर्गों के चरित्रों को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति देकर उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि उन्हें मानव-मनोविज्ञान का सूक्ष्म ज्ञान था।" (शोधायन, पृ. 140)

शोधायन के परिशिष्ट खण्ड में डॉ. गुप्त ने अपने शोधकार्य लघुप्रबंध, पीएच. डी. एवं डी.लिट्. के संदर्भ में आयी विभिन्न प्रकार की परेशानियों (संघर्षपूर्ण यात्रा) का सविस्तार एवं सप्रमाण विवरण प्रस्तुत किया है।

परिशिष्ट के दूसरे एवं अन्तिम अनुच्छेद में व्यक्त किया गया यह चिन्तन (लेखकीय निष्कर्ष) परिशिष्ट के साथ-साथ शोधायन को भी पूर्णता प्रदान करता है। कहना असंगत नहीं होगा कि शोध के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शोधायन का प्रकाशन एक महत्त्वपूर्ण घटना है। शोधकार्य करने वालों की दृष्टि से यह कार्य उनके लिए मील का पत्थर साबित होगा। एक वाक्य में कहूँ तो शोधार्थियों, शोधनिर्देशकों एवं साहित्यालोचना के गम्भीर पाठकों के लिए यह कृति प्रासंगिक है एवं उसकी महत्ता निर्विवाद है। मैं डॉ. गुप्त के इस महत्त्वपूर्ण प्रदेय के लिए उनकी समीक्षा-दृष्टि एवं उनके आलोचक-समीक्षक व्यक्तित्व को नमन करता हूँ।

●●●

—डॉ. चन्द्रशेखर तिवारी

12

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण

(दर्शन का विश्वकोष)

काव्य ऐसी ललित कला है जिसमें अमूर्त विचारों को शब्दायित करके मूर्त रूप प्रदान किया जाता है। यह शाब्दीकरण कवि किसी-न-किसी विशिष्ट संकल्पना को सामने रखकर ही करता है। कवि की सोच, उसकी अंतर्दृष्टि, उसकी वैचारिकी आदि उसके काव्य में झलकती है। कवि के अपनी कुछ विशिष्ट सिद्धान्त व सोच होती है जो अन्तर्तत्त्व बनकर उसका मार्गदर्शन करती है। यही सार रूप में कवि का दर्शन कहलाता है। कवि अनुभूतियों को समग्र रूप में आत्मसात करता है और उसे लिपिबद्ध कर देता है। विचारक ब्राइटमैन के शब्दों में, "दर्शन में मानव अनुभूतियों के संबंध में समग्र रूप में सत्यता से विचार किया जाता है।" वास्तव में, दर्शन कवि की अनुभूतियों को बोधगम्य बनाता है। यहाँ देखा जाये तो काव्यकला व दर्शन-दोनों पूरक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। हिन्दी साहित्य की तो विशिष्टता ही रही है कि यहाँ ऐसे समर्थ साहित्यकार हुए जिनके काव्य की दार्शनिक चेतना अखण्ड मण्डलाकार निराकार परमब्रह्म की प्रतिकृति को काव्य रूपायित कर पाने में सफल हुई। आदिकाल से लेकर आधुनिक कविता के युग तक के काव्य में दार्शनिकता की यह भावना प्रतिभासित होती है। समय के परिवर्तन के साथ सामाजिक मूल्यों व मानकों में भी व्यापक बदलाव हुए। ज्ञान के, चिंतन के, मनन के नवीन आयाम खुले। कवि ने इन सबको अपनी अन्तर्दृष्टि से महसूस किया। छायावादी युग के बाद के काव्य, जिसे छायावादोत्तर काव्य कहा जाता है, ने इस परिवर्तन को तेजी से पहचाना। तब तक पाश्चात्य देशों में भी यथार्थवाद, प्रयोजनवाद, अस्तित्ववाद जैसे विचारों का स्थान नियत हो चुका था। इन्हीं सब बातों को देखते हुए छायावादोत्तर कविता ने एक विशिष्ट दार्शनिक दृष्टि का संधान किया।

सुधी समीक्षक व हिन्दी साहित्य के विद्वान डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की कृति 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' इसी तथ्य को गहन शोधपरक दृष्टि से हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। छायावादोत्तर कवियों की कृतियों में विभिन्न

दार्शनिक चिन्तन प्राप्त होते हैं। औपनिषदिक, वैदिक, गांधीवाद, मार्क्सवाद जैसी विचारधारायें यहाँ रेखांकित की जा सकती हैं। डॉ. गुप्त के शोधग्रन्थ में अध्ययन सौकर्य के लिए विषयवस्तु को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय 'छायावादोत्तर काव्य की पृष्ठभूमि' में लेखक ने सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य का काल विभाजन व छायावादोत्तर काव्य के स्वरूप व सीमाओं पर प्रकाश डाला है। काव्य व दर्शन के सम्बन्ध पर विशिष्ट दृष्टि डाली गयी है। दोनों की अन्योन्याश्रितता को रेखांकित करते हुए लेखक कहता है – "दर्शन काव्य को गरिमा देता है तो काव्य दर्शन को पूर्णता देता है।" भारतीय दर्शनों में आस्तिक व नास्तिक दर्शन व उसके प्रणेताओं का वर्णन है। पाश्चात्य दर्शनों पर भी दृष्टि डाली गई है। अन्य दार्शनिक मतों के अन्तर्गत रहस्यवाद, दुःखवाद, भोगवाद, मानवतावाद जैसे दर्शनों का निदर्शन है। छायावादोत्तर काव्य को दार्शनिक वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक पृष्ठभूमियों के परिप्रेक्ष्य में समझना प्रभावित करता है।

कृति का द्वितीय अध्याय 'छायावादोत्तर काव्य में वेदोपनिषदिक दर्शन' वेदों और उपनिषदों के दर्शन की काव्य में प्रयुक्ति को रेखांकित करता है। ब्रह्म, जीवात्मा, सृष्टि, माया, मोक्ष, ज्ञान, भक्ति-कर्म, आनंद, भूमा-इन सबका तात्त्विक विवेचन किया गया है। इसी के साथ विद्वान लेखक ने इन दार्शनिक मतों के सन्दर्भ में विभिन्न कवियों की काव्यपंक्तियाँ भी उद्धृत की हैं। आश्चर्य का विषय है कि जिस आधुनिक कविता को संस्कृति से कटा हुआ कहा जाता है, वही कविता भारतीय चिंतन के इतने सारे पक्षों को स्वयं में सँभाले हुए हैं। सत्य-प्रेम-करुणा-सहिष्णुता की उदात्त भावनायें भारतीय चिंतन पद्धति का ही साररूप है। महात्मा गांधी का अवतरण न केवल भारतवर्ष के लिए अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिए एक विशिष्ट घटना थी। गांधीवाद व गांधीदर्शन ने न केवल साहित्य को अपितु सम्पूर्ण मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को गहनता से प्रभावित किया। पुस्तक का तृतीय अध्याय 'छायावादोत्तर काव्य में गांधी दर्शन' गांधी के विचारों में अवगाहन इस कालखण्ड के काव्य में करता है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि गांधी दर्शन का सर्वाधिक सुन्दर उपयोग महाकवि सुमित्रानन्दन पंत ने किया था। पंत की परवर्ती कविताओं में गाँधी की सुगन्ध महसूस की जा सकती है। गांधी दर्शन के आध्यात्मिक, व्यावहारिक, नैतिक एवं राजनैतिक पक्षों पर समग्रता से विचार किया गया है। गांधी के दर्शन में सर्वोदय, स्वदेशी, स्वावलम्बन, सद्भाव जैसे शब्दों का क्रियात्मक पक्ष उज्ज्वलता के साथ मिलता है। विभिन्न काव्यपंक्तियों के संयोजन से यहाँ हम गांधीवाद को देख सकते हैं। वास्तव में गांधी जी ने सभी समकालीन कवियों को प्रभावित किया था। गांधीवाद की काव्यात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं इन कवियों के काव्य।

'छायावादोत्तर काव्य में मार्क्स दर्शन' नामक चतुर्थ अध्याय प्रसिद्ध विचारक

कार्ल हाइनरिख मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन की दृष्टि में आधुनिक काव्य का विवेचन करता है। मार्क्सवादी विचारों को सामने रखकर अनेक साहित्यकारों ने सृजन किया है। लेखक ने दर्शाया है कि अनेक गांधीवादी साहित्यकार भी मार्क्सवाद की आँधी में बह गये। मार्क्सवादी चिंतन मजदूरों, शोषितों की बात करता है। प्रगतिवादी व प्रयोगवादी कविता में भी यही स्वर मुख्य था। जिस कारण तत्कालीन कविता में मार्क्सवादी चिंतन की अभिव्यक्तियाँ खूब दिखाई देती हैं। इस कविता ने एक कार्य तो अच्छा किया कि वंचितजन की पीड़ा को आवाज़ दी परन्तु अब कविता एक 'फॉर्मूला कविता' के सिद्धान्त पर होने लगी। फिर भी, मार्क्सवादी दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण प्रतिदान काव्य का अवश्य मिला और वह है – जनवादी चेतना व जनवादी कविता। कवि का पंचम अध्याय 'छायावादोत्तर काव्य में अरविन्द दर्शन' काव्य में अरविन्द दर्शन की अभिव्यंजना का विवेचन करता है। ज्ञातव्य है कि महर्षि अरविन्द योगिराज कहलाते हैं। तत्कालीन समय के अनेक कवियों ने अरविन्द दर्शन को अपनी काव्यचेतना का केन्द्रबिन्दु बनाया। महर्षि अरविन्द ने आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय किया। लेखक ने पंत, दिनकर जैसे कवियों पर महर्षि अरविन्द का प्रभाव दर्शाया है। प्रस्तुत अध्याय में अरविन्द दर्शन को ज्ञानमीमांसा, तत्त्व मीमांसा व मूल्य मीमांसा जैसे दार्शनिक सम्प्रत्ययों के परिप्रेक्ष्य में समझाया गया है। ब्रह्म, आत्मा, जगत्, माया व मोक्ष की स्थितियाँ भी अरविन्द दर्शन के अन्तर्गत रेखांकित की गई है। लेखक ने ठीक ही निर्णय दिया है, "श्री अरविन्द ने विकास को अवरोहण की प्रतिलोम प्रक्रिया बतलाया है। उनका विकासवाद विज्ञान पर नहीं, अध्यात्म पर आधारित है। वे आरोहण से पूर्व अवरोहण का उल्लेख करते हैं।"

आधुनिक दार्शनिक विचारधारा में अस्तित्ववाद भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह विचारधारा मानवीय सत्ता को प्रतिष्ठित करती है। कीर्केगार्ड इसके प्रवर्तक माने जाते हैं। नीत्शे, मार्शल, ज्यां पाल सार्त्र, कामू जैसे विचारकों ने इसे और गति प्रदान की। अस्तित्ववाद मानवतावाद का ही पोषक है। नयी कविता का मूल दर्शन ही मानवतावाद है। इस प्रकार अस्तित्ववाद मानव के सकारात्मक मूल्यों को लेकर चलने वाला दर्शन है। 'छायावादी काव्य में अस्तित्ववादी दर्शन' नामक छठा अध्याय हमें इसी विचारधारा से परिचित करवाता है। मूलतः पाश्चात्य दर्शन होने के बावजूद यह दर्शन भारतीयता में रंगा-पगा है। सप्तम अध्याय 'छायावादोत्तर काव्य में निरूपित अन्य प्रमुख दर्शन' है। इसमें लेखक ने उपरोक्त विवेचित दर्शनों के अतिरिक्त रहस्यवाद, दुःखवाद, नियतिवाद, भोगवाद, मानवतावाद जैसे दर्शनों को छायावादोत्तर कविता के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया है। इन दर्शनों के विविध रूपों को भी दर्शाया गया है। विवेच्य अध्याय दर्शनों के अध्ययन के नवीन पथों को

अन्वेषित करता लगता है। वास्तव में वर्तमान समय में इन दर्शनों पर बहुत न्यून रूप में शोधपरक दृष्टि डाली गई है। लेखक इस बात के लिए साधुवाद का पात्र है कि इस अध्याय में इन अपेक्षाकृत कम जाने गये दर्शनों पर भी उसने अपनी गहन गवेषणात्मक दृष्टि डाली है। 'उपसंहार' में छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में दर्शन का क्रमिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। कवि स्वयं एक मनीषी, एक चिंतक, एक दार्शनिक होता है। काव्य सृजन के समय वह अपने समक्ष कोई न कोई दृष्टिकोण अवश्य ही रखता है। यही उसका दर्शन कहलाता है। जीवन के रहस्यों का अवलोकन, विश्लेषण, अंकन व मूल्यांकन दर्शन ही करता है। छायावादोत्तर काव्य में लगभग सभी दर्शनों का परिपाक हुआ है। यही छायावादोत्तर काव्य की विशिष्टता है।

पुस्तक की भाषा अत्यन्त प्रांजल व सुष्ठु है। एक विशिष्ट प्रकार का प्रवाह विवेचना में अनुभव किया जा सकता है। दर्शन जैसे मानसिक व्यापार को, जिसे साधारणतया नीरस व जटिल माना जाता है, लेखक ने अपनी लेखनी से काव्यमय बना दिया है। छायावादोत्तर कविता भी थोड़ी जटिल व बोझिल-सी ही समझी जाती है। इन दोनों का मणिकांचन संयोग डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जैसे शोधसंधानी मनीषी ही कर पाते हैं। प्रत्येक उद्धरण को यथास्थान संदर्भित किया गया है जिससे पुस्तक की उपादेयता अत्यन्त बढ़ गई है। संदर्भ ग्रन्थों की विस्तृत सूची प्रदर्शित करती है कि लेखक ने यथायोग्य श्रम किया है। कृति के प्रत्येक पृष्ठ पर वैचारिक उच्चता तथा ज्ञान प्रवणता के दर्शन किये जा सकते हैं। 'रसौ वै सः' के सिद्धांत को निभाती हुई प्रस्तुत कृति काव्य व दर्शन के जीवन रस से सराबोर है। ज्ञान से परिपूर्ण होना इस कृति का मूल उत्स है। इस विषय पर वैसे भी शोधकार्य कम ही हुए हैं। ज्ञान के आलोक के नवीन द्वारों को खोलती प्रस्तुत कृति मन के अंधेरों को मिटाती है व एक नयी सोच का दर्शन करवाती है। संक्षेप में कहें तो डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त द्वारा विरचित यह शोध ग्रन्थ 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' दर्शन का 'इंसाक्लोपीडिया' यानि 'विश्वकोष' है।

●●●

—डॉ. नितिन सेठी



चतुर्थ सोपान

डॉ. गुप्त के सृजन पर शोधकार्य

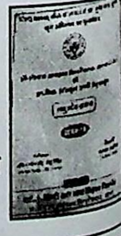


साहित्य-सृजन के साथ शोध-समीक्षा का सापेक्ष सम्बन्ध है। प्रायः हर पत्र-पत्रिका में नयी-नयी पुस्तकों की समीक्षाओं की व्यवस्था रहती है। आधुनिक शिक्षा में विश्वविद्यालयी स्तर पर श्रेष्ठ साहित्य पर शोधकार्य करने और उस पर पी.एच.डी., डी.लिट्. जैसी उपाधि देने की व्यवस्था है। एम.ए. स्तर पर लघुप्रबंध लिखे जाने की व्यवस्था भी अनेक विश्वविद्यालयों में है। अपने अध्ययनकाल में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त ने एम.ए. उत्तरार्द्ध में डॉ. प्रभाकर शुक्ल के मार्गदर्शन में 'हंस जवाहिर : एक आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक से लघुप्रबंध लिखा था। एक साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर डॉ. गुप्त के साहित्य पर भी शोधकार्य होने लगा।

प्राप्त सूचना के अनुसार, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय से प्रोफेसर रामसजन पाण्डेय के मार्गदर्शन में दो छात्रों ने लघुप्रबंध लिखे हैं। एक छात्र ने बाल उपन्यास 'परीज़ाद' पर लघु प्रबंध लिखा है और दूसरे ने 'ऋतुवसंती : एक आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक से शोधप्रबंध लिखा है।

के. एम. आई. आगरा के निदेशक प्रो. हरिमोहन ने सूचित किया था कि सन् 2009-10 में दो लघु-प्रबंध लिखे गए हैं, एक बाल उपन्यास 'परीज़ाद' पर और दूसरा श्रीमद्भगवद्गीता के काव्यानुवाद 'अभिगीता' पर। एम.फिल. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत इस लघु शोधप्रबंध का शीर्षक है –

श्रीमद्भगवद्गीता के सन्दर्भ में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त कृत अभिगीता का मूल्यांकन'। शोध छात्रा पारुल सक्सेना ने निर्देशिका डॉ. रेणु सिंह के मार्गदर्शन में शोधकार्य किया है। इस शोधग्रन्थ के चार अध्याय हैं। इनके नाम व प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है –



अध्याय – 1 श्रीमद्भगवद्गीता
- क) महर्षि वेदव्यास (जीवनवृत्त एवं कृतित्व)
- ख) श्रीमद्भगवद्गीता (संक्षिप्त विषयवस्तु)
- ग) 'अभिगीता' के रचयिता डॉ. सुरेशचन्द्रगुप्त (जीवनवृत्त एवं कृतित्व)

अध्याय – 2 भारतीय दर्शन परम्परा एवं श्रीमद्भगवद्गीता

1. भारतीय दर्शन परम्परा

क) वैदिक दर्शन

ख) भारतीय षड्दर्शन

1. पूर्व मीमांसा 2. उत्तर मीमांसा 3. सांख्य

4. योग 5. न्याय 6. वेशेषिक

अन्य दर्शन –

1. जैन दर्शन 2. बौद्ध दर्शन

3. चार्वाक दर्शन 4. शैव दर्शन

दार्शनिक परम्परा में श्रीमद्भगवद्गीता

अध्याय – 3 श्रीमद्भगवद्गीता के सन्दर्भ में अभिगीता

1. विषाद योग 2. सांख्य योग

3. कर्मयोग 4. ज्ञान कर्म संन्यास योग

5. कर्म संन्यास योग 6. आत्म संयम योग

7. ज्ञान-विज्ञान योग 8. अक्षर ब्रह्म योग

9. राजविद्या राज गुह्य योग 10. विभूति योग

11. विश्व रूप दर्शन योग 12. भक्ति योग

13. क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग 14. गुणत्रय विभाग योग

15. पुरुषोत्तम योग 16. देवासुर संपद् योग

17. श्रद्धात्रय विभाग योग 18. मोक्ष संन्यास योग

अध्याय – 4 संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में अभिगीता का स्थान।

उपसंहार :

प्राचीनकाल से ही 'गीता' सभी हिन्दुओं के लिए श्रद्धा और भक्ति की पात्र रही है। पारुल सक्सेना के अनुसार "सुरेशचन्द्र जी ने 'अभिगीता' के रूप में 'श्रीमद् भगवद्गीता का काव्यानुवाद इसलिए किया है, ताकि वह सभी पाठकों के लिए सरल, सहज और रोचक हो जाये। प्रस्तुत 'अभिगीता' का हिन्दी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि 'अभिगीता' श्रीमद्भगवद्गीता' के संस्कृत श्लोकों से किया गया काव्यानुवाद ही तो है, अतः यह संस्कृत साहित्य तथा हिन्दी साहित्य, दोनों का ही प्रेरणाप्रद ग्रन्थ है।"

पारुल जी मानती हैं कि वैसे तो श्रीमद्भगवद्गीता के हिन्दी में अनेक अनुवाद हो चुके हैं, पर 'अभिगीता' के वैशिष्ट्य के कुछ विशेष कारण हैं, जैसे सीधे संस्कृत से सरल हिन्दी में काव्यानुवाद का होना, जिसके कारण अभिगीता सामान्य पाठकों और छात्रों के लिए भी पठनीय है। परिशिष्ट के रूप में जिज्ञासु पाठकों के लिए उपयोगी जानकारी देकर सांगोपांग उपयोगी बनाने का प्रयास बहुत ही सराहनीय है, जो न 'श्रीमद्भगवद्गीता' में है, और न किसी काव्यानुवाद में। स्वतंत्र भारत में

राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रसार और लोकप्रियता बढ़ी है, इसलिए भी 'अभिगीता' का सृजन प्रशंसनीय कार्य है।

पारुल सक्सेना का मानना है कि 'अभिगीता' का महत्व संस्कृत और हिन्दी, दोनों भाषाविदों के लिए उपयोगी होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक है।

रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली से भी दो छात्रों ने लघु प्रबंध लिखे हैं। श्री रामानंद मिश्र ने डॉ0 मोहनलाल मौर्य के निर्देशन में 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' पर लघुप्रबंध लिखा है। उदीयमान कवि और मेधावी छात्र सुरजीत सिंह मौर्य ने अपना लघु प्रबंध एम. ए. उत्तरार्द्ध के एक वैकल्पिक विषय के रूप में वरिष्ठ रीडर डॉ0 कमला माहेश्वरी के निर्देशन में पूर्ण किया था। उनके लघुप्रबंध का विषय था – 'कविवर डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त और ऋतु बसंती।' सुरजीत सिंह ने अपने शोधकार्य को पाँच अध्यायों में विभाजित किया है। ये पाँच अध्याय इस प्रकार हैं –

प्रथम अध्याय : डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त : जीवन और साहित्य।

क) जीवन-जन्म, जन्मस्थान, माता-पिता एवं पारिवारिक परिवेश, शिक्षा-दीक्षा, विवाह एवं संतति, व्यवसाय, मान-सम्मान आदि

ख) साहित्य –

1. कविता संग्रह
2. गद्य रचनाएँ
3. शोध ग्रन्थ
4. जीवनी
5. बालोपयोगी समीक्षात्मक ग्रन्थ
6. भाषा, व्याकरण, पत्रकारिता सम्बन्धी ग्रन्थ,
7. अनूदित ग्रन्थ
8. सम्पादन
9. पत्रिका प्रकाशन – सम्पादन



निष्कर्ष।

द्वितीय अध्याय : समकालीन हिन्दी कविता और ऋतुबसंती

1. हिन्दी साहित्य के विविध सोपान
2. आधुनिक हिन्दी काव्य और समकालीन हिन्दी कविता
3. समकालीन हिन्दी कविता की विशेषतायें
4. समकालीन हिन्दी कविता में ऋतु बसंती का स्थान

निष्कर्ष।

तृतीय अध्याय : ऋतु बसंती में भावाभिव्यंजना

1. भावाभिव्यंजना
2. प्रेम भावना
3. प्रकृति चित्रण
4. राष्ट्रीय चेतना
5. दार्शनिक विचार – आध्यात्मिक दर्शन, व्यावहारिक दर्शन
6. राजनीति निरूपण

निष्कर्ष।

चतुर्थ अध्याय : ऋतुबसंती में रसाभिव्यंजना

1. काव्य में रस का महत्त्व

2. ऋतुबसंती में रस विवेचन

निष्कर्ष।

पंचम अध्याय : ऋतुबसंती का शिल्प सौन्दर्य

1. भाषा
2. छन्द विधान
3. अलंकार योजना
4. मुहावरे और लोकोक्तियाँ
5. शैली विधान
6. प्रतीक विधान
7. बिम्ब विधान
8. दोष दर्शन

षष्ठ अध्याय : उपसंहार

ज्ञातव्य है कि डॉ0 सुरजीत सिंह मौर्य का यह लघु प्रबंध (पृ. 124, मूल्य 250 रु.) प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली से सन् 2012 में प्रकाशित हो चुका है।

पीएच.डी. (विद्यावाचस्पति) उपाधि के लिए शोधकार्य

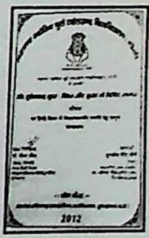
श्री सुरजीत सिंह मौर्य हिन्दी साहित्य के गहन अध्येता है। इन्होंने डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के साहित्य का सूक्ष्म और गहन अध्ययन किया है। स्वाभाविक ही पीएच.डी. के लिए भी इन्होंने डॉ0 गुप्त के साहित्य का चयन किया। विश्वविद्यालय की शोधसमिति ने इन्हें 'डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त : चिंतन और सृजन के विविध आयाम' विषय पर शोधकार्य करने की स्वीकृति दी। इन्होंने अपना शोधकार्य महाराजा हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मुरादाबाद की हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ0 मीना कौल के निर्देशन में पूर्ण किया, और विद्यावाचस्पति (पीएच.डी.) की उपाधि प्राप्त की।

इस शोधग्रन्थ में कुल सात अध्याय हैं, जिनका विषयानुक्रम इस प्रकार है –

प्रथम अध्याय – डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

क) व्यक्तित्व विकास

ख) साहित्य



1. काव्य संग्रह
2. काव्यानुवाद
3. शोध ग्रन्थ
4. जीवनी साहित्य
5. समीक्षात्मक ग्रन्थ
6. हिन्दी भाषा, व्याकरण, पत्रकारिता आदि
7. सम्पादन – पाठ्य पुस्तकें एवं अभिनन्दन ग्रन्थ
8. सम्पादन – प्रकाशन – पत्रिकाएँ

निष्कर्ष।

द्वितीय अध्याय – समकालीन हिन्दी कविता और डॉ0 सुरेशचन्द गुप्त

1. हिन्दी साहित्य के विविध सोपान
2. समकालीन हिन्दी कविता : नामकरण की समस्या
3. विविध काव्यान्दोलन
4. समकालीन हिन्दी कविता के विविध स्वर
5. समकालीन हिन्दी कविता में डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त का स्थान

निष्कर्ष।

तृतीय अध्याय – डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के काव्य में सौन्दर्य चेतना

1. सौन्दर्य भावना
2. सौन्दर्य की विशेषताएँ
3. सौन्दर्य के विविध रूप
4. प्रेमभावना – मिलन भावना, विरह भावना
5. दार्शनिकता
6. राष्ट्रीय भावना

निष्कर्ष।

चतुर्थ अध्याय – डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के काव्य में प्रकृति चित्रण

1. साहित्य एवं प्रकृति
2. कविता में प्रकृति चित्रण
3. प्रकृति चित्रण की विशेषतायें
4. कवि की प्रकृति विषयक दृष्टि
5. प्रकृति के विभिन्न रूप

निष्कर्ष।

पंचम अध्याय–डॉ.सुरेशचन्द्र गुप्त के काव्य में समसामयिक यथार्थ का चित्रण

1. साहित्य एवं यथार्थ
2. कवि का यथार्थबोध

षष्ठ अध्याय – डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के काव्य में शिल्प सौन्दर्य

1. काव्य भाषा
2. भाषा–शिल्प
3. काव्य बिम्ब
4. छन्द और लय
5. अलंकार योजना
6. प्रतीक विधान
7. शैली विधान
8. दोष–दर्शन

निष्कर्ष।

सप्तम अध्याय – निष्कर्ष एवं मूल्यांकन।

डॉ0 सुरेशचन्द्र गुप्त के सृजन पर अब तक सम्पन्न शोधकार्य मुख्यतः कविता पर हैं, जबकि आपने गद्य की विविध विधाओं, जैसे संस्मरण, जीवनी, यात्रावृत्त, निबंध, समीक्षा आदि पर भी विपुल साहित्य की सर्जना की है। स्पष्टतः पूर्व प्रस्तुत कार्य वास्तव में शोध की दिशा में श्रीगणेश जैसा है। डॉ. गुप्त के सृजन की लोकप्रियता के साथ ही शोधकार्य में भी श्री वृद्धि होगी– ऐसी सम्भावना है।

–डॉ. नितिन सेठी एवं डॉ. सुरजीत सिंह मौर्य

●●●

पंचम सोपान

डॉ. गुप्त के निर्देशन में शोधकार्य



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त शिक्षक, साहित्यकार और जिज्ञासु शोधार्थी हैं। आपके निर्देशन में कुछ छात्रों ने लघु-प्रबन्ध लिखे हैं तथा आपके लगभग पैंतीस शोधार्थी पीएच.डी. उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है –

1. डॉ. मधुरिमा सक्सेना (10.7.1953) :– लोकायतन की भाषा का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन, सन् 1988



2. डॉ. हाकिम सिंह (25.1.1954) :– सत्यकाम में काव्य, संस्कृति और दर्शन, सन् 1989
3. डॉ. भारती सक्सेना (1958) :– कथाकार अमृतराय : कथ्य और शिल्प, सन् 1989



4. डॉ. आशा वर्मा (20.11.1960) :– प्रेमचन्द का कथेतर साहित्य : एक आलोचनात्मक अध्ययन, सन् 1990



5. डॉ. शशिप्रभा शर्मा (26.6.1966) :– महाकवि सूरदास के भ्रमरगीत तथा रत्नाकर के उद्धवशतक का तुलनात्मक अध्ययन, सन् 1994



6. डॉ. छत्रपाल गंगवार (12.4.1965) :– कथाकार राजेन्द्र यादव : कथ्य और शिल्प, सन् 1995

7. डॉ. मोहनलाल मौर्य (10.6.1962) :- बाबा नागार्जुन के उपन्यासों में कथ्य और शिल्प, सन् 1995



8. डॉ. जोधाराम मौर्य (1.1.1962) :- इलाचन्द्र जोशी : जीवन और साहित्य, सन् 1995



9. डॉ. सुधा भाटिया (20.10.1959) :- हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में प्रेम तथा सौन्दर्य का निरूपण, सन् 1995



10. डॉ. नीना मिश्र (8.4.1956) :- अमृतराय के उपन्यासों में समाज चित्रण, सन् 1996



11. डॉ. सुरेशचन्द्र रस्तोगी (14.2.1953) :- कथाकार शैलेश मटियानी के कथासाहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन, सन् 1998



12. डॉ. राहत अहसान (13.5.1962) :- कथाकार इलाचन्द्र जोशी : कथ्य और शिल्प, सन् 1998



13. डॉ. पूनम गुप्त (11.7.1969) :- उपन्यासकार राजेन्द्र यादव, सन् 2000



14. डॉ. विनीता रानी (15.1.1970) :- कथाकार हृदयनारायण मेहरोत्रा 'हृदयेश' : कथ्य और शिल्प, सन् 2001



15. डॉ. आरती मिश्र (18.7.1976) :- उपन्यासकार शैलेश मटियानी : एक आलोचनात्मक अध्ययन, सन् 2002



16. डॉ. सोमलता चौहान (17.6.1975) :- कथाकार राजेन्द्र यादव के कथासाहित्येत्तर सृजन का आलोचनात्मक अध्ययन, सन् 2003



17. डॉ. शशिबाला शर्मा (1.4.1969) :– अमृतराय के कथा साहित्येत्तर सृजन का आलोचनात्मक अध्ययन, सन् 2003



18. डॉ. मिथिलेश भदौरिया (7.6.1954):– राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में समाज चित्रण, सन् 2005



19. डॉ. आराधना वैश्य (15.7.1972) :– गांधीवाद का पंत साहित्य पर प्रभाव, सन् 2005



20. डॉ.शाहिद सरदार खाँ (2.7.1976):–अमृतराय के कथा साहित्य में अभिव्यक्त मध्यवर्गीय जीवन, सन् 2006



21. डॉ. लवलेश दत्त (23.9.1976) :– स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य पर गांधी दर्शन का प्रभाव, सन् 2006



22. डॉ. समराना फय्याज (17.8.1982) :– उपन्यासकार राही मासूम रज़ा : संवेदना और शिल्प, सन् 2007



23. डॉ. शालिनी सक्सेना (8.7.1979) :– हृदयनारायण मेहरोत्रा 'हृदयेश' के कथासाहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चेतना का विश्लेषणात्मक अध्ययन, सन् 2008



24. डॉ. पूनम यादव (5.8.1981) :– युगीन चेतना के संदर्भ में डॉ. विवेकीराय के उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, सन् 2008



25. डॉ. विमलेश गंगवार (10.7.1979) :– नागार्जुन के कथेतर गद्य साहित्य का समीक्षात्मक सन् 2009



26. डॉ. सत्यवती (8.1.1967) :– कविवर सुमित्रानंदन पंत के काव्येतर सृजन का समीक्षात्मक अनुशीलन, सन् 2009



27. डॉ. रामवीर सिंह (13.8.1967) :- श्री श्रीलाल शुक्ल के कथासाहित्य में अभिव्यक्त युगीन चेतना का समीक्षात्मक अनुशीलन, सन् 2009



28. डॉ. सीमा मैत्रा (16.12.1971):-डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में मनोविज्ञान, सन् 2010



29. डॉ. कुंजबिहारी सिंह (15.6.1982):-उपन्यासकार विवेकीराय : संवेदना और शिल्प, सन् 2010



30. डॉ. ममतारानी (22.12.1974) :- सामाजिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में अमृतराय के कथा साहित्य का अनुशीलन। (25.11.2011)



31. डॉ. अंजना राठौर (20.10.1971) :- शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला गर्ग और मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन। (13.11.2013)



32. डॉ. नितिन सेठी (5.8.1984) :- अज्ञेय की काव्यभाषा का समीक्षात्मक अध्ययन। (15.11.2013)



33. डॉ. पुष्पलता गंगवार (12.7.1980) :- हृदयनारायण मेहरोत्रा हृदयेश की कहानियों का समाजशास्त्रीय अध्ययन। (24.4.2014)



34. डॉ. रीना रानी सक्सेना (5.9.1976) :- बाबा नागार्जुन के उपन्यासों में युगबोध : एक समीक्षात्मक अनुशीलन। (2016)



35. डॉ. चितरंजन मोहन (23.12.1976) :- डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में चित्रित मध्य वर्ग का समीक्षात्मक अनुशीलन। (2016)



●●●

षष्ठ सोपान

आत्मीयों व मनीषियों की दृष्टि में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

1

साधारण दीखने वाले असाधारण व्यक्तित्व : डॉ. गुप्त



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का जीवन एक ऐसी महकती बगिया है, जिनमें मानवीयता, सौहार्द्र, आत्मीयता, सरलता, निरभिमानता, सहज स्नेह भाव और रंग-बिरंगे सृजन के फूल मिले हुए हैं। साहित्यिक क्षेत्र की ऐसी कोई विधा नहीं जो डॉ. गुप्त से अछूती रह गई हो। वे संवेदनशील कवि, शोधकर्ता, विद्वान, लोकप्रिय लेखक, साहित्यकार, पत्रकार, जानेमाने शिक्षाविद्, धीर-गम्भीर समीक्षक और कुशल सम्पादक हैं।

साहित्य को लेकर उनकी प्रतिबद्धता और कर्मठता का पता इसी से लगाया जा सकता है कि नियमित और निरन्तर लेखन से उनका हिन्दी साहित्य में लगभग बासठ महत्वपूर्ण ग्रंथों का योगदान है। अभी भी वे वरिष्ठ नागरिक कम वरिष्ठ साहित्यकार के रूप में ज्यादा पहचाने जाते हैं। उन्होंने अपनी साहित्यिक साधना के तप से उम्र को रोक कर साहित्य को सिद्ध किया है।

मैंने कभी उनके दर्शन नहीं किये किन्तु फोन पर वार्तालाप हो, पत्र व्यवहार हो या उनका लेखन हो, सभी में अंतरवर्ती अपनत्व की अन्तरंग लय उनके स्वभाव का विशेष गुण है जो उनके वचन और लेखन में झलकती रहती है। यही है वह जो "औरन को शीतल करे आपहूं शीतल होय"।

शायद इन्हीं गुणों के कारण बरेली क्या बरेली के आसपास भी किसी काम से आने वाला छोटे से छेटा और बड़े से बड़ा साहित्यकार गुप्त जी से अवश्य मिलकर जाता है।

डॉ. गुप्त अपनी संवेदनशीलता के चलते हर उभरते लेखक, कवि, कहानीकार को, शोधार्थी को आगे बढ़ाने में हर सम्भव और हर प्रकार का सहयोग, सहायता और मार्गदर्शन देते हैं। अब मुझी को देखिये मैंने कुछ गीत

सहज कविता के प्रवर्तक डॉ. सुधेश को दिल्ली भेजे थे। उन्होंने वे गीत 'साहित्यायन' में भेजकर मुझे फोन किया कि मेरी पत्रिका अब नहीं छपती। अतः आपके गीत बरेली भेज दिये हैं। कुछ दिन के बाद साहित्यायन मिला, गीत भी छपे थे। मैंने डॉ. गुप्त को फोन करके कहा कि जब धर्मयुग और नवनीत में छपा था तब शायद इतनी खुशी नहीं हुई थी। किन्तु, आज ऐसा लग रहा है कि जैसे कुछ अमूल्य मिल गया है। डॉ. गुप्त का उत्तर था, भारतीय जी आप इसे अमूल्य कह रहे हैं तो साहित्यायन आपको अ-मूल्य ही प्राप्त होगा। यह था आज के भौतिक युग में एक विद्वान का निःस्पृही जवाब। जो पैसे से ज्यादा आत्मीयता और आपसी सम्बन्धों को अहमियत देता है। इसी आत्मीयता के चलते डॉ. गुप्त ने, आज के समय में ज्यादातर बंजर होते जाते आपसी सम्बन्धों की धरती पर अपने आस-पास ही नहीं सुदूर इलाकों में भी जिनमें छत्तीसगढ़ भी शुमार है, आत्मीयता के गहरे जल का बहाव पूरे वेग से बहाया है।

इस साधारण से दिखने वाले असाधारण व्यक्तित्व के बारे में यही कहना चाहता हूँ कि शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान से, साहित्य साधना से, चिन्तन मनन से, साहित्यायन के कुशल सम्पादन से और अपने उदात्त सम्वेदनशील व्यक्तित्व से निःसृत पंचामृत से भरा प्रसाद का दोना जो आप हमें देते आ रहे हैं, आत शतायु होने तक, हमें इसी प्रकार प्रदान करते रहें। आपकी हीरक जयंती पर हमारी यह हार्दिक कामना स्वीकार करें।



श्री मोहन भारतीय
प्लाट नं-17, सड़क- 5ए, मैत्री नगर, भिलाई—490006 (छ.ग.)
चलभाष : 09685316191, दूरभाष : 0788-2272217

कौन कहता है कि
शब्द कमजोर होते हैं
शब्द असहाय होते हैं ?
शब्द तो ब्रह्मास्त्र हैं
बड़े शक्तिशाली होते हैं शब्द
शब्द मानो अचूक रामबाण
शब्द-पापी संहारक होते हैं
शब्द-सब पर भारी होते हैं।

2

प्रज्ञापुरुष डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



आकृति, प्रकृति, कृति और संस्कृति से ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की परख और पहचान होती है। बाहरी सीमित आकार से ही मनोदशा का पता लग जाता है। आकारगत सीमाओं से ऊपर उठ जाना ही सच्ची साधना और जीवन-संघर्ष है। संकल्पनिष्ठ, संघर्षशील, स्वाभिमानी व्यक्ति शारीरिक और भौतिक विवशताओं को अतिक्रान्त करता हुआ उत्कर्ष के शिखर पर पहुँच जाता है। दुर्जेय विवशताओं पर विजय प्राप्त करने का संदेश देते हुए महाकवि श्री रघुवीरशरण 'मित्र' ने लिखा है—

थक कर बैठ गये, जीवन से हार मान ली,
कहने लगे, विवशता जीवन की चोटी है।
पथिक न थक कर बैठ, धरा तुझसे छोटी है।।

मेरा विश्वास है कि शारीरिक विकलांगता और उससे उत्पन्न विवशता के तीखे बोध ने ही डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की प्रकृति को उत्कर्षोन्मुख संघर्षशील साहित्य-साधक और प्रज्ञा-पुरुष बनाया है। अभिशाप को वरदान माना है और इसका सारा श्रेय परमात्मा को समर्पित करते हुए सच्ची आस्तिकता और समर्पण-भावना का परिचय देते हुए अपने डी.लिट् के शोध-प्रबन्ध के प्रारम्भ में 'आभारी हूँ' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है—

आभारी हूँ
उस परमपिता परमात्मा का
जिसने जन्म तो दिया ही
विकलांगता और बीमारी की स्थिति में भी

जीवन को सार्थक बनाने का सौभाग्य दिया... लेखक बनाया

साहित्य-मनीषी, प्रज्ञा पुरुष डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की परिष्कृत प्रकृति की शालीनता, आस्तिकता, समर्पण-भावना उनके व्यक्तित्व के अध्यापन, शोध-निर्देशन और लेखन नामक तीनों प्रमुख पक्षों में पूरी भास्वरता के साथ उजागर हुई है। उनके लिए तीनों साधनाएँ ईशोपासनाएँ हैं। वे एक अन्तर्द्रष्टा ऋषि की भाँति अध्यापन, निर्देशन और लेखन को आध्यात्मिक अनुष्ठान या अध्यवसाय मानते हैं। उनकी सतत् समर्पित साधना ने उन्हें सिद्धि और प्रसिद्धि के शिखर तक पहुँचा दिया है। एक परीक्षक के नाते उनके निर्देशन में सम्पन्न तीन शोधप्रबन्धों की महती गुणवत्ता का मैं स्वयं साक्षी रहा हूँ और साफल्य-बोध की स्थिति में शोधक और निर्देशक के मुखमण्डल पर चरम तृप्ति का बोध कराने वाले आत्मिक उल्लास की एक ही लहर थिरकती हुई देखकर अध्यापक और अध्येता के भावात्मक तादात्म्य में आध्यात्मिक आभा का साक्षात्कार कर चुका हूँ।

शारीरिक विकलांगता, विवशता तथा भौतिक जगत् की परिस्थितियों की विषमताओं ने डॉ. गुप्त को अन्तर्मुखी और अन्तर्द्रष्टा बना दिया है। इसीलिए उनमें भावना, उद्भावना (कल्पना) और चिन्तन की प्रधानता है। इसी अन्तर्मुखता के कारण वे सूक्ष्म को स्थूल से अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। अन्तर्दृष्टि सम्पन्न होने के कारण ही वे कविर्मनीषी हैं, अर्थात् कवि हैं और मनीषी दार्शनिक भी। समृद्ध मनीषा से सम्पन्न होने के कारण वे प्रज्ञापुरुष हैं और दर्शन उनका प्रिय विषय है। उनका पीएच.डी. का शोध प्रबन्ध है 'पंत की दार्शनिक चेतना'। इसमें वेदान्त, गांधीवाद, मार्क्सवाद, अन्तश्चेतनावाद आदि विविध भारतीय और पाश्चात्य दर्शनों की दृष्टि से पन्त-काव्य का सूक्ष्म, गम्भीर एवं विशद् विवेचन और मन्थन किया गया है। इस उपलब्धिपूर्ण शोधप्रबन्ध पर डॉ गुप्त को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का आत्रेय पुरस्कार प्रदान किया गया। उनका डी.लिट्. का शोध प्रबन्ध *'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण'* भी विविध दर्शनों में इनकी तलस्पर्शी सूक्ष्म एवं गहन अन्तर्दृष्टि को प्रमाणित करता है। डॉ. गुप्त के तत्त्व चिन्तन का यह निष्कर्ष विशेष मूल्यवान है कि भले ही दर्शन वेदान्त-सरीखा आस्तिक और आध्यात्मिक हो या मार्क्सवाद जैसा नास्तिक और भौतिक, "मानवतावाद अर्थात् मानवमात्र का हित कल्याण सभी दर्शनों का एकमात्र मुख्य लक्ष्य है।" इसी प्रकार उनकी

यह मूल्यवान स्थापना भी विशेष ध्यातव्य है कि कुछ दर्शनों में आध्यात्मिकता और अलौकिकता की प्रमुखता है तो कुछ में व्यावहारिकता है। गांधीवाद आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही दृष्टियों से व्यावहारिक और वरेण्य है।" समूचा अनुशीलन और चिन्तन प्रज्ञा-पुरुष डॉ. गुप्त की विरल प्रतिभा के प्रकर्ष को चरितार्थ करता है। शोधक के साथ डॉ. गुप्त उच्च कोटि के समालोचक भी हैं। उनकी पारदर्शी समालोचनात्मक अन्तर्दृष्टि उनके उच्चस्तरीय समीक्षा ग्रंथों में परिलक्षित हुई है, जिनकी संख्या लगभग एक दर्जन है।

डॉ. गुप्त के प्रज्ञा-प्रकाशन का अन्य प्रौढ़ पक्ष है काव्य-सृजन, जिसमें उनका चिन्तन अभावों की पीड़ा की तपिश से विगलित होकर तत्त्व रागात्मक (संगीतात्मक) प्रवाह में परिणत होकर गीत बन जाता है। अभावों से प्रसूत भावों की गीतात्मकता परिणति पर प्रकाश डालते हुए डॉ. गुप्त अपनी सतरंगी मादक अनुभूतियों को सम्मोहक समारोह प्रस्तुत करने वाले उत्कृष्ट गीत-संग्रह 'ऋतु वसंती' में लिखते हैं—

हैं अभावों से भरे सब भाव
व्यथा-विह्वल हृदय की झंकार
बज उठे स्वयमेव सब निःशब्द
अनगढ़े ही बन गये वे गीत

मनोरम वसन्त ऋतु के मादक प्रभाव से प्रकृति के प्रांगण में चल रही उन्मुक्त प्रेमलीलाओं का नाटकीय, गत्वर, सम्मोहक बिम्ब द्रष्टव्य है—

इठलाया है पवन, सुरभि ? पीकर जामा है।
चूम कुसुम के गाल, चूनरी ले भागा है।।
दूर तटों पर वृथा, खेलते आँख-मिचौनी।
देख रही है सभी छिपी निर्लज्ज चाँदनी।।

यद्यपि प्रस्तुत संग्रह में संयोग-वियोग के मादक और मार्मिक चित्रों की ही प्रमुखता है, तथापि कुछ कविताओं में अनीति, अन्याय, छद्म धर्मनिरपेक्षता आदि के प्रति तीव्र आक्रोश के प्रखर स्वर भी मुखर हुए हैं। 'गोधरा काण्ड की प्रतिक्रिया में', 'माया महारानी' आदि में विकृति के विरुद्ध संस्कृति और स्वातंत्र्य-चेतना का उद्बोधनकारी आक्रोश व्यक्त किया गया है। हिन्दी, हिन्दुत्व, भारतीयता के प्रति अनुराग में डॉ. गुप्त की प्रखर राष्ट्रीयता और सजग सांस्कृतिक बोध के दर्शन होते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था की विसंगतियों के परिहार के लिए मनस्वी

कवि ने साम्यवाद और गांधी के सर्वोदयवाद की उपादेयता को रेखांकित किया है। ऋतु वसंती से पूर्व रचित डॉ. गुप्त के अन्य कविता संग्रह हैं—'मनपाँखी', 'स्वर्णजयन्ती वर्ष' तथा 'गीत-श्री।' 'ऋतु वसंती' के बाद भी आपके तीन कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'आत्ममंथन', 'लोकतांत्रिक भारत में' और 'देवी-मा', सहचरी, प्राण'।

संक्षेप में, शोध, समालोचना और काव्य-सृजन के क्षेत्र में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का योगदान विशिष्ट मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण है। मैं उनकी विरल उपलब्धियों के लिए उन्हें हार्दिक बधाइयाँ देता हूँ और उनके साधना-सुवासित दीर्घ जीवन की शुभाशंसा करता हूँ।



डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, डीन, भाषा संकाय,
महर्षि दयानन्द वि.वि. रोहतक
आवास-55 सेक्टर-1, हुडा, रोहतक-124001 हरियाणा
दूरभाष : 01262-273396 चलयंत्र : 09255165337

कविता संवेदना है
जो
बाह्य जगत् की वेदना को
आत्मवेदना में परिणत कर देती है
और देती है वे आँखें
जो विश्व-वेदना में गल
सरिता बन जाती हैं
और,
परान्तः सुखाय
हँसती हैं।

3

एक अभिनन्दनीय व्यक्तित्व



गंगा-यमुनी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक बरेली शहर के अदबी सफर में डॉ. माताप्रसाद अस्थाना (जेब बरेलवी), डॉ. वसीम बरेलवी, रामजी शरण सक्सेना, निरंकारदेव सेवक, डॉ. वीरेन्द्र डंगवाल, होरीलाल शर्मा 'नीरव', ज्ञानवती सक्सेना, किशन सरोज, ब्रजराज पाण्डेय, प्रो. रामप्रकाश गोयल, डॉ. ज्योति स्वरूप, डॉ. भगवानशरण भारद्वाज आदि की परम्परा में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का नाम अत्यन्त ही चर्चित एवं महत्त्वपूर्ण रहा है। वे एक सफल कवि, प्राध्यापक, गद्यकार एवं साहित्य मनीषी के रूप में जाने, माने और पहचाने जाते हैं। वे बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी हैं। वे एक स्तरीय शोध-निर्देशक एवं निष्पक्ष समीक्षक-आलोचक हैं। अनेक संस्थाओं को उनके संरक्षण एवं मार्गदर्शन का सौभाग्य प्राप्त है। शोध एवं साहित्य को समर्पित उनकी त्रैमासिक पत्रिका 'साहित्यायन' का प्रबुद्ध पाठकों में विशेष महत्त्व है। पत्रिका के माध्यम से उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी पर्याप्त ख्याति अर्जित की है।

रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बद्ध बरेली कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होकर आजकल यह साहित्य संरचना के क्षेत्र में नए-नए आयामों का उद्घाटन कर रहे हैं। इनकी आत्मकथा परक संस्मरणात्मक कृति 'स्मृति के विहग' का धारावाहिक प्रकाशन इन दिनों 'साहित्यायन' पत्रिका में हो रहा है जो रोचक, प्रेरक एवं अनुकरणात्मक उपलब्धि है। अब तक विभिन्न विधाओं में इनकी साठ से अधिक कृतियाँ प्रकाशित एवं चर्चित हो चुकी हैं। डॉ. गुप्त जी की काव्य कृतियों में 'मनपाँखी', 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'गीतश्री', 'ऋतु बसन्ती', 'लोकतांत्रिक भारत में', आत्ममंथन', 'देवी-माँ-सहचरी-प्राण' प्रमुख हैं। इनके तीन शोध ग्रंथ-'हंस जवाहिर-एक अध्ययन', 'पंत की दार्शनिक-चेतना',

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण विशेष चर्चा में रहे हैं तथा परवर्ती शोध अध्येताओं द्वारा अपने शोधग्रंथों में सन्दर्भित किए गए हैं।

'विश्व के महान साहित्यकार' इनकी जीवनी परक कृति है। डॉ. गुप्त जी ने बंगला गीतों का हिन्दी अनुवाद एवं लिप्यान्तर 'प्रसाद' शीर्षक से किया है। इन्होंने 'श्रीमद्भगवत्गीता' का हिन्दी काव्यानुवाद 'अभिगीता' के नाम से किया है ताकि भलीभाँति संस्कृत न जानने वाले पाठक भी 'गीता' का सहज आनन्द ले सकें और भवगान कृष्ण जी द्वारा दिए गए उपदेशों को जीवन में उतार सकें।

'स्मृति के वातायन' इनकी प्रमुख संस्मरणात्मक कृति है। इसी प्रकार समय-समय पर लिखे गए शोधपत्रों का संकलन इनकी कृति 'शोधायन' में प्रस्तुत हुआ है। यायावरी के क्षेत्र में भी इनका पर्याप्त हस्तक्षेप रहा है। अपने यात्रा वृतान्तों को उन्होंने अपनी कृति 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' में सहेज-सँवार कर प्रस्तुत किया है। इन यात्रा वृत्तान्तों के अध्ययन से विदेश जाने वाले यात्रियों को अपेक्षित मार्गदर्शन प्राप्त होता है।

बच्चों से भी डॉ. गुप्त जी को विशेष लगाव रहा है। इस सन्दर्भ में उनका बाल उपन्यास 'परीजाद' बच्चों में काफी लोकप्रिय हुआ? इनकी सभी पुस्तकें प्रकाश बुक डिपो बड़ा बाजार तथा राज बुक डिपो बरेली पर उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त—डॉ. गुप्त जी की उक्त सभी कृतियाँ सीधे अभिलेख प्रकाशन, उत्थान, म-12 त्रिवटीनाथ, बी.डी.ए. कालोनी बरेली (उ.प्र.) से भी प्राप्त की जा सकती हैं। विभिन्न विश्वविद्यालयों से उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एम.फिल. एवं पी-एच.डी. स्तर के अनेक शोध कार्य सम्पन्न हो चुके हैं।

मुझे डॉ. गुप्त जी का परिचय-सूत्र अपने शोध निर्देशक डॉ. वंश गोपाल जी से 1980 से अब तक लगातार प्राप्त होता रहा है जिनके कुशल निर्देशन में कानपुर विश्वविद्यालय से मैंने 'हिन्दी गजल-उद्भव और विकास' विषयक पी-एच.डी. स्तर का शोध कार्य 1985 में पूर्ण किया था। विद्वानों द्वारा इसे हिन्दी गजल विधा के प्रथम शोध ग्रंथ की मान्यता दिए जाने के कारण इस शोध प्रबन्ध के अब तक दो संस्करण (वर्ष 1987 व वर्ष 2010 में) सामयिक प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। कालान्तर में इस शोध प्रबन्ध को आधार ग्रन्थ के रूप में स्वीकारते हुए गजल विषयक अनेक शोध कार्य सम्पन्न हुए। मेरे बाल साहित्य पर भी अब तक तीन-चार शोध कार्य हो चुके हैं।

समय चक्र सदैव गतिमान रहता है। इसी क्रम में तन-मन-धन से साहित्य को समर्पित मनीषी डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त जी की हीरक जयनती के पावन अवसर पर एक भव्य स्मारिका एवं अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाश्य है।

उनकी हीरक जयन्ती निश्चय ही एक अभिनन्दन पर्व है। इस सुअवसर पर अपने गुरुवर डॉ. वंश गोपाल जी सहित मैं डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त जी का हार्दिक वन्दन एवं अभिनन्दन करते हुए उनके सुखी, स्वस्थ, सम्पन्न एवं साधनारत सौ-सौ बसन्तों तक सक्रिय साहित्यिक जीवन की प्रभु से प्रार्थना करता हूँ। निश्चय ही उनका साहित्यिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व समकालीन एवं परवर्ती साहित्यकारों, शोध अध्येताओं एवं प्रबुद्ध पाठकों को प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।



डॉ. रोहिताश्व अस्थाना
'एकान्तिका', बावन चुंगी चौराहा, हरदोई, उ.प्र.—241001
दूरभाष : 05852-232392

हे प्रभा !
तुम क्षमा करना
अगर मैं बाधा बना हूँ ?
अगर मैंने राह रोकी है
किसी की ?
या
किसी का बुरा चाहा ?

जो, हमारे सामने बैठे हुए हैं
ये अनागत के चितेरे
हैं क्षितिज सम्भावना के
अगर मैंने इन्हें डाँटा
राह दिखलाई न सच्ची
क्षमा करना।

ओ युवा !
तुम हो क्षितिज संभावना के
चरैवेति
चलते रहना।

4

एक अनुकरणीय व्यक्तित्व



स्वनामधन्य डॉ. सुरेशचन्द्र जी गुप्त न केवल बरेली कालेज बरेली, बल्कि समस्त विश्वविद्यालय के अध्यवसायी प्राध्यापकों में परिगणित रहे हैं। लेखन एवं शोधन के क्षेत्र में उन्होंने महत्त्वाकांक्षी प्रतिमान अंकित किये हैं और अध्यापन के क्षेत्र में विद्यार्थियों में अक्षय ऊर्जा का संचार करते हुए अपना अमिट यश उत्पन्न किया है। शिक्षा क्षेत्र ऐसे तपःपूत एवं ज्ञानसम्पन्न व्यक्तियों का सदैव स्वागत करता है, उन्हें नमन करता है।

डॉ. गुप्त ने सन् 1973 ई. में बरेली कालेज का हिन्दी विभाग ज्वाइन किया। वे इससे पूर्व लखनऊ विश्वविद्यालय से डॉ. सरला जी शुक्ल के पर्यवेक्षण में 'पन्त की दार्शनिक चेतना' शीर्षक पर पीएच्.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके थे। उनकी अवस्था उस समय लगभग बत्तीस वर्ष थी और वे कविता के क्षेत्र में भी ख्याति अर्जित कर चुके थे। परिणामतः ज्ञान सम्पन्न और अनुभव सम्पन्न भी थे और कवित्व की भावभीनी एवं कारयित्री दो प्रक्रियाओं से गुजर चुके थे। यही कारण है कि उन्होंने अध्यापन का अवसर मिलते ही गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया, बल्कि शोधार्थियों का सफल मार्गदर्शन भी किया, काव्यसर्जना भी की और उपन्यास, संस्मरण, यात्रावृत्त आदि भी लिखे।

मैंने सन् 1973 ई. में ही हिन्दू कालेज मुरादाबाद का हिन्दी विभाग ज्वाइन किया था। उस समय मेरी अवस्था 21 वर्ष की थी और मैं डी.ए.वी. कालेज बुलन्दशहर (मेरठ विश्वविद्यालय मेरठ से सम्बद्ध) से एम.ए. (हिन्दी) की संस्थागत परीक्षा उत्तीर्ण किया था। मैंने न केवल एम.ए. में प्रथम श्रेणी एवं विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया था, बल्कि सभी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी प्राप्त की थी। मैंने अध्यापन काल में ही मेरठ विश्वविद्यालय से पीएच्.डी. की उपाधि प्राप्त की और तदुपरान्त शोध एवं लेखन के क्षेत्र में अवतरित हुआ।

उस समय की शिक्षा व्यवस्था आज से कुछ भिन्न थी। उस समय स्नातक एवं स्नातकोत्तर कालेजों में प्रायः दो प्रकार के प्राध्यापक नियुक्त होते थे। प्रथम वर्ग उन लोगों का होता था जो पीएच्.डी. की उपाधि प्राप्त करके ही अध्यापन में आते थे। इनकी अवस्था प्रायः 25-26 और कभी 30 या उससे अधिक वर्ष की होती थी। द्वितीय वर्ग उन लोगों का होता था जो एम.ए. करके सीधे अध्यापन में उतरते थे। उनकी अवस्था प्रायः 21-22 वर्ष होती थी और कभी-कभी 24-25 तक भी। डॉ.गुप्त प्रथम वर्ग के जीव थे और मैं द्वितीय वर्ग का। इन दोनों में एक अन्य अन्तर भी होता था। प्रथम वर्ग के प्राध्यापक अनुभवी एवं सुशिक्षित होते थे। फलतः शीघ्र अपने को लेखन एवं शोधन में लगा देते थे, यदि उनका मन उधर प्रवृत्त हो, लेकिन द्वितीय वर्ग के अध्यापक पहले शोध करके अपने को स्थापित करते थे, अनुभव प्राप्त करते थे, फलतः उनकी कीर्त्ति प्रथम वर्ग के अध्यापकों से पीछे प्रतिष्ठित हो पाती थी। इन दोनों वर्गों में एक अन्तर अन्य भी दृष्टिगत हुआ जो नहीं अपितु सामयिक अवस्था में देखा गया। वह यह रहा कि वरिष्ठता से प्राप्त होने वाले पदों में प्रथम वर्ग के अध्यापक कम पहुँच पाते क्योंकि अधिक अवस्था में सेवा कार्य प्रारम्भ करने के कारण वे सेवानिवृत्ति पर पहले पहुँच जाते थे। मैंने अपने एक साथी को, जो अवस्था में मुझसे एक वर्ष बड़े हैं तथा पीएच्.डी. करके अध्यापन में आने से मुझसे कालेज में 3 वर्ष कनिष्ठ रहे, कई बार यह कहते सुना था कि मुझसे गलती हुई जो पीएच्.डी. में लग गया। यदि मैं आपसे एक वर्ष पूर्व अध्यापन में आ जाता तो प्राचार्य मैं ही होता।

सन् 1980 ई. के लगभग जब मैंने अपने पर्यवेक्षण में शोध कराना प्रारम्भ किया, उस समय डॉ. सुरेशचन्द्र जी गुप्त की प्रसिद्धि अध्यापन और लेखन के क्षेत्र में स्थापित हो चुकी थी। वे बरेली कालेज के परिश्रमी एवं मेधावी प्राध्यापकों में परिगणित थे।

भाग्यवश मेरा उनका परिचय काफी बाद में हुआ जब मैं महात्मा ज्योतिबाफुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय की शोध उपाधि समिति में आन्तरिक विशेषज्ञ था। एक सुयोग्य अध्यापक, गम्भीर लेखक और सक्रिय शोधपर्यवेक्षक के रूप में मेरे हृदय में उनके प्रति भक्ति थी, फलतः मैंने विनम्र भाव से उनका अभिवादन किया। मुझे स्मरण है कि भोजन करने के पश्चात् भी उनके विशेष आग्रह पर मुझे उनके साथ जाना पड़ा ओर मिष्ठान्न ग्रहण कर उनका साथ देना पड़ा। यह एक अग्रज का अनुरागातिशय था जिसके समक्ष अनुज को नतशिर होना पड़ा।

विश्वविद्यालय में संयोजक शोध उपाधि समिति के पद का निर्वहन करते समय मेरी कई बार उनसे मुलाकात हुई। मैं सदैव नतशिर हुआ और उन्होंने सदैव आशीर्वचन से अभिषिक्त किया। इन मुलाकातों के दौरान मैंने पाया कि आदरणीया भाभी जी सदैव छाया के समान उनकी अनुवर्तिनी रहती थीं। दाम्पत्य का ऐसा धर्मनिर्वाह, पातिव्रत्य का साक्षात् उपदेश और पतिसेवा का ऐसा मधुर सन्देश असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है।

इस सन्दर्भ में मैं एक बात और कहना चाहूँगा। विकलांगता शारीरिक क्षमता और सक्रियता को प्रभावित भले ही करती हो, लेकिन एकतानता को उन्मुख भी करती है और संकल्पों को पूर्णता का अवसर भी प्रदान करती है। जो कर्मठ और युयुत्सु हैं, जो संकल्पों की संसिद्धि में विश्वास करते हैं, जो दैन्य और विषाद के समक्ष नतशिर नहीं होते, वे विकलांगता को सक्षमता में परिणत कर देते हैं और ऐसे ही कर्मठ व्यक्ति को दिव्यांग नाम दिया जाता है जो नितान्त उचित ही है। कहना न होगा कि डाक्टर गुप्त ने इसी का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है।

गुप्त जी की एक अन्य विशेषता का उल्लेख करना भी मैं आवश्यक समझता हूँ और वह है पारदर्शी एवं निष्पक्ष व्यक्ति। वे न केवल निष्पक्ष व्यक्तित्व के धनी हैं बल्कि पारदर्शी व्यक्तित्व के भी स्वामी हैं और स्वाभिमान तो उनमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। चाहे अपने जीवन की झाँकियाँ हों अथवा कविता की सर्जना या *'साहित्यायन'* के सम्पादकीय। वे सदैव अपनी बात निर्द्वन्द्व भाव से रखते हैं, वे छद्म नैतिकता के आवरण को अस्वीकार्य स्वीकारते हैं। यही कारण है कि महाभारत की घटनाएँ हों या प्रभा खेतान की आत्मकथा, वे निर्द्वन्द्व भाव से उनका बेबाक विश्लेषण कर देते हैं। कहीं-कहीं कविताओं में भी उनकी बेबाकी निर्मर्याद-सी लगने लगती है। लेकिन उसके मूल में उनका पारदर्शी एवं तटस्थ व्यक्तित्व ही रहता है जो बेबाक अभिव्यक्ति को विवश बना देता है।

परम प्रसन्नता का विषय है कि श्रद्धेय डॉ. सुरेशचन्द्र जी गुप्त अपने जीवन का 75वाँ बसन्त देख रहे हैं, पूर्ण कर्मठता एवं सक्रियता के साथ। निश्चय ही वे औपनिषदिक ऋषि के इस विश्वास का निर्वाह करते हैं—

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

इस जगत् में विहित कर्मों को करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। इस प्रकार कृत कर्म तुम में लिप्त नहीं होंगे। इससे भिन्न अन्य कोई

मार्ग ही नहीं है।

इस पावन पर्व पर मैं अपने अग्रज को वर्धापना अर्पित करता हूँ और कामना करता हूँ कि ईश्वर उन्हें शताधिक वर्ष का कर्मसंकुल एवं आनन्दप्रद जीवन प्रदान करें जिससे वे साहित्याराधन करते रहें और हमारे जैसे अनुज उनके काव्यामृत का पान करते रहें।



डॉ. रामानन्द शर्मा
एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), पीएच्.डी., डी.लिट्.
प्राचार्य, हिन्दू कालेज मुरादाबाद
'शोधपीठ', बी-9 जिगर कालोनी, मुरादाबाद- 244001
चलभाष : 9412506917

दादा का महाप्रयाण

एक शताब्दी का अवसान है
दादा का महाप्रयाण !

अभी तक मृत्यु को कुछ नहीं समझता था
अवरोध था हमारे-मृत्यु के बीच
दादा का होना
उनका संरक्षण
और अस्तित्व।
उस दिन
नयी सहस्राब्दी के आगमन से
मात्र छः घंटे पूर्व
वह अवरोध टूट गया
और मृत्यु, मेरे सामने आ उपस्थित हुई।

पहली बार बोध हुआ-
अब मेरी बारी है।
मुझे संघर्ष के लिए समुद्यत रहना है।
जानता हूँ कि
'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः'

5

अप्रतिम जिजीविषा का नायक



साथ सुथरा मोहक व्यक्तित्व, जो अन्तर्दाग का बिम्ब सा प्रतीत होता है। डॉ. सुरेश जी सदैव अनिश्चय को अपने निश्चय का रूप देने में सफल रहे हैं। यह सफलता सामान्य प्रक्रिया नहीं है, अपितु संघर्षशील व्यक्तित्व के कौशल का परिणाम है। इसीलिए उनकी जीवन-वीथिका की यात्रा में विश्राम हैं, विराम हैं, अभिराम हैं, अमिय राग हैं और मोहक कौतूहल हैं, परन्तु स्थगन नहीं है। समस्याओं और प्रश्नों के वह स्वयं ही समन्वित समाधान हैं। अतएव उनका अमृतोत्सव-अभिनन्दन , वन्दन और नमन भारत की उस विशाल समृद्ध संस्कृति का स्तोत्रगान है, जो सनातन एवं शाश्वत है। सुन्दर मैत्री और निश्छल हँसी स्वयं उनका व्यक्तित्व है। अरूप में रूप, अदाग में दाग, असुन्दर में सुन्दर, अप्रिय में प्रिय और हेतु में अहेतुक देख पाना उन जैसे व्यक्तित्व के लिए ही सम्भव है। म्रियमाण जीवन को अमर बना देने की कला उनके सृजित अर्द्धशतक साहित्यिक ग्रन्थों में देखी जा सकती है। साहित्य का सौन्दर्य और शिवतत्त्व ही उनमें असीम जिजीविषा का उत्कर्ष है।

सकारात्मक सोच, सहजता, सहयोगिता, संवेदनशीलता, सामंजस्य और सत्य के पथ पर आस्थावान चरणों की गति ने डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त को उन्नयन का उत्कर्ष प्रदान किया है। अतएव सुपथ ही उनकी दाह एवं जीवन का लक्ष्य रहा है। वह स्वयं स्वीकार करते हैं—"दुःख का दर्द और अभावों की पीड़ा ने अन्तर्मन की संवदेनाओं को झंकृत कर रचनाकार बनने का पथ प्रशस्त किया। फिर पढ़ना-लिखना जीवन का एक प्रवाह बन गया।"

एक मध्यवर्गीय व्यवसायी वैश्य परिवार में जन्म लेने वाले बच्चे से यह अपेक्षा रहती है कि वह आगे चलकर कुशल व्यवसायी बनेगा। परन्तु नियति का

विधान अपना कार्य करता है और जीवन जीने वाले की संघर्षशील कर्मठता अपना पथ स्वयं निर्धारित करती है। इसीलिए तो कहा जाता है—"लीक छाड़ि तीनों चले शायर, सिंह, सपूत।" डॉ. गुप्त कविमना जिजीविषा के शार्दूल और सच्चे सपूत होने के कारण भला बाप-दादों के द्वारा प्रशस्त किए गए पथ पर क्यों चलते? अतएव उन्होंने अपना पथ और भविष्य स्वयं निर्धारित किया। अनेक बाधाओं के बावजूद जीवन-यात्रा उनकी धारा-सी बह आगे बढ़ जाने पर पीछे मुड़ना नहीं जानती हैं। तेजस्वी का तेज प्रतिकूल परिस्थितियों में और अधिक उद्दीप्त होता रहा है।

द्वितीय महायुद्ध की भयानक त्रासदी से विश्व विक्षुब्ध था। ऐसी ही विषम परिस्थितियों में 4 जनवरी 1940 ई. को एक मध्यवर्गीय परिवार में उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर नगर में इस बालक का जन्म हुआ और नामकरण हुआ-सुरेश। पिता की छाया सिर से 8 वर्ष में ही उठ गई। परिवार विपन्नता के भँवर में गोता खाने लगा। छः सदस्यों का परिवार। येनकेन प्रकारेण जीवन-यात्रा पर अग्रसर हुआ। सन् 1956 ई. में श्री सुरेशचन्द्र गुप्त ने हाईस्कूल उत्तीर्ण किया। अचानक एक दिन संधिवात से ग्रस्त हो गए और पूरे एक वर्ष तक वह रोगाक्रांत रहे। पढ़ाई बाधित हो गई। जुलाई 1957 ई. में इण्टर में प्रवेश लेने के बाद भी अध्ययन आगे न बढ़ सका। फिर से संधिवात का भयंकर आक्रमण हो गया और अप्रैल 1965 ई. तक लगभग सात वर्षों तक वह शय्याश्रित हो गए। नवम्बर 1960 ई. में माँ की मृत्यु ने उन्हें अन्तरंग तक झकझोर दिया। 20 वर्ष के नवयुवक को पराश्रित होने का अनुभव उसके छोटे एवं बड़े भाई की देखरेख ने होने नहीं दिया। सन् 1965 में दोनों घुटनों के आप्रेशन के बाद पैरों पर खड़े होने योग्य हो गए तो आपने इंटर की परीक्षा दी। सन् 1966 में परीक्षा केन्द्र पर सर्वाधिक अंक अर्जित कर इण्टर में प्रथम श्रेणी का उन्होंने एक कीर्तिमान बनाया। बी.ए. 1968 ई. में श्रेष्ठ अंकों के साथ उत्तीर्ण किया।

आँधी और तूफानों, विषमताओं एवं बाधाओं तथा समस्याओं एवं अभावों के आघात जिजीविषा के अप्रतिम धनी नायक सुरेशचन्द्र गुप्त के पथ को रोक न पाए, अपितु इन सभी से उन्होंने उन्नयन का उत्कर्ष ग्रहण किया। जीवन में संकल्प संघर्ष से ही उद्देश्य ग्रहण करते हैं। जीवन और काष्ठ में छुपी अग्नि घर्षण और संघर्ष से ही प्रकट होती है। अग्नि से उपजती है—ऊर्जा। जीवनी-शक्ति कामनाओं से उत्तप्त होकर जीवन को संघर्षशील बनाती है। वह मन को कार्य के लिए प्रेरित करती है। विचारों को मूर्त रूप देने की क्षमता ही सफलता का रहस्य है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का जीवन इसका अनुपम उदाहरण है।

आज से लगभग 46 वर्ष पहले की बात है—तब से जाने कितने बसन्त आए और पतझर बीत गए, परन्तु मैं एक अप्रतिम जिजीविषा के अद्वितीय व्यक्तित्व को भूल नहीं सका। इस भूल न पाने में मेरी संवेदनशीलता और आत्मीयता बड़ी सहायक नहीं रही है, अपितु उस व्यक्तित्व की महानता है, जिसने अपनी स्मृति मेरे मन-मष्तिष्क से मिटने नहीं दिया। स्मृति में स्थिर होना कोई सामान्य बात नहीं है। यह एक असामान्य और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है।

मैं जब साहित्य का ककहरा सीख ही रहा था, तब तक श्री सुरेशचन्द्र गुप्त एक पढ़ाकू और लिखाकू के रूप में स्थापित हो चुके थे। उन्होंने एम.ए. हिन्दी में सर्वाधिक अंकों के साथ प्रथम श्रेणी अर्जित किया और युगीन पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगे। अतएव हम लोगों के लिए वह जिज्ञासा का विषय बने। मैंने एम.ए. प्रथम वर्ष हिन्दी में सन् 1970 ई. में प्रवेश लिया और गुप्त जी उस समय ए.ए. उत्तीर्ण कर चुके थे। शोध कार्य का विषय भी सुनिश्चित हो गया था—"सुमित्रानन्दन पंत की दार्शनिक चेतना"।

नवम्बर 1970 ई. में लखनऊ विश्वविद्यालय के हबीबुल्ला छात्रावास के कक्ष संख्या-40 में मैंने एक मेधावी शोधार्थी से मिलने का सुनिश्चय किया। जब मैंने कक्ष में प्रवेश किया तो बिस्तर से लेकर मेज तक खुली किताबें फैली देखीं, जिनमें बाकायदा फ्लैप लगे थे। मैं अचकचा-सा गया, परन्तु कक्ष के वासी-गुप्त जी ने स्वाभाविक एवं सरल मुद्रा में कहा—"आइए। बैठिए!!"—किताबें एक दूसरे पर रखकर समेट दीं। यह परिचय रहा। उसके बाद जीवन-जगत के झंझावातों से संघर्ष और रोजगार की तलाश ने काफी अन्तराल उद्भूत किया।

प्रथम मिलन पर परस्पर परिचय और संलाप चल ही रहा था कि इसी बीच स्टोव पर पानी गर्म होकर चाय तैयार हो गई और उसकी चुस्की मुस्कान बिखेरने लगी। चाय पीते-पीते उस समय जो मेरे मस्तिष्क एवं हृदय पर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ा, वह इस प्रकार था—मध्यम कद गठा हुआ-सा कांतियुक्त चुस्त वदन, मुख पर मीठी मुस्कान और मन में असीम आत्मविश्वास, आँखों में प्रतिभा की चमक और हृदय में भावनाओं का अजस्र प्रवाह, जिस पर लक्ष्य का इन्द्रधनुष खेल रहा हो—यह गुप्त जी ही आज के डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, डी.लिट्. हैं।

मैं गुप्त जी से इसलिए मिलने गया था कि उनके श्रेष्ठ अंकों की चर्चा लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ के हिन्दी-विभाग में मैंने सुनी थी और यह भी सुना था कि वह पंत जी पर शोधकार्य कर रहे हैं। मुझे उस दिन उनके संधिवात से दुष्प्रभावित बायें पैर में कैलीपर लगे होने के बारे में ज्ञात नहीं हो सका था।

यह भी सम्भव है कि उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से मैं ध्यान न दे पाया।

डॉ. गुप्त जी हिन्दी एवं संस्कृत के प्रतिष्ठित विद्वान और गद्य-पद्य के सुप्रसिद्ध रचनाकार हैं। लेखनी में सामर्थ्य है और चिन्तन में गहराई है। आज मैं अनुभव करता हूँ और अन्तर्हृदय की सच्चाई के साथ कह सकता हूँ कि उनके समान सुहृदय मित्र पाना बड़े सौभाग्य की बात है। इस अर्थ में मैं सौभाग्यशाली हूँ। उनके साथ घण्टे-आध घंटे बैठने पर नई ताजगी महसूस होती है। उनका हृदय श्रेष्ठ मानवोचित गुणों से भरा है। यदि ऐसा न होता तो सितम्बर 1971 ई. के बाद सन् 1990 ई. मे दूरभाष पर याद करना कुशलक्षेम पूछना उनके द्वारा न होता। आश्चर्यजनक घटना यह है कि सन् 1971 ई. के बाद आज तक मैं और डॉ. गुप्त एक दूसरे से प्रत्यक्ष नहीं मिल सके। लेकिन जीवनधारा के प्रवाह और यात्रा के उन्नयन में पत्राचार एवं दूरभाष से एक दूसरे के बारे में अवगत होते रहे हैं। इसका श्रेय आदरणीय गुप्त जी को ही है। सन् 1971 ई. में डी.एन. डिग्री कॉलेज, फतेहगढ़ में मैं हिन्दी प्रवक्ता नियुक्त हुआ और 9 सितम्बर 1974 ई. में कमला नेहरू विज्ञान एवं तकनीकी संस्थान, सुलतानपुर में अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग हो गया। (सम्प्रति वह संस्था—अब कमला नेहरू भौतिक एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुलतानपुर के नाम से प्रसिद्ध है।) डॉ. गुप्त के सूचना तंत्र के राडार पर यह सारी जानकारियाँ संकलित होती रहीं। मुझे इसका आभास तक नहीं हुआ।

वेदों ने गीत गाया है-चरैवेति चरैवेति इति जीवनः— चलते जाओ। चलते जाओ।। यही जीवन है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का जीवन प्रत्यक्ष इसका दर्पण है। उनका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। वह यथार्थ और सत्य के पक्षधर हैं। वह विनोदपूर्ण मुद्रा में जिस सरस, सरल एवं आत्मीयता के भाव से मिलते हैं, वह बड़ा ही हृदयस्पर्शी एवं रोचक होता है। उच्चमना, चरित्रवान एवं सहृदय डॉ. गुप्त का व्यक्तित्व बहुआयामी है। वह एक विदग्ध एवं अत्यन्त संवेदनशील साहित्यकार हैं। उनका हिन्दी प्रेम अप्रतिम है। नैतिक मूल्यों के प्रति उनमें अगाध निष्ठा है और भारतीय संस्कृति में पूर्णतः आस्था है।



प्रो. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल
4/547, विकासनगर, लखनऊ- 226022
मोबाइल नं. : 9452890000

6

फूल भी कांटे भी

मिले न फूल तो काँटों से दोस्ती कर ली
इसी तरह से बसर हमने जिन्दगी कर ली



ऐसी ही कुछ जिन्दगी रही है डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी की। जो मिल गया उसी को मुकद्दर समझ लिया जो खो गया, उसको भुलाता बढ़ता चला गया। जिन्दगी का साथ निभाता चला गया। हर फिक्र को धुएं में उड़ाता चला गया (वैसे डॉ. गुप्त धुआं नहीं उड़ाते हैं)। सन् 1973 के उत्तरार्ध में डॉ. गुप्त जी के साथ मैंने बरेली कालेज की नौकरी शुरू की, हम दोनों के बीच कई स्थितियां उभयपक्षी थीं। दोनों को ही प्रारम्भ में अपने विभाग में स्वीकृति नहीं मिली। मैं चार प्रथम श्रेणी, चार स्वर्ण पदक के साथ एक वर्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की नौकरी करके आया था लेकिन उस समय पीएच.डी नहीं था, लेकिन डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी पीएच.डी. करने के बाद आए थे। मेरे विभाग के कई सहयोगियों के मन में यह भावना थी कि आगे चलकर यदि कोई प्रोन्नति का अवसर आया तो शायद मैं अन्य सभी को पीछे छोड़ दूँ। इसीलिए प्रायः लोग मुझसे अनाश्वस्त, आशंकित एवं सशंकित थे। इसी प्रकार से गुप्त जी का व्यक्तित्व भी आत्मविश्वास से लबरेज था जो कुछ लोगों को पसन्द नहीं था। प्रारम्भ के कई वर्षों तक हम दोनों को विभाग में स्वीकार्यता नहीं मिली। फिर भी हम दोनों ने ही हार नहीं मानी, अपनेआप को स्थापित करके ही दम लिया। इसीलिए डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त से मेरी दोस्ती निरन्तर प्रगाढ़तर होती चली गई। उम्र और अनुभव में मेरे से बड़े होने के साथ मेरे प्रति सदैव उनका स्नेह बना रहा। हम लोग मिलते तो घंटों बातें होतीं। वह हालचाल पूछते और आवश्यकता पड़ने पर सम्यक् मार्गदर्शन भी करते। कालान्तर में हम दोनों की शादियाँ भी लगभग साथ-साथ ही हुईं। दोनों की पत्नियों के

बीच भी अच्छी मैत्री स्थापित हो गई। दोनों की पहली सन्तान भी लगभग एक साथ हुई। डॉ. गुप्त को दो पुत्र लाभ हुआ तथा मेरी तीन पुत्रियाँ हुई। मेरी पुत्रियाँ कई वर्षों तक डॉ. गुप्त के पुत्रों को राखियाँ बांधती रहीं तथा उनके पुत्र भी मेरी पुत्रियों को सम्यक् स्नेह देते रहे। ये स्नेह तीसरी पीढ़ी तक भी बरकरार है। जब भी मिलते हैं तो मेरे बच्चो के बच्चे और डॉ. गुप्त के बच्चों के बच्चे भी परस्पर मिलकर आह्लादित और आनन्दित होते हैं। डॉ. गुप्त के सान्निध्य में ही मैंने सीखा कि कितनी भी आपदाएँ और विपदाएँ आएँ हार नहीं माननी चाहिए तो अन्त में सम्पदा भी आपके अंक को भर देती है। लोगों के साथ बैठकर अनावश्यक पंचायत करना हम दोनों को पसन्द नहीं है। अतः खाली समय को लिखने पढ़ने में व्यतीत करते हैं।

अस्तु परमपिता से मेरी यही प्रार्थना है कि डॉ. सुरेशचन्द्र जब तक जियें, स्वस्थ रहकर और इसी शान, आन, बान, मान, ज्ञान के साथ जिएँ।

हरीओम।



डॉ. अगम दयाल
सेक्टर छः, मकान नं. 926, जानकीपुरम विस्तार, लखनऊ—226031
चलभाष : 9411699706, email. dr.agamdayal@gmail.com

कितना सम्बल था दादा का। हम बरेली में और दादा शाहजहाँपुर में, पर यह दूरी कभी दूरी न लगी। हर बाधा-विपत्ति में वे सबसे आगे। काल की करालता के बारे में सोचने का अवसर ही न मिला। इतना स्नेह-संरक्षण मिला दादा से कि पिताजी को भी भुला बैठा था। पिता समान ही तो थे वे। मरने से पूर्व भी, वे मुझे आश्वस्त करने आये थे कि सब कुशलमंगल होगा। हाँ, सब मंगलमय है। परिवार सुख-समृद्धि से संतुष्ट है। पर, दादा की स्मृति हर पारिवारिक प्रसंग में आती है – शिशु के जन्म में, पुत्रों के विवाह में, उत्सव उल्लास में।

वस्तुतः दादा अविस्मरणीय हैं, सदैव प्रणम्य हैं। दादा हमेशा नज़रों के सामने रहते है – कभी जीना चढ़कर आते हुए, कभी कुछ समझाते हुए, तो कभी सपनों में...... ।

7

''जितने कष्ट कंटकों में है जिनका जीवन सुमन खिला...''



वैसे तो हम सभी जीवन में अनेकानेक व्यक्तियों एवं घटनाक्रमों से मिलते रहते हैं, कुछ सीखते हैं, तो कुछ याद करके और भूलकर स्मृति पटल पर अभिनूतन आलेख अंकित करते रहते हैं और अवकाश के क्षणों में उनको यथावत् स्मरण कर हर्ष या विषाद की अनुभूति किया करते हैं। न्यूनाधिक यह सभी पर घटित होता है—इसमें पूर्ण समाजवाद है, कारण शिक्षित, अशिक्षित, समृद्ध-विपन्न, छोटे-बड़े या फिर विवेक-अविवेकशीलता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है, कि जो जितनी पुरानी घटना होगी वह अधिक गहनता से याद आएगी, इसके बाद तत्काल की घटनाएँ कभी-कभी धूमिल हो जाती हैं।

संभवतः इन्हीं तथ्यों से प्रेरित, भाई सुरेश जी पर बड़े दिनों से लिखने का मन कर रहा था। यह भी सत्य है कि सभी को कतिपय मित्रों के विषय में लिखने का अवसर ही कहाँ मिल पाता। कारण दो हैं—जिन पर लिखा जाए वह इतने कद्दावर नहीं हो सके और न लिखने वाले को कोई सन्दर्भ ही मिल पाया लिखने को। जो भी हो, मैं सौभाग्य समझता हूँ, लगभग अर्द्ध शताब्दी के मित्र जो भ्रातृ अधिक हैं, पर दो शब्द लिखने का। सच यह भी है, कि मानस पटल सुरेश जी की सुपाठ्य 'साहित्यायन' का वर्षों से पठन करने से और उसमें भी सर्वाधिक पठनीय 'स्मृति के विहग' से कुछ लिखने को मन उद्वेलित हो उठा।

यह भी सत्य है, कि मुझे शीर्षक सोचने में काफी समय लगा। मुझे इससे अधिक सटीक कोई और शीर्षक, कम से कम डॉ. सुरेश जी के सन्दर्भ में लगा ही नहीं। यह भी बताना आवश्यक मान रहा हूँ कि उक्त पंक्तियाँ सुरेश भाई से

परिचय होने से पूर्व मैंने याद कर ली थीं—कहाँ से, तो वह है 'मंगलसेन इन्टर कालेज, दलेलगंज, शाहजहाँपुर से, जो मेरा प्रथम शिक्षण केन्द्र था। स्वर्गीय श्री रामाश्रय गुप्त वहाँ पर एक आदर्श अध्यापक थे, जो हिन्दी-संस्कृत के परम ज्ञाता होते हुए एक स्वाभिमानी कवि एवं मानवीय संवेदनाओं की परख रखने वाले संवेदनशील व्यक्ति थे। अतः उनके द्वारा यह पंक्तियाँ प्रायः उद्धृत की जाती थीं, जो संभवतः हम जैसे साधनविहीन छात्रों को आशान्वित करती थीं। श्रद्धेय गुप्त जी ने इन जैसी अनेक पंक्तियाँ पीली पृष्ठभूमि में काले रंग की वार्निश से विद्यालय परिसर में अंकित भी करा दी थीं, जिससे अधिक से अधिक छात्र इसे पढ़ सकें।

सुरेश भाई के विषय में मैं क्या भूलँ और क्या याद करूँ, वह मेरे आदर्श, प्रेरणास्रोत, मनोबल उन्नायक, शुभचिन्तक एवं अग्रज हैं। गाँधी महाविद्यालय मेरी अध्ययन शृंखला का दूसरा पड़ाव था। सकुचाते क्या विषय पढ़े, केसे घर की दूरी को पार करेंगे आदि चिन्ताओं के बीच स्नातकीय अध्ययन हेतु वहाँ पहुँच गए। यही वह स्थान है, जहाँ सुरेश भाई से वर्ष 1966 की जुलाई में परिचय प्रगाढ़तर हुआ। उस समय वह मित्र बनबारी लाल जी के साथ आते थे, जो हमारे साथ गत विद्यालय में बारहवीं कक्षा में पढ़ चुके थे। कहना न होगा, सुरेश जी की अध्ययनशीलता, अकल्पनीय विषय-विवेचना एवं जिज्ञासा, स्वाभिमान जो प्रत्येक कदम पर परिलक्षित होता था और जो लगभग अभिमान की सीमा तक दिखाई देता था—हमें ही नहीं अन्य सहपाठियों को भी, किसी को भी आकर्षित किए बिना नहीं रह सकते थे। संभवतः यह उनके लिए आवश्यक भी था। यदि ये गुण न होते तो लगभग दस वर्ष बाद पुनः अध्ययन प्रारम्भ करना, वह भी स्नातक स्तर पर, अनेकानेक परिस्थितियों से जूझ कर, जो किसी को भी धराशाई करने को पर्याप्त थी, सम्भव न था। गांधी फैजाम कालेज भी अपने समय का एक उच्च स्तर का और शाहजहाँपुर का प्रथम स्नातकीय महाविद्यालय था, जो आगरा विश्वविद्यालय के श्रेष्ठतम महाविद्यालयों में गिना जाता था। वास्तविकता तो यह है, जो इसका एवं अंग्रेजियत मानसिकता (इस्लाम भद्रलोक मिश्रित) गाँधी कालेज में दो वर्षों में देखी वह डी.ए.वी. कालेज, कानपुर जो मेरा तीसरा विद्यालय रहा, में जो कई गुना विशाल प्रख्यात महाविद्यालय है, में कदापि दिखाई नहीं पड़ी। इसका उल्लेख हम प्रायः किया करते थे। कदाचित्, लखनऊ विश्वविद्यालय में उस जैसा या उससे अच्छा वातावरण रहा हो, और सुरेश जी को मिला हो। वैसे भी स्नातकीय दिन विशेष स्मरणीय हुआ करते हैं।

वास्तविकता तो यह है, जो जीवन के असाधारण क्षण और कष्टातिरेक

के दिनों से भाई सुरेश निकल के आए हैं, जो उन्होंने 'ममानुज' और अन्यान्य संस्मरणों में उल्लेख किए हैं, उसका पूर्ण आभास एवं परिज्ञान हमें भी नहीं था। 'संघर्ष और उस पर विजय, यदि यह सीखना है, तो सीखे सुरेश जी से। संभवतः सुरेश भाई को भी यह नहीं पता होगा कि उनका सूक्ष्म परामर्श हमारे लिए ब्रह्मवाक्य बन जाता है। अनेकानेक सुझाव जो उन्होंने मुझे दिए -जाने अनजाने में, वह हमें यथावत् स्वीकार्य रहे। जैसे, जब संघर्ष कर रहे थे प्राध्यापक बनने हेतु तो उन्होंने कहा कि तुम्हें सदैव तो अध्यापक रहना नहीं अतः छोटी जगह पर भी यदि स्नातकीय महाविद्यालय में नियुक्ति मिले तो, ले लेना। ऐसा ही चरितार्थ हुआ। इसी तरह लिखना-पढ़ना, उनके अनुसार, सर्वाधिक संतोष एवं आनन्द का विषय है और परोपकार अपनी शक्ति के अनुसार करते रहना। परम, आनन्द का विषय है। मेरा आचरण आज तक इसी प्रवृत्ति से संचालित है।

लखनऊ विश्वविद्यालय में शोधार्थी होने के निमित्त सुरेश जी छात्रावास में ही रुक गए। और हम लोग दो वर्ष की स्नातकोत्तर पढ़ाई के बाद 1970 में वापस आ गए। अतः प्रायः उनके निवास रेती मोहल्ले में, सघन वृक्ष की छाया में उनसे घण्टों विचार-विमर्श हो जाया करता था—जब वह ग्रीष्मावकाश में लम्बे समय के लिए अपने घर आते थे। उस समय बड़ी ही लोकप्रिय दो पत्रिकाएँ 'धर्मयुग' एवं 'हिन्दुस्तान साप्ताहिक' उनके पास आते थे, मैं उन्हें पढ़ने में, उनकी चारपाई पर बैठकर, तल्लीन हो जाता था। इसी बीच कभी-कभी उनके लखनऊ जाने के और लौटने के विषय में जानकारी हो जाने से, कुछ पुस्तकें भी मंगा लिया करता था-उसमें से एक पुस्तक 'एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' जो भारतीय इतिहास की मूर्धन्य कृति है और तीन लेखक, मजूमदार, दत्ता एवं राय चौधरी (त्रयी) लिखित आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

सुरेश जी के कृतित्व की रेखाएँ, उनके छात्र जीवन से ही स्पष्ट उभरने लगी थीं। कारण, वह बेहद अध्ययनशील थे। गाँधी कॉलेज में प्रायः पुस्तकालय के पास देखे जाते थे, पुस्तकों के समूह के साथ। परिश्रम एवं दृढ़ता उनके प्रत्येक कार्य में परिलक्षित होती रही है और वही हम उनके लेखन में पाते हैं। 'साहित्यायन' हो या फिर उनके द्वारा प्रणीत गम्भीर विषयक साहित्य, उन्होंने सभी को अथक परिश्रम से संवर्धित किया है। उनके लेखों में जहाँ जीवन की कसक है वहीं आगे बढ़ते जाने का उन्माद। जहाँ जीवन के संघर्षों का उल्लेख है, वहीं सब कुछ पाने का उत्कर्ष। खोने से अधिक पाने का उत्साह और जीवन-पर्यन्त कुछ करते जाना- यह उनका जीवन दर्शन। लेखनी के धनी सेवाकाल के कुछ वर्ष पूर्व डी.लिट. की उपाधि प्राप्त करना उनकी अदम्य बौद्धिक क्षमता

का परिचायक है। प्रायः कुछ सोपान चढ़ जाने के बाद व्यक्ति रुककर क्षण पर विश्राम करना चाहता है, परन्तु उक्त संदर्भ में सोपानोपरान्त जाने की आकांक्षा प्रतीत होती है और उनके साहित्य में उक्त आशावाद सदैव परिलक्षित होता है। और हो भी क्यों न-यदि ऐसी उत्कट केन्द्रित आशा की प्रखर द्युति से भाई सुरेश आवेष्ठित न होते तो क्या स्वप्न में भी जीवनघाती एक दशक की अस्वस्थता से उठकर, अध्ययन, अध्यापन कर सुखद पूर्ण संतुष्टि का जीवन यापन करते हुए इस विपुल साहित्य के प्रणेता बन पाते। इसीलिए मुझे श्रद्धेय श्री रामाश्रय गुप्त, मेरे परम प्रिय विद्वान, अध्यापक प्रवर जिन्होंने मेरे प्रारम्भिक, दुःखातिरेक काल में अतीव साहस एवं स्नेह दिया, द्वारा इंगित यह पंक्तियाँ मेरे अग्रज पर पूर्ण चरितार्थ होती प्रतीत होती हैं :

जितने कष्ट कण्टकों में है
जिनका जीवन सुमन खिला।
गौरव, गन्ध उन्हें उतना ही,
यत्र, तत्र, सर्वत्र मिला।।



राजेन्द्र प्रसाद मिश्र (आई.ए.एस.)
भूतपूर्व गृह सचिव भारत सरकार,
1166 सेटर 'ए', पाकेट 'ए', बसन्त कुंज, नई दिल्ली- 110070
दूरभाष :011-26894516, चलयंत्र : 09871289116

पाप – न करूँगा, न होने दूँगा।
अपराध – न करूँगा, न करने दूँगा।
खुद को सुधारूँगा।
दुनियाँ संवारूँगा।

8

मेरे मित्र और सहपाठी डॉ. गुप्त जी



परमादरणीय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी न केवल मेरे सहपाठी रहे हैं, अपितु, वह मेरे अग्रजतुल्य भी हैं। इनसे मेरी प्रथम भेंट 1968 में लखनऊ विश्वविद्यालय में एम.ए. (हिन्दी), प्रथम वर्ष में हुई थी, तब से बना विद्यार्थी जीवन का सम्बन्ध कालान्तर में एकदम पारिवारिक हो गया और आज तक यथावत् जीवंत है।

श्री गुप्त प्रारम्भ से ही अत्यन्त स्वाध्यायी तथा लेखनरत रहे हैं। इनकी साहित्य-साधना किसी समर्पित मनस्वी योगी से कम नहीं है। सौभाग्य से मुझे इनके सान्निध्य का विशेष अवसर प्राप्त हुआ है। मैं तो लखनऊ आलमबाग का निवासी था, परन्तु श्री गुप्त विश्वविद्यालय परिसर में स्थित छात्रावास में रहकर अध्ययन कर रहे थे। मैं उन दिनों सुवेगा मोपेड से विश्वविद्यालय जाया करता था। मेरा प्रयास रहता था कि मैं सर्वप्रथम छात्रावास पहुँचकर, इन्हें लेकर कक्षा में पहुँचूं। इसी प्रकार कक्षा समाप्त होने पर इन्हें छात्रावास या जहाँ यह चाहते थे, वहाँ इन्हें छोड़कर अपने घर वापस लौटता था। यह लगभग प्रतिदिन का नियम सा बन गया था। लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के अतिरिक्त लखनऊ के अन्य प्रतिष्ठित पुस्तकालयों, इष्ट मित्रों, प्रोफेसरों या जहाँ भी कोई प्रोग्राम आयोजित हुए इन्होंने मुझे अपने साथ ले चलने का सौभाग्य प्रदान किया। मुझे इस बात का असीम संतोष है कि मैं इन मनस्वी साहित्य-साधक के कुछ काम आया।

मैं प्रारम्भ में शिक्षा क्षेत्र से ही जुड़ा, परन्तु संयोग से कहीं स्थायी तौर पर नहीं रह पाया। बाद में उ.प्र. सरकार की नौकरी से आजीविका चली। कई वर्षों तक आपूर्ति निरीक्षक रहा। कई वर्ष बरेली में भी रहा था, बाद में जिला आपूर्ति अधिकारी के पद से रिटायर हो गया।

एक श्रेष्ठ साहित्य साधक, प्रोफेसर एवं सबसे अधिक बड़े भाई के सदृश श्री गुप्त जी ने मुझे लेखन कार्य से जुड़ने की बहुत प्रेरणा दी, कि कुछ-न-कुछ लिखो, जो विचार आए उसे लिखो, लिखने का अभ्यास हो जायेगा, परन्तु मैं समझता हूँ कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु 'आलस्य' है, वही मुझे इसके लिए बाधक बनता है, जिसे मैं चाहकर भी परास्त नहीं कर पाया हूँ।

भाई गुप्त जी के पीएच.डी. एवं डी.लिट्. के शोधग्रन्थ उच्च कोटि के हैं। उन्होंने अपने प्रोफेसर जीवन में अनेक छात्रों को शोध कार्य में कुशल निर्देशन दिया है। उनके निर्देशन में पीएच.डी. हुए अनेक छात्र डिग्री कालेजों में प्रोफेसर हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने मौलिक रूप से भी बाल उपन्यास, संस्मरण, काव्य संग्रह एवं यात्रावृत्त आदि की संरचना की है।

वर्तमान में वे 'साहित्यायन' नामक पत्रिका का लगभग विगत नौ वर्षों से सम्पादन कर रहे हैं, जिसमें नए उदीयमान कवि एवं लेखकों को न केवल मंच मिल रहा है, बल्कि उनकी लेखनी से तमाम पाठक परिचित हो रहे हैं। पत्रिका के सम्पादकीय आलेख में समय-समय पर सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक विषयों का सामयिक विश्लेषण रहता है, जो अत्यन्त रोचक एवं पठनीय होता है। पत्रिका का सम्पूर्ण कलेवर इतना अच्छा है कि उसके अगले अंक की प्रतीक्षा रहती है।

भाई गुप्त जी मेरे सहपाठी या मित्र ही नहीं है, सगे सम्बन्धी जैसे भी हैं। मेरे पुत्र-पुत्रियों के विवाह में वे शामिल होते रहे हैं और हम भी सपरिवार उनके यहाँ जाते रहे हैं। एक बार हम अपने परिवार के साथ उनके घर गए, तो नैनीताल भ्रमण का संयोग बन गया। इसी प्रकार, एक बार हम लोग अर्थात् दोनों परिवार साथ-साथ भगवान राम की जन्मभूमि के दर्शन को गए, और सरयू में स्नान के साथ ही अनेक मन्दिरों के दर्शन किए थे। मैं श्री गुप्त जी एवं उनके परिवार से सपरिवार आज भी जुड़ा हुआ हूँ तथा उनके इस 'हीरक जयन्ती वर्ष' पर ईश्वर से हार्दिक कामना करता हूँ कि वह सपरिवार स्वस्थ जीवन व्यतीत करते हुए लम्बे समय तक अपने अमूल्य साहित्य सर्जन से माँ भारती की, सेवा करते रहें तथा मुझे पूर्ववत अपना स्नेह व आशीष प्रदान करते रहें।



विनोद कुमार त्रिवेदी
डी-89 राजाजीपुरम, लखनऊ
मोबाइल नं. : 9450662454

9

मुझे गर्व की अनुभूति होती है



सुरेश जी से मेरा सम्पर्क सर्वप्रथम तब हुआ जब मैंने एम.ए. के लिए प्रवेश लिया वर्ष था-1968-69 । मैं कुछ संकुचित स्वभाव का हो गया था शायद पिता की मृत्यु एवं बड़े होना कारण रहा हो, परन्तु सुरेश जी सारी कठिनाइयों के बाद भी प्रसन्न मुख एवं वातावरण में रमने वाले थे। उनका साथ धीमे-धीमे घनिष्टता में बदलता चला गया। कई बार मैं उनके हॉस्टल रूम भी गया और कई बार उनके साथ घर पर भोजन का सौभाग्य भी मिला। जिन लोगों से मेरी अभिन्नता हुई उनमें सुरेशजी के अतिरिक्त श्री विनोद त्रिवेदी, श्री इन्दर चन्द तिवारी, श्री सतीराम, निशि प्रभा, निशा जैसवाल आदि प्रमुख थे।

एम.ए. द्वितीय वर्ष में एक प्रश्न पत्र विशेष अध्ययन का होता था, हम लोगों ने जायसी विशेष कवि के रूप में लिया। श्री त्रिवेदी जी, तिवारी जी एवं सुरेश जी का साथ इस समय और प्रगाढ़ हुआ। आगे चलकर विनोद जी की लाइन में परिवर्तन हो गया। मैं भी जीवन की जद्दोजहद में लग गया। परन्तु सुरेश जी ने शोध कार्य के लिए आगे प्रवेश लिया। उनकी निष्ठा और लगन ने उन्हें पीएच.डी. ही नहीं, डी.लिट् की उपाधि भी दिलवाई।

अभिरुचियों में, पता नहीं क्यों फोटोग्राफी मुझे सबसे अच्छी लगती है। लगभग पचपन-छप्पन वर्ष तक मैंने फोटो खींची हैं। पुराने फोटो देखकर मन विभिन्न भावों से भर जाता है। विशेष कवि जायसी में मैंने, याद के लिए एक ग्रुप फोटो खींच लिया था...। जायसी-वर्ग के सभी मित्रों को उस फोटो की प्रति प्रदान की थी। सुरेश जी को अलग से बड़ा कराके फ्रेम में सज्जित कर प्रदान किया है।

पढ़ना-लिखना सुरेश जी का व्यसन रहा है। इसी में वे बराबर रमे रहते

हैं। कविता, जीवनी, शोध ग्रंथ, यात्रा वृतान्त, अनुवाद आदि न जाने किन-किन विधाओं में आपने अपनी लेखनी चलाई है। आपकी मेधा आपकी स्मरण शक्ति का जवाब नहीं है। संस्मरणों में इसे स्पष्ट देखा जा सकता है। विशेषकर 'स्मृति सिन्धु से' संज्ञक संस्मरणों मे, क्योंकि उनमें लखनऊ विश्वविद्यालय में हम लोगों के साथ रहने, पढ़ने, पिकनिक जाने आदि के सरस उल्लेख किए गए हैं।

यह आपका प्रेम ही है कि 'साहित्यायन' पत्रिका मुझे अबाध मिलती है। जिस सौन्दर्य व सजीवता से ये, अपनी बात प्रस्तुत करते हैं, पढ़कर आनन्द आता है। 'स्मृति के विहग' में सुरेश जी ने जो वर्णन किया है, और जो मनोविश्लेषण किया है वो काबिलेतारीफ है। अपने मित्रों को आगे बढ़ते देख कर मुझे भी गर्व की अनुभूति होती है, मन प्रफुल्लित होता है। सुरेश जी पर जो ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है निश्चित ही वो मेरे लिए आनन्द और सुख का विषय है। मैं इसे व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं खोज पा रहा हूँ। सम्प्रति, मेरी अनंत मंगल कामनाएँ।



प्रो. ललित किशोर मिश्र
सेवानिवृत अध्यक्ष हिन्दी विभाग
विद्यान्त हिन्दू कालेज, लखनऊ
बी-35/6 सैनिक सोसायटी, लखनऊ- 226 008
चलयंत्र: 9450359955

गाऊँगा मैं दुःख में भी
गौर गात गला क्षणों में,
प्राणरज्जु समीर कंपित।
गल चली यौवन-श्री शुभ,
ढल चुकी मादक-सुरा सित।।
दुख बना है मीत फिर भी।
गाऊँगा मैं दुःख में भी।।

10

कविप्रवर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की शब्दार्थसार्थोज्जवल-साधना



कविता वस्तुतः निर्मल मन की अभिव्यक्ति है। जिस व्यक्ति को कविता की समझ हो, वह धन्य है और जिसे कविता लिखने की शक्ति प्राप्त हो, वह नरपुंगव माँ भारती का औरस पुत्र है और जिसके पास कविता की पूँजी है वह किसी भी सम्राट से श्रेष्ठ है। इसलिए योगिराज भर्तृहरि ने लिखा है—'सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्।' कविवर रामचरित उपाध्याय लिखते हैं—

मन रमा रमणी रमणीयता, मिल गयी यदि ये विधियोग से।
पर मिली न जिसे कविता-सुधा, रसिकता सिकता सम है उसे॥

कविता सुधा को प्राप्त कर व्यक्ति सांसारिक दुविधाओं को नीलकंठ की भाँति पचा लेता है। जीवन की विसंगतियाँ संगतियों में परिणित हो जाती हैं। अभिशाप वरदान हो जाता है। पथ के कंकर शंकर हो जाते हैं। कविप्रवर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त माँ वीणापाणि के ऐसे ही कृपापात्र हैं, जिनका सम्पूर्ण जीवन लोकानुग्रहकांक्षी हो गया है। डॉ. गुप्त की प्रसिद्धि नीरक्षीरविवेकी आलोचक, काव्यशास्त्रीय विश्लेषक और साहित्येतिहासकार के रूप में तो है ही, साथ ही शब्दार्थसार्थोज्ज्वल काव्य-साधना करने वाले कविर्मनीषी के रूप में भी है। डॉ. गुप्त ने जहाँ एक तरफ पीएच.डी. उपाधि के लिए 'पंत की दार्शनिक चेतना' और डी.लिट्. के लिए 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' जैसे श्रेष्ठ शोधप्रबन्धों का प्रणयन किया, वहीं 'एक आलोचनात्मक अध्ययन' की परम्परा में 'मानस का हंस', 'गोदान', 'प्रवाद पर्व', 'मैला आँचल', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', 'टूटते परिवेश', 'अजातशत्रु' और 'हंसजवाहिर का गवेषणापूर्ण

अध्ययन' करने का कीर्तिमान स्थापित किया। 'भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र', 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' एवं 'सूर साहित्य का विशिष्ट अध्ययन' जैसी कृतियाँ जहाँ एक ओर डॉ. गुप्त की सम्यक् संतुलित शब्दार्थ सौष्ठव संवलित भावयत्री मनीषा का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं, वहीं, दूसरी ओर डॉ. गुप्त को 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' उक्ति को चरितार्थ करने वाला सिद्धहस्त गद्यकार सिद्ध करती हैं। 'विश्व के महान साहित्यकार', 'कविवर सुमित्रानन्दन पंतः व्यक्तित्व और कृतित्व' 'बाबा नागार्जुन' संज्ञक कृतियों के सफल जीवनीकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की काव्यधर्मी चेतना 'मनपाँखीं' के स्वर्णिम पंखों के सहारे 'स्वर्णजयन्ती वर्ष' की आराधना 'गीतश्री' के माध्यम से करते हुए 'ऋतु वसन्ती' का शाश्वत निनाद करती है। डॉ गुप्त की कविता की अब तक छह पुस्तकें प्रकाशित हैं— मनपाँखीं, 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'गीतश्री', 'ऋतु वसन्ती', 'लोकतांत्रिक भारत में' और 'आत्ममंथन'। उनकी सद्यः प्रकाशित काव्य कृति का नाम है—'देवी, माँ, सहचरी, प्राण"।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की 'ऋतु वसन्ती' का प्रमुख स्वर शृंगार रसाप्लावित है। शृंगार शब्द शृंग और आर इन दो शब्दों के योग से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—कामोद्रेक (शृंग) की प्राप्ति (आर) या वृद्धि। आचार्य भरत ने शृंगार रस को परिभाषित करते हुए लिखा है—सुखप्राय, प्रिय वस्तुओं से युक्त ऋतु माल्यादि का सेवन करने वाले स्त्री-पुरुष से युक्त रस को शृंगार कहते हैं—

सुख प्रायेषु सम्पन्नः ऋतुमाल्यादिसेवकः।
पुरुषा प्रमदायुक्तः श्रृंगार इति संज्ञितः॥

(आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, 6,46)

आचार्य विश्वनाथ ने कामदेव के उद्भव को शृंग और उसकी उत्पत्ति के कारणभूत उत्तम प्रकृति को शृंगार रस कहा है—

शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते॥

(आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, 3.183)

आचार्य भरत और आचार्य विश्वनाथ की परिभाषाओं को ध्यान में रखकर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि 'ऋतु वसन्ती' का प्रणयन डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने शृंगार के शास्त्रीय लक्षणों के अनुरूप किया है। यद्यपि डॉ. गुप्त का उद्देश्य शास्त्रीय परिभाषाओं के अनुरूप गीत-रचना का नहीं है, तथापि शास्त्र की बलिष्ठ

बाहु-वल्लरियाँ इतनी प्रलम्ब हैं कि उनकी पकड़ से कुछ भी बहिर्गत नहीं हो सकता। आचार्य धनंजय ने शृंगार के तीन भेद निरूपित किये हैं—अयोग, विप्रयोग और संभोग। जब नायक-नायिका परस्पर आकृष्ट होकर भी परतंत्रता या दैवयोग से मिल न सकें तो अयोग शृंगार होगा—

अयोगो विप्रयोगश्च सम्भोगश्चेति स त्रिधा।
तत्राऽयोगोनुरागेऽपि नवयोरेकचित्रयोः।।
परतन्त्रेण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः।।

(आचार्य धनंजय, दशरूपक, 49-50)

सर्वप्रथम आचार्य धनंजय ने शृंगार के भेदत्रय की कल्पना की है, जबकि रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भरत ने मात्र दो भेद वर्णित किये हैं—

यस्यद्वे अधिष्ठाने सम्भोगो विप्रलम्भश्च।

(आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, 6.45)

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की 'ऋतु वसन्ती' में शृंगार की भेदत्रयी के गीत हैं। शृंगार की अनेक मनोरम भावोर्मियाँ 'ऋतु वसन्ती' में दृग्गत होती हैं। शृंगार के समस्त आलम्बन, उद्दीपन, विभाव एवं अनुभाव अपनी पूरी जीवन्तता के साथ प्रकट हुए हैं। वस्तुतः कवि का सम्बन्ध उस बाजार से है, जहाँ चारुसर्वांगी नायिका का झुमका गिर गया था—'मेरा झुमका गिरा रेऽऽ बरेली के बाजार में।' निश्चय ही कवि या गीतकार जिस स्थान परिवेश में निवास करता है, उसकी प्रतिध्वनि कविता में आती ही है। डॉ. जगदीश गुप्त ने कविता और भोगे हुए यथार्थ को रेखांकित करते हुए लिखा है—

दूसरा तट है मगर दिखता नहीं है।
कवि बिना अनुभव किये लिखता नहीं है।।

तत्त्वतः डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के गीतों का दूसरा तट है, दूसरा पक्ष भी है, किन्तु नेपथ्य में। 'ऋतु वसन्ती' के गीत कोरी कल्पना की उपज नहीं है। यह कैसे कहा जा सकता है कि अपनी जवानी का जलवा बिखेरनेवाली, बिजली गिरानेवाली, अपनी गोलाइयों को दिखाने वाली डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त से बलात् गीत लिखवा लेने वाली नायिका मात्र कल्पना प्रसूत है। रात-रात भर जिसकी स्मृति में शब्दार्थसार्थोज्ज्वल-साधक जागता रह जाए और यदि भूलकर नींद आ भी जाये तो वह भुवन-मोहिनी वक्ष से सटकर क्रीडा करने लगे, स्वप्न में पतन

का मार्ग प्रशस्त कर दे (ऋतु वसन्ती गीतांक 4), जिसकी रजस्रावी दावात में अपनी क्वारी कलम को डुबोकर (ऋतु वसन्ती, गीतांक 26) गीतकार ब्रह्मानन्द सहोदर की साधना करना चाहता है, उसके सौन्दर्य और आकर्षण की कल्पना घनानंद 'सुजान', बोधा-'सुभान', तथा आलम-'शेख' और केशव एवं कविप्रिया की जोड़ी की तरह ही रमणीय है।

विप्रयोग या विप्रलंभ के अनेक गीत हैं। पीड़ा की अनुभूतियों के चित्र गीतों की मधुरिमा में तरह हो गये हैं—

तुम क्या रूठे सजन रूठी दुनिया मेरी
बेवफा भी बनूँ कोई तुमसा नहीं
शून्यवत् सब जगत् कण्टकित है दिशा
शोक दिल में समाता हमारे नहीं।

(ऋतु वसन्ती, पृ. 23)

अथवा

जो सघन कुंज की छाँह थी पालती
अब नहीं वह परश, शूल-सी सालती
वह पवन जो कि सौरभ ही देता रहा
आज बन लू की लपटें जलाता रहा
यह विरह की जलन है न इसकी दवा।
तुम क्या बदले जमाने की बदली हवा।।

(ऋतु वसन्ती, पृ. 25)

डॉ. गुप्त के गीतों का 'सजन' या 'तुम' सांसारिक भी है, अद्वैतवादियों का ब्रह्म भी है और सूफियों का खुदा भी है, जिसको प्राप्त करने के लिए पंचसोपान— नासूत् (नरलोक), मलकूत (देवलोक), जबरूत (ऐश्वर्यलोक), लाहूत (माधुर्यलोक) और हाहूत (सत्यलोक) से गुजरना पड़ता है। वस्तुतः 'ऋतुवसन्ती' में शृंगार की अनेक मादक छवियाँ हैं। लोकगीतों की मधुर रागिनी भी है और अन्तःकरण की प्रेमोष्मा का मार्दव भी है। लोकगीतों की तरलता निम्नांकित गीतों में विद्यमान है—

खोई खोई आँखों में चलती बयार है।
पाने को प्रियतम का प्यार चली।
दुल्हन ससुराल चली।।

अधरों की लाली है, हाथों में मेंहदी।
माँग में सिन्दूर भरा, माथे पर बिन्दी।
सजकर के सोलह शृंगार चली।
साजन का पाने को प्यार चली।
दुल्हन ससुराल चली।।

(ऋतु वसन्ती, पृ. 16)

तथा

मसक गयी फूलों की चोली
झाँक उठा मदमाता नव यौवन
रति पति का फिसल गया पाँव क्षण भर में
बाज उठी बाँसुरिया। बन बन में।

(ऋतु वसन्ती, पृ. 99)

इन गीतों में प्रेम का कोरा प्रलाप ही नहीं, अपितु रहस्यवादियों का अध्यात्म भी है। सोलह शृंगार करके साजन का दुलार प्राप्त करने के लिए प्रस्थित दुल्हन तत्त्वतः आत्मा का प्रतीक है। दुल्हन का साजन से मिलन 'मअरिफत' है। 'अन्-अल्-हक्' की स्थिति प्राप्त करना है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के गीतों की चेतना निरन्तर नफ्स और रूह के अन्तर्द्वन्द्व से आप्लावित है। नफ्स मनुष्य का पाशविक पक्ष है जो भावावेश से संचालित होता है। यह कुवृत्तियों का क्षेत्र है जो वासनापूर्ण और निम्नकोटि का है। जब डॉ. गुप्त की अभिसारिका अपनी जवानी के साथ चमचमाती कर्णबालियों से किल्लोल करती, अपनी गोलाइयों को मचलकर दिखवाती हुई यौवन की मीठी कहानी कहती है, तब नफ्स की जमीन दिखाई देती है। उस समय डॉ. गुप्त के भीतर का गीतकार साधारण मनुष्य है जो मानवीय कमजोरियों से परिपूर्ण है। वस्तुतः जब सूर के कृष्ण राधिका के उन्नत उरोजों को पकड़ते हैं और माँ यशोदा के आ जाने पर सुन्दर बहाना गढ़ लेते हैं, तब डॉ. गुप्त के भीतर का गीतकार किंचित् अन्वीक्षण कर लेता है तो क्या हर्ज है? लेकिन यह केवल इश्क मिजाजी का सोपान है, जो नफ्स के परिक्षेत्र में है। इश्क हकीकी की स्थिति दूसरी है। इसका सम्बन्ध 'रूह' से है। 'रूह' भारतीय दर्शन की आत्मा के सदृश दिव्य और महान् है। वस्तुतः यह आत्मा का दैवी पक्ष है, जो विवेक से परिचालित है। यह बुराई से मुक्त और अदृश्य है। केवल कल्ब (हृदय), रूह (आत्मा) एवं सिर्र (अन्तःकरण) की सोपानत्रयी के द्वारा ईश्वर का आध्यात्मिक

सम्पर्क प्राप्त करते हैं। आधुनिक कवियों पर आचार्य रजनीश का प्रभाव भी काफी पडा है। मैं सुरेशचन्द्र गुप्त के कतिपय गीतों पर भी आचार्य रजनीश का प्रभाव स्पष्ट दृग्गत होता है—

परम तत्त्व मूर्तित साकार।
चटख गयी कलियों की योनि / फूल गयी भग्नाशा, अँगड़ाती
रजस्वला पुष्पों की अलमस्त / सौरभ ने बिखरा दी रज-मादक
सम्मोहित भँवरों की टोलियाँ / वासन्ती वैभव में पसर गयीं
रूप मदिर अँखियों में प्यास / हुई अन्ध यौवन की मार

बहक गये चरण, अनायास/ कलियों को चूमा दे गलबाहीं
अधरों पर अधर धरे चिर व्याकुल / प्राणों से बाँध दिये प्राण
सुध-बुध बिसरा दी अग जग की/ हुआ स्खलित युग नर जब
कलिभग ने पिया धवल वीर्य / भोग लिया चिदानन्द ब्रह्म

चेतन ने धरा नव शरीर / प्राणों ने पहना परिधान नवल
कलिका ने प्रसव किया अलि/ अलि ने रूप धरा कलि का
अगणित यों नामरूप ग्रहण किये / सत् चित् आनन्द परम ईश्वर ने
लक्ष लक्ष योनियों से गुजर हुआ / परम तत्त्व मूर्तित साकार।

(ऋ तु वसन्ती, पृ. 93.94)

उपर्युक्त गीत में सम्भोग से समाधि तक का शाश्वत दर्शन है। इसी तरह 'स्वर्ण झरा गात से' शीर्षक गीत भी है। अमरवेल का विभोर होकर किसलय से आलिंगन बद्ध हो जाना, अधर चूम लेना, आतुर होकर रति की कामना करना आचार्य वात्स्यायन के वृक्षाधिरूढ़क आसन को चरितार्थ करती है। आलिंगन, चुम्बन, मर्दन, स्तम्भन और स्खलन का स्फीत दृश्य जीवन्त हो उठा है, किन्तु यह सब भोगाकांक्षा से प्रेरित नहीं है। इसके पीछे सृजनधर्मी चेतना है। नूतन शिशु को प्राप्त करने की आकांक्षा है—

धरती की विहँसि उठी योनि स्निग्ध / आदि पुरुष स्खलित हुआ,
आज सृजन चाहिए/ भामिनि नूतन शिशु चाहिए।

(ऋतु वसन्ती, पृ. 95-96)

तत्त्वतः यह भीतर की वासना अथवा फ्रायड एवं युंग की दमित कामकुण्ठा का

प्रतिफलन नहीं है, अपितु इसमें वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की कामविषयिणी अनाविल एवं पुनीत दृष्टि है—

तां पूषंधिवतमामरेयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।
या न उरू उशती विश्रयति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेषः।।

(अथर्ववेद, 14/2/382)

अर्थात् हे परमेश्वर! आज मुझे अपनी पत्नी में बीजारोपण करना है, अतः उसको अनुप्राणित कीजिए जिससे वह मेरी कामनाएँ करती हुई अपने नितम्बों को फैलाकर अपनी योनि को ऊर्ध्वमुख करे और मैं अपने लिंग को प्रविष्ट करूँ।

रीति काल में भी संभोग के अनेकशः चित्र उपलब्ध होते हैं। महाकवि कालिदास ने श्रीकृष्ण और राधिका के संभोग का जीवन्त चित्रण किया है—

कीन्हीं जानु आसन में उनई सरासन सों
गरे भुज पासन सो गहत छबीली को।
कालीदास ललकि लपेट लहै दामिनी लौ
स्यामधन जोति धनगात गरबीली को।।
गहि के कठोर दुख दुम्बनि कनक रंग
चुम्बन करत अंग अंग चटकीली को।
मैन मद झूमि झूमि तूल सम तूमि तूमि
लेत मुख चूमि चूमि राधिका रसीली को।।

(कालिदास, रीति शृंगार मंजूषा, सं. डा. किशोरी लाल, पृ. 120)

संभोग के समय नायक श्रीकृष्ण ने नायिका राधा के जानु को आसन में झुके हुए धनूष की भाँति बना दिया (रतिक्रिया में उसके घुटनों को फँसाकर झुके हुए धनुष जैसा कर दिया) तथा गले के भुजपाश से (उसके गले में अपनी भुजाओं को डालकर) सुन्दरी राधिका को पकड़ने लगे। कवि कालिदास के शब्दों में बादल के सदृश श्रीकृष्ण ने अत्यधिक प्रकाश से युक्त शरीरवाली गर्वीली राधा को बिजली की भाँति बड़ी ललक के साथ लिपटा लिया। पुनः श्रीकृष्ण ने सुन्दरी राधा के गौरवर्ण के तुम्बे के सदृश कठोर स्तन मण्डल को पकड़कर राधा के अंग प्रत्यंग का चुम्बन किया और कामदेव के मद में झूमते हुए और रुई के समान उधेड़-उधेड़ कर रसीली राधिका का मुख बार-बार चूमा।

वस्तुतः डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के सम्मुख वैदिक ऋषियों से लेकर राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत उर्वशी तक की प्रशस्त परम्परा है। अध्यात्म के

साथ-साथ कामाध्यात्म का विस्तार है। सुखदानुभूतियों का संसार है। पीड़ वेदना-संवेदना का असह्य पारावार है। वासना का उर्ध्वमुखी ज्वार है। कहने का आशय मात्र इतना है कि डॉ. गुप्त की कविताएँ न्यूनवस्त्रधारिणी मल्लिका शेरावत, जान इब्राहिम के साथ अनब्याही ही रहने वाली विपाशा बसु, ओडिया भाषी रम्भा या ऐसी ही हाड़-मांसवाली नायिकाओं से प्रेरित भले ही हों, किन्तु इनकी अभिव्यक्ति अन्ततः वासना के नीलपरिधान से आच्छादित नहीं है। नफ्स की जमीन का आलम्बन नहीं है। इनका निर्माण रूह के पवित्र क्षेत्र में हुआ है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने पारम्परिक काव्य-हेतु प्रतिभा-व्युत्पत्ति-अभ्यास और समाधि

प्रतिभैव च कवीनां काव्यकारण कारणम्
व्युत्पत्याभासौ तस्या एव संस्कार कौ—

(आचार्य वाण्भट्ट अलंकार तिलक, पृ. 2)

को शाश्वत न मानकर भाव, रूपसौन्दर्य और प्रणय-वासना को शाश्वत काव्य-हेतु स्वीकार किया है—

प्रतिभा, अभ्यास और व्युत्पत्ति / कविता के कारक नहीं शाश्वत
आँसू ने प्रसव किए गीत / वेदना- संवेदना चिर खाद्य
कवियों की प्रेरणा है-भाव / रूप सौन्दर्य प्रणय-वासना
काव्य हेतु सार्वभौम युग युग में/ वेदना-संवेदना सुखकामना।

(ऋतु वसन्ती, पृ. 101-102)

वस्तुतः कवि की प्रकृति पर सब कुछ निर्भर करता है। आचार्य आनन्दवर्द्धन ने लिखा है—

शृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसा मयं जगत्।
स एवं वीतरागश्चेत् नीरस सर्वमेव तत्।।
भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत्।
व्यवहारयति यथेष्टं सुकवि : काव्ये स्वतंत्रतया।।

(आचार्य आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, पृ. 422)

कवि काव्य रूपी संसार का विलक्षण सृष्टिकर्त्ता है जिसकी भावना के अनुसार विश्व के नियम परिवर्तित होते रहते हैं। वह संसार को अपने हृदय के रस से जिस रूप में सिंचित कर देता है, वह उसी रूप में परिणत हो जाता है। यदि कवि

का हृदय भावों से आपूर्ण हुआ तो संसार प्रेम-प्रवण होकर मधुर धाराप्यायित हो जाता है और यदि वह वीतराग हुआ तो संसार भी नीरस बन जाता है।

वस्तुतः कामाध्यात्म की चेतना इतनी प्रबल है कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त उसकी शाश्वती प्रभा के आलोक में अनेकशः काव्य-बिम्बों का चित्रांकन करते हैं। 'ऋतु वसंती' का गायक पूछता है कि मुझको वासना की गंध क्यों पुकार रही है—

श्यामल तन कटि क्षीण पुष्ट उरोज लघु लघु
कमलनयनी दन्त-मुक्ता स्मिति मृदु मृदु
केश श्यामल दीर्घ वेणी पुष्प-गुम्फित
मोहते मन-भ्रमर आमंत्रण वसन्ती
दाह शीतल, तन तपाती चाहना की
क्यों पुकारे गंध मुझको वासना की।।

(ऋतु वसन्ती, पृ. 111)

प्रकृति-पुरुष का सम्बन्ध सनातन है। डॉ. गुप्त इस सम्बन्ध में खूब वकालत करते हैं—

सुन्दरता साकार मनुज तन में
प्रणय का आधार / सृजन का माध्यम
चुम्बकीय केन्द्र आकर्षण का
खिंचा चला आता बिद्ध सहचर
सक्रिय हो जाती रति-क्रीडा
सृजनक्रिया आराधना- / रति-कामदेव की
गा उठता रोम रोम हो हर्षित
मचल उठती वासन्ती कलियाँ
वह चलती सरिता उद्दाम
बीज-वपन होता यूँ मनु का।

(ऋतु वसन्ती, पृ. 54)

प्रकृति-पुरुष की शाश्वत लीला, महाचिति का सृजन-संगति न जाने कितने ऐसे लोग हैं, जिन्हें नाक-भौं सिकोड़ने को विवश करता है। ऐसे लोगों को लक्ष्य करके कवि ने लिखा है—

कुछ को रति-क्रीडा/ लगती अश्लील

(जबकि स्वयं जन्में इसी प्रक्रिया से)

क्या कहें, ऐसे नर-पिशाचों को

पढ़ते नहीं नयनों की भाषा
अधरों का आलाप रागारुण / सिहरन
रोमावलि थिरकन / धड़कन कलेजे की
स्मिति का नर्तन / यष्टि तन्वंगी
पायल की रुनझुन झंकार
नित्य-धाम ईश्वर का, दीख रहा जिन्हें—
यौनाशय/ मूत्राशय/ विष्ठालय
निःसन्देह
तन निन्दक / पावन मन विस्मृत कर
थूथन से सूँघ रहे/ विष्ठा
ऐसे नर/ पशु विशेष / शूकर।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 65)

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की चेतना महाचिति के संकेत से परिचालित प्रतीत होती है। ग्रीष्मावकाश में कॉलेज प्रांगण विधवा की सूनी माँग सदृश प्रतीत होता है, जिसे देखकर तीन माह व्यतीत करना कवि को एकान्त कारावास जैसा लगता है। तीन महीने की बेरुखी कवि की सृजन-धर्मिता को प्रभावित करती है। उसे दृष्टि का पेय नहीं मिल पा रहा है। दिनकर का पुरुरवा उर्वशी से कहना चाहता है—

दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है।
रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।

(रामधारी सिंह दिनकर, उर्वशी, अंक 3, पृ. 56)

डॉ. गुप्त भी महाविद्यालय प्रांगण में भ्रमण करती रूप राशि को दृष्टि का पेय समझते हैं, तभी कालेज खुलने पर उन्हें सब कुछ दुलहिन की माँग पर सिन्दूर-सा एवं सावनी फुहार-सा सुहाने लगता है—

ग्रीष्मावकाश
विधवा की सूनी माँग-सा कालेज प्रांगण
देख देख गुजरे तीन मास

मानो, एकान्त कारावास।
किसी तरह बीत गये गर्मी के दिन
आ गया जुलाई का रसभीना मास
सावन की रिमझिम फुहारें
झकोरे पुरवाई के
पागल पवन ने छेड़ दिये लहराते आँचल
कुमारियों के कोरे कोरे
पीनोन्नत, दीर्घ-लघु उरोज
आन्दोलित, कसे कसे वस्त्रों में कसमसाते
उड़ने को आतुर कपोत- से
अँगड़ाई लेती, लहराती चाल, और
उन पर मँडराना नवयुवा, किशोरों का
(भँवरों का कलियों पर जैसे आम्रकुंजों में)
गलियों में, गैलरियों में
कार्यालय, पुस्तकालय में
टकराना आपस में
नजरों का मौन-मुखर बतियाना
सब कुछ सुहाता है (कालेज के खुलने पर)
दुलहिन की माँग पर सिन्दूर-सा
सावनी फुहार -सा।

(आत्ममंथन, पृ. 56)

कवि की दृष्टि स्त्री के प्रत्येक सोपान पर पड़ी है। पहली बार ऋतुमती हुई बालिका किस प्रकार एक ही साथ भय और लज्जा के भाव को मन में लिए हुए घर भर में छिपी छिपी रहती है, न जाने कैसे अपने आपको सँभालती है, उपचार करती है, सो जाती है, बड़े तड़के उठकर जाँघों पर रेंग रही साँपिन-सी रक्त की लकीरों को देखती है और फिर इस पीड़ा से उबरकर नारीत्व की प्रथम अनुभूति करती है। इन सभी स्थितियों का जीवन्त चित्रण डॉ. गुप्त ने किया है। श्वेत शुभ्र वस्त्र पर लगे खून के दागों का आलंकारिक चित्रण कवि की सूक्ष्मान्वेषिणी दृष्टि का द्योतक है—

श्वेत-शुभ्र वस्त्रों पर चित्रित थे—
नये-नये गुड़हल के फूल

लाल लाल / तरल-उष्ण
भय-कातर उठी सिहर/ और घुस गयी शौचालय में
निकली जब बाहर/ थी पीड़ा तब भी / हर्ष भी। पीड़ा भी
तभी हुई अनुभूति / प्रथम बार—
नारीत्व की।

(आत्ममंथन, पृ. 45)

इसी तरह सृजन-प्रक्रिया के दौरान मातृत्व की होने वाली अनुभूति का चित्रण भी द्रष्टव्य है—

उठी / चक्कर खा गया सिर
लगा—जैसे गिर पड़ूँगी
पकड़कर दीवार / ठहरी दो पल को
तभी आयी एक उल्टी
लगा— उलट जायेगा सभी कुछ,
पेट में / जो पल रहा है / पल रहा है
भ्रूण बनकर / हे अजन्मा।
कुछ तरल-सा/ ठोस-सा कुछ
बन रहा है/ बढ़ रहा है/ ढल रहा है पिण्ड में जो
है हमारे प्रणय का परिणाम
प्रतिफल मधु-मिलन का
कामना का केन्द्र
सार्थकता हमारे अस्ति की, जो
जो बहुत दुःख दे रहा है
दे रहा है सुख असीमित/पल रहा है भ्रूण बनकर
प्रीतिकर वह / प्राण है वह
बूँद में भी सिन्धु है जो / ब्रह्म है वह।

(आत्ममंथन, पृ. 76)

वस्तुतः यह कवि का साधारणीकरण की अवस्था में पहुँचने का द्योतक है। तेरह वर्षीया बालिका के रजस्वला बनते और नारी के गर्भवती होने का चित्रण केवल कवि की सूक्ष्मान्वेषिणी दृष्टि का ही परिचायक नहीं है, अपितु कवि का साधारणीकरण की स्थिति में पहुँचकर स्वयं ही ऋतुमती और गर्भवती बनकर,

उसे भोगकर लिखा यथार्थ है। नारी-विमर्श की परम्परा में कवि का यह योगदान महत्त्वपूर्ण है। मातृत्व का एक और दृश्य अर्थान्तर के साथ द्रष्टव्य है—

हर्षाया / जब जब भी पाँव हुए भारी
पत्नी के।
भय खाया/ प्रेयसी ने बतलाया
जब—'... कुछ करिए'
लगता है 'पाँव भारी हुए।'

(आत्ममंथन, पृ. 58)

कवि का मन अपनी चंचलता के कारण यत्र-तत्र भले ही भटकता रहे, किन्तु मुक्त मन से अर्धांगिनी की ही प्रशंसा करता है। 'प्रेमिका बनाम पत्नी' शीर्षक कविता में कवि ने दोनों के मध्य एक सुन्दर रेखा का सृजन करते हुए पत्नी को श्रेष्ठ स्वीकार किया है—

प्रेमिका / होती है करने को प्यार
और पत्नी बसाती घर गृहस्थी/ बनाती पिता
होती सामाजिक जीवन का स्वस्थ आधार
बढ़ाती मान-मर्यादा / सार्थकता देती है
जीवन को / घर को / समाज को
और / करती रसमय संसार

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 22)

इसी तरह कवि ने नारी के प्रत्येक रूप को देखने के बाद अन्ततः पत्नी के रूप को ही सार्थक और श्रेष्ठ माना है—

मुझे तो एक ही रूप लगता है पूर्ण—
पत्नी का
माँ जैसा स्नेह/देकर खिलाती-पिलाती है
चूड़ियों की झनकार से रिझाती है
सभी कुछ झेलती है पति-साथ
मरते दम तक साथ निभाती है।
शय्या पर / वेश्या से अधिक आनन्ददायिनी
आनन्द भी / तृप्ति भी
छलती नहीं / आदान का लोभ नहीं

प्रदान की विश्वासिनी
माँ बनती / वंश को चलाती है

इसलिए पत्नीत्व ही पूर्णता है।

(मनपांखी,पृ. 66)

वस्तुतः डॉ. गुप्त की उपर्युक्त कविता का मूलस्रोत 'पद्मपुराण' में निम्नांकित श्लोक है—

कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा।
विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता।।

(पद्मपुराण 5/47/54)

जो कार्य करते समय दासी, संभोग के समय वेश्या, भोजन कराते समय माता और विपत्ति में मन्त्री की भूमिका का निर्वहन करती है, वही भार्या पतिव्रता है। ऐसा ही 'स्कन्दपुराण' में भी कहा गया है। 'कार्येषु मंत्री करणेषु दासी भोज्येषु माता शयनेष रम्भा....' लिखकर महाराज मनु ने भी ऐसा ही संकेत किया है।

'मन-पाँखीं' की कविताएं शृंगार की वीणा से वासना के गीत गाती हैं। पाठक को वहाँ प्रेमोन्माद की सुन्दर चित्र-वीथियों से गुजरते हुए पाठक को अजन्ता-एलोरा की गुफाओं और वहाँ खजुराहो की रतिवाहिनी शिलाओं का साक्षात्कार होता है। यथा—

नर्म-गर्म / छाती से/ अंगुलि स्पर्श
रेशम की झील में / तैर गया / मन पाँखीं।

(मन-पाँखी, पृ. 1)

* * * * * * * *

नाभि गुहा / त्रिवली से मण्डित
रोमावलि-रंजित / यौवन की गहराई
का देकर अंदाज
कहती है—/ प्रियतम अब आ जाओ।

(मनपाँखी, पृ. 31)

* * * * * * * *

उस रात के अँधेरे में / सुदूर अट्टालिका की खिड़की पर
शीशे से दृश्यमान—

एक युवक/ एक युवती/ आलिंगनबद्ध/ सुयुग्म कुक्कुर से
मौन लवलीन/ जगत से परे/ ब्रह्मानन्द को भोगता/
दोलायमान प्रणय। (मनपाँखी- 37-38)

* * * * * * * *

नर हो / या / नारायण/ सबकी/ एक ही चाह—
कंचन के साथ ही/ मिले कामिनी/ षोडषी सुन्दरी
आह!/ और / भगवान जब ऊब जाता है/ अक्षय यौवना/ किन्तु,
सहस्र वर्षों वाली/ देवांगनाओं से/ उर्वशी / रंभाओं से
तब, अवतार लेता है/ इस धराधाम पर
मिल जाये षोडषी राधा कहीं / रचूँ रासलीला फिर एक बार
भोगूँ फिर दैहिक आनन्द को/ पीड़ा के सुख को
सफल करूँ जीवन/ फिर एक बार।

(मनपाँखी, पृ. 36)

वस्तुतः 'मन पाँखी' की पचास कविताएँ वासना के तन्तु जाल से बुनी हुई है। वासना की अजस्र सरिता के तट पर प्रेम के कतिपय सुन्दर दृश्य मन को मुग्ध कर देते हैं। मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक से प्रेरित कविता अनुभव के खतरे की संवेदना, कल्पना, सम्प्रेषणा आदि द्रष्टव्य है—

कितने वर्ष हो गये हैं—
तुम्हें देखा नहीं/ सुना नहीं/
हाँ/ तुम्हारे बारे में अवश्य सुना है
मन का कालिदास/ उस गाँव से गुजरा है कई बार
जहाँ तुम/ मुस्कान से दुलारती हो मैना को/
पिलाती हो स्नेह का अमृत
और/ सिखाती हो जीवन-संगीत/ नैनों की भाषा में
सुना है/ काल की मार/ मुझ पर ही नहीं पड़ी है
उसने सहलाया है/ तुम्हारे कपोलों को भी
और / कजरारी आँखों से चुराने की चेष्टा की है नुकीले वाणों को
पैरों की थिरकन में/ अब वह लास्य नहीं रहने दिया क्रूर काल ने
पर/ कालिदास के मनोक्षितिज पर
मल्लिका की वही प्रतिच्छाया विद्यमान है आज भी—
क्षीण कटि/ उन्नत उरोज/ विहँसती दन्त-पंक्तियाँ

(मन्दिर में घण्टियाँ) और चीनांशुक में मचल रहा/ चपल बदन
फिर भी/ मन करता है—
देखूँ बतियाऊँ और कह दूँ/ जो नहीं कह पाया आज तक
अब पानी पुल के इतना नीचे है/ अथवा/ पुल इतना ऊँचा है कि फर्क
शायद नहीं पड़ेगा/ तथापि / खतरा तो खतरा है
(पता नहीं, कैसी हो प्रतिक्रिया)
मन में जो संभ्रम है / टूट जाये/ कहीं / मन के पुल में दरार न पड़ जाये
लेकिन/ मन कालिदास तभी बनता है / जब अनुभवों से गुजरता है
तब क्या/ मैं भी अनुभवों के खतरों से करूँ
साक्षात्कार एक बार/ शायद / अन्तिम बार।

(आत्ममंथन, पृ. 67-68)

शृंगार के गीतों के अतिरिक्त जीवन-जगत् की नाना समस्याएँ 'लोकतांत्रिक भारत में' एवं 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' की कविताओं में मुखरित हुई है। कवि जितना शृंगार के पनघट का चित्रांकन करता है, उससे कहीं अधिक जीवन-जगत और यथार्थ के मरघट का गीत गाता है। सामाजिक कुरीतियाँ कवि को बहुत गहरे तक मथकर रख देती हैं। विडम्बना का एक चित्र द्रष्टव्य है—

विडम्बना शिक्षाजगत् की
कि कुलपति का पद राजनीतिक पहुँच
जाति, दाँवपेंच और अर्थ से जुड़ गया है
आज कुलपति भी/ वाक्पटु, चाटुकार और कूटनीतिज्ञ हो गया है
विद्वता से रहा नहीं नाता।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 58)

कवि ने आज के कुलपतियों को भी कठघरे में खड़ा कर दिया है। आज कुलपति का अर्थ बदल गया है। प्राचीन भारत में जो दस हजार विद्यार्थियों को भोजन और वस्त्र देकर पढ़ाता था, उसे कुलपति कहते थे। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—

पढ़ते सहस्रों शिष्य हैं पर फीस ली जाती नहीं,
वह उच्च शिक्षा तुच्छ धन पर बेच दी जाती नहीं
दे वस्त्र-भोजन भी स्वयं कुलपति पढ़ाते हैं उन्हें
बस, भक्ति से संतुष्ट हो दिन-दिन बढ़ाते हैं उन्हें।।

(मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, अतीत खण्ड, पृ. 38)

डॉ. गुप्त जैसी चिन्ता राष्ट्रकवि को भी थी। इसलिए उन्होंने बदले सन्दर्भों में भी कुलपति की भूमिका का मूल्यांकन किया है—

हा! आज शिक्षा-मार्ग भी संकीर्ण होकर क्लिष्ट है,
कुलपति-सहित उन गुरुकुलों का ध्यान ही अवशिष्ट है
बिकने लगी विद्या यहाँ अब, शक्ति हो तो क्रय करो,
यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रहकर ही मरो।।

(वही, अतीत खण्ड, पृ. 122)

निश्चय ही डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक सजग रचनाकार हैं। उन्होंने 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' की कविताओं में 'शब्द शक्ति' से लेकर 'वन्दे मातरम्' तक दृष्टिक्षेप किया है। कविता के पचास पड़ाव दृग्गत होते हैं। लोकतंत्र का चरमराता हुआ ढाँचा दिखाई पड़ता है। बड़े-से-बड़े नेता बेपर्दा हो गये हैं। कवि ने सभी पर यथार्थ टिप्पणी की है। लोकतंत्र की द्रौपदी अब इज्जत की नहीं कुर्सी की भूखी है। वस्तुतः डॉ. गुप्त ने 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष" के माध्यम से लोकतंत्र को नीलाम करने वाले नेताओं के गाल पर जोरदार तमाचा मारा है।

कवि को सबकी चिन्ता है। नारी के नखशिख से प्रकृति की हरीतिमा तक कवि की दृष्टि का विस्तार हुआ है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

देती हूँ / प्राणवायु मैं ही
दूर कर प्रदूषण/ पर्यावरण सुधारती
मैं ही हूँ सहचरी तुम्हारी / युग युग से।

धरती का आवरण/ हरीतिमा
छाँटो मत शाखाएँ / पत्तियाँ
मत करो यूँ नग्न/ मुझको
शोभा हूँ आँगन की/ धरती की।

(लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 15)

तत्त्वतः, डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की काव्य-साधना भारतीय उपनिषदों में निहित कामतत्व एवं ब्रह्मतत्व से प्रारम्भ होकर आधुनिक भावबोध तक प्रसृत है। जीवन की जड़ता से मुखरता तक, चेतन से अवचेतन तक, रति से विरति तक,

विपरीतियों से रीतियों तक, विभीषिका से सौन्दर्य तक, नारी से प्रकृति तक, संभोग से समाधि तक की यात्रा का मनोवैज्ञानिक स्वरूप डॉ. गुप्त की कविताओं में मुखरित हुआ है। 'गीतश्री' के 19 गीत 'ऋतु वसंती' में भी संकलित हैं। संभवतः कहा जा सकता है कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त शब्दार्थसार्थोज्ज्वलत काव्यसाधक है। इनकी काव्य-चेतना आधुनिक मानव के चतुर्दिक् घूमती है। वास्तव में डॉ. गुप्त मानवमुखी सौन्दर्य, पीड़ा, कुण्ठा, व्यतिक्रम एवं राजनीतिक विसंगतियों के कवि हैं। इसमें संदेह नहीं कि वे समय और समाज की समग्रता में जीवंत करने वाले समर्थ रचनाकार हैं।



डॉ जितेन्द्र कुमार सिंह 'संजय'
असिस्टेंट प्रोफेसर, (हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग),
अवधूत भगवान राम पीजी कालेज, अनपरा सोनभद्र, उत्तर प्रदेश
चलयंत्र—0947-3614545

अम्मा का ही प्रतिरूप है पत्नी। माना कि भौतिक दृष्टि से मेरे पास सब-कुछ है-सुंदर सा घर, कार, कमाऊ पूत-एक नहीं दो, और सलोनी सी बहू व पौत्री। अब तो छोटे बेटे का विवाह भी कर दिया है। बड़ी बहू, नेहा नेहमयी है, तो छोटी प्रिया हम सबको प्यारी। और पौत्री शुभांगी-उसे देखना देवी पार्वती के दर्शन करने जैसा प्रतीत होता है। पर, मैं नाकारा हूँ। सिवाय पढ़ने-लिखने के, कुछ नहीं करता, न कर ही सकता हूँ। बेटे बाहर रहते हैं - पत्नी घर-बाहर का सारा काम देखती हैं। शादी से पहले शिक्षिका थी, पर शादी के बाद सब छोड़ दिया। मुझे सँभाला, मेरे बच्चों को सँभाला और अब तो सामाजिक दायित्वों को भी देखती है। अभ्यागतों का स्वागत-सत्कार करती है। छात्र-छात्राओं को स्नेह देती है। आगन्तुकों से पहले वही मिलती है। अवांछितों से बचाती है। टेलीफोन, बिजली, दवाइयों आदि का ध्यान रखती है। उसकी छत्रछाया में पूर्णतः निश्चिंत हूँ। मुझे तो लगता है कि मेरी पत्नी मेरे लिए 'अम्मा' ही है। अम्मा कहा करती थीं - 'माता बिनु आदर कौन करै, धरती बिनु धरती कौन धरै।' संतान का आदर माता ही कर सकती है, और वही धरती के समान सब-कुछ सह सकती है। मेरी पत्नी मेरे लिए सब कुछ सहती है, सब कुछ करती है - सम्मान देती है और मुझे सम्मान प्रदान करने में भी महती भूमिका निभाती है - ठीक अम्मा की भाँति।

11

एक गुरु दक्षिणा ऐसी भी!



विगत स्मृतियों में झाँकना, झरने की कल-कल, छल-छल करती जल की शीतल धारा जैसा सुख देता है। इन सुखानुभूतियों के सहारे ही मैं उत्तर भारत के प्रसिद्ध शिक्षा संस्थान बरेली-कालेज एवं अपने गुरुजनों की अनेक स्मृतियाँ आज भी हृदय में संजोये हुए हूँ। बात सन् 1973-74 की है। कॉलेज का नया सत्र प्रारम्भ हो चुका था। मैं बरेली कालेज में बी.ए. अन्तिम वर्ष का छात्र था। उन दिनों छात्रों-अध्यापकों में रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु सुगबुगाहट चल रही थी। प्रो. कृपानंदन, प्रो. नरेन्द्र सिंह चौधरी आदि प्रोफेसर इस दिशा में छात्र आन्दोलन की दिशा तैयारी में लगे थे। कुछ उत्साहित छात्र नेता भी सक्रिय हो चुके थे। इस माहौल में पढ़ाई-लिखाई का अच्छा दौर उपेक्षित-सा होता जा रहा था। लेकिन संस्थान में अनेक तपोनिष्ठ शिक्षाविद् भी थे, जो छात्रहितों एवं पढ़ाई हेतु सजग थे। वे कालेज के गिरते स्तर को लेकर चिंतित थे। इन्हीं दिनों कालेज के हिन्दी-विभाग में श्री वीरेन डंगवाल एवं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का पदार्पण एक सुखद अहसास था। उन दिनों हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर प्रसिद्ध भाषाविद् एवं पाली के विशेषज्ञ डॉ. कुन्दन लाल जैन के मार्गदर्शन में हिन्दी-विभाग की ख्याति दूर-दूर तक थी।

बात नवम्बर मास की होगी कैलीपरयुक्त शूज पहने एक दिव्यांग टाई, सफेद शर्ट एवं काली पैंट पहने कक्षा के बाहर अपने कालांश के इन्तजार में नजर आया। प्रथम दृष्टि में लगा कि किसी छात्र के अभिभावक होंगे। छात्रों के मध्य हुई सुगबुगाहट से बात समझने में देर नहीं हुई। वे हमारे नये आचार्य थे। वैसे डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने मुझे नहीं पढ़ाया, लेकिन विद्यालय की नागरी संगोष्ठियों में उनके तर्कपूर्ण विचार सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शुक्रवार को मध्यावकाश

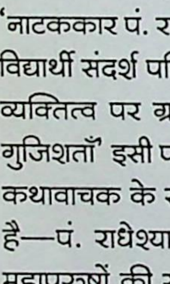
में साहित्यप्रेमी विद्यार्थी एवं आचार्य जुटते थे। गीत-कविता, गजल तथा साहित्य की विधाओं पर चर्चा होती, गोष्ठी के अन्त में प्रमुख वक्ता अपना तर्क रखते थे। कोई आलोचना को बुरा नहीं मानता था। कभी कभी विचारों को लेकर आचार्यों में तकरार की स्थिति के मध्य डॉ. गुप्तजी अपना धैर्य नहीं खोते थे। दिव्यांग होते हुए भी धैर्य ही उनका साहस था। लखनऊ विश्वविद्यालय के अनेक अनुभवों को उन्होंने मुझे बताया है। उस सम्वाद में उनकी विकास यात्रा की आत्मकथा है। शिक्षा को समर्पित धैर्य, मूर्ति उन दिनों बरेली कालेज के पास फालतूनगंज में किराये पर रहते थे। मेरा निवास उन दिनों कालीबाड़ी में ही था। प्रायः गुरूजी के घर होते हुए कालेज का आना होता था। वे पैदल ही चलकर हमारे साथ कालेज आते थे। यह सिलसिला लगभग एक वर्ष तक चला। डॉ. गुप्तजी ने अपना निवास बदल दिया था। अब आप रिक्शा से आते-जाते थे।

समय के सामने कौन टिका है। मैं शिक्षा समापन के पश्चात् आजीविका के लिए संघर्षरत था। कॉलेज से सम्पर्क टूट चुका था। लम्बे अन्तराल के बाद ज्ञात हुआ कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त कालेज से सेवा मुक्ति के पश्चात् '*साहित्यायन* पत्रिका' का सम्पादन कर रहे हैं। साहित्यायन के माध्यम से मैं पुनः आपके सम्पर्क में आया। उन्होंने मेरी प्रकाशित पुस्तकों-कबीर की बेदाग चादर, पत्रकारिता के 'अछूते प्रसंग, यायावरी के संग' जीवन विमर्श एवं कविता के बहाने की समीक्षा प्रकाशित करके मेरा मार्गदर्शन ही नहीं किया, कार्य को सराहा भी। जयपुर से बरेली आने पर आपसे मिलने का सिलसिला आज भी जारी है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य का चर्चित नाम है। आपकी कृतियाँ बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक हैं। आप लब्ध प्रतिष्ठित, कवि-लेखक, शोध निर्देशक और नीर-क्षीर विवेकी आलोचक-समीक्षक हैं। मनपाँखी, स्वर्ण जयन्ती वर्ष, गीतश्री, ऋतु वसन्ती, लोकतांत्रिक भारत में, आत्ममंथन, देवी, मां, सहचरी, प्राण (काव्य-संग्रह) हंस जवाहिर : एक अध्ययन, पंत की दार्शनिक चेतना, छायावादोतर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, उपन्यासकार बाबा नागार्जुन (शोध ग्रन्थ) तथा जैसे उड़ि जहाज को पंछी (यात्रावृतान्त) सहित बाल साहित्य में 'परीजात' (उपन्यास) लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। आपके शोध पत्र छात्रों के मार्गदर्शन का कार्य कर रहे हैं। डॉ. गुप्त लम्बे समय से बरेली से साहित्यायन (साहित्य एवं शोध त्रैमासिक) का प्रकाशन कर रहे हैं। यह आपकी अनवरत साधना का प्रतिफल है। आज नगर उनके जीवन की हीरक जयन्ती मनाने की तैयारी में है। ज्ञात हुआ कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जैसे मनीषी की लेखनी की प्रासंगिकता की प्रतिछाया के रूप में उनके पिचहत्तर वर्ष पूर्ण होने (हीरक

जयन्ती) के सुअवसर पर भव्य स्मारिका व अभिनन्दन ग्रंथ का प्रकाशन किया जा रहा है। समिति द्वारा पत्रक मिलने पर मैं मन का लोभ रोक न सका। यह लेख इस लोभ का प्रतिफल है। श्री गुप्तजी का यह कथन—''साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, स्मारक भी होता है।'' (साहित्यायन अक्टूबर, दिसम्बर 2015, पृष्ठ 6, सम्पादकीय) आशा है कि आपका अभिनन्दन ग्रन्थ आज के प्रकाशित अभिनन्दन ग्रंथों की परम्परा में मील का पत्थर होगा। मुझे ध्यान है कि बरेली महानगर की कवयित्री श्रीमती शान्ति अग्रवाल का अभिनन्दन ग्रंथ साहित्यिक दृष्टि से आज भी जीवन्त है। श्री धर्मदत्त वैद्य, प्रियदर्शी जी एवं रामप्रकाश गोयल आदि के अभिनन्दन ग्रंथों का अपना महत्त्व है। आज नगर में लोग अभिनन्दन के स्थान पर पत्रिका के विशेषांकों के रूप में जुड़ने का प्रयास करने लगे हैं। भारतीय पत्रकारिता संस्थान की पत्रिका विविध सम्वाद ने श्री मधुरेश एवं वसीम बरेलवी पर विशेषांक प्रकाशित करके नई दृष्टि को जन्म दिया है। हरिशंकर सक्सेना की पत्रिका निर्झरिणी ने गीतकार किशन सरोज पर केन्द्रित अंक से जनपद के साहित्यिक सन्नाटे को चीरने का प्रयास किया है। पं. राधेश्याम कथावाचक के एक सौ पच्चीस वर्ष पूर्ण होने पर सुधीर विद्यार्थी की लघु पत्रिका 'नाटककार पं. राधेश्याम कथावाचक में भी खोजपूर्ण सामग्री है। इससे पूर्व सुधीर विद्यार्थी संदर्श पत्रिका के विशेषांक में बाल कवि निरंकारदेव सेवक के कृतित्व व्यक्तित्व पर ग्रन्थ प्रकाशित कर चुके हैं। धर्मपाल गुप्त 'शलभ' का दौरे गुजिशताँ' इसी परम्परा का हिस्सा नहीं एक नई आहट का नाम है। पं. राधेश्याम कथावाचक के सम्पूर्ण कृतित्व को सूत्र रूप में मैंने भी पिरोने का प्रयास किया है—पं. राधेश्याम कथावाचक सफर एक सदी का।' अतः महानगर अपने महापुरुषों की स्मृति की दृष्टि में दरिद्र नहीं है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अमृत महोत्सव समिति बरेली ने जिस अभिनन्दन ग्रंथ को प्रकाशित करने का पुण्य संकल्प किया है। उसमें मेरा यह लेख एक निमित्त मात्र है। या यों कहें एक शिष्य की अपने तपोनिष्ठ गुरु के प्रति एक गुरुदक्षिणा है। अब अपने गुरु के ''जीवेत वर्षशतम्'' की कामना के साथ विराम लेता हूँ।



हरिशंकर शर्मा
213, 10-वी स्कीम गोपालपुरा वाईपास जयपुर (राज.) 302018
फोन नं. : 094161046594

12

लौट के बुद्धू घर को आये



बात अगस्त, 1985 की है। आप सभी जानते हैं कि किसान का वर्षारम्भ आषाढ़ से होता है। यदि किसान वर्ष के आरम्भ में पिछड़, तो पूरे साल पिछड़ता चला जाता है। यही सब सोचकर मैं पिताजी के साथ किसानी में जुट गया। जब धान की रोपाई से निवृत्त हुआ, तो मैं स्नातकोत्तर (हिन्दी) में प्रवेश लेने हेतु बरेली कालेज, बरेली पहुँचा। खिड़की पर पहुँचकर ज्ञात हुआ, प्रवेश बन्द हो चुके हैं। अतः मुझे फार्म नहीं मिल सका। मैं अपना उदास चेहरा लिए शाम की ट्रेन से घर वापस आ गया। पिताजी ने प्रवेश के बारे में पूछा, तो मेरी आँखें डबडबा आयीं। पिताजी ने सान्त्वना देते हुए कहा कि "परेशान मत हो, तुम्हारा प्रवेश लटूरी सिंह से कहकर करा दिया जायेगा।" मुझे आशा की किरण दिखाई देने लगी।

श्री लटूरी सिंह पिताजी के ममेरे भाई थे और मेरे चाचा जी हुआ करते थे। मेरे गाँव से लगभग तीन किलोमीटर दूर उनका गाँव है। गाँव का नाम सिसौना है। हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ. भगवान शरण भारद्वाज सिसौना के ही रहने वाले थे। चाचा जी और भारद्वाज जी का बचपन साथ-साथ खेलते-कूदते बीता था।

मैं सुबह ही चाचा जी के घर पहुँच गया और वे मुझे साथ लेकर बरेली चल दिये। बरेली में पहुँचकर हम दोनों रिक्शा द्वारा डॉ. भगवान शरण भारद्वाज जी के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर डॉ. भारद्वाज जी ने दो टूक जवाब दे दिया— 'अब प्रवेश नहीं हो सकता क्योंकि प्रवेश की तिथि बन्द हो गयी है और सीटें भी फुल हो चुकी हैं।" भारद्वाज जी के प्रवचन सुनकर मेरे तो काटे खून नहीं। चाचा जी ने बहुत खुशामद की, परन्तु नतीजा शून्य। हम दोनों एक-एक गिलास पानी पीकर वहाँ से चल दिये। मेरा उदास चेहरा देखकर वे मुझसे कहने लगे

"बेटा! चिन्ता मर कर, तेरा एडमीशन करा के ही दम लूँगा।"

चाचा जी उस समय गाँव के प्रधान थे। इसलिए क्षेत्रीय विधायक जी से उनका ठीक-ठाक परिचय था। इसलिए हम दोनों माननीय विधायक जी रामेश्वरनाथ चौबे के आवास पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर ज्ञात हुआ कि विधायक जी लखनऊ गये हुए हैं। विधायक जी के न मिलने से मुझे गहन निराशा हुई। पर चाचा जी कहाँ मानने वाले थे। वे विधायक जी की कोठी के अन्दर गये। थोड़ी देर बाद उनके साथ एक सुन्दर व गठीला नौजवान बाहर आया। उसने अपनी बुलट मोटरसाइकिल स्टार्ट की और हम दोनों को बैठाकर सीधा बरेली कालेज ले आया। प्राचार्य कक्ष में पहुँचने के उपरान्त मुझे प्रवेश फार्म दिया गया और लगभग आधे घण्टे में मेरी प्रवेश प्रक्रिया पूर्ण हुई। मैं गद्‌गद था। बाद में पता चला, वह सुन्दर नौजवान विधायक जी के पुत्र मुन्ना चौबे थे। वे बरेली कालेज के पूर्व छात्रसंघ अध्यक्ष भी थे। उनसे चाचा जी का मेल-जोल अच्छा था।

प्रवेश के बाद मैं बहुत उत्साहित था। मैंने जल्द ही एक कमरा मढ़ीनाथ में किराये पर लेकर अपना अध्ययन कार्य प्रारम्भ कर दिया। मैं प्रतिदिन कक्षा में उपस्थित रहता। उन दिनों डॉ. भारद्वाज जी के अतिरिक्त डॉ. वीरेन्द्र डंगवाल, डॉ. उमाकान्त शर्मा, डॉ. रमाकान्त शर्मा, डॉ. त्रिपाठी, डॉ. श्रीमती त्रिपाठी, डॉ. रस्तोगी एवं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जैसे विद्वान शिक्षक हुआ करते थे। डॉ. वीरेन डंगवाल ने हमें पढ़ाया हो, ऐसा मुझे याद नहीं आ रहा है। डॉ. भारद्वाज जी पालि भाषा पढ़ाया करते थे। उनकी अध्यापन-शैली विचित्र थी। मेरी समझ में कुछ नहीं आता था। वैसे भी मेरी रुचि गद्य-साहित्य में थी। क्योंकि मैंने चन्द्रकान्ता, चन्द्रकान्ता सन्तति एवं भूतनाथ जैसे उपन्यास बचपन में ही पढ़ लिए थे। ये पुस्तकें मुझे पिताजी से प्राप्त होती थीं क्योंकि वे इन्हें पढ़ा करते थे। वैसे तो मुझे सभी शिक्षकों ने पढ़ाया था, परन्तु डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की अध्यापन कला अद्‌भुत थी। वे कहानी, उपन्यास और नाटक पढ़ाया करते थे। उनका व्याख्यान मेरे मस्तिष्क में उतर जाता।

मेरा लक्ष्य था महाविद्यालय में शिक्षक बनने का। इसलिए लक्ष्य को ध्यान में रखकर मैंने अपना अध्ययन जारी रखा। वैसे तो विभाग के सभी शिक्षक मेरे आदरणीय थे, परन्तु डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी के प्रति आदरभाव कुछ ज्यादा ही था। मैं उनके आवास पर जाकर अपनी समस्याओं का निदान भी करवा लेता था। 'वे मुझे स्नेहपूर्वक सुनते और मेरी समस्या को सहज भाव से हल कर देते। धीरे-धीरे गुरु-शिष्य का सम्बन्ध प्रगाढ़ होता गया। वर्तमान काल में शिक्षक तो बहुत मिलेंगे, परन्तु गुरु बिरले ही। मुझे स्वयं पता नहीं, यह सम्बन्ध कैसे

बन गया।' पर इतना अवश्य जानता हूँ कि यह सम्बन्ध स्वतः ही बन गया, अनायास और सहजभाव से। इस सम्बन्ध में मुझे कोई प्रयास करना पड़ा हो, ऐसा मुझे याद नहीं आ रहा है।

जुलाई 1987 में मेरा परीक्षाफल घोषित हुआ। मेरे अंक आशानुरूप ही आये। मेरा लक्ष्य सिद्ध होने लगा था। मैं गद्‌गद था। मैं अपनी अंकतालिका लेकर गुरूजी के पास (घर) पहुँचा। गुरुजी अंकतालिका देखकर प्रसन्न हुए। कुछ देर चुप रहने के बाद वे अचानक से बोले—"सिफारिश का एक भी अंक नहीं है। मौखिक परीक्षा में भी सिर्फ तुम्हारी योग्यता के ही अंक मिले हैं।" कुछ समय मौन रहने के बाद मैंने शोधकार्य करने का प्रस्ताव गुरुजी के समक्ष रखा। गुरुदेव ने मेरा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया। मैंने आज तक उनके मुख से कभी 'न' शब्द नहीं सुना है। सच तो यह है कि नकारात्मकता जैसा कुछ भी उनके व्यक्तित्व में लेशमात्र भी नहीं है। शोधकार्य हेतु हाँ कहने के बाद गुरुजी ने मुझसे कहा—"अच्छा होता कि आप शोधकार्य हेतु किसी केन्द्रीय विश्वविद्यालय में प्रवेश लेते। वहाँ तमाम अवसर मिलते हैं और व्यक्तित्व को निखारने के साधन भी । तुम्हारी जैसी प्रतिभा को आगे बढ़ना चाहिए। यदि कहीं प्रवेश नहीं मिल पाता है, तो मैं तो हूँ ही।"

गुरुजी का कथन सुनकर मैं तो हैरान हो गया। 'पता नहीं, मुझसे ऐसा कौन सा अपराध हो गया, जिसके कारण गुरुजी मुझे अपने से दूर करना चाहते हैं।' कुछ समय मौन रहने के बाद गुरुजी का आशीर्वाद प्राप्त कर मैं अपने कमरे पर वापस आ गया। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा होकर कमरे में चुपचाप बैठा रहा। उस रात खाना भी नहीं खाया। दूसरे दिन मैं सोकर देर से उठा। अनमने भाव से दैनिक कार्यों से निवृत हुआ। मैं गुरुजी से दूर किसी भी दशा में नहीं जाना चाहता था, परन्तु गुरुजी के आदेश की अवहेलना भी कैसे करता? कई दिनों की ऊहापोह के उपरान्त मैंने गुरुजी के आदेश का पालन करना सुनिश्चित किया और मैंने जे.एन.यू. जाना उचित समझा। मैंने दिल्ली की ट्रेन पकड़ी और पहुँच गया, पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन। इससे पहले मैं दिल्ली कभी नहीं गया। यह मेरा पहला अनुभव था। स्टेशन से बाहर निकलने के उपरान्त मैंने एक ठेली पर खड़े होकर चाय पी। वहीं पर लोगों से जे.एन.यू. जाने की जानकारी प्राप्त की। मुझे ज्ञात हुआ कि लाल किला बस स्टॉप से आर.एल.-3 नम्बर की डी.टी.सी. की बस साउथ ब्लाक तक जाती है। यही बस जे.एन.यू. उतार देती है। मैं ऑटो से लाल किला पहुँचा और लगभग 20 मिनट की प्रतीक्षा के बाद बस में बैठ गया। अब मैं गन्तव्य तक पहुँच चुका था। संयोग से मैं पैदल चलकर शीघ्र ही

हिन्दी विभाग जा पहुँचा। विभाग के अधिकांश कमरों में ताले लगे हुए थे। सभी ओर सन्नाटा पसरा हुआ था। में छुट्टी की आशंका से निराश होने लगा। बरामदे के अन्तिम छोर पर पहुँचने के बाद एक कमरा दिखाई दिया, जो खुला हुआ था। वह विभाग का कार्यालय था। उसमें दो सज्जन बैठे थे और बाहर एक चपरासी कुर्सी पर बैठा था। मैंने अन्दर जाकर दोनों से अभिवादन किया और अपना परिचय भी दे डाला। मुझे कुर्सी पर बैठने का संकेत किया गया, तो मैं बैठ गया। कुर्सी पर बैठते समय मुझे उन सज्जन को धन्यवाद कहकर औपचारिकता का निर्वाह करना चाहिए था, परन्तु मैं ऐसा नहीं कर सका। शायद मैं इतना परिपक्व नहीं हुआ था या फिर हड़बड़ी में यह चूक हुई थी। मुझे पानी पिलवाया गया, मैं काफी प्यासा था, इसलिए एक गिलास पानी और माँग लिया। उन्होंने शीघ्र ही मेरा मन्तव्य पूछ लिया। मैंने भी अपनी बात विस्तार से बताई। उनसे मुझे ज्ञात हुआ कि यहाँ पर शोधकार्य में प्रवेश मैरिट के आधार पर और प्रवेश सत्र में दो बार- अप्रैल और नवम्बर में ही होते हैं। मैं बहुत निराश हुआ। यह अगस्त का महीना था और मैं प्रतीक्षा करना नहीं चाहता था। मुझे प्रवेश शीघ्रातिशीघ्र चाहिए था। मैं वहाँ से वापस चल पड़ा। विश्वविद्यालय प्रांगण से बाहर आकर बस स्टॉप पर बस का इन्तजार करने लगा। बस द्वारा मुझे लाल किला जाना था, इसके बाद मुझे रिक्शा द्वारा पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन। लाल किला तक जाने वाली बस आयी और मैं बड़ी फुर्ती के साथ बस में चढ़ गया। मैं बस से लाल किले पहुँचने से पहले ही बस के द्वार पर आकर खड़ा हो गया। द्वार के पास बहुत भीड़ थी। चढ़ने-उतरने वाले यात्रियों की धक्का-मुक्की से आस-पास के खड़े लोग परस्पर रगड़ खाते और आगे बढ़ जाते। एक सज्जन मुझसे रगड़कर आगे की ओर बढ़े ही थे कि मुझे अजीव-सा अनुभव हुआ। मैं कुछ समझ पाता, इससे पहले लाल किला स्टॉपेज आ गया। मैं जल्दी से नीचे उतर गया। नीचे उतरने के बाद मैंने अपनी सभी जेबें टटोल डालीं। मेरे पैरों के नीचे की जमीन खिसक गयी। मेरी एक भी जेब न कटी न फटी, परन्तु रुपये सभी गायब। मेरी सांसे थम गईं। भीड़ के इस अथाह समुद्र में मेरा कोई परिचित नहीं था। मैंने पुनः जेब टटोली, तो पैंट की आगे वाली जेब में कुछ सिक्के शेष रह गये थे, जो कि एक या डेढ़ रुपये से अधिक नहीं रहे होंगे। उस समय मात्र यही मेरी पूँजी थी। मैं भूखा, प्यासा और परेशान किंकर्तव्यविमूढ़ हो चुका था। मैं अपना सिर पकड़कर फुटपाथ पर बैठ गया और सड़क पर आते-जाते वाहनों और पैदल चलते लोगों को देखने लगा। एक सुन्दर गोरी युवती को देखकर मेरी आँखों में चमक-सी आ गई। कटे हुए घुँघराले काले बाल, बड़ी-बड़ी काजल से सुसज्जित आँखें, लम्बी और नुकीली

नाक, गालों पर लगा हुआ रोज उसके मुख-मण्डल की आभा को दुगना कर रहा था। कसे हुए वस्त्रों से उसके सुडौल उरोज और कमर का आकार सहज ही जाना जा सकता था। छोटी और कसी हुई स्कर्ट से उसके नितम्ब और जाँघों का सौन्दर्य स्पष्ट झलक रहा था। उस युवती को देखकर मैं अपना सारा कष्ट एक क्षण को भूल चुका था। नारी सौन्दर्य के दर्शन-मात्र से हृदय का गहन विषाद भूलकर मनुष्य को सुख और शान्ति की अद्भुत-तृप्ति होती है, यह मैं पहली बार जान पाया। मैं उसे तब तक देखता रहा, जब तक वह आँखों से ओझल न हो गई। आँखों से ओझल होने के उपरान्त मेरी चेतना वापस आई, मैं पुनः अवसाद के गर्त में डूब गया। विद्वानों का कहना है कि मुसीबत की घड़ी में धैर्य ही साथ देता है। अतः मैंने धैर्य से काम लिया। अब मेरा लक्ष्य घर तक पहुँचना था। चाहे बिना टिकिट अथवा भीख माँगकर किराये भर के पैसे जुटाकर, यही दो विकल्प मेरे सामने थे। बिना टिकिट यात्रा करने का साहस न हुआ। जेल की सजा के नाम से ही हृदय घबराने लगता। अब मेरे सामने एक मात्र भीख का ही विकल्प था। मैं काफी देर तक फुटपाथ पर बैठा रहा। अचानक मुझे याद आया कि कबीरपंथ के साधु महन्त विजयदास जी का आश्रम दिल्ली के करावलनगर में है। वे इसी आश्रम में निवास करते हैं। मुझे मुसीबत के इस काल में आशा की किरण दिखाई देने लगी। मैं बड़ी फुर्ती से उठा और फुटपाथ पर सामान बेचने वाले दुकानदारों से करावलनगर तक पहुँचने के बारे में जानकारी जुटाने लगा। किराया मात्र 50 पैसे था। इतने पैसे मेरे पास थे। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। मैं 47 नम्बर की बस से करावलनगर पहुँच गया। बस से उतरते ही आस-पास के दुकानदारों से 'संत कबीर आश्रम' का पता पूछने का प्रयास किया, पर निराशा ही मिली। मैं थोड़ा आगे बढ़ा तो भीड़-भाड़ वाला इलाका मिला। वहाँ दिल्ली जैसा कुछ नहीं था, एक छोटे से कस्बे जैसा वातावरण था। वहीं एक दुकानदार से ज्ञात हुआ कि यहाँ से थोड़ी दूर जाने पर सुनसान क्षेत्र में एक आश्रम है। दुकानदार यह नहीं जानता था कि आश्रम किस सम्प्रदाय या पंथ का है। मैंने उस आश्रम तक जाने का निश्चय कर लिया। थोड़ा आगे जाने पर एक मकान पर एक सफेद झण्डा लहराता हुआ दिखाई दिया। मैं यह भली-भाँति जानता था कि सफेद झण्डा संत सम्प्रदाय में ही प्रयुक्त होता है। मैं उस आश्रम के द्वार तक जा पहुँचा, जिस पर मोटे अक्षरों में लिखा था 'संत कबीर आश्रम, करावलनगर, दिल्ली।' मेरी खुशी का ठिकाना न रहा।

आश्रम का प्रांगण बड़ा था, पर अन्दर जाने से पहले सोचने लगा कि साधु तो बहता दरिया होता है। यदि महन्त विजयदास जी से भेंट न हो सकी, तो

मेरा यहाँ आना निरर्थक सिद्ध हो जायेगा। मैं यहाँ के सन्तों से मिले बिना लौटना भी उचित नहीं समझता था। इसलिए मैं अन्दर गया और इधर-उधर देखने लगा। प्रांगण में दायीं ओर नीम का पेड़ था, मै उसी पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर बैठ गया। थोड़ी देर बैठने के बाद एक साधु मेरी ओर आये, उन्होंने दूर से ही कर्कश ध्वनि में पूछा "कौन?" मैं उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर अभिवादन किया। वे उस समय तक मेरे निकट आ चुके थे। चूँकि मैंने अभिवादन कबीर पंथी शैली में किया था, इसलिए वे आश्वस्त हुए। मैंने उनसे महन्त विजयदास जी के बारे में जानना चाहा, तो वे मुझे बैठने का संकेत देकर अन्दर चले गये। थोड़ी देर में महन्त विजयदास जी के दर्शन हुए। लम्बे काले बाल, घनी काली और चमकीली दाढ़ी, बड़ी-बड़ी आँखें, गेहुँआ रंग, गठीला शरीर, मुख-मण्डल पर चुम्बकीय तेज देखकर मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने अभिवादन कर चरण-स्पर्श किया। मैं कुछ बोलता, उससे पहले ही वे चकित होकर बोले—"बेटा मोहन। तुम यहाँ कैसे?" मैंने तृप्ति की साँस ली और एक ही सांस में अपनी सारी व्यथा उन्हें सुना दी।

शाम हो चुकी थी। मैंने दिन-भर कुछ नहीं खाया था, सो भूख से व्याकुल हो रहा था। मुझे भोजन के लिए अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। मैं भोजन कर जल्दी ही सो गया। प्रातः दैनिक कार्यों से निवृत होने के बाद महन्त जी ने घर जाने के लिए किराये के वास्ते सौ रु. दिये और भोजन कराया। सन्तों का आशीर्वाद लेकर मैं वहाँ से चल दिया। पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन पहुँचकर मेरे मन में एक नया विचार आया। अब तो जेब में पैसे हैं, घर जाने के बजाय क्यों न अलीगढ़ जाया जाये। वहाँ ए.एम.यू. में प्रवेश प्रक्रिया की जानकारी लेकर ही बरेली जाया जाये। अतः मैं अलीगढ़ की ओर जाने वाली ट्रेन पकड़कर अलीगढ़ पहुँच गया।

रेलवे स्टेशन से बाहर आने के बाद मैने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का पता पूछा और पैदल ही चल दिया। लगभग एक किलोमीटर चलने के बाद मैं विश्वविद्यालय के प्रांगण में पहुँच चुका था। जानकारी लेते-लेते मैं हिन्दी विभाग जा पहुँचा। विभागाध्यक्ष की नाम-पट्टिका पर लिखा था-प्रो. के.पी. सिंह। मैं उन्हीं के चैम्बर में चला गया। अभिवादन की औपचारिकताओं के बाद मैं अपने विषय पर आ गया। उन्होंने अपने निर्देशन में शोधकार्य की असमर्थता व्यक्त करते हुए मुझे डॉ. आर.सी. शर्मा के पास भेज दिया। मैं डॉ. आर.सी. शर्मा से मिला। उन्होंने सहज ही स्वीकृति प्रदान कर दी। प्रवेश प्रक्रिया की सम्पूर्ण जानकारी देने के साथ-साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यहाँ प्रवेश 15 दिनों के बाद प्रारम्भ होंगे तथा पी-एच.डी. करने के लिए एम.फिल. करना भी अनिवार्य है। इसलिए दोनों पाठ्यक्रमों में एक ही साथ प्रवेश प्रक्रिया सम्पन्न

होती है। मैं डॉ. आर.सी. शर्मा से 15 दिनों बाद वापस आने की बात कहकर अपने घर आ गया।

मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि मेरा परिवार लगभग 200 वर्षों से कबीरपंथी है। पिता जी कबीरपंथ के अनुसार जब भी कोई धार्मिक अनुष्ठान कराते, तो महन्त विजयदास जी को अवश्य बुलाते। इसलिए महन्त विजयदास जी से मेरा निकट सम्बन्ध और परिचय था। इसी निकटता और परिचय का लाभ मुझे दिल्ली में मिला। इसलिए सबसे पहले मैंने पिताजी को दिल्ली वाली घटना बता दी। उन्होंने दूसरे ही दिन मुझे एक सौ पाँच रुपये देकर मनीआर्डर करने डाकघर भेज दिया। कबीरपंथ में गुरू पूजा (गुरु-यज्ञ) के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। इसलिए मैं मनीआर्डर करने के उपरान्त गुरु के प्रति श्रद्धावनत हुआ। गुरू-कृपा का इतना बड़ा पुरस्कार मुझे दिल्ली की मुसीबत में मिलेगा, इसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की। यह सोचकर मेरी आँखों से भावजल की बूँदें टपक पड़ीं

प्रवेश का समय निकट आते ही मैं अलीगढ़ चला गया। यह बात सितम्बर, 1987 की है। ए.एम.यू. में उस समय पी-एच.डी. करने के लिए एम.फिल. अनिवार्य थी। इसलिए मेरा प्रवेश दोनों पाठ्यक्रमों में एक साथ हो गया और मेरे निर्देशक निश्चित हुए डॉ. आर.सी. शर्मा। मैं नियमित कक्षाओं में उपस्थित रहता तथा मेरा स्वाध्याय एवं शोधकार्य अच्छा चल रहा था। सत्रावसान के पश्चात् लिखित परीक्षा होनी थी और उसी समय लघु शोध-प्रबन्ध भी विभाग में जमा होना था। इसलिए मैंने लघुशोध का कार्य भी समय से पूरा किया। निश्चित तिथि पर परीक्षा सम्पन्न हुई, परन्तु मेरा लघु शोध-प्रबन्ध जमा नहीं हो सका। मैं लघु शोध का एक-एक अध्याय क्रमशः लिखता गया और जाँचने हेतु निर्देशक महोदय को देता गया। वे उसे अपने पास रखते चले गये। मैं यही समझता रहा कि वे जाँचने के बाद सभी अध्याय एक साथ मुझे देकर टाइप की अनुमति दे देंगे, परन्तु ऐसा न हो सका। मेरा भ्रम टूट चुका था। मैं निर्देशक महोदय के आवास पर बार-बार जाता और प्रत्येक बार वही टालमटोल। मेरी कक्षा के सभी शोधार्थी एम.फिल. की डिग्री प्राप्त कर पी-एच.डी. हेतु शोधकर्य में संलग्न हो चुके थे। मेरी निराशा और हताशा गहन से गहनतर होती गई। मैंने बड़ी मिन्नतें कीं, पर वे नहीं पिघले। मेरी कई रातें रोते-रोते गुजरी थीं। मैं बचपन से ही दुबला-पतला था, चिन्ता के कारण भोजन कम हो गया। इसलिए मैं और भी अधिक दुबला हो गया। मेरे साथी मेरा स्वास्थ्य देखकर चौंकने लगे। कोई-कोई तो इलाज की भी सलाह दे डालता। मैं धुन का पक्का बचपन से रहा, सो आत्महत्या करने का विचार मन

में कभी नहीं आया।

एक दिन मेरा मित्र तारिक अजीज सिद्दीकी मेरे कमरे पर आया और उसने कहा—"मोहन बाबू! धैर्य रखो, डिग्री तो हम तुम्हें दिलवाकर ही रहेंगे। हमें चाहे जो करना पड़े।" मैं अपने मित्र पर विश्वास करता था। क्योंकि उसका व्यवहार मेरे प्रति सदा ही प्रेम-भरा रहा। वह छात्र नेता भी था। इसलिए मुझे आशा की किरण दिखाई देने लगी। अब हिन्दी विभाग के चेयरमैन प्रो. रवीन्द्र भ्रमर बन चुके थे। मेरे मित्र ने प्रो. नजीर मोहम्मद एवं चेयरमैन साहब—दोनों से मेरे प्रकरण के विषय में चर्चा भी की थी। मैं भी प्रो. नजीर मोहम्मद साहब से उनके आवास पर जाकर मिला था। उन्होंने मुझसे एक ही बात कही—"एम.फिल. की डिग्री तो तुम्हें देर-सबेर मिल ही जायेगी। आपका प्रकरण चेयरमैन साहब तक पहुँच चुका है। इतने पर भी मामला नहीं बना, तो बात संकाय अध्यक्ष तक जा सकती है। परन्तु एक बात ध्यान रखना, एम.फिल. की डिग्री लेने के बाद तुम यहाँ से बरेली वापस चले जाना। पी-एच.डी. तुम वहीं से करना। मै सदा तुम्हारे साथ रहूँगा।"

फरवरी, 1992 में मेरा प्रकरण पूरे संकाय में चर्चा का विषय बना। डॉ. आर.सी. शर्मा को संकाय अध्यक्ष डॉ. शैलेश जैदी ने तलब कर लिया। वहाँ क्या हुआ? मुझे ज्ञात नहीं, परन्तु मेरे लिए परिणाम सकारात्मक रहे। अप्रैल, 1992 में मुझे डॉ. आर.सी. शर्मा के ही निर्देशन में एम.फिल. की डिग्री प्रदान की गई। मुझे बाद में जानकारी हुई कि डॉ. शैलेश जैदी ने डॉ. आर.सी. शर्मा को एक चेतावनी भरा पत्र दिया था, जिसमें मेरा निर्देशक बदलने तथा उनकी वेतन-वृद्धि रोके जाने जैसी अनेक बातों का उल्लेख था। मैं अपने सभी गुरुजनों का आशीर्वाद तथा मित्रों की शुभकामनाएँ लेकर बरेली आ गया। सन् 1987 से लेकर 1992 तक पाँच वर्षों का समय मेरे जीवन में एक काला अध्याय ही रहेगा। कैरियर निर्माण में पाँच वर्ष बहुत महत्त्व रखते हैं। जिस छात्र को एक वर्ष की डिग्री पांच वर्ष में मिले, तो उस छात्र का भविष्य कैसा होगा?

अब मैं अपने गुरुजी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी की शरण में था। गुरुजी के आवास पर पहुँचकर मुझे अपने घर पहुँचने जैसा अनुभव होने लगता है, जैसे अपने घर में परिवार का प्रत्येक सदस्य, सुरक्षा, सुख और शान्ति का अनुभव करता है। मैं वहाँ से जब भी वापस आता हूँ, तो मेरे अन्दर एक नई ऊर्जा, स्फूर्ति और शक्ति का संचार होने जैसा अनुभव होता है। यह मेरी देवभूमि है या कुछ और, मैं नहीं जानता।

गुरुजी की शरण में आते ही मुझ मन्दभागी के भाग्य जागने लगते हैं।

पीएच.डी. में मेरा पंजीकरण एक सप्ताह में ही हो गया। मैं स्वयं को तीव्र गति से कार्य सम्पन्न करने वाला समझता था, यह मेरा भ्रम था, क्योंकि गुरुजी की कार्य करने की गति मुझसे भी कहीं अधिक है। मैं जितना भी शोधकार्य ले जाता, उसे तत्क्षण जाँचकर वापस कर देते। वे किसी कार्य को न तो टालते हैं और न रोकते हैं। इसका सुखद परिणाम यह हुआ कि मेरा शोध-प्रबन्ध 22 महीने में बाइण्डअप हो गया। उसे विश्वविद्यालय में जमा करने के लिए मुझे दो महीने प्रतीक्षा करनी पड़ी। मात्र ढाई साल में मुझे पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त हो गई।

जब मेरी मौखिकी की तिथि, निर्धारित हुई, तब कुछ दिनों पहले गुरुजी ने मुझे बताया कि आपकी मौखिकी हेतु प्रो. नजीर मोहम्मद साहब परीक्षक नियुक्त हुए हैं, मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे आगरा-बरेली पैसेन्जर से बरेली जंक्शन आ गये। मैंने उनके ठहरने की व्यवस्था ईस्ट लाइट होटल में की थी, उस कमरे का किराया मात्र 100 रुपये था। गुरुजी रिक्शा द्वारा होटल पहुँचे और वहाँ से प्रो. नजीर मोहम्मद साहब को साथ लेकर उसी रिक्शे से विश्वविद्यालय पहुँच गये। मैं साइकिल से पहले ही वि.वि. पहुँच चुका था। मेरी मौखिकी सम्पन्न हुई और सभी ने मुझे आशीर्वाद दिया। इसके बाद हम गुरुजी के घर पहुँच गये।

आज-कल पी-एच.डी. की मौखिक परीक्षा के साथ एक खर्चीली परम्परा चल पड़ी है। परीक्षक महोदय अच्छे होटलों में ठहरने की माँग कर देते हैं। टैक्सी या रेल का भाड़ा तथा गिफ्ट की अपेक्षा भी की जाती है। गिफ्ट के नाम पर कैश ही पसन्द किया जाता है। दूसरे शब्दों में आप कह सकते हैं कि गिफ्ट का लिफाफाकरण कर दिया गया है। परीक्षक महोदय को इतना सब कुछ किया जाता है, तो निर्देशक महोदय का अपेक्षा करना स्वाभाविक हो जाता है। कम से कम खर्च करने पर भी शोधार्थी के बीस-पच्चीस हजार रुपये खर्च हो ही जाते हैं। आज की मौखिक परीक्षा का यही स्वरूप है। मेरी मौखिक परीक्षा पूर्णतः गुरु-प्रसाद पर ही सम्पन्न हुई। हम तीनों ने गुरुजी के आवास पर ही भोजन किया। इसके उपरान्त गुरुजी और परीक्षक महोदय रिक्शा द्वारा जंक्शन चल दिये और मैं अपनी साईकिल से। परीक्षक महोदय को आगरा-बरेली पैसेंजर से विदा करने के बाद हम लोग गुरुजी के आवास पर वापस आये। गुरूजी ने वह रिक्शा पूरे दिन के लिए सत्तर रुपये में तय किया था। उसका किराया भी गुरुजी ने ही अदा किया था। मैं चाहते हुए भी अदा नहीं कर सका, क्योंकि जब मैंने रुपये देने का प्रयास किया, तो गुरुजी ने मेरा हाथ रोक दिया। ऐसा भी कोई निर्देशक होगा, जो शोधार्थी पर खर्च करेगा। उस समय मैं भावुक हो गया। मेरी आँखें सजल हो गईं।

मेरी मौखिक परीक्षा में मेरे मात्र 150 रुपये खर्च हुए थे। गुरुजी की कृपा मुझ पर कैसी और कितनी रही है, यह शब्दातीत है। मैं जब-जब इस बारे में विचार करता हूँ, तब-तब मैं अपनी बुद्धि और कलम को सामर्थ्यहीन पाता हूँ। पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के मात्र चार माह बाद मुझे स्थाई नौकरी प्राप्त हुई। अब स्थिति "अनन्त किया उपकार" जैसी हो गई। इससे मेरा ही जीवन नहीं, वरन् आने वाली पीढ़ियों का जीवन भी धन्य हो गया। अब "हौंस रही मन माँहि" की स्थिति बनी हुई है।



डॉ. मोहनलाल मौर्य
एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग)
ने.मे. शि.ना. दास (पी.जी.) कालेज, बदायूं
चलयत्र : 9410429499



रेखाचित्र सं. 22-राजा कृपालपाल
(बसोहली शैली-1694 ई.)

13

स्मृति के वातायन : संस्मरण की नई बयार



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। कवि, जीवनी, संस्मरण लेखक, साहित्यिक शोधकर्त्ता, समीक्षक, निबन्धकार, सम्पादक के रूप में उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थान बनाया है। 'संस्मरण' उनकी प्रिय विद्या है। उनके द्वारा सम्पादित 'साहित्यायन' त्रैमासिक के प्रत्येक अंक में उनका 'संस्मरण' प्रकाशित होता है।

'संस्मरण' आधुनिक युग की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा है। इसमें एक ओर कहानी की सरसता रहती है तो दूसरी ओर जीवन की उभरी-गहरी अनुभूतियों का चित्रण। संस्मरण में जहाँ युग और समाज का प्रतिबिम्ब रहता है, वहाँ उसमें व्यक्ति की छाप भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। हमारे नित्य-प्रति के जीवन में ऐसी अनेक घटनाएं एवं पात्र आते रहते हैं, जो हमारे मानस-पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। संस्मरण-लेखक इन्हीं को अपनी लेखनी के पारस-स्पर्श से सजीवता प्रदान करता है।

विगत लगभग साठ-सत्तर वर्षों में हिन्दी में संस्मरणात्मक साहित्य की बहुत उन्नति हुई है। हिन्दी के संस्मरण-लेखकों में पं. पद्म सिंह शर्मा, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीमती महादेवी वर्मा, पं. श्रीराम शर्मा, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति आदि प्रसिद्ध हैं। पं. पद्म सिंह शर्मा के 'पद्म पराग' में संकलित संस्मरण, चतुर्वेदी जी के 'संस्मरण' एवं 'हमारे आराध्य', महादेवी वर्मा की 'स्मृति की रेखाएं' तथा 'अतीत के चलचित्र', पं. श्रीराम शर्मा की 'बोलती प्रतिमा' बेनीपुरी जी की 'माटी की मूरतें' तथा इन्द्र जी की 'मैं इनका ऋणी हूँ आदि संस्मरणात्मक कृतियाँ हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है। उर्दू शैली से प्रभावित लेखकों में डॉ. उपेन्द्र नाथ 'अश्क' एवं कृष्ण चन्दर के नाम लिये जा

सकते हैं। इनकी क्रमशः 'मन्टो मेरा दुश्मन' एवं 'मेरी यादों के चिनार' कृतियाँ पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं। कई प्रसिद्ध कवियों तथा समीक्षकों ने भी उच्च कोटि के संस्मरण लिखे हैं। इनमें प्रमुख हैं श्री हरिवंशराय बच्चन, श्री रामधारी सिंह दिनकर तथा डॉ. रामकुमार वर्मा। यह संस्मरण की लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

'स्मृति के वातायन' पुस्तक में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के नौ संस्मरण संकलित हैं, जो मुख्य रूप से उनके परिवारीजनों, सहपाठियों तथा मोहल्ला-टोले के निवासियों पर आधारित है। अतः स्वाभाविक है कि ये आत्मीयतापूर्ण तथा भावुकता से पूरित हैं। लेखक ने इनमें वर्णित पात्रों के गुण-स्वभाव, उदारता, परोपकार दया-दाक्षिण्य का सूक्ष्मवर्णन किया है।

पुस्तक का प्रथम संस्मरण 'माता बिनु आदर कौन करै' में लेखक ने अपनी स्वर्गीय माता जी का सजीव चित्रण करते हुए लिखा है—"अम्मा के कितने ही रूप मेरी स्मृति में जीवंत हैं—स्तनपान कराती माँ, नहलाती धुलाती, कपड़े पहनाती माँ...। अम्मा के अनेक चित्रों में सबसे आकर्षक रूप वह प्रतीत होता है जब आँगन में चारपाई पर अम्मा लेटी होती थीं और हम दोनों भाई उनकी बाँह का तकिया बनाए कहानियाँ सुना करते।" पृ. 13 लेखक की दीर्घकालीन रुग्णावस्था से परेशान माँ "कभी इस पंडित के पास तो कभी उस ज्योतिषी के पास। कुंडली दिखातीं कि बीमारी क्या है? कैसे ठीक होगी? अम्मा श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में रुपया रखतीं और उनके द्वारा बतलाये गये उपायों पर आचरण करतीं। वैद्य को दिखाने ले जातीं और जैसे-जैसे सेवन विधि बताते, उसी का अनुपालन कर दवा खिलातीं। कभी-कभी दवा की पुड़िया हाथ से छूट जाती। दवा गिरने पर कहतीं कि अब ठीक हो जाओगे, भगवान कह रहे हैं। पृ. 16 अम्मा की कामना थी कि बेटा सुरेश खूब पढ़ लिख जाये। साधनों की कमी के कारण "अम्मा दौड़ धूप करतीं कि पुरानी किताबें मिल जायें, फ़ीस माफ हो जाये। वे कोशिश करके सब कुछ जुटा लेंती। बिना शिकवा शिकायत के यह सब कर पाना, यह एक अम्मा ही कर सकती है। कैसे किया यह सब, आज तो सोचने में भी आँसू आ जाते हैं।" पृ. 19 अम्मा की यह साधना प्रणम्य हैं

द्वितीय संस्मरण 'मेरे दादा' लेखक के बड़े भाई सूरज प्रसाद पर आधारित है। सामान्यतया पिता के पिता अर्थात् पितामह को दादा कहा जाता है पर लेखक अपने बड़े भाई को 'दादा' कहते थे। 'दादा' की शादी मात्र पन्द्रह वर्ष की अवस्था में कर दी गई थी। पिताजी की असामयिक मृत्यु हो जाने पर 'दादा' पर परिवार का बोझ आ पड़ा जिसका निर्वहन उन्होंने पूर्ण जिम्मेदारी से किया। लेखक की

पढ़ाई, रुग्णावस्था, देख-भाल तथा लौकिक-व्यवहार में वे सदैव सहायक रहे। उनका भावपूर्ण स्मरण लेखक ने इन शब्दों में किया है—"कितना सम्बल था दादा का। हम बरेली में और दादा शाहजहाँपुर में, परस्पर दूरी कभी दूरी न लगी। हर बाधा विपत्ति में सबसे आगे। काल की करालता के बारे में सोचने का अवसर ही न मिला। इतना स्नेह संरक्षण मिला दादा से कि पिताजी को भी भुला बैठा था। पिता समान ही तो थे वे। मरने से पूर्व भी, वे मुझे आश्वस्त करने आये थे कि सब कुशल-मंगल होगा। हाँ, सब मंगलमय है। परिवार सुख-समृद्धि से संतुष्ट है। पर, दादा की स्मृति हर पारिवारिक प्रसंग में आती है—शिशु के जन्म में, पुत्रों के विवाह में, उत्सव-उल्लास में।" पृ. 29

'तान के सीना चली हसीना' संस्मरण में लेखक ने मोहल्ले के ही एक मुस्लिम परिवार की युवती के चित्रण में अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है। लेखक के अनुसार "तान के सीना चली हसीना हमारे सामाजिक सांस्कृतिक जीवन की त्रासदी का रोचक, सरस लेकिन विडम्बनापूर्ण चित्रण है।"

लेखक ने अपने अध्यापकीय जीवन का आरम्भ ब्रह्मावर्त कालेज मंधना, कानपुर से किया था। वहाँ उन्होंने मात्र दो माह अध्यापन कार्य किया। इसी बीच बरेली कालेज में नियुक्ति हो जाने के कारण ब्रह्मावर्त कालेज से विदाई ली। ब्रह्मावर्त कालेज में मात्र दो माह की अल्पावधि में लेखक का प्राचार्य, प्राध्यापकों तथा छात्रों से आत्मीय भाव स्थापित हो गया था। अतः वहाँ से चलते हुए लेखक को भावपूर्ण विदाई दी गई थी। इसी का वर्णन 'बिछुरत एक प्रान हर लेहीं' शीर्षक संस्मरण में किया गया है। उस अवसर पर कालेज के प्राचार्य महोदय डॉ. शर्मा ने जो उद्गार व्यक्त किये वे इस प्रकार थे—"बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं, मिलत एक दारुन दुख देहीं।' यह समाज है, यहाँ अच्छे-बुरे, सज्जन-दुर्जन सभी प्रकार के व्यक्ति हैं। कोई-कोई ऐसे मिल जाते हैं, जिनका मिलना भी अशुभ होता है। उनसे मिलते ही दुःख की अनुभूति होती है और कुछ ऐसे होते हैं जिनसे मिलना ही नहीं बिछुड़ना भी कष्टदायक होता है। डॉ. गुप्त का यहाँ आना हम सबके लिए प्रेरणाप्रद था, अच्छा था। पर, आज ये जा रहे हैं। हमारे कालेज को छोड़कर अपने घर जा रहे हैं, अपनों के बीच जा रहे हैं। पर, इनसे बिछुड़ना अच्छा नहीं लग रहा फिर भी, हम सब इन्हें याद रखेंगे।" पृ.43

सन् 1975 ई. के आसपास देश में उच्छृंखलता बढ़ गई थी। सभी क्षेत्रों में अनुशासनहीनता पैर पसार रही थी। ऐसी स्थिति में कालेजों में विश्वविद्यालय स्तरीय परीक्षाएँ भी प्रभावित हुई थीं। उस समय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बरेली कालेज में प्रवक्ता पद पर कार्यरत थे। उन दिनों बरेली कालेज में घोर अव्यवस्था थी।

अतः मई 1975 ई. में वहाँ जो परीक्षाएँ हुई उसमें अव्यवस्था चरम सीमा पर पहुँच गई। इसके समाचार आकाशवाणी, बी.बी.सी. तथा रेडियो मास्को तक से प्रसारित हुए। अन्ततः परीक्षाएँ अनिश्चितकाल के लिए स्थगित कर दी गईं। डॉ. गुप्त ने इन अव्यवस्थित रूप में होने वाली परीक्षाओं का ब्यौरेवार वर्णन 'ईश्वर मुझे परीक्षा में मत डाल' संस्मरण में किया है। इसी बीच 19 जून 1975 ई. में देश में आपातकाल लागू हो गया। अन्ततः 1975 ई. की परीक्षाएं सितम्बर 1975 ई. में विधिवत सुचारु रूप से सम्पन्न हुई।

सन् 1998 ई. में लेखक को श्री अमन सिंह आत्रेय हिन्दी विकास संस्थान, मेरठ द्वारा उनके शोध प्रबन्ध 'पंत की दार्शनिक चेतना' पर सर्वश्रेष्ठ शोध ग्रन्थ के लिए 21,000.00 रुपये मानपत्र, स्मृति चिह्न का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। पुरस्कार के दो पक्ष हैं। पुरस्कार मिलने पर स्वयं उसे उसके परिजनों, आत्मीयजनों का प्रसन्न होना स्वाभाविक है। इसका एक दूसरा पक्ष भी है। कभी-कभी पुरस्कृत व्यक्ति को ईर्ष्या-द्वेष का दंश भी झेलना पड़ता है। पर लेखक इसके प्रति उदासीन तथा स्वयं में संतुष्ट है। उसे श्री सुमित्रान्दन पंत की 'पुरस्कार' शीर्षक कविता से आत्मतोष है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पुरस्कार भगवान दिलाये नहीं किसी को।
मित्र शत्रु हो जाते इससे, और प्रशंसक
कटु आलोचक बन, कृतित्व के साथ अपने
लघु चरित्र को बना दूषणों का पहाड़ पृथु
आत्म तुष्टि पाते हैं, तिल का ताड़ बनाकर।

'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः' शीर्षक के अन्तर्गत लेखक ने अपने परिजनों तथा पुरजनों की मृत्यु का सजीव तथा मार्मिक वर्णन किया है। जो जन्मा है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। यह जानते हुए भी व्यक्ति मृत्यु के नाम से ही डरता है। इसके विपरीत मृत्यु को निकट से देखकर लेखक का आत्मबल बढ़ता है। शरीर के जर्जर रहते हुए भी वह आत्म विश्वास से भरा हुआ है। जिजीविषा की ऐसी ललक सामान्यतया दुर्लभ है। लेखक के अनुसार दोनों घुटनों का आपरेशन सन् 1965 में हो चुका था, सन् 1993 में पथरी निकालने के लिए पेट का आपरेशन हुआ, मोतियाबिन्द के सन्दर्भ में दोनों आँखों का आपरेशन हो चुका है और अभी दो-तीन वर्ष पूर्व 25 मई 2007 को स्नानगृह में गिर जाने से जांघ की हड्डी टूट गई। अब वाकर की सहायता से चलता हूँ, नेत्र-ज्योति क्षीण हो गयी है, पर कार्यशीलता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, सामान्य स्वास्थ्य अच्छा है, यद्यपि मधुमेह, सोराइसिस, संधिवात् जैसे अनेक रोगों ने

आक्रान्त कर रखा है, पर तन-मन से मैं अत्यन्त स्वस्थ एवं सबल हूँ। कभी सोचता था कि सत्तर-बहत्तर तक जी सकूँगा—आर्थिक-पारिवारिक विषयों से सम्बन्धित योजनाएँ सत्तर तक की ही बनाई थीं। पर, अब विश्वास है कि पच्चासी वर्ष तक तो जिऊँगा ही, 90-92 तक भी जी सकता हूँ।'' पृ. 80

'सुन्दर' संस्मरण लेखक के बाल-सखा सुन्दर पर आधारित हैं। बाल्य-काल में ही सुन्दर के साथ एक दुःखद घटना घटित हो गई। उसके पिता को चोर समझकर मोहल्ले के लोग पीट रहे थे। सुन्दर वहाँ मौजूद था किन्तु लेखक उसकी सहायता करने की बजाय उससे नजर बचाकर ओट में हो गया। लेखक को अपने इस व्यवहार पर आज तक संताप है। ''संभवतः पचपन-छप्पन वर्ष पुरानी बात है। मैंने तब से सुन्दर को नहीं देखा। पता नहीं कहाँ होगा? होगा भी या नहीं? पर इतने वर्ष बाद भी मैं उसे नहीं भुला पाया हूँ—शायद भूल जाऊँ क्योंकि मन में यह बात हमेशा कौंधती रही है कि किसी कहानी, उपन्यास आदि में उसके बारे में कुछ लिखूँ अवश्य।'' पृ. 86

पुस्तक का अन्तिम संस्मरण है 'ठाकुर'। ठाकुर लखनऊ विश्वविद्यालय में लेखक के सहवासी थे । दोनों लखनऊ विश्वविद्यालय के हबीबुल्ला छात्रावास में एक ही कमरे में रहते थे। उनका पूरा नाम था रामचन्द्र सिंह एम.ए., एल.एल.बी. एडवोकेट। वे अपने पिता के समान ही बिगड़े हुए रईस थे। लेखक ने उनका सहानुभूति एवं करुण-भाव से पूरित चित्र उकेरा है।

पुस्तक की भाषा सहज सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। सूक्तिपरक उक्तियों में उसमें और भी अर्थवत्ता का संचार हुआ है। ऐसी कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"दुःखती अँगुली को ही सहलाया जाता है।" पृ. 25

"पुरस्कार किसी को बड़ा नहीं बनाते, पर समकालीनों-सहकर्मियों से ईर्ष्या-द्वेष अवश्य उत्पन्न करते हैं।" पृ. 67

"सच तो यह है कि मनुष्य ही ईश्वर है, मनुष्य ने ही ईश्वर और देवी-देवताओं को जन्म दिया है।" पृ. 88

स्पष्टतः, 'स्मृति के वातायन' हमेशा स्मरण रखने योग्य श्रेष्ठ साहित्यिक कृति है।



डॉ. रामस्वरूप आर्य
हिन्दी शोध संस्थान, बी-14, नई बस्ती, बिजनौर (उ.प्र.)
चलयंत्र : 09457283510

14

वटवृक्ष की छाँव तले



जिंदगी के सफर में कभी-कभी ऐसे भी विद्वज्जन हमसफर मिल जाते हैं, जो अपनी विद्वता से हमें प्रभावित किए बिना नहीं छोड़ते और जिनकी याद हमें वर्षों तक अलौकिक आनन्द प्रदान करती रहती है। आदरणीय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी ऐसे ही विलक्षण प्रतिभा के धनी विद्वान हैं। उनसे जब भी बात होती है उनकी आवाज के फूल मेरे मानस को इतना तृप्त कर देते है कि मैं क्या लिखूँ? मैं अक्सर ऐसा महसूस करता हूँ कि आज वह अपनी उम्र के जिस सोपान पर हैं, उस पर भी उनमें नौजवानों जैसा अदम्य साहस, कई-कई घंटे काम करने की ललक और सभी के साथ मृदुता का व्यवहार जैसी विशेषताएँ विद्यमान हैं। डॉ. गुप्त जी वस्तुतः उस वट वृक्ष के समान हैं, जो अपनी घनी छाँव में किसी को भी विश्राम करने से रोक नहीं पाता। इस वट वृक्ष ने 'साहित्यायन' की छाँव तले सभी को निरपेक्ष रूप से जगह दी है। पुराने रचनाकारों के साथ नए रचनाकारों का भी उत्साहवर्द्धन किया ताकि नए रचनाकार वरिष्ठ साहित्यिकों से कुछ सीख सकें। यह गुप्त जी की दरियादिली ही कही जाएगी।

डॉ. गुप्त जी अपने छात्र जीवन में ही रामकुमार वर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, विष्णुकांत शास्त्री, यशपाल, अमृतलाल नागर, महादेवी वर्मा आदि से मिल चुके हैं। यह बात उन दिनों की है जब गुप्त जी लखनऊ विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन कर रहे थे। वहाँ सेमिनार में हिन्दी के और भी प्रख्यात विद्वान आते रहते थे। यह सन् 1970 से 72 ई0 का समय था, जब गुप्त जी का मूर्द्धन्य विद्वानों के दर्शन एवं उनसे बात करने का सुअवसर मिला। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् वह 1973 से 2000 ई. तक बरेली कालेज में बड़ी सादगी, समानता और साम्प्रदायिक सौहार्द को ध्यान में रखते हुए अपने कार्य में संलग्न रहे। इस बीच

उन्हें तीन विभाग के अध्यक्षों एवं प्राचार्यों के सान्निध्य में काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी अब तक साठ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें उनके शोध ग्रंथ 'पंत की दार्शनिक चेतना' पर सर्वश्रेष्ठ शोध ग्रन्थ का 'आत्रेय पुरस्कार' प्राप्त हो चुका है। आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एम.फिल. और पीएच.डी. भी हो चुके हैं। यह आपकी साहित्यिक तपस्या ही है कि हिन्दी जगत ने आपको इतना महत्त्व दिया।

गुप्त जी 'साहित्यायन' के माध्यम से सोये हुए कुम्भकरणों को जगाने का काम कर रहे हैं। साहित्य ही समाज में व्याप्त विद्रूपताओं-विसंगतियों के खिलाफ उन कर्णधारों को सचेत करता है जो इस घनघोर भौतिकता में भी अपने समाज की समस्याओं से अनभिज्ञ हैं। गुप्त जी अपने लघु कलेवर वाली पत्रिका में सब कुछ समेटे हुए हैं। यह बहुत बड़ी विशेषता है कि कम पृष्ठों में अधिक सामग्री पाकर पाठक आह्लादित हो उठता है। वह अपने व्यक्तित्व की तरह ही पत्रिका को निकाल रहे हैं, उनके सम्पादकीय में स्वयं उनकी ही नहीं बल्कि हमारे राष्ट्र की छवि भी दृष्टिगोचर होती है। गुप्त जी बहुत मिलनसार, सादगी सम्पन्न और समूची मानवता के पक्षधर हैं। जहाँ भी उन्हें खोट दिखाई देता है, वह उसके खिलाफ खुलकर लिखते हैं। कलम का यही धर्म है कि वह जिन्दगी से हार चुके लोगों की हौसला अफजाई करें। हमारे माननीय गुप्त जी ने अब तक यह काम पूरी तत्परता के साथ किया है। स्वतन्त्रता से पूर्व एवं पश्चात् की बहुत सी घटनाएँ आज भी उनके दिलो-दिमाग, में रची बसी हैं। महिला लेखिकाओं के योगदान की भी उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा कर उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा दी है तो उधर दिवंगत हो चुके साहित्यकारों के कार्य को भी बिना किसी भेदभाव के, निरपेक्ष रूप से सराहा है। अपने संस्मरण के माध्यम से कभी वह अपने छात्र जीवन की याद को तरो-ताजा कर देते हैं तो कभी अपने मुहल्ले की स्मृतियों को। जहाँ तक मैं समझता हूँ वह आत्मा को जगाने वाले विद्वान हैं। जिन मुस्लिम कवियों ने राम-कृष्ण और संगीत तथा विद्या की देवी माँ सरस्वती की प्रशंसा की है, गुप्त जी ने उनकी भी तारीफ के पुल बाँधे हैं और यह सब हमारी गंगो-जमुनी तहजीब (संस्कृति) पर आधारित है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ऐसे मुस्लिम कवियों की प्रशंसा में कहा है—

इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिन हिंदू वारिये।।

हजरत अमीर खुसरो, रहीम, रसखान, ताजबीबी, अली गौहर, नजीर अकबराबादी, दादू दयाल, मीर तकी 'मीर', सम्राट अकबर, शाहजहाँ, दाराशिकोह, नवाब वाजिद अली शाह, दक्षिण भारत के शासक इब्राहीम आदिल

शाह द्वितीय के नाम भी लिए जा सकते हैं।

अमीर खुसरो ने सौ से ज्यादा गीत राधा-कृष्ण की प्रशंसा में लिखे। इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय ने सरस्वती वंदना लिखी थी। नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में रासलीला का आयोजन किया जाता था और अवध में ही नवाब वाजिद अली शाह ने ही कत्थक की शुरुआत की थी। सरमद शहीद, अबुल फजल, और फैजी ने भी लीला पुरुष कृष्ण की लीलाओं का मनोहारी वर्णन किया है।

गुप्त जी ने किसी को नहीं छोड़ा। 'साहित्यायन' में वह कभी किसी के बारे में बताते रहे हैं, कभी किसी के बारे में। मौजूदा कवियों की भी गुप्त जी ने प्रशंसा की है। जब इन पंक्तियों के मामूली रचनाकार ने अपनी किताबें 'गूँजती आवाज', 'वर्तमान समाज की त्रासदी उर्फ जनता है बदहाल', 'मेरे मन का खून', 'प्यारी लहरें' और 'भूख की लपटें' गुप्त जी के पास भेजीं तो उन्होंने बड़े स्नेह से उन्हें पढ़ा और अपनी बेबाक राय से मुझे कृतज्ञ किया। मेरे जो अशआर उन्हें अच्छे लगे उन्होंने लिख भेजे, मुझे दाद दी, पेश हैं कुछ उदाहरण—

उसके जैसा शब्द कोश में, कहाँ धरा है शब्द
सारे शब्दों से है अच्छा, वंदे मातरम्

* * * * *

हुई रात जब चाँदनी, अपने यौवन पर
अम्बर को छूने लगीं, तब प्यारी लहरें

* * * *

आँसुओं से धोई हमने जो जमीं
उस जमीं पे खूँ है क्यों फैला हुआ

* * * *

जज्बात के बगैर न होगी कभी गजल
जैसे कि सूखी झील में खिलता नहीं कंवल

* * * * *

हया, मुहब्बत, वफा, यकीं, अब हैं संवेदनशील
बना हुआ है अब क्या ये क्या, मतलब का संसार

यहाँ एक बात द्रष्टव्य है कि आदरणीय गुप्त जी के विचारों में संकीर्णता नहीं है। प्रत्येक भारतवासी को देश की सभ्यता और संस्कृति का ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक बड़े एवं नवोदित रचनाकार को गुप्त जी ने बड़ी आत्मीयता

के साथ सराहा है। उनके सम्पादकीय बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं के सम्पादकों पर कभी-कभी भारी पड़ते से लगते हैं। अंग्रेजी के पत्रकार-लेखक स्व. खुशवंत सिंह के पिता शोभा सिंह को भी वह भूले नहीं। उनकी याददाश्त आज भी अच्छे-अच्छे दिग्गजों को पछाड़ देती हैं। उन्होंने बहुत से शोधार्थियों को पीएच.डी. कराई जो उनकी पुस्तक शोधायन में संकलित हैं। गुप्त जी की ही एक पुस्तक 'विश्व के महान साहित्यकार' में वह दुनिया के उन मूर्धन्य रचनाकारों को नहीं भूले, जिन्होंने साहित्य (मानवता) के हितार्थ अपना जीवन सर्वस्व अर्पित कर दिया।

गुप्त जी के सात कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें प्रकृति की छटा तो है ही, साथ ही देश के सबसे बड़े लोकतंत्र को भी नजरअंदाज नहीं किया गया है। यहाँ राजनीति की स्थिति यह है कि हाईस्कूल असफल विधायक को शिक्षा मंत्री बना दिया जाता है परिणामतः शिक्षा की स्थिति क्या है? यह बताने की जरूरत ही नहीं। सरकारी विद्यालय कदमताल कर रहे हैं जबकि पब्लिक स्कूल धड़ल्ले से चल रहे हैं। मेरा एक दोहा ('मेरे मन का खून') द्रष्टव्य हैः

विद्यालयों में ज्ञान का, धूमिल हुआ गुलाब।
पास हुए बालक सभी, कोरी रही किताब।।

आज की शिक्षा की यह स्थिति है कि अध्यापक 79 और 89 को जल्दी से लिख नहीं पाता। शिक्षा माफियाओं ने तो शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ा है। वहाँ दुहरा शोषण हो रहा है। क्या इसी का नाम लोकतंत्र है? शिक्षा की मिट्टी पलीद करने का काम उनका भी है, जिनका आरक्षण ज्यादा है। ज्यादा आरक्षण होने के कारण ही वे जल्दी सीट घिरा लेते हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ प्राथमिक विद्यालयों में ऐसे अधिकतर अध्यापक ठीक-ठाक हिन्दी में ही पत्र नहीं लिख पाते। कबीर याद आ रहे हैं—

जाका गुरू भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधा, अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पड़ंत।।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के सिद्धान्त में विश्वास करने वाले गुप्त जी ऐसी ओछी शिक्षा प्रणाली के सदैव विरुद्ध रहे। उनकी विचारधारा बिल्कुल साफ-सुथरी है, पारदर्शी है। यही कारण है कि वह अपनी भाषा-शैली के माध्यम से तुरन्त ही पहचान में आ जाते हैं। वह उन दोगले रचनाकारों, सम्पादकों में नहीं है जो पुरस्कारों की घुड़दौड़ में शामिल हैं। उन्हें अपने काम से काम है। संत

कबीर की तरह वह निष्कर्म को ही कर्म मानते हैं।

आज साम्यवाद का सर्वत्र बोलबाला है। गुप्त जी के शब्दों में, "मननीय है कि साम्यवादी किसी का भला नहीं कर सकता, यहाँ तक कि साम्यवादियों का भी नहीं, पर पूँजीवाद किसी और का भला करे न करे, पर पूँजीपतियों का तो भला करता ही है.... भारत में शांति से सत्ता परिवर्तन हो जाता है, पर साम्यवादी देशों में सत्ता परिवर्तन रक्तपात को जन्म देता है।"

(साहित्यायन, अक्टूबर-दिसम्बर, 2015, पृष्ठ-6)

गुप्त जी ने हर विषय पर अपनी लेखनी चलाई है, कागज पर खेती की है, नई-नई विचारों रूपी फसले उगाई हैं। खूब लिखा है उन्होंने और खुलकर लिखा है। मुंबई से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'समाज प्रवाह' के पूर्व सम्पादक स्व. मधु श्री काबरा की तरह। गुप्त जी ने अपने लेखन में भावी पीढ़ी का भी ध्यान रखा है। सभी जानते हैं कि नई पीढ़ी ही देश का भविष्य है, उसे अच्छे संस्कारों की आवश्यकता है। जीवन-मार्ग में आने वाले अंधड़-तूफानों से उसे परिचित कराना चाहिए। उसे बताना चाएिह कि अगर जीवन में 'चक्रव्यूह' जैसा भयावक मोड़ आता है, तो उसे किस तरह तोड़ना है। हमारी आने वाली नई पीढ़ी ही देश में स्व. दूसरे राष्ट्रपिता डॉ. अब्दुल कलाम के सपनों को साकार करेगी। हमें अपनी नई पीढ़ी को सशक्त बनाना है इसलिए बहुत से उपन्यासकारों ने बाल उपन्यास लिखे हैं तो कवियों ने बाल कविताएँ। इसी के मद्देनजर गुप्त जी ने भी एक बाल उपन्यास 'परीजाद' लिखा है। यह उपन्यास बच्चों में गुण, वीरता, साहस, निडरता, दृढ़ आत्मविश्वास की प्रेरणा देने के साथ ही अंधविश्वास से दूर रहने की भी सीख देता है।

गुप्त जी ने देश के अनेक भू-भागों और ऐतिहासिक इमारतों, मकबरों के भी दर्शन किए हैं, जिसे उन्होंने 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' में व्यक्त करने का सराहनीय प्रयास किया है। उन्होंने लालकिला के दर्शन किए हैं तो हुमायूँ का मकबरा भी उनकी आँखों से ओझल नहीं हो पाता। उनकी पत्रिका 'साहित्यायन' अब दसवें वर्ष में प्रवेश करने वाली है, जिसे वह बड़ी मेहनत, लगन और आत्मीयता से निकाल रहे हैं। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि गुप्त जी अनेक वर्षों तक हम में रहें और स्वस्थ सानन्द रहते हुए शतायु हों। मेरी आत्मीय शुभकामनाएं उनके साथ हैं।

जो न किया अब तुम उसे, कर डालो बिन देर।
लिखने वालों के लिए, कैसी सांझ-सवेर।।

करो उसे अब गुप्त जी, किया नहीं जो काम।
रच दो कुछ ऐसा कि जो, सदा अमर हो नाम।।

लेखक अपने काम में, हरदम रहते मस्त।
उजियारे को जीत दें, तम को सदा शिकस्त।।

तुम लिख दो अब कुछ नया, कर दो अजब कमाल।
अजब बात का जश्न जो, सदा मनाए काल।।

'सरमद' हरदम 'गुप्त' जी, लिखते रहें सहर्ष।
ले आएंगे रंग खुद, अलबेले संघर्ष।।

स्वस्थ और दीर्घायु होने की एक बार पुनः कामना करता हूँ।



इसरार 'सरमद'
बछरायूँ, अमरोहा (उ.प्र.)- 244225
मो नं. : 08859117252



रेखाचित्र सं. 15
(अजन्ता गुफा नं. 10, सातवीं शताब्दी)

15

प्रेरणापुंज, आशा संचारक और परम श्रद्धेय गुरुदेव डॉ. गुप्त जी



जीवन इन्द्रधनुषी परिधान है।
हर रंग की एक पहचान है।।
सम्बन्धों की डोर में बँधे सभी रंग।
प्रेम-सूत्र-बद्ध सभी चलते है संग।।
जब तक न आपस का आधार हो।
तब तक न जीवन साकार हो।।
सभी को अपेक्षित है एक सच्चा गुरू ।
मिलते ही होती है सफल यात्रा शुरू।
जागा है आज शायद मेरा प्रारब्ध।
मुझको हुआ मेरा गुरू उपलब्ध।।
सद्गुरु ने दे दी है मुझको पहचान नई।
मिली ऐसी ऊर्जा कि भर लूँ उड़ान नई।।

'यथा नाम तथा गुण' यह कहावत चरितार्थ होती है—मेरे शोध निर्देशक, प्रेरणास्रोत, भँवर में फँसी हुई जीवनरूपी जर्जर नौका सँवारने वाले मेरे गुरु डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के विषय में। आप एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जिनके कार्य की सफलता को कोई भी बाधा रोक नहीं पायी। बाधायें चाहे शारीरिक हो, चाहे आर्थिक या फिर सामाजिक। व्यक्ति की दृढ़ संकल्प शक्ति लक्ष्य प्राप्ति के रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करती चली जाती हैं। गुरुदेव की दृढ़संकल्प शक्ति ने शारीरिक अक्षमता को भी पराजित कर दिया। मैंने हमेशा अनुभूति की है कि नाम के अनुसार ही उनके व्यक्तित्व में ईश्वरत्व व चन्द्रमा की शीतलता का वास है। वे ज्ञान के सागर हैं। डॉ. गुप्त जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी सफल साहित्यकार

हैं। जितना सफल उनका साहित्यिक जीवन है, उतना ही सफल उनका पारिवारिक जीवन भी। वह एक सफल पति, सफल पिता, सफल श्वसुर और सफल दादा हैं।

आज मेरा मन स्वयं पर गर्व महसूस कर रहा है कि उसे ऐसे अद्‌भुत व्यक्तित्व की सान्निध्य एवं परामर्श प्राप्त हुआ जिससे मैं जीवन की विषम परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति संचित करके जीवन पथ पर अग्रसर हो सकी।

यद्यपि डॉ. गुप्त जी का प्रथम दर्शन मैंने सन् 1993 में किया था जब बरेली कालेज, बरेली में मैंने प्रवेश लिया। मैंने एम.ए. हिन्दी विषय से उसी महाविद्यालय से किया। उस समय भी डॉ. गुप्त जी की 'प्रकाश प्रकाशन' से प्रकाशित होने वाली उनकी गाइड से अपनी विषय सम्बन्धी कठिनाइयों का निवारण करती थी। मैं देखती थी कि अनुशासन व कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना उनके व्यक्तित्व में कूट-कूटकर भरी थी इसलिए गुरुजी हमेशा महाविद्यालय व कक्षा में दायित्व निर्वहन के लिए उचित समय पर पहुँचते थे।

गुरुजी के सौम्य, पितृवत् स्नेहिल स्वभाव व ज्ञान के असीम सागर से परिचित होने का अवसर उस समय प्राप्त हुआ जब शोध छात्रा के रूप में उनसे सान्निध्य का सुअवसर प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम किसी अन्य शोध निर्देशक के निर्देशन में मेरी शोध की रूपरेखा अस्वीकृत हो चुकी थी इसीलिए भयभीत मन से प्रशंसा सुनने के बावजूद मैं अपने पिता के साथ उनके समीप गई। दो पंक्तियाँ लिखने का आदेश मिला। उनकी वाणी की मिठास को देखकर भय छूमंतर हो गया। परन्तु शोध कार्य के प्रारम्भ होते ही मैं एम.एड. करने शाहजहाँपुर चली गयी। गुरु जी ने अच्छे परामर्शदाता की भाँति पूर्ण तल्लीनता से पहले एम.एड. की तैयारी फिर शोध कार्य करने की सलाह दी।

तब से अब तक गुरुदेव को मैंने हमेशा अपने पलंग पर अपने चरण कमलों को फैलाये कर कमलों में पुस्तक या लेखनी लिये साहित्य साधना में तल्लीन ही देखा। गुरुजी सरस्वती के वरदपुत्र हैं, साथ ही आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण एवं महान आत्मा वाले व्यक्ति हैं।

मेरे जन्मदाता को भी बड़े भाई के समान सम्मान देना, मेरे बड़े भाई को ग्रीन पार्क में मकान के लिए शंका समाधान कर प्रोत्साहित करना, मेरे पिता से काफी-काफी समय तक अनेक बिन्दुओं पर चर्चा करना, मेरे भाई को मेरे साथ जाने पर उनसे स्नेहपूर्ण व्यवहार करना तथा कभी भी बिना चाय नाश्ते के न आने देना, यह घटनाएँ उनकी महानता की परिचायक हैं।

शोध कार्य करते हुए ही वैवाहिक जीवन की विषम परिस्थितियों के कारण

शैक्षिक कार्य बाधित सा हुआ। मेरे पति को भी गुरु जी ने अपनी सादगी, शान्त स्वभाव एवं व्यवहार कुशलता का परिचय देते हुए मृदु वाणी रूपी पवित्र जल छिड़कते हुए उनके क्रोध को शान्त कर नारी शिक्षा के महत्त्व को समझाते हुए अनवरत् शिक्षा के लिए प्रेरित किया। आज उस सुखद अनुभूति में मन सरावोर हो जाता है जो मुझे डॉ. गुप्त जी एवं गुरुपत्नी से प्राप्त हुआ। गुरु जी ने पितृवत स्नेह व गुरुपत्नी श्रीमती इन्दुरानी ने अपने नाम के अनुसार ही ममत्व की शीतल छाया में सिक्त किया तथा मातृवत अच्छी सीख व कर्त्तव्यनिर्वाह की शिक्षा दी।

पारिवारिक समस्याओं के कारण, उस पर मातृत्व की जिम्मेदारी से मन में व्याकुलता एवं निराशा आने लगी थी। मेरे पिता भी चिन्ताग्रस्त थे। गुरुजी ने न केवल मुझे वरन् मेरे पिता को भी ढाँढस बँधाया। कबीर ने ठीक ही लिखा है—

गुरू कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़े खोट।
भीतर हाथ सहार दे, बाहर-बाहर चोट।।

डॉ. गुप्त जी भी कबीर की कही हुई बात को सिद्ध करते हैं। वह कठिन परिश्रम करवाते हैं गलती पर डाँट पिलाते हैं, सही कार्य हेतु प्रेरित करते हैं। कठिन परिश्रम एवं डाँट रूपी हथौड़े की चोट देते हैं, शिष्य रूपी घड़े को सही आकार (गुणवान) देने हेतु आशा एवं प्रोत्साहनपूर्ण वचन रूपी हाथ का सहारा देते हैं। उन्होंने मेरे जीवन में आशा का संचार किया। अपने द्वारा दिये गये अतिरिक्त समय व अथक प्रयास से न केवल दिसम्बर 2002 में शोध कार्य पूर्ण कराया बल्कि इस बीच शिक्षक पद हेतु चयन बोर्ड की लिखित परीक्षा व साक्षात्कार हेतु मार्गदर्शन भी किया। वह सच्चे अर्थों में मानव हैं उनकी मानवता की पराकाष्ठा के परिणामस्वरूप मेरा अल्पायु में देखा गया 'डाक्टर' बनने का सपना पीएच.डी. की उपाधि के रूप में पूर्ण हुआ। अपने पिता के धैर्य धारण करने की सीख व गुरुजी के अथक प्रयास व प्रोत्साहन से यद्यपि आज मैं प्रवक्ता हिन्दी के पद पर कार्यरत हूँ। गुरूजी हमेशा ही मुझे प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत होने का आशीर्वाद व प्रेरणा देते रहते हैं।

हर्ष का विषय है कि अभिमन्यु की भाँति मेरे पुत्र को भी गर्भावस्था के दौरान गुरु ज्ञान पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस समय वह कक्षा 10 का शिक्षार्थी है लेकिन गुरु जी की पत्रिका 'साहित्यायन' तथा उनके विषय में पढ़कर सुखद अनुभूति करता है।

मेरे जीवन में आशा, ऊर्जा, चेतना व आजीविका चलाने योग्य बनाने के

लिए मैं आजीवन आपकी ऋणी रहूँगी। मेरा जीवन कृतार्थ करने वाले गुरूदेव के समक्ष मेरा मस्तक नत हो जाता है। हृदय अनायास ही कह उठता है कि उनके व्यक्तित्व में शिवत्व छलकता है। उनका परिवार शिव परिवार की भाँति है, उनकी पत्नी श्रीमती इन्दुरानी माँ गौरा के समान पति परायणा, गणेश व कार्तिकेय के भाँति मातृ पितृ भक्त दोनों पुत्र, ज्ञान इच्छुक शिक्षार्थीगण, वह स्वयं शिव की भाँति सबके कल्याणकारक। माँ जगदम्बा से आपके उत्तम स्वास्थ्य, सतत्सृजनशीलता व कुशल पारिवारिक जीवन की प्रार्थना करती हूँ।



डॉ. सोमलता चौहान
प्रवक्ता, महाराजा अग्रसेन इण्टर कालेज, मुरादाबाद
चलभाष : 9411858529



रेखाचित्र सं. 13 गंधर्व युगल
(अजन्ता गुफा नं-1, सातवीं शताब्दी)

16

... कोई कोपल फूटना चाहती है



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त से मेरा परिचय काफी पुराना है। आपको 05 जनवरी 1998 को मेरठ में श्री अमन सिंह आत्रेय शोध पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इसी शुभ अवसर पर मेरी आपसे प्रथम भेंट हुई थी। परिचय का यह क्षीण सूत्र समय के साथ दृढ़ से दृढ़तर और दृढ़तर से दृढ़तम होता चला गया। इसका कारण भी है, डॉ. गुप्त बरेली कॉलेज में सेवारत रहे और मेरा मूल गृह नगर भी बरेली ही है। समय-समय पर मैं कभी पारिवारिक कार्यों से कभी शैक्षणिक कार्यों से रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय में मूल्यांकन, मौखिक परीक्षा आदि के निमित्ति बरेली जाता-आता रहता हूँ और अवसर का लाभ उठाकर मैं डॉ. गुप्त से कभी कॉलेज में तो कभी उनके निवास पर मिलता रहा हूँ। अपनी जीवन-यात्रा में उन जैसे मार्ग-दर्शक सहयोगी मित्र को पाकर मैं हर्षित ही नहीं, गौरवान्वित भी हूँ। डॉ. गुप्त ऐसे साहित्यकार हैं, जिनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही प्रशंसनीय हैं। आपका व्यक्तित्व मनुष्यता का उत्कृष्ट निदर्शन है। आपकी सरलता, शिष्टता, निश्छलता, सहकारिता एवं विनोदप्रियता आदि गुणों की जितनी प्रशंसा की जाये उतनी कम है। मैं आपसे जब-जब मिलता हूँ, मुझे लगता है, वे हमारे अपने खास हैं। आपकी वाणी और व्यवहार में लोक-जीवन, लोक-संस्कृति और लोक-धर्म की त्रिवेणी तरंगायमान है। महानगरीय कालुष्य और विषय से आप पूर्णतः मुक्त हैं। सत्य तो यह है कि आप प्रथमतः एक अच्छे इंसान हैं, तत्पश्चात् समर्पित शिक्षाविद् और सम्मानित साहित्यकार।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। आपने एक आदर्श शिक्षक के रूप में अत्यधिक यशार्जन किया। शोध के क्षेत्र में आपका कार्य

मील का पत्थर है। साहित्य-लेखन में काव्य, उपन्यास, जीवनी, संस्मरण, यात्रा वृतान्त, आलोचना, अनुवाद, शोध आदि विधाओं में 50 से भी अधिक कृतियों का प्रणयन करने के पश्चात् आज भी आप माँ सरस्वती का शृंगार करने में संलग्न हैं। ऐसी साधना कर्मठता, निष्ठा और रचनात्मक विह्वलता के बिना सम्भव नहीं है। विगत दस वर्षों से आपके संरक्षण एवं सम्पादक के रूप में प्रकाशित साहित्य एवं शोध त्रैमासिक 'साहित्यायन' का प्रकाशन एक बड़ी साहित्यिक उपलब्धि है। शारीरिक अक्षमता के बावजूद आपका उर्वर कृतित्व इस सत्य का साक्षात् प्रमाण है कि यदि मन में कुछ खास करने की तमन्ना हो तो बड़ी से बड़ी अड़चनें भी उसका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकती। मैं एक बात और कहना चाहूँगा कि डॉ. गुप्त अपनी प्रसिद्धि की पताका स्वयं अपने हाथ में लेकर चलने वाले साहित्यकार नहीं हैं। वे तो अहेतु अपनी साधना में तल्लीन रहने वाले समाधिस्थ साधक हैं। इसीलिए प्रसिद्धि आपके पीछे-पीछे स्वयं चलती आई है।

डॉ. गुप्त के पास आत्मीयता की वह जादुई छड़ी हैं जिससे वे सभी को अपना खास बना लेते हैं और एक बार जो उनके स्नेह-बंधन में बंध जाता है, वह फिर कभी भी छूटना चाहता ही नहीं। शिष्यों और मित्रों के विराट् समूह से सतत संवाद, सतत मौलिक सृजन, सम्पादन एवं समीक्षा-लेखन आपको एक जीवन्त संस्थान का गौरव प्रदान करता है। आपका प्रेरक गतिशील व्यक्तित्व साहित्य-सागर में स्थित उस 'प्रकाश- गृह' के समान है जो न जाने कितने युवा साहित्यकार-नाविकों के भीतर नव ऊर्जा, नव आशा और नव उत्साह का संचार कर रहा है। आपकी उदात्त जिजीविषा, अथक श्रमशीलता और उज्जवल सृजन-धर्मिता का अभिनंदन करते हुए राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की कविता 'मंसूबा' की कुछ पंक्तियाँ जरूर उद्धृत करना चाहूँगा—

जिन्दगी के थपेड़े खूब खाये
मगर मंसूबे अभी मरे नहीं हैं।
पेड़ के सभी पत्ते गरचे,
हरे नहीं हैं
मगर डाली में रस है।
और रस की यह धारा
कैद से छूटना चाहती है।

टहनी के भीतर बेचैनी है
शायद
कोई कोपल फूटना चाहती है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की हीरक जयंती के शुभ अवसर पर यही है, मेरी विनम्र प्रणामांजलि!



डॉ. देवकीनन्दन शर्मा
अध्यक्ष हिन्दी विभाग एवं प्राचार्य
डी.एन. पी.जी. कालेज, गुलावठी (बुलन्दशहर) उ.प्र. 203408
फोन नं. : 09837573250



रेखाचित्र सं. 14
केश कलाप (अजन्ता)

17

अदम्य जिजीविषा के धनी डॉ गुप्त



जीवन जीने की इच्छा या लालसा तो प्राणी मात्र में सहज भाव से पायी जाती है, विशेषकर मनुष्यों में यह प्रवृत्ति कुछ अधिक सशक्त रूप में मिलती है। सभी प्रकार की भौगोलिक एवं मौसम विषयक भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में स्वयं को तदनुरूप ढाल लेने की कला भी सभी जीवों में होती है किन्तु मानव कुल के हम लोगों में यह कला कुछ अधिक ही परिष्कृत एवं सशक्त रूप में सुलभ होती है। जिजीविषा की यह प्रवृत्ति किसी दिव्यांग प्रकृति जन में कितनी प्रबल, जीवन्त और महत्त्वाकांक्षामय हो सकती है, बड़े भाई डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त इस परम साहसिकता का बलवत्तर प्रतीक बन कर उभरे हैं। उनकी जिजीविषा को बार-बार नमन्।

प्रारब्ध, दैव और प्रकृति ने उनके साथ बहुत पक्षपात किया। वह जन्म से लेकर आज तक अपने सम्पूर्ण स्वस्थ जीवन के लिए संघर्ष करते रहे किन्तु मन बुद्धि और आत्मा के धरातल पर वे अत्यन्त सशक्त और समर्थ व्यक्तित्व के रूप में उभरे। उन्होंने न केवल स्वयं को संभाला बल्कि अत्यधिक सुदृढ़ मनोबल के साथ अपने सहपाठी, सहकर्मी, समकालीन शिक्षकों और लेखकों में अपने आपको एक आदर्श प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनका व्यापक कर्त्तव्य, प्रकाशित ग्रन्थ समूह, उनकी पुष्कल शिक्षा परम्परा, उनका भरा पूरा सुखी समृद्ध परिवार, सब कुछ उनके अमित साहस और अद्‌भुत मनोबल का प्रमाण है।

गुप्त जी का जन्म शाहजहाँपुर के व्यापार से जुड़े मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ। इनके जन्म के कुछ ही वर्ष बाद पिताश्री का देहावसान हो जाने से माँ के सिर पर दायित्वों की भारी गठरी आन पड़ी किन्तु उन्होंने बड़ी मितव्ययिता और कुशलता के साथ अपना दायित्व संभाला। पूरी गृहस्थी अस्त-व्यस्त हो गयी,

बड़े परिवार की भारी जिम्मेदारी और उस पर बालक सुरेश की असाध्य बीमारी। किन्तु उस संघर्षशीला माँ ने कभी किसी कदम पर हार नहीं मानी। मुझे लगता है कि अदम्य साहस और कभी भी पराजित न होने की उत्कण्ठा यह सब डॉ. गुप्त ने अपनी माँ से ही पाया। स्वयं उन्हीं के शब्दों में,...

"दुर्भाग्य पीछे पड़ा था। मैं कक्षा सात या आठ में था कि बायें पैर के अंगूठे में दर्द रहने लगा। फिर टखने और घुटने में दर्द रहने लगा। ऐसा कोई उपाय नहीं था जो अम्मा ने न किया हो। कभी इस पण्डित के पास तो कभी उस ज्योतिषी के पास। कुण्डली दिखातीं कि बीमारी क्या है? कैसे ठीक होगी? अम्मा श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में रुपया रखतीं और उनके द्वारा बतलाये गये उपायों पर आचरण करतीं। वैद्य को दिखाने ले जातीं और जैसे-जैसे सेवन विधि बताते, उसी का अनुपालन कर दवा खिलातीं। कितने ही हकीमों को दिखाया, उनके द्वारा बतायी गयी दवाएँ अत्तार से लाईं और विश्वास से खिलाईं। शुरू में लगता था कि लाभ हो रहा है पर बेकार। शायद ही कोई वैद्य हकीम होगा जहाँ अम्मा न ले गयीं हों।"

यूँ ही रोगों और उपचारों में उठापटक चलती रही और धीरे-धीरे उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। इण्टर में दाखिले की तैयारी चल रही थी कि फिर से रोग शैय्या ने जकड़ लिया और लगभग सात वर्षों तक वे रोग से लड़ते रहे। किन्तु पल भर के लिए भी साहस और मनोबल का दामन नहीं छोड़ा। शरीर जितना अधिक पीड़ा की बेड़ियों में जकड़ता गया मन उतना ही उन्मुक्त पाँखी की भाँति आशाओं और सुन्दर कल्पनाओं के उन्मुक्त गगन में उड़ने लगा। 'स्मृति के वातायन' में इन सात वर्षों की व्यथा को उन्होंने इस प्रकार लिखा है—

"वैद्य हरिश्चन्द्र मिश्र निःशुल्क उपचार करते थे। वे नये-नये वैद्य बने थे, मारवाड़ी चिकित्सालय में वैद्य नियुक्त हुए थे और मेरे चचेरे भाई राधेश्याम ने उन्हें चैलेन्ज किया था कि इन्हें ठीक कर दो तो जानें। अम्मा उनकी बतलायी विधि से जड़ी बूटी से दवा बनातीं, उनकी दी गयी दवाई खिलातीं। सोरायसिस से बायें पैर की चमड़ी उतर सी गयी थी, उसे नीम के पानी से धोतीं यानी हर प्रकार की सेवा सुश्रूषा। उनकी सेवा परिचर्या, वैद्य जी की दवायी, और सर्वोपरि परमात्मा की कृपा से मैं पूर्णतः रोगमुक्त हो गया पर कई अंग जैसे कलाई घुटने आदि जकड़ गये थे उनमें विकृति आ गयी थी।

इतनी विषम परिस्थितियों में भी गुप्त जी ने इण्टर की परीक्षा 72 प्रतिशत (अंग्रेजी में) अंकों से उत्तीर्ण की। उनकी इस प्रतिभा और साहस को देख बड़े

भाई ने इन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश दिला दिया। वहाँ से प्रथम श्रेणी में आगे पढ़ने को कहा। गांधी फैजम कालेज से बी.ए. किया और एम.ए. हिन्दी उत्तीर्ण किया। लेकिन कहीं नौकरी नहीं मिली। सतत् प्रयासों के बाद भी जब नौकरी नहीं मिल रही थी। आपके एक शुभचिन्तक प्रो. डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने पी.एच.डी करने की राय दी। उन दिनों की कशमकश खुद उन्हीं के शब्दों में द्रष्टव्य है—

"मेरे साथ सबसे बड़ी बाधा मेरी विकलांगता थी। कुछ मित्र पास पड़ोस के जिलों में नौकरी पा गये पर साक्षात्कार में चयन होने के बावजूद नाना प्रकार के बहाने करके मुझे नहीं रखा गया। ... साक्षात्कार देते देते थक गया था। जून-जुलाई की गर्मियों के दिन कभी एटा तो कभी इटावा, कभी कानपुर तो कभी गोरखपुर, कभी कासगंज तो कभी फर्रुखाबाद, कभी बस्ती तो कभी फैजाबाद कभी गोला गोकर्णनाथ तो कभी सीतापुर, कभी मेरठ तो कभी मैनपुरी। दो ढाई वर्षों में प्रायः सारा उत्तर प्रदेश मथ डाला। कई बार ऐसा हुआ कि कई-कई दिनों तक इस नगर से उस नगर के चक्कर काटने पड़ जाते थे। इधर उधर का भोजन, अनियमित दिनचर्या, अनवरत भागदौड़ और बेरोजगारीजन्य चिन्ताओं के कारण स्वास्थ्य भी गिरता गया पर शोधकार्य में शैथिल्य नहीं आने दिया।"

सतत प्रयत्न और अमन्द साहस देर से ही सही पर कभी-न-कभी अपनी मंजिल पर पहुँचा ही देता है। गुप्तजी भी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध ब्रह्मावर्त डिग्री कालेज, मंधना में हिन्दी के प्रवक्ता के रूप में नियुक्ति पा गये। परिन्दों में जैसे आसमान नापने की तीव्र इच्छा रहती है वैसे ही डॉ. गुप्त मंधना से संतुष्ट नहीं रह सके। यद्यपि वहाँ का शान्त वातावरण, छोटा विद्यालय, कम विद्यार्थी, निश्चित मात्र 6 शिक्षक, उन्हें बहुत प्रिय लग रहा था किन्तु प्रेय और श्रेय में से उन्होंने श्रेय को चुना।

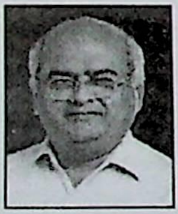
अवसर पाते ही उन्होंने 30 अक्टूबर 1973 को बरेली कालेज बरेली के हिन्दी विभाग में कार्यभार ग्रहण कर लिया और यहीं रहकर 30 जून 2000 तक अपनी शिक्षण तथा लेखन की यात्रा प्रारम्भ की। प्रकाश बुक डिपो के स्वामी से उनकी मित्रता ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी त्यों-त्यों वह एक स्थापित छात्र हितकारी पुस्तक लेखक के रूप में प्रसिद्ध होने लगे। यहीं रहकर उन्होंने डी.लिट. की उपाधि भी प्राप्त की।

कठिनाइयों ने कभी डॉ. गुप्त का साथ नहीं छोड़ा लेकिन उनके साहस ने भी उनका दामन नहीं छोड़ा। यही उनकी उद्दाम जिजीविषा का प्रमाण है।

पहले मिशन हास्पीटल में 1965 में घुटने का ऑपरेशन फिर लखनऊ मेडिकल कालेज में एक माह तक भर्ती रहे। (1972) पुनः 1992 में दिनेश नर्सिंग होम में पथरी का ऑपरेशन कराया। 1990 में दायीं आँख का आपरेशन हुआ और 2004 में बायीं आँख का आपरेशन हुआ। मई 2007 में जांघ की हड्डी टूट जाने पर उसमें स्टील की राड लगायी गयी। न जाने कितने नतावनत संघर्षों से पार उतरते हुए डॉ. गुप्त जीवन के मंगलमय पथ पर अपनी अदम्य जिजीविषा के बल पर बढ़े जा रहे हैं। हम उन्हें इसी तरह आगे बढ़ते हुए देखने की कामना करते हैं। ईश्वर उनका स्वास्थ्य और साहस बनाये रखे।

जब उनके अभिनन्दन ग्रन्थ की सूचना मिली तो इच्छा हुई कि उनके विषय में कुछ लिखूँ। उनके लेखन और लेखनी पर टिप्पणी करने की अपेक्षा उनकी साहसिकता पर प्रकाश डालूँ। मेरा उनसे परिचय तब हुआ जब मैंने 1978 में संस्कृत प्रवक्ता के रूप में अपनी बरेली यात्रा प्रारम्भ की। 1986 में मैं उनके पड़ोस में आकर रहने लगा लगभग 13-14 वर्ष हम एक ही कालोनी में रहे। प्रायः मिलना होता था वह विशुद्ध व्यावहारिक बुद्धि के धनी थे। उनके परामर्श बहुत उपयोगी और लाभकारी होते थे। कटुता की सीमा तक सत्य बोलने से वह नहीं कतराते। 1999 में मैंने कालोनी बदल ली। घरों की दूरियाँ अवश्य बढ़ गयीं किन्तु मन की निकटता बढ़ती गयी। वे आज भी हमारे आदरणीय बड़े भाई हैं और सदा रहेंगे। मैं उनके स्वस्थ एवं सुखी दीर्घ जीवन की प्रार्थना करता हूँ।

इतिशम्



डॉ. राजेश भारद्वाज
अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, बरेली कालेज, बरेली
आवास- 31 सनसिटी, बरेली
दूरभाष : 231524; चलयंत्र : 9412544741

मिट गयीं घड़ियाँ अशुभ
सूरज उगा फिर।
आज पावन कर्ममय
जीवन मिला फिर
(जिजीविषा, ऋतु वसंती)

18

शोध-साधक एवं मुकम्मिल अध्यापक



डॉ. गुप्त से मेरा परिचय तैंतालिस वर्ष पुराना है। 1973 से ही मैं इन्हें प्रगति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होते हुए देख रहा हूँ।

अच्छा शिक्षक एक अच्छा विद्वान भी होता है। डॉ. सुरेशचन्द्र जी गुप्त ने 'पंत की दार्शनिक चेतना' को अपना शोध का विषय बनाकर लखनऊ विश्वविद्यालय से डॉ. सरला शुक्ला के निर्देशन में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। पीएच.डी की उपाधि प्राप्त करने के लिए सामान्य शोध-छात्र संकलनात्मक या विवरणात्मक अथवा तुलनात्मक विषय का चयन कर लेते हैं। सुगमतया उपलब्ध सामग्री पर आधारित सरल विषय पर उपाधि लेना एक सामान्य सी बात हो गई है परन्तु न तो डॉ. श्रीमती शुक्ला और न ही उनके निर्देशन में पीएच.डी. करने वाले डॉ. गुप्त किसी सामान्य से घिसे पिटे मार्ग पर चलने वाले थे। डॉ. गुप्त हिन्दी के सुप्रतिष्ठित विद्वान होने के कारण श्री सुमित्रानन्दन पंत के साहित्य से भलीभाँति परिचित थे, इसीलिए इन्होंने एक कठिन विषय लेकर अपने गुरुजनों की आशा से भी अधिक अच्छा कार्य कर दिखाया। स्पष्ट है शोध का विषय विलक्षण है, इस पर शोध करने वाला भी विलक्षण ही होना चाहिए। यह एक ऐसा मौलिक विषय है जिस पर सहायक सामग्री सुगमता से नहीं मिलती। डॉ. गुप्त ने थोड़े से सीमित समय में अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करके उस पर डॉक्टर की उपाधि प्राप्त की। शोध-प्रबन्ध में तथ्यों का विवेचन पंत जी के प्रति श्रद्धाभावना से प्रेरित न होकर वैज्ञानिक दृष्टि एवं तथ्यपरकता का द्योतक है। लेखक ने सर्वत्र उदाहरणों से अपने मत का पोषण किया है। विद्वान् लेखक की अद्‌भुत विवेचन कला से शोध-प्रबन्ध में सरसता का समावेश हो गया है। निःसन्देह यह शोध-प्रबन्ध डॉ. गुप्त की तो एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ही, यह हिन्दी शोध का भी

एक उत्कृष्ट निदर्शन है।

डॉ. गुप्त ने एक अत्यन्त गम्भीर तथा सूक्ष्म विषय को अपने शोध प्रबन्ध के द्वारा, अपने पारदर्शी चिन्तन तथा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा रोचक एवं स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। निश्चय ही यह ग्रन्थ अपने विषय की एक उत्कृष्ट उपलब्धि है। यह शोध कार्य प्रकाशित हो चुका है। यह सात अध्यायों में विभक्त है। ये सात अध्याय डॉ. गुप्त की कर्मठता, उनकी शोध साधना, विवेचन क्षमता और वैदुष्य के सशक्त प्रमाण हैं। पंत साहित्य में रुचि रखने वाले अथवा एक विलक्षण आलोचनात्मक अध्ययन में रुचि रखने वाले मनीषी विद्वान के लिए यह सुतराम् पठनीय ग्रन्थ है।

डॉ. गुप्त में साहित्यसृजन की नैसर्गिक प्रतिभा है। मुझे विश्वास है कि डॉ. गुप्त भविष्य में और भी परिपक्व तथा अनुभूति सम्पन्न शोधकृति हिन्दी साहित्य को दे सकेंगे और इनकी वाणी से हिन्दी पाठकों को प्रेरणा मिलती रहेगी।

अध्यापक के रूप में डॉ. गुप्त का परिचय देने का अधिकार उनके शिष्य-शिष्याओं को है। मेरे पास उनके बारे में जो भी सूचना है वह उनके शिष्य-शिष्याओं के माध्यम से ही प्राप्त हुई है। उनसे बात करने पर ज्ञात हुआ कि उनका छात्र-छात्राओं पर जो प्रभाव है, वह साधारण कोटि का नहीं है। अपने गुरु की प्रशंसा मात्र औपचारिकता के कारण भी होती है परन्तु वास्तविक प्रशंसा और औपचारिकता के लिए कहे हुए शब्दों में हाव-भाव में बहुत अन्तर होता है। इनकी एक शोध शिष्या मधुरिमा सेठ, जो मेरी भी शिष्या रह चुकी थी, अपने सर्वप्रिय गुरु का गुणगान करते कभी थकती नहीं। कोई शिष्या इनके पढ़ाने के ढंग की प्रशंसा करती तो कोई इनके स्नेहसिक्त व्यवहार की, कोई प्रेरणा देकर उद्धार करने की बात करती तो कोई इनके कठोर अनुशासन की। अनुशासित करने के इनके कुछ विशिष्ट ढंग थे। कभी प्यार से समझाकर, कभी डाँट-फटकार के साथ लम्बा-सा लेक्चर तो कभी रुष्ट होकर मौन धारण करके। कुल मिलाकर एक शिक्षक के देवदूत उसके छात्र ही होते हैं।

विद्यार्थियों से इतनी प्रशंसा प्राप्त करने वाला गुरु सफल अध्यापक तो होता ही है उसके लिए उसे योग्य विद्वान होना आवश्यक है, साथ में उसे परिश्रमी भी होना चाहिए। विशेष रूप से भाषा और साहित्य के शिक्षक के लिए सहृदय, साहित्यमर्मज्ञ, कल्पनाशील, विद्वान तथा मनोविज्ञान से भी परिचित होना चाहिए। उसे विद्यार्थियों के स्तर को ध्यान में रखते हुए किसी पाठ की व्याख्या अनेक प्रकार से अनेक बार करनी पड़ती है। इस प्रक्रिया-वाणी के सतत् अर्थयुक्त प्रयोग में

कितना परिश्रम करना पड़ता है यह एक अच्छा शिक्षक ही अनुभव कर सकता है। विचारों के संप्रेषण की सफलता तभी मानी जाती है जब शिष्य उसे ग्रहण करके स्वयं को अनुगृहीत अनुभव करे। डॉ. गुप्त के विद्यार्थी जिस प्रकार उनकी प्रशंसा करते हैं उससे स्पष्ट होता है कि वे एक दार्शनिक दृष्टियुक्त विद्वान वाचस्पत्यं से युक्त साहित्यमर्मज्ञ हैं। अपने विद्यार्थियों की मनोदशा से सुपरिचित होने के कारण उनके स्तर पर पहुँचकर वे उन्हें भाव की ऊँचाइयों का अनुभव कराने में समर्थ हैं।

डॉ. गुप्त का कार्य क्षेत्र विद्यालय के कक्ष तक ही सीमित नहीं रहा है। कक्षा से बाहर तथा घर पर भी शैक्षिक वातावरण बना रहता है। बी.ए., एम.ए. से लेकर पीएच.डी. तथा पोस्ट पीएच.डी. के विद्यार्थी और शोध छात्र घर पर आते रहते थे। सरस्वती का प्रवाह सतत् चलता रहे, इसके लिए सतत् प्रयत्नशील रहते थे। स्वास्थ्य प्रायः ठीक नहीं रहता परन्तु ज्ञानयज्ञ की आहुतियों में कभी कमी नहीं आने देते। तभी इनके शिष्य ऐसा निस्वार्थ गुरु पाकर अपने को धन्य मानते हैं। अपने शिक्षण कर्म के प्रति समर्पित आचार्य को ही यह सौभाग्य प्राप्त होता है। आज के व्यावसायिक और अर्थप्रधान सामाजिक ढाँचे में अपने छात्रों के साथ किसी भी प्रकार का लम्पटतापूर्ण व्यवहार न रखना एक आचार्य के जीवन की स्पृहणीय उपलब्धि ही कही जा सकती है।

आज के युग में उच्चस्तरीय महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में अनेक ऐसे अध्यापक देखने को मिलेंगे जो विद्यार्थियों पर इतना परिश्रम नहीं करते जितना अपनी पदोन्नति या पुरस्कार बटोरने के लिए अशैक्षणिक प्रयत्न करने में और अनेक शैक्षणिक साधनों से ज्ञानार्जन करने की प्रक्रिया में निरन्तर लगे रहते हैं। आजकल ऐसे लोग ही शीघ्र पदोन्नति पाते हैं, और उच्च पदों पर पहुँचकर महान विद्वानों की श्रेणी में खड़े हो जाते हैं। ऐसे लोगों की दृष्टि में विद्यार्थियों का कोई महत्त्व नहीं है। उन पर परिश्रम करना समय का अपव्यय करना है। एक अन्य श्रेणी उन विद्वान प्रतिभा सम्पन्न शिक्षकों की है जो स्वार्थसाधना में कम और विद्यार्थियों के हित में तन, मन, धन से जुटे रहते हैं। निःस्वार्थ भाव से अध्यापन करना, सार्थक शोध करना तथा अपने शिष्यों को शोध के लिए प्रेरित करना तथा दिशानिर्देश करना ही अपना पुनीत कर्त्तव्य मानते हैं। पदोन्नति, पुरस्कार प्राप्ति, सांसारिक यश, धन उनके लिए नगण्य होता है। अपने शिष्यों में ज्ञान-वितरण करने को ही अपना श्रेष्ठ पुरस्कार मानते हैं। डॉ. गुप्त इसी श्रेणी के विद्वान हैं जो अपने शिष्य-शिष्याओं को विद्वान ही नहीं, उन्हें एक शिष्ट, सुसंस्कृत नागरिक भी बनाते हैं।

सोचता हूँ डॉ. गुप्त जैसे कितने ऐसे असाधारण शिक्षक होते हैं जो अपने

अन्तेवासियों के हृदयपटल पर स्थायी रूप से अपनी छाप अंकित कर जाते हैं। ऐसे शिक्षक विरल ही होते हैं जिनकी स्मृति समय के गर्द गुबार से धुंधली नहीं पड़ती। वे हर समय स्वच्छ ओस धुले फूलों के समान सुधियों के वृन्दावन में महकते रहते हैं।

डॉ. गुप्त! आपकी साधना और आराधना अपनी समर्पित ज्योति से माँ भारती की आरती बन सके, यही हार्दिक कामना है।



डॉ. रामजीत मिश्र
पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष, बरेली कालेज, बरेली
19-20, चाणक्यपुरी, नैनीताल रोड, इज्जतनगर, बरेली- 243122
दूरभाष : 2541564; चलयंत्र : 9897058378

क्रान्ति का आह्वान, युवक ! जागो !!
धरती के वीर पुत्र जागो !!
चतुर्दिक अंधकार, महामोह तम विकार
लूटमार, छीन-झपट, हिंसा सर्वस्व सार
भूख प्यास औ' अकाल, अनावृष्टि अनाचार
जरा जीर्ण वृद्ध बाल, नारी का चीत्कार
करता मार्मिक पुकार, जागो!
धरती के वीर पुत्र जागो !!
गायक उद्घोष आज करता है
कवि अपने गीतों में कहता है
कोकिल-सा मधुर कंठ गाता है
वासन्ती पवन गुनगुनाता है
करता मार्मिक पुकार, जागो!
धरती के वीर पुत्र जागो !!

19

मधुपर्क व्यक्तित्व के स्वामी आचार्य डॉ. गुप्त



'पर उपदेस कुसल बहुतेरे, जे आचरहि ते नर न घनेरे।' ऐसे ही विरल व्यक्तित्व के धनी हैं—आदरणीय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, जो न जाने कितनों के प्रेरणास्रोत, मार्गदर्शक व सम्बल प्रदाता हैं। सचमुच वे साहितिर्मनीषी ही नहीं कवि-कर्म (साहित्यकार के उद्देश्य) को जीने वाले सत्पुरुष हैं, महापुरुष हैं, अनन्य कर्मयोगी हैं, कठिन साहित्य-साधक हैं, प्रबल जिज्ञासु हैं, दीन-दुखियों-कमजोरों की सहायता के हिमायती हैं, अपने से छोटों से असीम, अगाध स्नेह (प्रेम) करने वाले हैं। बहुत पहले से एक दोहा चला आ रहा है कि "सबै सहायक सबल को निबल न कोउ सहाय, पवन जगावत आग को दीपहिं देत बुझाय।" पर प्रकृति के उस निष्ठुर नियम के विपरीत आदरणीय गुप्त जी को मैंने दीप (क), को जलाते हुए देखा है। अपने स्वार्थ के घरौंदों से दूर, बाहर की दुनिया में जिन गिने-चुने लोगों से मेरा आत्मीय-सम्बन्ध हैं उनमें आदरणीय गुप्त जी अत्यन्त सन्निकट है। वे मेरे प्रेरणा-स्रोत हैं, सम्बल पुरुष हैं और कुछ हद तक आदर्श भी। संघर्षों से कैसे जूझा जाता है, कठिन परिस्थितियों में भी हिम्मत न हारकर अपने समस्त वैयक्तिक सम्बन्धों, कर्त्तव्यों व सामाजिक दायित्वों का कुशलतापूर्वक निर्वहन करते हुए कैसे सृजनरत रहा जा सकता है, यह कला कोई उनसे सीखे।

डॉ. गुप्त से मेरा प्रथम साक्षात् उनके द्वारा प्रेषित आत्मीय पत्र के साथ हुआ। यद्यपि देखा-देखी (प्रत्यक्ष दर्शन) तो आज भी नहीं है पर पत्र और फोन द्वारा हम दोनों एक-दूसरे के इतने करीब आ चुके हैं कि अपरिचय की कोई बात ही नहीं रही और न ही एक-दूसरे के गुण-धर्म, स्वभाव को जानने की कोई अनभिज्ञता रही। पत्र द्वारा सम्पर्क और परिचय बढ़ने की घटना का एक

विचित्र संयोग है। वह संयोग यह है कि एक बार मैंने आवरणीय गुरुदेव डॉ. विवेकीराय जी की तरफ से उनको (डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त को) उनकी कृति 'ऋतुवसंती' (गीत-संग्रह) के सन्दर्भ में पत्र लिखा। उन्होंने उक्त पत्र मुझसे बोलकर लिखवाया था। स्वयं स्वास्थ्य-बाधा और आयु के दबाव के चलते वे पत्र लिखने में असमर्थ थे। हार्निया व हाइड्रोसील का आपरेशन करा कर हाल ही में अस्पताल से लौटे थे। टाँका कटने के बाद तमाम प्रकार की जटिलताएँ सामने आनी शुरू हुई। ऐसे में उनके अत्यन्त निकट होने के नाते मुझे उनके श्रीचरणों में बैठने और सेवा करने का बराबर अवसर मिलता रहता था। उसी समय गुप्त जी की उक्त काव्य-कृति उन्होंने पत्र लिखवाने के बाद मुझे पढ़ने और पढ़कर समीक्षा लिखने के लिए दी। कृति काफी अच्छी लगी। मैं बेहद प्रभावित हुआ और कृति के सन्दर्भ में 'बाबाजी' का संकेत पाकर एक छोटा-सा प्रतिक्रियात्मक पत्र लिखा। (आदरणीय डॉ. विवेकी राय जी को मैं 'बाबाजी' शब्द से ही सम्बोधित करता हूँ, जिसके पीछे दो प्रमुख वजहें हैं—एक तो मैं उनके इतना सन्निकट हूँ कि जो भी उनसे प्रेम-स्नेह पाता हूँ वह किसी बाबा-नाती से कम का प्रेम नहीं है, दूसरे वे मेरे गुरु डॉ. मान्धाता राय के गुरु हैं। इस प्रकार गुरु के गुरु होने के नाते भी वे मेरे दादा गुरु हुए। निकटतावश गुरु शब्द हट गया और सिर्फ दादा शब्द बचा जिनसे मैं सचमुच हमेशा 'दा-दा' के रूप में अर्थात् कुछ-न-कुछ पाने की प्रत्याशा में ही मिला। कालान्तर में 'दादा' शब्द ही 'बाबा' रूप में परिवर्तित होकर व्यवहृत होने लगा। विवेकी राय जी से जब भी मैं मिला उन्होंने कुछ-न-कुछ मुझे दिया ही, लिया कुछ नहीं। वैसे मेरे जैसा अकिंचन दे भी क्या सकता है? हाँ आदर-भाव की जो मेरे पास पूँजी रही, वह मैंने पूरी तरह उन पर उड़ेल दी और उन्हें अपना श्रद्धा-पात्र बना लिया। उनके विचारों से प्रभावित होते-होते आगे चलकर उनके बहुत करीब हो गया और उनकी तरफ से उनका सब-कुछ लिखने-पढ़ने का काम करने लगा। जिससे बाहरी दुनिया में मेरी पहचान बनने में कुछ मदद मिली। उसी क्रम में मैंने गुप्त जी को भी पत्र लिखा, जो हम दोनों के बीच सम्बन्ध बनने का आधार बना। वह प्रथम पत्र इस प्रकार है—

बड़ी बाग, लंका, गाजीपुर (उ.प्र.)—233001

दिनांक 18.04.07

प्रियवर,

आपकी सुकृति 'ऋतुवसन्ती' (गीत-संग्रह) मिली। पाकर एवं थोड़ा ही सही, उसके कुछ अंश पढ़कर बड़ा सुख मिला। इस कृति को समीक्षा के लिए मैंने अपने एक बेहद करीबी शिष्य, लेखक मित्र एवं सुधी साहित्यकार डॉ.

चन्द्रशेखर तिवारी को उपलब्ध करा दिया है, जो साहित्य-सर्जक होने के साथ-साथ कुशल समीक्षक भी हैं। फिलहाल स्वास्थ्य बाधा एवं आयु के दबाव के चलते मैं लिखन्त-पढ़न्त से दूर हो गया हूँ। मेरा सारा कार्य वही सम्पन्न करते हैं। यहाँ तक कि यह पत्र भी उन्हीं के द्वारा लिखा जा रहा है। फिलहाल इतना ही, सादर।

आपका

ह. डॉ. विवेकी राय

उपर्युक्त पत्र (पोस्टकार्ड) के पीछे मैंने अपनी तरफ से भी (डॉ. गुप्त जी को) पत्र लिख दिया, जिसमें मैंने पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर की विश्वविद्यालयीय परीक्षा के चलते कृति 'ऋतुवसंती' की समीक्षा तत्काल लिखकर भेजने में असमर्थता जतायी। पुत्र की 'न्यूरो' सम्बन्धित परेशानी व माताजी तथा पत्नी की बीमारी के सन्दर्भ में भी थोड़ा-सा उल्लेख किया। स्ववित्तपोषित महाविद्यालय में अल्प वेतन पर पढ़ाने और तमाम-तमाम संघर्षों- झंझावतों से जूझने की बात को यद्यपि उक्त पत्र में कहीं नहीं लिखा फिर भी सहृदय गुप्त जी ने मेरी भावनाओं-परेशानियों को ताड़ लिया और पत्र पहुँचते ही तत्काल एक आत्मीय पत्र दिया। उम्र का वार्धक्य, अशक्तता, लिखाई-पढ़ाई की व्यस्तता के बीच मुझ-जैसे अदना व्यक्ति से पत्र देने के साथ ही फोन पर सम्पर्क साधा। धीरे-धीरे स्थितियाँ खुलने लगीं। प्याज के छिलके की तरह मेरे जीवन-संघर्ष की एक-एक परतें हटनी शुरू हुईं। सहानुभूति, पुचकार, प्यार, दुलार व अभिभावकत्व की निर्मल छाँव में मन भावुक हुआ और अतीत की वे काफी बातें सामने आ गयीं जो नहीं आनी चाहिए थीं। वर्तमान का संघर्ष भी काफी हद तक खुल चुका था। फिर तो (डॉ. गुप्त का) करुणापूरित हृदय और स्नेहिल मन द्रवीभूत हो उठा। लम्बे-लम्बे आत्मीय पत्र आने शुरू हुए। फोन आने लगे। हर दूसरे-तीसरे दिन फोन करके मेरा हाल-चाल, पत्नी-बच्चों व माँ का हाल-चाल लिया जाने लगा। सांत्वना व सन्देश भरे पत्र ऊर्जा प्रदान करते रहे। उन पत्रों में से कुछेक को यहाँ उद्धृत करने का लोभ-संवरण नहीं कर पा रहा हूँ, जैसे—

(1)

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त (डी.लिट्.)
म.12, 'उत्थान', बी.डी.ए. कॉलोनी
त्रिवटीनाथ, बरेली (उ.प्र.)-243005

प्रिय डॉ. चन्द्रशेखर जी,

स्नेहाशीष।

आप आदरणीय डॉ. विवेकी राय जी के शिष्य हैं, और उनकी सेवा कर

अपने जीवन को सार्थक कर रहे हैं-साधुवाद। माता-पिता के प्रति सन्तान का दायित्व नैसर्गिक है, पर गुरुदेव की सेवा 'धर्म' है। अवश्य सुफल मिलेगा।

विवेकी राय जी को स्वस्थ होने में महीनों लग सकते हैं, कोई चिन्ता की बात नहीं। मुख्य लक्ष्य है—'स्वस्थ होना'; शल्य-क्रिया सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई, यही सन्तोष की बात है। कार्य करें, फल प्रभु पर छोड़ दें।

हाँ, आपके सुपुत्र आशुतोष कुमार तिवारी की 'न्यूरो' सम्बन्धित परेशानी को जानकर हार्दिक कष्ट पहुँचा। उसकी चिकित्सा के बारे में डॉक्टर ही सही उपाय बता सकता है। मैं केवल ईश्वर से प्रार्थना कर सकता हूँ कि वे शीघ्र स्वस्थ्य करें।

बीमारी या जो भी स्थिति हो, उसे विधि का विधान मानकर सन्तुष्ट रहें। हमारा 'कर्मवाद' सबका समाधान कर देता है, यानि 'प्रारब्ध' भोग रहे हैं।

ध्यान दें-डाक्टरों के अनुसार मैं 70% विकलांग हूँ। बीमारी या विकलांगता 15-16 वर्ष के बाद आयी। 7 वर्ष शय्याग्रस्त रहा; फिर भी जो पा लिया, वह यथेष्ट है। प्रभु की कृपा बनी रहे।

अन्यथा मत लेना। बड़ा हूँ- 66 वर्ष का।

सुरेशचन्द्र गुप्त

(आदरणीय गुप्त जी का यह पहला पत्र रहा जो हम दोनों के बीच सम्बन्ध-निर्माण करने में नींव की ईंट बना।)

(2)

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त डी.लिट.
म.12, 'उत्थान', बी.डी.ए. कॉलोनी
त्रिबटीनाथ, बरेली (उ.प्र.)- 243005
दिनांक- 24.5.2007

प्रिय डॉ. चन्द्रशेखर तिवारी जी,

सप्रेम नमस्कार!

सर्वप्रथम डॉ. विवेकी राय जी को मेरा नमस्कार निवेदन कर दें। ईश्वर से प्रार्थना है कि उन्हें शीघ्रातिशीघ्र स्वास्थ्य-लाभ प्रदान करे।

डॉ. विवेकी राय जी तथा आपके दोनों पत्र प्राप्त हुए। आपके सम्पादन में छपी 'डॉ. विवेकी राय : जीवनवृत्त और उपलब्धियाँ' संज्ञक पुस्तिका भी प्राप्त हुई। बहुत-बहुत धन्यवाद।.... प्रिय डॉ. तिवारी जी, आपके व्यक्तिगत-पारिवारिक जीवन की विसंगतियों के बारे में जानकर मन द्रवीभूत हो उठा। पर, क्या करूँ, निरुपाय हूँ। डॉ. मान्धाता राय के शिष्य होने पर भी इतना कम वेतन-आश्चर्य

है। दो हजार होता ही क्या है? प्रारब्ध में जो है, स्वीकार करना पड़ेगा। हमारा पुरुषार्थ इस बात में निहित है कि सभी परिस्थितियों को सुख-पूर्वक स्वीकार करें। रोने से क्या मिलना?

अपने गुरुदेव, माताजी और बेटे के प्रति दायित्व का निर्वाह करें- ईश्वर परीक्षा ले रहा है, वही सहायता भी करेगा। सोचें कि करोड़ों लोग ऐसे हैं, जिन्हें इतना भी उपलब्ध नहीं है। आप तो विद्यावारिधि हैं। करोड़ों को कलम छूने का भी सौभाग्य नहीं मिल पाता। भविष्य के गर्त में क्या है, कौन जाने।

आपको स्नेहाशीष और डॉ. विवेकी राय जी को सादर प्रणाम।

आपका शुभेच्छु
ह. डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

(3)

27.08.2007

प्रिय डॉ. तिवारी जी

नमस्कार!

आपका पत्र यथासमय प्राप्त हुआ था, पर समय से पत्र न दे सका। कारण यह कि मैं 25 मई को दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। शौचालय में फिसल गया, और घुटने से तीन इंच ऊपर जाँघ की हड्डी टूट गयी। दो सप्ताह अस्पताल में भर्ती रहा। अब कुछ ठीक हूँ, और 'वाकर' की सहायता से चल पा रहा हूँ।

वस्तुतः सब ईश्वराधीन है। हर स्थिति-परिस्थिति को सहन करना चाहिए, क्योंकि यही नियति है। हम विवश हैं। हम केवल इतना कर सकते हैं कि विषम परिस्थितियों को भी सहर्ष जिएँ।

आशा है, आपने अपनी परिस्थितियों को कुछ-कुछ अनुकूल बना लिया होगा। शायद, उसी कालेज में प्रवक्ता नियुक्त हो गये होंगे? पत्नी और पुत्र की स्थिति में सुधार हुआ होगा।

किसी भी परिस्थिति में हिम्मत न हारें।

आशा करता हूँ कि अब डॉ. विवेकी राय जी पूर्ण स्वस्थ हो गये होंगे। वे इस समय क्या लिख रहे हैं? ...पत्नी-पुत्र-परिवार का समाचार जानना चाहूँगा।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा में,
ह. सुरेशचन्द्र गुप्त

इन पत्रों से स्पष्ट है कि डॉ. गुप्त सुलझे, सहृदय, सुधी और भले इंसान हैं। वे नियतिवादी हैं, आस्थावादी हैं, फलादेश को प्रारब्ध का संकेत मानने वाले हैं पर साथ ही कर्म को भी प्रधानता देने वाले हैं। उनकी सोच, उनका दर्शन,

उनका सिद्धान्त सब कुछ नियतिवादी होने के साथ-साथ कर्मवादी है। गीता का निष्काम कर्मयोग उनके पत्रों की भाषा-शैली से पुष्ट होता दिखवाई देता है। श्रीकृष्ण के कथन-'कर्मणेवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन्', तुलसी की उक्ति- 'कर्म प्रधान विस्व करि राखा, को करि तर्क बढ़ावहि साखा' अथवा लोकोक्ति-'जैसी करनी वैसी भरनी और कहाँ से पाय, बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से खाय! आदि का सुन्दर परिपाक उनके पत्रों में हुआ है। साथ ही पत्रों को पढ़ने-लिखने के बाद यह आसानी से आभासित हो जाता है कि अपने से छोटे और दीन-हीन, उपेक्षित की बात को भी वे कितनी गम्भीरता से लेते हैं। बड़ा साहित्यकार होने के दम्भ से सर्वदा दूर, निरलस और निरपेक्ष भाव से वे पत्रों का जवाब किस आत्मीयता और मनोयोग से देते हैं, यह देखते ही बनता है। घायल होने, 'वाकर' से चलने की दशा और 'व्हील चेयर' की सहायता से अपनी दैनिक क्रियाओं को निस्पादित करने के दौरान भी वे आने वाले हर पत्रों को गम्भीरता से लेते हैं। उनका उचित जवाब देते हैं। ढांढस बँधाते हैं। धैर्य दिलाते हैं। फोन पर प्रेरक बातें कर, तमाम महान चरित्रों के जीवन-संघर्षों को बताकर उत्साहवर्धन करते हैं। अपनी स्निग्ध व मधुर आवाज में लोगों को ऊर्जा प्रदान करते हैं। दूसरी चीज उनकी एक और खुलकर सामने आती है, वह है उनकी सदाशयता। परोपकार और सहायता का स्वभाव और वह भी निष्काम, निःस्वार्थ अहेतुक भाव से। उनके इस स्वभाव का मैं यहाँ एक छोटा-सा उदाहरण देना चाहूँगा। हुआ यूँ कि पत्र में मेरी सहायता में उन्होंने भले ही अपनी असमर्थता जतायी हो, पर यथार्थ में, व्यवहार में इसके ठीक उलटा हुआ है। फोन पर उन्होंने कई बार मुझसे मेरा एकाउन्ट नम्बर माँगा। बार-बार पूछने पर भी उद्देश्य नहीं बताये। पूछने पर सिर्फ यही कहते कि-'कुछ नहीं, कोई खास बात नहीं, बस यूँ ही पूछ लिया, कोई प्रयोजन नहीं था पूछने का।' पर उनके पूछने के हाव-भाव और ढंग से मैंने अन्दाजा लगा लिया कि वे मेरे एकाउन्ट में कुछ पैसा भेजकर मेरी मदद करना चाहते हैं। दूर बैठे और बिना देखे व्यक्ति से सहायता लेने में मुझे काफी संकोच हो रहा था। वैसे भी संकोची होने के साथ-साथ स्वाभिमानी प्रवृत्ति होने की वजह से मैंने अपने बहुत नजदीकी लोगों से भी अपनी मदद के लिए कभी कुछ नहीं कहा। चाहे परेशान जितना रहा। लाख मुसीबतें आयीं, संकट आये। स्वजनों का विद्रोह तक हुआ, पर कभी किसी से मदद (आर्थिक) के लिए नहीं कहा। सो, उसी स्वभाववश मैंने डॉ. गुप्त से भी कह दिया-'नहीं कोई एकाउन्ट नहीं है।' पर उन्होंने तो जैसे मदद करने की ठान ली थी। मदद करना था, सो किया। उन्होंने अपने एक शोध-छात्र (अब डॉक्टर) कुंजबिहारी सिंह को बरेली से अपनी (अपने

द्वारा लिखित) सारी किताबों को 6-6 प्रतियों में देकर मेरे पास भेजा। वे किताबें थीं-'पंत की दार्शनिक चेतना', 'छायावदोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण', 'हंस जवाहिरः एक आलोचनात्मक अध्ययन', 'मन पाँखीं', 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'विश्व के महान् साहित्यकार', 'ऋतु वसन्ती' और 'गीत श्री'। साथ ही अपने प्रधान सम्पादन में निकलने वाली साहित्य व शोध की त्रैमासिकी 'साहित्यायन' के 'पावस-अंक' की भी कई प्रतियाँ भेजीं। इस आशय के साथ कि इन्हें पुस्तकालयों में रखवाकर अथवा अपने सुहृदों, शुभचिन्तकों और गुरुओं को देकर इसके बदले में प्राप्त धनराशि को मैं अपने और अपने परिवार के ऊपर खर्च कर लूँ और जहाँ तक हो सके अपने आर्थिक संकटों, संघर्षों से छुटकारा पा लूँ। मुझसे बिना कहे-बताये उन्होंने अपने विद्यार्थी को भेज दिया। सरजू पाण्डेय पार्क, कचहरी (गाजीपुर) के पास पहुँचकर कुंजबिहारी सिंह ने मुझे फोन किया कि 'मुझे गुरुदेव (डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त) ने बरेली से आपसे मिलने के लिए भेजा है, आप कहाँ हैं? अपना लोकेशन बताइए, मैं आ रहा हूँ। मैं भागा-भागा निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा। मोबाइल फोन द्वारा ही एक-दूसरे को पहचाना गया। धधाकर मैंने स्वागत किया। बातचीत करते हुए क्वाटर पर लाया। साथ में भारी-भरकम बैग देखकर मन ही मन सोचता रहा कि इसमें क्या हो सकता है, पर पूछने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। रास्ते में मदद स्वरूप एकाध बार बैग लेने का प्रयास किया तो उन्होंने सहज और निश्छल हँसी बिखेरते हुए यह कहकर टाल दिया कि 'अरे भइया! छोटे भाई के रहते बड़े भाई को काम करते भला शोभा देगा क्या?' उनके विनम्रतापूर्वक इंकार और सेवाभाव को मैं टाल न सका। चुपचाप साथ में चलता रहा। बातचीत का क्रम खुलकर क्वाटर पर आने के बाद चला। एक बार बात शुरू हुई तो फिर बात में से बात निकलती ही गयी। लगता था कि कहाँ से दो बिछुड़े हुए भाइयों का एक लम्बे समय के बाद मिलन हुआ है। वे मुझसे प्रभावित हो रहे थे और मैं उनसे। वे मुझमें आदरणीय डॉ. विवेकी राय जी को देख रहे थे और मैं उनमें डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी को। दोनों खूब जमकर अपने गुरुओं, आदर्शों की तारीफों के पुल बाँध रहे थे। कभी-कभार एक-दूसरे के गुरुओं की भी जमकर तारीफ हो रही थी। सद्गुणों की चर्चा हो रही थी। इसी बीच उन्होंने साथ में लाये हुए थैले (बैग) का मुँह खोला। चौकी पर किताबों का ढेर लगते ही मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। डॉ. गुप्त के महान् और विपुल साहित्यिक अवदान (प्रदेय) को देखकर हैरत में पड़ गया। कभी उनकी रचनाओं को देखता और रचनाओं को देख-देखकर मन-ही-मन उनकी ऊँचाई का अनुमान कर सहम जाता, कभी उनकी रचनाधर्मिता को देखकर अपने

बौनेपन का, अपनी लघुता का भान करता और कभी इन सबसे हटकर अपने प्रति किये उनके सद्व्यवहारों (फोनो, पत्रों) को याद कर उनकी सहजता-सरलता व विनम्रता का कायल होता। लगता, सचमुच डॉ. गुप्त ने साहित्य को लिखा नहीं अपितु जिया है।

यह जानकर तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा कि उन्होंने ये सभी किताबें मेरे लिए भेजी हैं। उनमें से चार आलोचना ग्रन्थ और तीन-तीन काव्य संग्रह थे। आलोचना ग्रन्थों में प्रथम दो तो और भी महत्त्वपूर्ण थे जो उनके द्वारा पीएच.डी. और डी.लिट्. की उपाधि पाने के लिए लिखे गये थे। जिनमें से एक को शोध के क्षेत्र में अत्युत्कृष्ट कार्य होने के लिए आत्रेय पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। सभी पुस्तकों में से एक-एक प्रति मेरे नाम से लिखकर उनके हस्ताक्षर के साथ मुझे भेंट की गयी थी। अपने जैसे अकिंचन के प्रति इस तरह की अहेतुक कृपा को देखकर हृदय गद्गद हो उठा, मन प्रफुल्लित हो गया। पुस्तकों को माथे से लगाया और अपनी व्यक्तिगत लाइब्रेरी (डॉ. विवेकी राय ग्रन्थालय) में ऊपरी रैक पर क्रम से व्यवस्थित कर लिया। कुछ देर बाद हम लोग (मैं और कुंजबिहारी जी) डॉ. विवेकीराय जी के यहाँ पहुँचे। उनसे मिलने के बाद लौटते समय कुछ देर के लिए कुंजबिहारी जी पुनः मेरे यहाँ आये। खा-पीकर विदा हुए। वे अपने साथ एक टेपरिकार्डर भी लाये थे, जिसमें डॉ. विवेकी राय जी के सन्दर्भ में मुझसे पूछ-पूछकर प्रश्नों का जवाब रिकार्ड कर रहे थे । वे बाबाजी पर ही पीएच.डी. कर रहे थे। अपने गुरुदेव के आदेश पर बाबा जी का निकटस्थ जानकर उनके व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी हुई बातों को उन्होंने मुझसे जाना-पूछा। मिलन की एक अतृप्त प्यास लिए हम दोनों एक-दूसरे से अलग हुए। कुंजबिहारी जी के बरेली पहुँचने पर टेप सुनने के बाद आदरणीय गुप्त जी ने फोन कर मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा की। ऐसा लग रहा था, वे कहाँ के छोटे अक्षर-पुरुष और मैं कहाँ का महामानव, महान् साहित्यकार। यह उनकी सहजता और सरलता ही थी कि उन्होंने मुझे इतना अधिक भाव दिया। वर्ना मैं कहाँ इस काबिल था कि डॉ. नगेन्द्र जैसे श्रेष्ठ साहित्यकार के साथ काम करने, सहसम्पादन करने और इतने विशाल व विपुल मात्रा में उच्च कोटि के साहित्य का सृजन करने वाले महान् साहित्यकार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर पाता। पर, कहा जाता है कि अच्छे लोगों को सब-कुछ अच्छा ही दीखता है, महान् लोगों को सभी लोग महान् ही दीखते हैं, तभी तो मेरे अन्दर वे भविष्य के गर्त में छिपा हुआ स्वस्थ साहित्य-सृजन का सुष्ठु बीज देख लेते हैं।

फोन पर उन्होंने मुझे बताया कि चन्द्रशेखर जी, वे सब किताबें जो मैंने

कुंजबिहारी से भेजी हैं, सब आपके लिए हैं। उन्हें चाहे जैसे आप प्रयोग करें, उपयोग करें। उसके साथ ही मैंने कुछ बिल साइन-मुहर के साथ और कुछ बिना साइन-मुहर के भी भेजा है, आप उन्हें बेचकर उससे प्राप्त धनराशि को ले लें और जैसे चाहें खर्च करें। पर यहाँ जिससे भी सम्पर्क साधा, किताबें देनी चाही, सबने फोकट (फ्री) में ही लेने का प्रयास किया। किसी तरह प्राचार्य डॉ. मान्धाता राय और अध्यक्ष-हिन्दी विभाग डॉ. हितेन्द्र कुमार मिश्र से कह-सुन कर, सिफारिश कर मैंने आलोचनात्मक ग्रन्थों की एक-एक प्रति उचित कमीशन काटकर स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर की लाइब्रेरी में रखवायीं। उससे प्राप्त धनराशि (लगभग एक हजार रुपये) को मैंने कई बार उन तक भिजवाने का प्रयास किया लेकिन हर बार उन्होंने फोन करके मना कर दिया। अन्य किताबों को देने के सम्बन्ध में मुझे यही बात समझ में आयी कि जब 'फ्री' में ही देना है तो क्यों न अपने जैसे जरूरतमंद, गरीब और कमजोर लोगों को दिया जाय? उन्हें देने से क्या फायदा, जो 40-50 हजार रु. हर माह वेतन पाते हैं और जो किताब खरीदने में सक्षम हैं? साथ ही ऐसे लोग किताबों को रैक पर सजाकर केवल शोभा की वस्तु बनाते हैं, उन्हें किताबों को पढ़ने के लिए फुर्सत, ही नहीं। सो, कुछ पुस्तकों को छोड़कर अधिकांश उचित पात्र की तलाश में आज भी मेरे रैक में रखी हैं। पैसा मिले या न मिले पर पढ़ने वाला तो मिले। पैसा कोई प्राथमिकता नहीं है। आज देखा जा रहा है कि नैतिकता और मूल्यों के क्षरण के इस युग में इस पेशे से जुड़े लोगों के पास उत्कृष्ट साहित्य को सौंपकर साहित्य का अनादर क्यों किया जाए? एक तो इनके यहाँ किताबों का महत्त्व नहीं, दूसरे ये पढ़ने लिखने वालों का उपहास भी उड़ाते हैं। यद्यपि मैं जानता हूँ कि किसी अच्छे बुकसेलर के यहाँ या किसी बड़े शहर में किसी दुकान पर रखवा दिया जाय तो इन बहुउपयोगी पुस्तकों के बिकने में रंचमात्र की भी देरी नहीं होगी, पर मुझे तो अपने जैसे जरूरतमंद की तलाश है।

डॉ. गुप्त की सहजता और सरलता का एक और उदाहरण बताऊँ हाल ही में मेरी अन्तिम शिक्षादायी संस्था 'स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर' की वार्षिक पत्रिका 'निवेदिता' का वर्ष-2008 का अंक प्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. राही मासूम रजा पर केन्द्रित करने की योजना बनी। इस सन्दर्भ में पत्रिका में आलेख पाने की गरज से मैंने फोन पर डॉ. गुप्त से सम्पर्क साधा तो उन्होंने सहज ही मेरे आग्रह को मान लिया और बहुत कम समय में, जितना समय मैंने फोन पर उनसे बताया था उससे भी कम समय में, उन्होंने राही जी के कृतित्व पर आधारित एक सुन्दर-सा आलेख लिखकर भेज दिया साथ में एक

पासपोर्ट साइज फोटो (मेरी इच्छा के अनुरूप) और एक आत्मीय पत्र भी भेजा। पत्र की शुरुआती भाषा इस प्रकार थी-'आदरणीय डॉक्टर चन्द्रशेखर तिवारी जी, मैंने आपके आदेशानुसार राही जी पर एक आलेख भेज दिया है। जल्दबाजी में लेख को टाइप कराने के बाद उसका प्रूफ तो सुधार दिया है पर उसको फिर से प्रिन्ट-आउट न कराकर मूल रूप से ही भेज रहा हूँ। कृपया उसे सही कर लें और लेख छपने के बाद पत्रिका का उक्त अंक भिजवाने की व्यवस्था करें....।'' एक अत्यधिक बड़े साहित्यकार द्वारा अपने प्रति 'आदरणीय' और 'आदेशानुसार' जैसे भारी-भरकम बोझ वाले शब्दों से डर-सहम कर दब गया। फोन पर उनसे फिर ऐसा न लिखने का आग्रह किया, तो उन्होंने कहा कि -डॉक्टर साहब! कोई लेखक न बड़ा होता है, न छोटा। ज्ञान-यज्ञ में आहुति देने वाला हर व्यक्ति बराबर होता है। कितनी निष्कलुषता है डॉक्टर गुप्त के इस वाक्य में इसे आसानी से समझा जा सकता है। दूसरे इस प्रसंग से यह भी सिद्ध होता है कि आजकल जहाँ अल्पज्ञात, छोटे से छोटा लेखक भी अपने को व्यस्त ही नहीं अति व्यस्त दिखाता है, सम्पादकों के आग्रह को बार-बार टालता है, लेख-रचनाएँ भेजने का आश्वासन दे-देकर भी नहीं भेजता है, वहीं डॉ. गुप्त जैसे सही में बड़े लेखक अपने से छोटे की भी भावना का सम्मान कर, उसके लिए लेख-रचनाएँ भेजकर अपनी सर्वसुलभता के साथ-साथ एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। डॉ. गुप्त की यह साहित्य-साधना निश्चित रूप से अनुकरणीय है।

किसी शायर (सम्भवतः इकबाल) ने कहा है—''हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है। बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा!'' सचमुच आज ऐसे ही दीदावर की आवश्यकता है, जो मधुपर्क व्यक्तित्व के स्वामी आचार्य (डॉ.) सुरेशचन्द्र गुप्त के साहित्यिक अवदान का ठीक-ठीक (सही-सही) मूल्यांकन कर सके। जरूरत है उनके चमत्कृत व्यक्तित्व व यशस्वी कृतित्व पर शोध करने-कराने की। तभी उनका सम्यक् रूप सामने आ सकता है। देखें, इस ओर लोगों का ध्यान कब तक जा पाता है।



डॉ. चन्द्रशेखर तिवारी
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी विभाग
अवधूत भगवान राम स्नातकोत्तर महाविद्यालय अनपरा, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश
मोबाइल नं. : 09415970695, 08005252236

20

सुयोग्य संपादक और संस्मरण लेखक



मैंने अपने पिता स्व. धर्मपाल गुप्त 'शलभ' को अपने अन्तिम समय तक *'साहित्यायन'* पत्रिका का अभिमत लिखते देखा। वह अन्तिम पृष्ठ आज भी मेरे पास सुरक्षित है। मैं वह अभिमत डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी को दे आयी और वह छपा भी था। यहीं से मेरा 'साहित्यायन' पत्रिका को पढ़ना आरम्भ हुआ और अब आदत बन गयी। पत्रिका हाथ में आते ही यही सोचती हूँ कि कहाँ से शुरू करूँ? 'स्मृति सिन्धु से' शुरू होती है पत्रिका मेरे लिए और फिर अन्त तक पढ़ती रहती हूँ।

इस पत्रिका में साहित्य की सभी विधाओं को पढ़ने का अवसर मिलता है। कविता, गजल, मुक्तक, दोहा और गद्य की कहानी बहुत रोचक, समीक्षा और शोध पत्र आदि आदि। एक बात अवश्य मन को परेशान करती है। अब तीन महीने बाद पढ़ने को मिलेगी शायद मन की खुराक पूरी नहीं होती।

गुप्तजी का 'स्मृति सिन्धु से' विशेष रुचिकर लगता है शब्दों की पतवार से स्मृति के सिन्धु में उतार देते हैं पाठक को, लहर उठती है फिर शान्त होती है। गुप्तजी ने अपने जीवन को मुट्ठी में कैद नहीं रखा बल्कि दोनों हाथ खोल दिये हैं और स्मृतियाँ सब बाहर आ गयीं। अत्यन्त रोचक, प्रेरणादायक और शिक्षाप्रद भी है। अपने मन की परतें खोलना या धूल साफ कर देना इतना आसान नहीं है मनुष्य के लिए परन्तु यह प्रयास गुप्तजी कुशलता से करते हैं। हृदय के कोने-कोने से यादों को बाहर निकालते हैं दिल कितना हल्का हो जाता होगा। सबसे साझा करके अपनी यादों की मन की गठरी खोल देना आवश्यक है जीवन को सहज और हल्का बनाने के लिए। हृदय पर भार लेकर संसार से अलविदा कहना कायरता है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का व्यक्तित्व अत्यंत प्रेरणाप्रद है। मैं आपसे कई बार मिल चुकी हूँ। उनकी प्रेरणा से मैंने कुछ कविताएँ लिखीं, जो 'साहित्यायन' में प्रकाशित हुईं। वास्तव में, डॉ. गुप्त जी और 'साहित्यायन' का प्रेरणादायी योगदान सराहनीय है।

इस पत्रिका के संरक्षक-संस्थापक एवं सम्पादक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी बधाई के पात्र हैं। उनकी हीरक जयन्ती के सुअवसर पर मैं उन्हें हार्दिक बधाई देती हूँ। मेरी शुभकामनाएं उनके साथ हैं।



शोभना अग्रवाल
40 एफ. सनसिटी विस्तार, बरेली
फोन नं. : 9319908039

जन-जन उर-
साम्य भाव प्रेरित हो
भेदभाव दुरित हो
सर्वोदय सुरभित हो
त्रिविध ताप शमित करें।
कण-कण पर-
झर झर अमृत झरे
जन जन अध्यात्म वरे
जन गण का शोक हरे
सर्व जन हिताय कर्म करें।

21

पत्रकारिता के सच्चे सपूत



पत्र लेखन एक सरल एवं सहज कार्य हो सकता है पर पत्रकारिता एक अति जटिल एवं चुनौतीपूर्ण कार्य है। पत्रकारिता के मूल में संदेश का आदान-प्रदान निहित है जिसका मौखिक सूत्रधार नारद मुनि को मानते हुए लिखित रूप में पत्र की गणना करते हैं जो क्रमशः विकास के विविध आयाम स्थापित करते हुए समाचार पत्र, लघु पत्रिकाएँ, ग्रंथों का रूप लेते हुए अब श्रव्य/ दृश्य पत्रकारिता का भी स्वरूप ले चुकी है। अपने प्रसार के साथ ही पत्रकारिता अपने आप में स्पर्द्धापूर्ण और चुनौतीपूर्ण होती गई। कई आरोप-प्रत्यारोप भी इसमें शामिल होते गए। इसका सबसे अधिक प्रभाव लघु पत्रिका के भविष्य पर पड़ा जो लघु पत्रिका के भविष्य को धूमिल करने लगा। पर अत्यन्त गर्व की बात है कि ऐसे प्रतिकूल वातावरण में भी आदरणीय गुप्त जी की देन 'साहित्यायन. आज भी पाठकों के दिल पर राज कर रही है। इसके पीछे गुप्त जी की जीवटता है जो किसी भी अभाव को बाधा न मानते हुए बड़ी से बड़ी चुनौती को लाँघ जाती है। गुप्त जी का व्यक्तित्व उनके कृतित्व पर स्पष्ट अभिलक्षित होता है। ईश्वर प्रदत्त देह में व्याधि का किसी अंग के बाधित हो जाने पर भी गुप्त जी के मन ने कभी हार नहीं मानी और आज तक जीवन के प्रत्येक कर्मक्षेत्र में निष्ठा के साथ डटे हुए हैं। साहित्य के इस अनन्य उपासक ने पत्रकारिता की सेवा कर के जो अप्रतिम स्थान प्राप्त किया है वह अतुलनीय है, अविस्मरणीय है, अनुकरणीय है। विगत वर्ष के अनुभव से यह स्पष्ट हुआ है कि प्रत्येक साहित्यकार समाज सुधारक होता है और साथ ही एक सफल पत्रकार भी होता है। गुप्त जी इसके अनुपम उदाहरण हैं। गुप्त जी के परिचय से यह साफ झलकता है कि आप अपने ज्ञान, अनुभव को अन्य के साथ बाँटने में एक असीम शान्ति का अनुभव

करते हैं, साथ ही आप किसी को अपनी सकारात्मक सलाह और सहयोग देने में भी कभी बिलम्ब नहीं करते। *'साहित्यायन'* इसका साक्ष्य है।

गुप्त जी के मन में पत्रकारिता के अंकुर उनकी किशोर अवस्था से ही प्रस्फुटित होने लगे थे जो आज विशाल वट के रूप में हमारे समक्ष शोभायमान हैं। आपने 'नागरी' और 'पांचाली' के संपादन में सहयोग के माध्यम से अपनी पत्रकारिता के प्रति निष्ठा और प्रतिभा का परिचय दे दिया था। जब आपकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित हो रही थीं तथा आकाशवाणी के विविध केन्द्रों से प्रसारित हो रही थीं तब आपने यह अनुभव किया कि कोई न कोई रचनात्मक प्रतिभा हर साहित्य अनुरागी में होती है पर उचित मंच न मिल पाने के कारण कितनी प्रतिभाएँ काल कवलित हो जाती हैं। अगर ऐसे नवोदित रचनाकारों को एक उपयुक्त फलक प्रदान किया जाए तो कितने ही सूरज चांद तारे साहित्याकाश में जगमगाने लगेंगे। माँ शारदा के इस संकेत के मिलते ही आपने इष्ट मित्रों के परामर्श और सहयोग के पश्चात् *'साहित्यायन'* का शुभारम्भ किया।

साहित्य, कला, संस्कृति और शोध की इस त्रैमासिक पत्रिका में हर उस स्वर को पहचान मिलने लगी जो अपनी प्रस्तुति के लिए व्यग्र थे। ये स्वर साहित्य की विविध विधाओं को आकार देने लगे—गीत, कविता, गजल, मुक्तक, दोहे, हाईकू, कहानी, लघुकथा, रिपोर्ताज, यात्रावृत्त, संस्मरण, निबन्ध, लेख, डायरी लेखन, उपन्यास के क्रमशः अंश आदि-आदि। शोध के क्षेत्र को अधिक स्तरीय बनाने के उद्देश्य से शोध पत्र लेखन और प्रकाशन शोधार्थियों के लिए आवश्यक कर दिया गया है। गुप्त जी *'साहित्यायन'* के माध्यम से शोध की इस प्रक्रिया को भी सहयोग प्रदान कर रहे हैं। उत्कृष्ट शोध प्रबन्धों की रूपरेखा प्रकाशित कर के आप शोध के क्षेत्र में पथ प्रदर्शन का कार्य भी कर रहे हैं। पुस्तक समीक्षा, नई पुस्तकों की सूचना, साहित्यिक गतिविधियाँ, साहित्यकारों के सम्मान, जन्म दिवस निर्वाण दिवस आदि की भी गहन चर्चा इसमें समाहित रहती है। *'साहित्यायन'* का कलेवर अवश्य लघु है पर इसका कार्य अपार एवं विराट है। पत्रिका अपने निश्चित समय पर अपने पाठकों के हाथों में पहुँच जाती है यही इसकी प्रतिबद्धता का उदाहरण है। इसके लिए निश्चित प्रयासों का ही परिणाम है कि पत्रिका को आई.एस.एस.एन. कोड भी प्राप्त हो गया है। इस पत्रिका में प्रकाशित होकर नए स्वर अगर साहित्य के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर बन चुके हैं तो कई यह पहचान पाने की कतार में हैं। पत्रिका में प्रकाशित प्रत्येक आलेख पठनीय और प्रशंसनीय होता है। इसका श्रेय इसके संरक्षक, संस्थापक और सम्पादक गुप्त जी को ही जाता है।

वर्तमान परिवेश में धन के बिना कोई भी काम असम्भव नजर आता है ऐसे में अपने संसाधनों से पत्रिका का प्रकाशन एक पुनीत कार्य है। इसके सभी पद अवैतनिक हैं। पत्रिका अपने शीर्ष पृष्ठ से अन्तिम पृष्ठ तक पठनीय है। अयन का अर्थ है नेत्र जो दृष्टि देता है सही और गलत को सही और गलत रूप में देखने की तो अन्तिम पृष्ठ राष्ट्रगीत के कारण पत्रिका को संजो कर रखने के लिए विवश कर देता है। किसी भी कार्य को पूर्ण करने के लिए समय रूपी दान की आवश्यकता सर्वाधिक होती है। गुप्त जी और उनके कर्मठ सहयोगी इस दान के सौजन्य से साहित्य/ समाज की सबसे बड़ी सेवा कर रहे हैं। हिन्दी विभाग से सेवा निवृत्ति की औपचारिकता के बाद भी आप पत्रकारिता से कदापि सेवानिवृत्त नहीं होंगे क्योंकि आप अपनी कृतियों के रूप में यह सेवा सदा करते रहेंगे।

पत्रकारिता से तात्पर्य किसी पत्र/पत्रिका से जुड़ना नहीं अपितु किसी भी कृति का प्रकाशन, सम्पादन, शोध प्रबन्धों का निर्देशन/ प्रकाशन आदि भी इसी के अन्तर्गत आता है। गुप्त जी का यह कार्य सदा सर्वदा विद्यमान रहेगा।

पत्रकारिता से अभिप्राय कुछ भी परोसना नहीं बल्कि सुपाच्य परोसना है। गुप्तजी इसको भलीभाँति जानते हैं। अतः 'साहित्यायन' में प्रकाशित प्रत्येक आलेख वाद-विवाद से परे विशुद्ध साहित्यिक रंग में रंगा होता है। पत्रकार समाज का प्रतिबिम्ब भी है और पथ प्रदर्शक भी है। वह किसी भी शब्द से सामाजिक परिवेश को विचलित नहीं करता अपितु मर्यादित रखता है, साहित्यायन अपने रस लक्ष्य में प्रतिबद्ध है।

परमात्मा से परम प्रार्थना है कि वह गुप्त जी की सेवाओं को दीर्घायु प्रदान करे। 'साहित्यायन' जैसी श्रेष्ठ पत्रिका को संजो कर रखना प्रत्येक पाठक का दायित्व है। मनुष्य में साहित्य अनुराग ही पत्रिका का भविष्य तय करता है। यह अनुराग सदा बना रहे। अन्यथा भविष्य के समाज की कल्पना आप और हम स्वयं कर सकते हैं।



डॉ. मीना कौल
अध्यक्ष/ वरिष्ठ प्रवक्ता हिन्दी विभाग
महाराजा हरिश्चन्द्र महाविद्यालय मुरादाबाद
फोन नं. : 9412243664

22

कविवर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का राजनीतिक चिन्तन



भावों की अभिव्यंजना चाहे यथार्थवादी हो, अथवा आदर्शवादी, वह विज्ञान की भाँति विनाशकारी नहीं होती है। यह अभिव्यंजना कवि, कलाकार की निजी धरोहर होती है। सार्वभौमिकता एवं सार्वकालिकता इसकी अद्वितीय विशेषताएँ हैं। समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाना अथवा पुनर्निर्माण इसका उद्देश्य होता है। वह समाज के यथार्थ को सामने लाने के साथ-साथ विकास में सहायक होती है। प्रायः कोई भी कवि अपने जीवन से प्राप्त अनुभवों और भाव प्रेरणा को ही अपने काव्य में स्थापित करता है। वह इससे भिन्न अनुभवों और भाव प्रेरणाओं को व्यक्त नहीं करता, क्योंकि इससे उसका काव्य संकुचित-सा दिखाई देने लगता है। एक कलाकार अथवा कवि को स्वयं के लिए आवारा पशु की तरह विचरण को खुला छोड़ देना चाहिए, क्योंकि उसका अनुभव जीवन जगत की तुलना में संकुचित ही होता है। मुक्तिबोध ने भी स्वीकार किया है—"सच्चा संवेदनशील लेखक-कलाकार, अपने को बाह्य प्रभावों को ग्रहण करने के लिए छुट्टा छोड़ देता है या उसे छोड़ देना चाहिए। कलाकार चाहे जितना महान क्यों न हो, जीवन जगत की तुलना में उसका अन्तर छोटा ही है, इसलिए वह जीवन-जगत के बिम्बों, प्रेरणाओं, दृश्यों, भावों, विचारधाराओं के सारतत्त्व को पीता रहता है या पीते रहना चाहिए।" कविवर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त सच्चे अर्थों में संवेदनशील एवं भावुक कवि हैं। आपने अपने जीवन-जगत के विभिन्न अनुभवों, भाव-विचारधाराओं को आत्मसात् और उनका मन्थन कर अपने काव्य का विषय बनाया है। डॉ. गुप्त को राजनीति में विशेष रुचि रही है, वे स्वीकारते हैं, "राजनीति में मेरी रुचि बचपन से रही है। पाँच-छह वर्ष का रहा होऊँगा, तभी से राजनीतिक आन्दोलनों, प्रभातफेरियों, जुलूसों आदि को देखता आ रहा हूँ।"

कवि-कर्म समाज का प्रतिबिम्ब होता है। कवि और समाज परस्पर पूरक हैं। राजनीतिक परिस्थितियाँ समाज को प्रभावित करती हैं, तो कवि भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता, क्योंकि कवि भी सामाजिक प्राणी है। कवि या कलाकार समाज का द्रष्टा-स्रष्टा होता है। समाज को नई दिशा देने का भार कवि या कलाकार पर होता है। उसके सृजन की सार्थकता तभी सिद्ध होती है, जब वह लोक-कल्याण की बात करे। कवि सामाजिक वातावरण की स्थिति को जिस प्रकार भी वर्णित करता है, समाज उसे ही सत्य समझता है। अतः लोक मानस पर कवि-कर्म का गहरा प्रभाव पड़ता है।

डॉ. गुप्त की रुचि राजनीति में बचपन से ही रहने के कारण राजनीतिपरक कविताओं का सृजन स्वाभाविक ही है। 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' एवं 'ऋतु वसन्ती' नामक काव्य संग्रहों में आपने अपने राजनीतिक विचारों को प्रस्तुत किया है। आपकी राजनीतिक कविताओं में राजनीतिक परिदृश्य, भ्रष्टाचार, आरक्षण, स्वार्थपरता, राष्ट्रीय भावना, खोखले आदर्श, शोषण एवं विविध विसंगतियों पर बेवाक् टिप्पणियाँ की गई हैं। ऐसी कविताएँ आपके व्यापक चिन्तन का प्रतिफलन है। इनमें कवि का मूल प्रतिपाद्य है वर्तमान राजनीतिक परिवेश का यथार्थ चित्रण। कवि ने वर्तमान राजनीति में व्याप्त विद्रूपता, भ्रष्टाचार, विसंगति, षडयन्त्र, शोषण, लोकतंत्र की बिडम्बना आदि समस्याओं को विशेष रूप से लेखनीबद्ध किया है।

कवि का अनुभव है कि वर्तमान राजनीति में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है। येन-केन-प्रकारेण सत्ता हथियाना महत्त्वपूर्ण हो गया है। कुर्सी की राजनीति लज्जाहीन राजनेताओं का लक्ष्य है—

नहीं लाज शर्म
नैतिकता या साड़ी की नहीं
कुर्सी की चिन्ता है।
धर्म नहीं
अर्थ महत्त्वपूर्ण है उसके लिए
लज्जा नहीं
सत्ता महत्वपूर्ण है द्रौपदी के लिए। **स्वर्ण जयंती वर्ष, पृ. 68**

वर्तमान राजनीति में राजनेताओं का चोला पहनकर अपराधी प्रवेश कर चुके हैं। ऐसे अपराधियों के समक्ष राजनीति लाचार नजर आती है। यदि उससे किसी दबाव में त्यागपत्र दिलवा दिया जाये, तो वह अपने सम्बन्धी को सत्ताधिकारी

बनाकर सत्ता की चाबी अपने ही हाथ में रखता है। फिर उसे यह काम जेल से ही क्यों न करना पड़े—

अगर फिर भी न बना काम
देना ही पड़ा त्यागपत्र
तो पत्नी या साले को बना दूँगा सी.एम.
झींगा झोल खाऊँगा
बंशी बजाऊँगा
जेल से ही
शासन चलाऊँगा।

स्वर्ण जयन्ती वर्ष, पृ. 16

राजनेता चाहे जैसी परिस्थितियों में रहें, उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सत्ता में बने रहने के लिए लोकतंत्र में कुछ भी किया जा सकता है। सत्तासीन रहने के लिए छोटे-छोटे दलों का अनैतिक सहयोग, मंत्रिमंडल में बदलाव आदि सब कुछ सम्भव है। यहाँ तक कि सत्ता हथियाने के लिए प्रधानमंत्री की भी बलि दे दी जाये, तो आश्चर्य की बात नहीं—

प्रधानमंत्री की बलि देकर
शासन बचा लिया जाता है,
नये प्रधानमंत्री पर सहमति हो जाती है
सहयोगी दल का समर्थन भी मिल जाता है।

स्वर्ण जयंती वर्ष, पृष्ठ 24

शासन की विभिन्न पद्धतियों में लोकतंत्र को सर्वाधिक कल्याणकारी पद्धति माना गया है। भारतीय लोकतंत्र की बिडम्बना है, राजनीति में अपराधियों का प्रवेश। राजनेता कितना ही बड़ा अपराधी क्यों न हो, एक बार राजनीति में प्रवेश करने के बाद वह सभी अपराधों से मुक्त हो जाता है। हर प्रकार से उसकी रक्षा की जाती है। यह सब देखकर कवि हृदय विदीर्ण हो जाता है। वह कहता है—

हमारे लोकतन्त्र में
दस्यु सुन्दरियाँ
और हत्यारे
सांसद बन जाते हैं
और बलात्कारी रक्षामंत्री बनकर
उनकी रक्षा करते हैं।

स्वर्ण जयन्ती वर्ष, पृ. 5

उपरोक्त पंक्तियों में कवि दस्यु सुन्दरी डाकू फूलनदेवी की ओर संकेत करता है, जो एक बार सांसद बन जाने पर सरकारी सुख सुविधाओं का लाभ लेते हुए सुरक्षा प्राप्त करती है। राजनेताओं को सत्ता से बहुत मोह होता है। सत्ता उनके जीवन का लक्ष्य होती है। सत्ता के आगे उनकी सारी नैतिकता धरी रह जाती है। सत्ता के लिए उन्हें जेल जाना पड़े या आरोप सहने पड़ें, लेकिन इस्तीफा नहीं देंगे—

लगाओ कितने ही आरोप
रचो तुम षडयन्त्र कितने भी
भले ही मिले कारा
इस्तीफा नहीं दरकार
चलेगी जेल से सरकार। **स्वर्ण जयन्ती वर्ष, पृ. 11**

भारतीय राजनीति में कुछ भी निश्चित नहीं होता, लेकिन कवि अनिश्चितताओं को छोड़कर एक निश्चितता स्थापित करता है, जिससे भारतीय राजनीतिक परिदृश्य की तस्वीर और साफ होती है। कवि भारतीय राजनीति में अनहोनी को सुनिश्चित मानता है—

राह रपटीली राजनीति की है
यहाँ नहीं कुछ भी है निश्चित
अगर कुछ भी सुनिश्चित, तो इतना
कि होती अनहोनी
होनी, होती नहीं। **स्वर्ण जयन्ती वर्ष, पृ. 73**

राजनीति की अनहोनी को स्वयं राजनेता भी नहीं रोक पाते और यह कब किसके साथ घटित हो जाये, यह कोई नहीं जानता। राजनीति के धुरंधर भी इसके चंगुल में फँसकर बेमौसम बादलों की तरह राजनीति से लुप्त हो जाते हैं और कुछ भी नहीं कहा जा सकता—

कुछ कहा जा सकता?
बड़े-बड़े खिलाड़ी
राजनीति के धुरंधर
दाँव-पेंच में चतुर
जोड़-तोड़ में सुदक्ष
वर्षों से बना रहे भूमिका

(सत्तासीन होने की)
हो जाते हैं धराशायी
और राजनीति के क्षितिज से
ऐसे गायब हो जाते हैं
जैसे बेमौसम मेघ। **स्वर्ण जयन्ती वर्ष**, पृ. 71

विश्व के महान लोकतांत्रिक देश भारत में आज का लोकतंत्र नेताओं की कठपुतली बनकर रह गया है। लोकतन्त्र की यह दूषित राजनीति कब किसे कोप का भाजन बना ले, यह कोई नहीं जानता। इसलिए कानून के रखवाले भी इससे डरे-सहमे रहते हैं।

राजनेता इतने भ्रष्ट हो चुके हैं कि वे अपने पूर्वजों के स्वप्न भी भूल गये। उनके पूर्वजों ने भारत में सत्ता के विकेन्द्रीकरण का स्वप्न देखा था। लेकिन इन नेताओं ने भ्रष्टाचार का विकेन्द्रीकरण कर दिया है। महात्मा गांधी ने भारत की राजधानी दिल्ली से दूरदराज के क्षेत्र, गाँव ओर पुरबों तक सत्ता के विकेन्द्रीकरण का स्वप्न देखा था। उनका यह स्वप्न, स्वप्न ही रह गया। इसके विपरीत भ्रष्टाचार का विकेन्द्रीकरण अवश्य हो गया। कवि ऐसे भ्रष्ट राजनेताओं का नाम लेने में भी नहीं डरता। वह आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है—

है व्यवस्था भ्रष्ट
पत्नी तन्त्र, नेता सेबकों की
अंतुलै और राव
वी.पी. और लालू, राय
अधिकारी, सभी तो भ्रष्ट
हो चुका है अब विकेन्द्रीकरण इसका। **स्वर्ण जयन्ती वर्ष**, पृ. 78

कविवर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त में अतुलनीय साहस है, वे बिना किसी भय के राजनेताओं का नाम लेकर उनकी भ्रष्टता, अत्याचार, स्वार्थपरता का कच्चा चिट्ठा खोलते हैं। उनकी रचनाओं में वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य का यथार्थ चित्र समुपलब्ध है। कवि वास्तव में कबीर जैसा साहस लेकर सड़क पर उतरता है, जो नेताओं का नामोल्लेख कर उनकी भ्रष्टता का चिट्ठा खोलता है। कवि ने अपनी कविताओं में वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को यथार्थ रूप से चित्रित कर अद्भुत साहस का परिचय दिया है।

राजनेता दिन-प्रतिदिन भ्रष्ट होते जा रहे हैं। घोटाले-दर-घोटाले किये जा रहे हैं। गांधीवाद का चोला ओढ़कर जनमानस का रक्त चूस रहे हैं, स्वार्थपूर्ति

के लिए गोली-बारी करने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। लोकतंत्र की ऐसी दुर्दशा कर रखी है इन राजनेताओं ने। कवि इस अन्याय को देखकर कैसे चुप रह सकता है—

शासक जन भारत के भ्रान्त हैं
शायद पर चींटी के उग आये हैं
* * * * *
हम भी कम नहीं, उठो ! जागो !
धरती के वीर पुत्र ! जागो ! **गीत श्री, पृ. 68**

कवि ने जहाँ धरती के पुत्रों को अधिकार दिलाने का आह्वान किया है, वहाँ ओजमयी भाषा को अपनाया है, तो राजनेता की पोल खोलते समय व्यंग्यात्मक शैली का सहारा लिया है। कवि ने बसपा की मुख्यमंत्री मायावती, जो ताज कॉरिडोर मामले में फँस चुकी थीं, की खूब खबर ली है। कवि मानता है कि मायावती दलितों का उद्धार करने के बजाय अपना उद्धार कर रही हैं। कवि ने कबीर के फक्कड़ाना अन्दाज में मायावती को ठगिनी तक कह दिया—

दलित हितों का नारा देकर
कूटनीति में चतुर, झूठ में दक्ष, न जाने क्या मन में ठानी।
ठगिनि, यह माया महारानी। **ऋतु वसंती, पृ. 106**

ऐसे राजनेताओं के संस्कार और विचार समान नहीं होते। वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मनुस्मृति को कोसने वाली नित्य अपने सेवकों से चरण-वन्दना करवाती है और जन्म दिन पर बहुमूल्य उपहार भी पाती है—

घोषित राजनीति शोषित की
मुसलमान, वंचितों, दलित की
मनुस्मृति को नित्य कोसती
पर भक्तों से चरण पुजाती
दीन हीन क्यों रहे, अरे! बहुजन की महारानी। **वही, पृ. 106**

राजनीति में आते ही कैसे यह गरीबी की सीढ़ियों से चढ़कर रातों-रात अमीर हो जाते हैं, कवि ने इस बात की बारीकी से पड़ताल की है। यह परिवर्तन होता है घोटालों से, षड्यन्त्रों से, कुचक्रों से।

राजनीति में प्रवेश करते ही मुख्यमंत्री का पद हासिल कर लिया। विरोधियों

को मुँहतोड़ जवाब दिया और सत्ता के बल पर करोड़ों रुपये कमाये, इसी कारण सर्वजन हिताय के मूल मंत्र से कोसों दूर हो गई—

अपने नाम की धूम मचा दी
विरोधियों को धूल चटा दी
करोड़ों जमा देश-परदेश
लगा बहुजन समाज को ठेस
चूस दल, दलितों को भरपूर, चाल चलती नित शैतानी।

वही पृ. 107

राजनीति साहित्यकार का उद्देश्य नहीं हो सकती, परन्तु फिर भी साहित्यकार इससे अछूता नहीं रह सकता, वह अपने समय की राजनीतिक हलचलों से येन-केन-प्रकारेण अवश्य ही प्रभावित हो जाता है। कवि की रचनाधर्मिता में राजनीतिक संलग्नता नहीं पाई जाती, फिर भी उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से समकालीन राजनीतिक परिदृश्य की विद्रूपता को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। किन्तु भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर कवि ने तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करते हुए राजनेताओं का नामोल्लेख कर कविता का क्षेत्र सीमित कर दिया है, जिससे कविता की सार्वभौमिकता एवं सार्वकालिकता जाती रही है। कवि यथार्थ भावों को प्रकट करने में इतना मुग्ध हो गया कि कहीं-कहीं पर भाषिक संरचना टूटती हुई, तो कहीं पर तुकबन्दी के शब्द दिखाई देते हैं, लेकिन इन सबके बावजूद कवि के राजनीतिक परिदृश्य के यथार्थ चित्रण में कमी नहीं आई है।



डॉ. मोहनलाल मौर्य
अध्यक्ष (हिन्दी विभाग) ने.मे.शि.ना.दा (पी.जी.) कालेज, बदायू
आवास—'उत्कर्ष', 44 प्रोफेसर कॉलोनी (पक्का ताल), बदायूँ
मोबाइल नं. : 9410429499

ऐसा कभी न सोचा होगा
हिन्दुस्तान हमारा शाश्वत
है कश्मीर स्वर्ग धरती का
मजहब है जोड़ता दिलों को,
देश विभाजन इससे होगा-
ऐसा कभी न सोचा होगा।

23

अंधेरे के विरुद्ध संघर्षरत : डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



सात काव्य-संग्रह, तीन शोध प्रबन्ध, तीन जीवनी संग्रह, दो अनूदित पुस्तकें, बाल उपन्यास, संस्मरण, शोध-पत्र संग्रह, यात्रा वृतान्त आदि विभिन्न विधाओं की साठ से अधिक कृतियों के प्रणेता डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के बारे में जितना कहूँ कम है! ऐसे विलक्षण प्रतिभा के धनी बिरले ही कलमकार हुए हैं जिनकी कलम जब चली, जहाँ चली अक्षर-अक्षर गुनगुनाता हुआ, हुमक उठा। डॉ. गुप्त का रचनाकर्म आस्था-विश्वास का अनुगामी है; इनकी रचनाएँ अंधेरे के विरुद्ध तनकर खड़े दीपक की संघर्ष गाथा का वाचन करती हैं ... भोर के आगमन पर मन को अरुणिम आभा से भर-भर देतीं ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

लगा उन्माद में पागल
पवन भी गुदगुनाने अब,
तिमिर आवृत गगन पर रे
उजाला छा गया है अब,
दिशा प्राची, उषा स्वर्णिम, किरण ले झाँक उट्ठी है,
प्रभाती के खुले स्वर में सुनाता कौन वीणा है?

ऋतु वसंती, पृ. 55

ये 'कौन' है.. हम जिसकी ऊर्जा से भरे-भरे हैं...ये प्रश्न नहीं है, ये संकेत हैं कि कोई है जिसकी सत्ता का डंका सारी कायनात में बजता है; इसलिए अदना- से मनुष्य को अधिक इतराने की जरूरत नहीं है।

इसी के साथ डॉ. गुप्त के यहाँ प्यार कोई खिलवाड़ नहीं है... पूजा है, आराधना है... प्यार वो हैं जो प्रत्येक प्राणी को ऊर्जा से भर देता है

प्यार,
एक ऊर्जा है
नहीं है प्रस्थान, या
समापन बिन्दु इसका!

लोकतांत्रिक भारत में, पृ. 10

* * * *

जब से मिला मीत
मिली ऊर्जा
गीत मुखर हुए
होठों से झरते हैं शब्द
प्रणय गीत!

वही, पृ. 11

जब जाना कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अमृत महोत्सव समिति, बरेली डॉ. गुप्त के अमृत महोत्सव के अवसर पर अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रही है, तो बहुत प्रसन्नता हुई। भाई वाह! ...जब कौवों की अभिनन्दनों की झड़ियाँ लगी हैं.... हंस का चुनाव... स्तुत्य निर्णय... सही और एक दम सही पात्र का चुनाव! ...इस अनुष्ठान के लिए पूरी समिति और सम्पादकीय मंडल बहुत बहुत बधाई का पात्र है! ... डॉ. सुरेशचन्द्र जी को तो अनंत बधाइयाँ, मंगलकामनाएँ हैं ही।



डॉ. अशोक 'अंजुम'
स्ट्रीट-2, चन्द्रविहार कॉलोनी (नगला डालचन्द), क्वारसी बाईपास,
अलीगढ़- 202002 (उ.प्र.) मोबा. 09258779744,
09358218907
Email : ashokanjumaligarh@gmail.com

24

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त : एक संस्मरण



अकालग्रस्त गुलाम भारत में, महामारी एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिवेश में कार्तिक शुक्ल पंचमी 17 नवम्बर, 1939 को आकाश से एक चमकते सितारे ने, शाहजहाँपुर के बहादुरगंज के गल्ला मार्केट में स्थित व्यवसायी पिताश्री श्रीयुत् लालताप्रसाद गुप्त एवं ममतामयी माता श्रीमती चमेलीदेवी के आँगन में शिशु के रूप में जन्म लिया, वही आज का चर्चित प्रज्ञापुरुष, बहुमुखी प्रतिभा का धनी, अतुलनीय जुझारू हिन्दी सेवी एवं सफल सम्पादक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बनकर, पुनः बरेली के साहित्य आकाश में अपनी चमक सितारे की भाँति बिखेरते हुए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। इस सितारे ने जिन नगीनों को अपने प्रकाश से आलोकित किया है, उनके प्रयास से उनके गुरू के 75 वर्ष पूर्ण होने पर (हीरक जयन्ती) अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन का प्रयास सराहनीय है और इस प्रयास में संस्मरण देकर सहभागी होने के लोभ का मैं सम्वरण नहीं कर सका। अस्तु,

मैंने सर्वप्रथम इन महान पुरुष के दर्शन रोटरी भवन में आयोजित शब्दांगन संस्था के अभिनन्दन समारोह में 4 जनवरी 2009 को किये थे। डॉ. लवलेश दत्त और श्री इन्द्रदेव त्रिवेदी को इस आयोजन में व्यस्त देखा था। इस अवसर पर डॉ. गुप्त सपरिवार उपस्थित थे और बरेली का साहित्य समाज सभागार में उमड़ा पड़ा था। अभिनन्दन के कार्यक्रम के पूर्व डॉ. गुप्त द्वारा लिखित चार पुस्तकें, क्रमशः, 'आत्ममंथन', 'अभिगीता', 'लोकतांत्रिक भारत में' और 'साहित्यायन'-(डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त विशेषांक) का विमोचन सम्पन्न हुआ था। मंच पर पासपोर्ट अधिकारी हंसराज भाटी, प्रो. रामप्रकाश गोयल, रमेश चन्द्र शर्मा 'विकट' तथा अन्य साहित्य प्रेमी व रचनाकार विराजमान थे, जिनका नाम

मैं भूल गया हूँ। संचालन करते हुए वरिष्ठ कवि एवं साहित्यकार श्री इन्द्रदेव त्रिवेदी ने द्वितीय चरण में अभिनन्दन समारोह बहुत भव्यता से सम्पन्न कराया। डॉ. गुप्त के परिचितों की भीड़ में मुझे भी उन्हें बधाई देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहाँ मैं कहना चाहूंगा कि मैं भी एक हिन्दी सेवी हूँ, अतएव डॉ. गुप्त के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाया। मैंने देखा, एक व्यक्ति, जो पैरों से चलने में असमर्थ है, वह साहित्य के विस्तृत आकाश में गर्व से सीना ताने विचरण कर रहा है और ऊँचाइयों को एक के बाद एक पराजित करता हुआ आगे तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। फलस्वरूप, उनकी पुस्तकों का प्रकाशन आज भी नियमित जारी है।

कुछ वर्षों बाद, पुनः डॉ. गुप्त द्वारा निरन्तर प्रकाशित साहित्यायन से जुड़ने का अवसर मिला। मेरे गीतों को छापकर उन्होंने मेरा मनोबल ऊँचा किया। इसी बीच, 28.02.2016 को मेरा काव्य-संग्रह "कितना मुखरित कर पाऊँगा" का विमोचन हुआ, जिसे देने मैं सुहृद डॉ. मुरारीलाल सारस्वत के साथ महादेव, त्रिवटीनाथ मन्दिर के सामने स्थित सारस्वत पुत्र डा. गुप्त से मिलने उनके आवास पहुँच गया। बड़े ही सौहार्दपूर्ण वातावरण में उन्होंने हम दोनों का स्वागत किया और बातचीत की। मैंने अपनी प्राण-प्रिय पुस्तक उनको भेंट की। उन्होंने उसका एक-एक पृष्ठ बहुत ध्यान से देखा, पढ़ा, फिर कहा, 'बहुत अच्छी पुस्तक है।' साथ ही साहित्यायन के अप्रैल-जून अंक के 'पुस्तक मंजूषा' के अन्तर्गत संक्षिप्त परिचय देने का आश्वासन भी दिया। बाद के अंक में पुस्तक की समीक्षा भी देने की बात कही। इसी बीच उन्होंने पुस्तक के विविध खण्डों को भी देखा और रवीन्द्र संगीत के हिन्दी अनुवाद को सुनाने का आग्रह किया। मैंने भी शीर्षक गीत और एक अनुवादित गीत सुनाने में देरी नहीं की। उन्होंने अपने 'प्रसाद' पुस्तक, जिसमें उन्होंने बंगला गीतों का हिन्दी लिप्यान्तर किया है, की चर्चा की। उन्होंने स्वीकार किया कि वे अब बंगला भाषा भूल चुके हैं, अतएव चर्चा यहीं रुक गई।

आज मेरे हाथ में साहित्यायन का अप्रैल-जून अंक उपलब्ध है, जिसके पृष्ठ संख्या 52 पर पुस्तक मंजूषा के अन्तर्गत मेरी पुस्तक 'कितना मुखरित कर पाऊँगा' पर उनकी संक्षिप्त किन्तु पर्याप्त टिप्पणी देखकर मन ही मन उनको प्रणाम किया, क्योंकि जो व्यक्ति, 'कथनी और करनी' में एक हो, वह निश्चय ही प्रणम्य है।

एक बात और 'ममानुज' शीर्षक संस्मरण से जिस प्रकार उन्होंने अपने अनुज नन्हें के साथ बचपन की मौजमस्ती, उठा-पटक का वर्णन किया है,

उससे मुझे मेरा बचपन भी याद आ गया। मेरा छोटा भाई सागर मुझसे तगड़ा और बलवान था। बात-बात में मुझसे भिड़ जाता था और हमारे बीच में उठापटक होती रहती थी, परन्तु शाम को हम दोनों ही एक साथ पठन कक्ष में पढ़ते और सोते थे। नई सुबह होती थी, फिर नई बिन्दु पर द्वन्द्व युद्ध होता था, हालांकि दर्शकों में मेरे अन्य छोटे पाँच भाई बहन होते थे, और कभी-कभी माताजी एवं दादी जी भी मजा लेने से नहीं चूकती थीं। परन्तु जब कभी भी गुत्थमगुत्थी के बीच पिताजी आ जाते थे, तब दोनों को बेंत की मार पड़ती थी। फिर कुछ दिनों तक यह कार्यक्रम रद्द हो जाता था।

खैर, डॉ. गुप्त जी की बेबाक बातें, जो भी उनके साहित्य में मैंने पढ़ी हैं, वह किसी न किसी रूप से सभी के जीवन की झलक ही हैं और यही सत्य है।

मैं उनके हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में अपनी हार्दिक शुभकामनायें देता हूँ और मेरे इष्ट देव भोले भंडारी बाबा शिवजी के चरणों में बैठे सारस्वत पुत्र डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी को शतायु करने के लिए प्रार्थना करता हूँ। साथ ही उनके निरन्तर मानवोपयोगी सर्जन की क्षमता में उत्तरोत्तर वृद्धि करने की भी प्रार्थना करता हूँ।

इति शुभम्



श्री चित्रभानु मित्र 'बादल'
भू.पू. सं. रसायनज्ञ एवं धात विशेषज्ञ तथा हिन्दी सम्पर्क अधिकारी, पूर्वोत्तर रेलवे
पता- 11, त्रिशूल इन्क्लेव, आई.वी.आर.आई. रोड इज्जतनगर, बरेली-243122
चलयंत्र : 07599263930

25

असाधारण प्रतिभा के धनी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त 1973 में बरेली कालेज के हिन्दी विभाग में नियुक्त हो गये थे फिर भी उनसे मेरा परिचय नहीं हो पाया। मैं हिन्दी की कवयित्री हूँ परन्तु मुख्य रूप से काव्य मंचों से ही जुड़ी रही। सेवानिवृत्ति के बाद डॉ. गुप्त ने साहित्यिक पत्रिका 'साहित्यायन' (त्रैमासिक) का प्रकाशन 2007 में आरम्भ किया। इस पत्रिका में मेरी रचनाओं को भी स्थान मिला। यह पत्रिका उच्च स्तरीय है इसमें प्रकाशित होने पर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता और गर्व हुआ। प्रसिद्ध पत्रकार और समीक्षक धर्मपाल गुप्त 'शलभ' भी इससे जुड़े थे और इसके प्रशंसक थे। मैं अत्यन्त वृद्ध होने के कारण कभी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त से नहीं मिल सकी। आखों से कम दिखाई देने और कानों से कम सुनाई देने के बावजूद मैंने लिखना नहीं छोड़ा। मेरे आत्मीय साहित्यकार डॉ. मुरारीलाल सारस्वत ने मेरी प्रकाशित पुस्तकें डॉ. गुप्त तक पहुँचा दीं जिन पर उनकी टिप्पणी 'साहित्यायन' में प्रकाशित होने लगी। वे मेरी रचनाओं के प्रशंसक हैं यह मेरे लिए गर्व की बात है। मैंने 2004 में 'श्री भगवान गीत गंगा' की रचना की जिसमें 50 गीतों में गीता का भावानुवाद किया गया है। यह गीता का विधिवत काव्यानुवाद नहीं है फिर भी इसको आशा से अधिक पसन्द किया गया। श्री शलभ जी ने—

द्रव्य-यज्ञ से भी बढ़कर है, ज्ञान यज्ञ स्वीकार।
इसमें लय सम्पूर्ण कर्म के सर्वोत्तम सुविचार।

तथा श्री महेशचन्द्र शर्मा ने—

पनघट का अपना महत्त्व है सरिता की भी सत्ता।
अमृत घट की एक बूँद भी रखती अलग महत्ता।।

जैसे उदाहरण देकर मेरे कृतित्व का समर्थन किया है वहीं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने भी इसकी सराहना की है। परन्तु जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने 1964 में ही सम्पूर्ण गीता का पद्यानुवाद कर दिया था जब वे संधिवात जैसी भयंकर बीमारी के कारण स्थाई रूप से विकलांग हो चुके थे। इस काव्यानुवाद के लिए गीता का गहन अध्ययन उन्होंने 16 वर्ष की अवस्था से ही आरम्भ कर दिया था। इससे उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवन जीने का साहस तथा असीम ऊर्जा मिली और 70 प्रतिशत विकलांग होकर भी सच्ची लगन और परिश्रम के बूते डी.लिट्. तक की उच्च शिक्षा प्राप्त कर बरेली कालेज जैसे ख्यातिप्राप्त कालेज में प्रोफेसर का पद पाया।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का श्रीमद्भगवद्गीता का यह पद्यानुवाद 'अभिगीता' शीर्षक कृति के रूप में प्रकाशित हुआ है। काव्यानुवाद इतना श्रेष्ठ है कि विश्वास नहीं होता कि यह 24 वर्षीय विकलांग छात्र ने किया है। मुझे यह कहने में किंचित भी संकोच नहीं है कि डॉ. गुप्त का यह अनुवाद मेरे भावानुवाद से भी बढ़कर है क्योंकि यह हर श्लोक का क्रमबद्ध अनुवाद है जिससे गीता की मौलिकता बनी रही है और श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद को ज्यों की त्यों सरल भाषा में समझने मे पाठकों को आसानी होती है यथा—

अर्जुन उवाच—

कथं विद्या भहं योगिस्तां सदा परिचिन्तयन्।
केषु-केषु चमावेसु चिन्त्योऽसि भगवत्मया।।

हे योगेश्वर! किस भाअति सतत चिन्तन कर मैं तुझको जानूँ।
वे कौन-कौन से भाव प्रभो! मननीय जिन्हें मैं अब मानूँ।

श्रीकृष्ण उवाच—

भूय एवं महाबाहो श्रणु में परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयभाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।

हे महाबाहु! सुन वचन श्रेष्ठ जो अब मैं तुझे सुनाता हूँ।
तू अतिशय प्रिय श्रद्धालु अतः हितकारी बात बताता हूँ।

यो मामभजनादि च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्चते।

जो अव्यय अनादि लोकेश्वर, तत्व ज्ञान मम जाता है।
पुरुष श्रेष्ठ वह ज्ञानी अनुपम, पाप-मुक्त हो जाता है।

इन कुछ उदाहरणों से ही ज्ञात हो जाता है कि गीता का यह अनुवाद कितना सरल सरस तथा सशक्त है। मुझे ज्ञात हुआ है कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने हिन्दी गद्य साहित्य तथा पद्य साहित्य का बहुत बड़ी मात्रा में सृजन किया है तथा अब भी हिन्दी साहित्य के भण्डार में श्रीवृद्धि करने हेतु वे अनवरत रूप से प्रयासरत हैं। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं तो उनकी 'अभिगीता' कृति के कारण ही उनकी असाधारण प्रतिभा के आगे नतमस्तक हूँ।

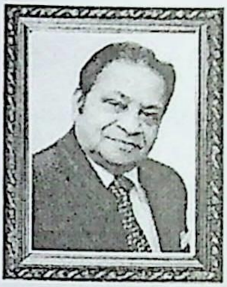
डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की हीरक जयनती के सुअवसर पर उन्हें मेरी हार्दिक शुभकामनायें।



श्रीमती ज्ञानवती सक्सेना
साहित्य भूषण श्रीमती ज्ञानवती सक्सेना
ए-1177 राजेन्द्रनगर, बरेली- 243122
चल यंत्र : 9171574098

26

गुरु द्रोण जो अंगूठा नहीं लेते



तत्कालीन परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं कि इण्टरमीडिएट के बाद मुझे लगने लगा था कि अब मेरे विद्यार्थी जीवन का समापन हो रहा है, शैक्षिक करियर का भी। सब कुछ जैसे मेरे खिलाफ था। विज्ञान का विद्यार्थी होने के बावजूद रेगुलर एडमिशन की कोई सूरत न थी। ऐसे में कला विषयों से प्राइवेट स्नातक करने का निर्णय लिया गया कि कुछ नहीं तो कम से कम लोगों को बताने को यह तो रहेगा कि बी.ए. पास हैं। इन्हीं हालात के मद्देनजर कला विषयों के साथ प्राइवेट स्नातक होने की राह पकड ली।

गाँव में खेती किसानी और घर के अन्य कामों के बीच जो भी समय शेष रहता वह पढ़ाई के खाते में जाता लेकिन समस्या यह थी कि किसी विषय में कोई कठिनाई आए तो उसका निराकरण कैसे हो। इसी समस्या ने संस्थागत और प्राइवेट शिक्षा के अन्तर को भी अनुभव कराया। पिताजी से बात की तो उन्होंने यथासम्भव मदद की और विषयों से सम्बन्धित गाइड बुक ला दीं। इन गाइड बुक से कुछ बात बनी। खासतौर पर हिन्दी की गाइड बुक से विषय में विशेष रुचि आना प्रारम्भ हुई और स्नातक फाइनल वर्ष में हिन्दी में सर्वोच्च अंकों की बदौलत पहली बार प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का सुख-स्वाद भी प्राप्त हुआ। नतीजन आगे हिन्दी विषय में मास्टर डिग्री पाने की हिम्मत मिली और मन बन गया। निश्चित रूप से इस निर्णय के पीछे हरवक्त एक प्रेरक, मार्गदर्शक और गुरु की भाँति मदद कर रहे पिताजी और वह गाइड बुक थी जिसके लेखक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी थे और जिनकी वजह से मैंने एम.ए. में न केवल हिन्दू कालेज मुरादाबाद को टॉप किया बल्कि विश्वविद्यालय की वरिष्ठता सूची में भी स्थान प्राप्त किया।

संयोग ही था कि बरेली में नौकरी मिली और नौकरी के शुरुआती दिनों में ही मित्र इन्द्रदेव त्रिवेदी के माध्यम से डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी के आवास पर उनके दर्शन

और आशीर्वाद प्राप्त करने का सुअवसर मिला। उस समय तक मेरी धारणा या कहें कि पूर्वाग्रह था कि इतना लिखने पढ़ने वाले विद्वान व्यक्ति मुझे क्या तवज्जो देंगे लेकिन डॉ. साहब से मिलकर कुछ ही मिनटों में यह पूर्वाग्रह ध्वस्त हो गया और मैं उनकी आत्मीयता, बहुमुखी व संवेदनशील व्यक्तित्व, सरलता और विद्वता का कायल हो गया। मेरे लिए यह अविस्मरणीय क्षण इसलिए भी थे कि विद्यार्थी जीवन में जिसने प्रत्यक्ष रूप से मेरे सामने न होते हुए भी कदम-कदम पर मेरा मार्गदर्शन किया और मेरी सफलता का मार्ग प्रशस्त किया वह वरेण्य व्यक्तित्व आज मेरे सम्मुख था। मैंने डॉ. गुप्त को आपबीती सुनाई तो उन्होंने बड़े ही सहज भाव से मेरी सफलता को मेरे परिश्रम का ही प्रतिफल बताते हुए आशीर्वाद दिया। विदा होते समय उनकी सादगी, विनम्रता और निश्छलता ने हृदय को गहराई तक छू लिया।

उस पहली मुलाकात के बाद तमाम साहित्यिक आयोजनों व अन्य सुयोगों से गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त करने का सुख-सौभाग्य मिलता रहा है साथ ही हर मुलाकात में जीवन को बेहतर से बेहतरीन बनाने का मंत्र भी।

बरेली नामचीन रचनाकारों का शहर है। देश विदेश में सराहे जा रहे साहित्यकारों की भी कमी नहीं है यहाँ। पर उनमें से ज्यादातर नाम ऐसे हैं जिन्होंने साहित्य को केवल निजी स्वार्थ पूर्ति का ही जरिया बनाकर रखा और शहर में साहित्यिक व सामाजिक माहौल की स्थापना में कुछ भी योगदान नहीं दिया। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ऐसे सहृदय रचनाकार हैं जिन्होंने विभिन्न आयोजनों, प्रकाशनों व अन्य साहित्यिक गतिविधियों के द्वारा शहर में एक सभ्य और शालीन साहित्यिक वातावरण का सृजन किया है। यही वजह है कि वर्तमान में शहर के तमाम प्रतिष्ठित साहित्यकार उनका आशीर्वाद प्राप्त कर शहर को साहित्यिक संस्कार दे रहे हैं।

निस्संदेह डा. सुरेशचन्द्र गुप्त शिक्षा, कला, साहित्य और संस्कृति की ऐसी अनमोल धरोहर है जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मेरे जैसे लाखों लोगों को प्रेरक मार्गदर्शन से प्रभावित किया है। वे ऐसे गुरु द्रोण हैं जो शिष्य से दक्षिणा में अंगूठा नहीं लेते वरन् अपना सब कुछ शिष्यों के अनुराग में समर्पित करने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं।

मेरा सौभाग्य कि मुझे डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के आशीर्वाद की छाया प्राप्त है। प्रभु से प्रार्थना है कि यह घना दरख्त अनन्त काल तक हरा भरा रहे।



डा. अवनीश यादव
उप प्राचार्य (राजपत्रित) राजकीय इण्टर कालेज, बरेली
फोन नं. : 9412289830

27

"यात्रा के बहाने"



प्राचीन काल से ही मनुष्य वैयक्तिक और पारिवारिक समस्याओं से समय निकाल कर पर्यटन स्थलों, नाते रिश्तेदारों, धार्मिक स्थानों आदि पर जाकर मन की शान्ति का अनुभव करता था और कुछ समय वहाँ बिताकर पुनः अपने मूल निवास पर आकर दैनिक कार्य-कलापों में लीन हो जाता था। परन्तु आज के भौतिक युग में मनुष्य मन की शान्ति के लिए इन स्थानों पर कम जाकर ऐतिहासिक इमारतें, हिल स्टेशन,, पशु-पक्षी विहार, अभ्यारण्यों आदि के निकट जाकर प्रकृति की गोद में आनन्द लेता है। इससे आगे विश्व के प्रसिद्ध नगरों आदि में जाकर वहाँ के समाज, संस्कृति का निकट से अवलोकन कर आनन्द विभोर होता है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का यात्रावृत्त ''जैसे उड़ि जहाज को पंछी'' मानवीय समाज और संस्कृति के अनेक आयाम प्रस्तुत करने वाला यात्रावृत्त है, जिसमें लेखक ने अपने बचपन से लेकर अपने जीवन में की गइ गई यात्राओं का बड़ा सजीव एवं सटीक वर्णन किया है।

रचना के प्रारम्भ में लेखक ने अपने पिता के साथ 'नीमसार' जाने का सजीव वर्णन किया है, तथा 'नीमसार सरोवर' का चित्रण भी प्रस्तुत किया है। जैसे नहाते समय पैरों के नीचे कंकण चुभने का वर्णन उनके यात्रावृत्त की सजीवता को प्रस्तुत करता है। लेखक की माता द्वारा 'सडीला के लड्डू' क्रय करना तथा हाँडी का मुँह लाल पन्नी से बन्द होना तथा हाँडी के गले में डोरी बंधी होना जैसे वर्णन कथा जैसी सजीवता को प्रकट करते हैं। बाद में 'नीमसार' की यात्रा पर पुनः गये लेखक ने बदलते परिवेश का सरस चिंत्रण किया है। शिक्षा अर्जन के मध्य तथा पश्चात् नौकरी ढूँढने के दौरान विभिन्न शहरों में भटकने पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। लेखक की यात्राओं का वास्तविक शुभारम्भ बरेली कालेज

बरेली में नौकरी के पश्चात् 1975 से मथुरा तथा वृन्दावन के मन्दिरों एवं आगरा की यात्रा से प्रारम्भ होता है। इसके बाद नौकरी के दौरान लेखक ने मूल्यांकन हेतु झाँसी तथा मेरठ, कानपुर जाकर वहाँ ऐतिहासिक एवं दर्शनीय स्थानों का अवलोकन करने का अवसर कभी नहीं गँवाया। ''जैसे उड़ि जहाज को पंछी'' यात्रावृत्त में उल्लेख के अनुसार लेखक ने सर्वाधिक पर्यटन लखनऊ, दिल्ली तथा नैनीताल का किया है। प्रस्तुत यात्रावृत्त में लेखक ने चार यात्राओं का विस्तृत वर्णन किया है। ये यात्राएँ उन्होंने सपरिवार सम्पन्न की हैं। सर्वप्रथम विमान यात्रा, महिषासुर के राज्य 'मैसूर' की यात्रा, दक्षिण भारत के स्विट्जरलैण्ड वीर भूमि कुर्ग की यात्रा एवं बंगलौर : उद्यानों का नगर बना सिलीकान वैली आदि की यात्राओं का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है।

'यात्रा' मानव जवीन की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। सृष्टि के जन्म से आज तक मनुष्य ने निरन्तर अनेकानेक यात्राएँ की हैं। कुछ लोगों को यात्रा करना बहुत कष्टप्रद प्रतीत होता है और कुछ व्यक्ति यात्रा का बहाना खोजा करते हैं। कुछ व्यक्ति यात्रा को धर्म मानकर उद्देश्य बना लेते हैं। उनकी इस प्रवृत्ति को साहित्य की भाषा में 'यायावरी प्रवृत्ति' कहा जाता है। यात्राकाल में यायावर को साहस, संघर्षशीलता, प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बना लेने की क्षमता, आकस्मिक विपदाओं में धैर्य धारण करना आदि गुणों की आवश्यकता होती है। प्रकृति का मनोरम सौन्दर्य और मार्ग के प्राकृतिक दृश्यों की झाँकी सामान्य जन का ध्यान भले ही आकर्षित न करती हो किन्तु साहित्यिक 'यायावर' को वह विस्मित कर विमुग्ध बना देती है। उसकी इसी तन्मयता के कारण लेखक स्वयं की हुई किसी विशेष स्थान या विश्व के किसी भाग की यात्रा का अतीव सरस और भावपूर्ण चित्रण करता है जिसके कारण पाठक मानसिक रूप से उस प्रदेश की यात्रा का आनन्दमग्न होकर अनुभव करता है। इस प्रकार यात्रावृत्त के लेखक का यह लक्ष्य होता है कि वह अपनी निजी अनुभूतियों और ज्ञान को पाठकों तक पहुँचा दें। इसकी सफलता लेखक के सूक्ष्म निरीक्षण, वर्णन शैली के सौष्ठव व सौन्दर्य पर आश्रित है, जिसमें डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने यह अनूठा कमाल अपने यात्रावृत्त ''जैसे उड़ि जहाज को पंछी'' में कर दिखाया है। लेखक ने अपनी 'विमान यात्रा' में मनुष्य के गगन में स्वछन्द विचरण की इच्छा तथा परिन्दों की तरह उड़ने की अभिलाषा रखना दर्शाया है, किन्तु लेखक ने विमान में उड़ने का प्रथम प्रयास को इस दृष्टि से असफल रहने का मार्मिक चित्र प्रस्तुत कर अपना दुर्भाग्य बताया है।

लेखक के अनुसार उन्हें विमान-यात्रा का सौभाग्य बंगलौर यात्रा के

रूप में बेटे 'अभिनव' के द्वारा प्राप्त हुआ। इस यात्रा में 'लेखक' एवं उनकी पत्नी 'इन्दु जी' पुत्र 'अभिनव' पुत्रवधू 'नेहा' व पौत्री 'शुभांगी' ने उनके साथ यात्रा प्रारम्भ की। सभी दर्शनीय ऐतिहासिक, धार्मिक, एवं प्राकृतिक स्थानों का भ्रमण किया। यात्रा के मध्य पड़ने वाले भवनों, मैदानों, उद्यानों एवं तालाब आदि का भी बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का यह यात्रा-वृतान्त पढ़कर पाठक पूरी तरह खो जाता है, और उसके सामने पूरे वृतान्त की एक फिल्म चलती रहती है, पाठक यह अनुभव करता है कि सम्पूर्ण यात्रा में वह लेखक के साथ ही रहा है।

'मैसूर' की यात्रा से पूर्व लेखक ने वहाँ के भौगोलिक परिवेश तथा उसके इतिहास का विस्तार से वर्णन किया है, तथा उसके शासकों का समयबद्ध शासनकाल दर्शाया है जिससे लेखक के वहाँ के इतिहास के विषय में गहन अध्ययन का पता चलता है। 'मैसूर' भ्रमण के मध्य लेखक ने वहाँ के दर्शनीय स्थलों, नगर का सौन्दर्य, महलों, उद्यानों, मन्दिरों, झीलों, रेसकोर्स का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। 'श्री रंगपट्टम' के रंगनाथ का मन्दिर वृन्दावन गार्डेन, होटल कामत, होटल आदिमनोर, सन्तफिलेमिना गिरजाघर, नागर होटल, राष्ट्रीय पार्क, चामुण्डेश्वरी मन्दिर, महिषासुर की प्रतिमा तथा विशाल नन्दी प्रतिमा का भ्रमण के दौरान वहाँ की भौगोलिक सुन्दरता व प्राकृतिक छटाओं के बीच स्थित होने का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। पाठक वहाँ की नैसर्गिक सुन्दरता एवं छटा में खोने पर विवश हो जाता है। 'वीर भूमि कुर्ग' की यात्रा को लेखक ने दक्षिण भारत का स्विटजरलैण्ड की यात्रा जैसा बताया है। 'कुर्ग' कर्नाटक प्रदेश के पश्चिम में एक पर्वतीय जिला है जिसका वास्तविक नाम 'कोडागु' बताया है। 'कोडागु' को दक्षिण भारत का कश्मीर भी कहा जाता है। लेखक ने अपने लेख में इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति तथा ऐतिहासिक तथ्यों को भी उजागर किया है। ऊँचे पर्वत, सघन वनों तथा हरियाली के साथ-साथ उत्पन्न होने वाली फ्सलों तथा फूलों का भी वर्णन कर सटीक चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'कुर्ग भ्रमण' के दौरान *'पल्जोर धार्जेलिंगमठः* तिब्बती मानेस्टरी निसर्ग धाम, बाँस वन में पिकनिक स्पॉट, होनम्मा झील तथा 'पाण्डव गुफा' का विस्तार से वर्णन किया है। उक्त स्थानों के साथ लेखक ने अपने तथा अपने परिवार के चित्र भी छपे हैं। जिसे देखकर हम उनके बिन्दास भ्रमण का अनुमान लगा सकते हैं।

चित्रात्मकता इस विधा के लिए सबसे अधिक अपेक्षित तत्त्व है। यात्रा साहित्य अन्य साहित्य की अपेक्षा अधिक रोचक होता है। रोचकता के उद्देश्य से कुछ यात्रावृत्त कल्पना के सहारे भी लिखे जाते हैं। इन्हें 'ट्रैवलर्स टेल' अथवा

भ्रमण कहानी भी कहते हैं। आधुनिक समय में यात्रा के विषय और वर्णन-शैली इतनी व्यापक हो गई है कि उसमें कल्पना का स्थान ही नहीं रहता। साधारणतया स्थानीयता, तथ्यपूरकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता और रोचकता आदि यात्रा साहित्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है। इन सम्पूर्ण तथ्यों तथा विशेषताओं का निर्वाह हमें 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' नामक यात्रावृत्त को पढ़ने पर सम्पूर्ण होते हुए देखने को मिलता है।

'कोटागु' का मुख्यालय मदिकेरी है, जहाँ लेखक ने राजासीट, फनपार्क, ट्वायट्रेन, गांधी मण्डप, दुर्ग महल के अलावा ऊँमकारेश्वर मन्दिर, नालकन्द राजमहल 'कुर्ग' के झरने व आस्था का केन्द्र तालकावेरी जो 'कावेरी नदी' का उद्‌गम स्थान है देखा। तालकावेरी का दक्षिण में वही स्थान है जो उत्तर भारत में 'गोमुख गंगोत्री' का है। लेखक ने भागमण्डल स्थान को दक्षिण की काशी और त्रिवेणी बताया है क्योंकि यहाँ पर 'कावेरी कन्निकी' और 'सुज्योति' नामक सरिताओं का संगम हुआ है। इन सभी स्थानों के विषय में लेखक ने विस्तार से वर्णन किया है तथा यहाँ की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है।

'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' नामक यात्रावृत्त में लेखक ने बंगलौर यानी उद्यानों का नगर की अपनी यात्रा को लिपिबद्ध करते हुए वहाँ के ऐतिहासिक, भौगोलिक परिदृश्य पर भी प्रकाश डाला है। दर्शनीय स्थानों में 'इन्फोसिस कम्पनी परिसर', 'बटरफ्लाई पार्क', 'वनस्पति उद्यान', 'गिलास सेवा धाम आदि विशेष उल्लेखनीय हैं जिनका वृतान्त में विस्तार से वर्णन किया गया है। बंगलौर यात्रा के पश्चात् लेखक की घर वापसी दर्शायी गई है जो इस यात्रावृत्त के शीर्षक को सार्थक करती है।

यात्रावृत्त की भाषा सीधी सरल है। अनेक स्थानों पर मुहावरों का प्रयोग भी किया गया है। वृतान्त पढ़ने के पश्चात लेखक का पारिवारिक प्रेम व स्नेह प्रकट होता है। कहीं-कहीं लेखक के दोनों पुत्रों अभिनव व अभिलेख की पितृभक्ति प्रकट होती है। लेखक के अशक्त होते हुए भी व्हील चेयर, कार, विमान आदि से पर्यटन इच्छा को पूर्ण करते दर्शाया गया है, जिस प्रकार 'त्रेता युग' में श्रवण अपने माता-पिता को तीर्थयात्रा पर ले गया था वह भी एक प्रकार की पर्यटन ही था, परन्तु उस समय यातायात आजकल जैसा न होने के कारण वह उन्हें काँवर में बिठाकर अपने कंधे पर रखकर ले गया था। इस प्रकार लेखक ने भी पर्यटन के साथ-साथ वहाँ पर स्थित मन्दिरों, सरोवरों तथा धार्मिक स्थलों का दर्शन कर पुण्य लाभ कमाया यानी 'आम के आम गुठलियों के दाम।' लेखक की भाषा में यात्री तो वह पंछी है जो यथाशक्ति ऊँची से ऊँची उड़ान

भरना चाहता है, पर अन्ततः आना तो अपने घर ही पड़ता है। ठीक वैसे ही "जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवे"।

वस्तुतः मनुष्य की यायावर वृत्ति आदिकाल से ही देखने को मिलती है। हिन्दी साहित्य में अनेक साहित्यकारों ने अपनी यात्राओं को साहित्यिक स्वरूप प्रदान करते हुए यात्रावृतान्त लिखे। इनमें 'पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यात्रा वृतान्त में लेखक मात्र अपने मनोभावों और अनुभावों को ही अभिव्यक्ति नहीं देता बल्कि सम्बन्धित स्थलों की ऐतिहासिकता, सामाजिक स्वरूप एवं विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को भी अभिव्यक्ति प्रदान करता है। डॉ सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपने प्रस्तुत यात्रा वृतान्त में मैसूर, कुर्ग, बंगलौर आदि अनेक स्थलों के प्राकृतिक सौन्दर्य, उनके ऐतिहासिक गौरव एवं संस्कृति पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण में लेखक का कवि हृदय उल्लसित होता दिखाई देता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' सरल सहज शैली में लिखा गया एक पठनीय यात्रा वृतान्त है जिसमें आद्योपान्त रोचकता बनी रहने के कारण रचना पाठक का मन बाँधने में सफल रहती है।



डॉ. शाहीन बी रिजवी
मो. सोथा सादात, मकान नं. 358, बदायूँ
चलयंत्र : 9368390368

28

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के गीतों में राष्ट्रप्रेम



प्रेम की उदात्त भावना के कारण ही समग्र सृष्टि का विकास हुआ है। प्रीति, प्यार, स्नेह, अनुराग, प्रेम के ही पर्याय हैं। प्रत्येक मानव के हृदय में प्रेम का निवास होता है। कुछ लोग मात्र स्व से ही प्यार करते हैं, तो कुछ लोग परान्तः सुखाय की भावना लिये हुए स्व के साथ ही स्व ग्राम, स्व नगर, स्व प्रान्त, स्व राष्ट्र के साथ ही सम्पूर्ण विश्व से प्रेम करते हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ऐसे ही जन गण मन से प्यार करने वाले उदारमना, सरल, सहज व्यक्तित्व के स्वामी हैं। आपके गीतों के अनुशीलन से आपके *'राष्ट्रप्रेम'* के भाव स्पष्ट होते हैं। भारत महिमा का वर्णन करते हुए आपने एक गीत में इस प्रकार भाव व्यक्त किये हैं—

भारत है गणतन्त्र महान

* * * *

राम कृष्ण से अवतारों की
गांधी गौतम सावरकर की
ऋषियों मुनियों महर्षियों की
जन्मदायिनी यही सभी करते इसका गुणगान
भारत है गणतन्त्र महान। गीतश्री पृ.17

सदियों से मुगलों एवं अंग्रेजों की गुलामी के पश्चात् भारत स्वतन्त्र सम्प्रभुता सम्पन्न गणतन्त्र बना और 26 जनवरी हमारा राष्ट्रीय पर्व बना। इस प्रसंग पर डॉ. गुप्त जी ने हर्षातिरेक की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है :-

छब्बीस जनवरी आई गणतन्त्र दिवस है लाई।
जन-जन के उर में अपार खुशियाँ है भरती आई।।
सूरज निकला नई किरण ले
बादल दल ध्वज लेकर निकले
मिलकर आगे कदम बढ़ाते
मधुर-मधुर मुस्काते जाते
लहर-लहर लहराए तिरंगा-गाते हैं नर-नारी
छब्बीस जनवरी आई गणतन्त्र दिवस है लाई। गीतश्री पृ. 16

सीमा पर अविचल डटे सैनिकों से भारत माता की सुरक्षा हेतु प्रतिक्षण सजग रहने का आह्वान करते हुए आपने कहा है :-

सीमा पुकारती बार-बार, वीरों बलि जाओ एक बार
सीमा पर उठा बवंडर है, आकर देखो तो एक बार

* * * * * * * *

निर्मम चीत्कारें आती हैं, निर्जन प्रदेश से यह कैसी?
शस्त्रास्त्रों की आवाजें भी, ये देखों बढ़ती ही जाती।
चढ़ आया कौन हिमालय पर, दुःसाहस है किसमें इतना?
चिर शांत हिमानी का प्रदेश, क्यों कर है आज अशांत बना?
भागो ऐ चीनी शैतानों, क्रोधित न करो कैलाशी को
शंकित होता हूँ बार-बार होवे न प्रलय फिर एक बार।
सीमा पुकारती बार-बार, वीरो बलि जाओ एक बार।
गीत श्री पृ. 14

वीर-प्रसूता भारत की पुण्य धरा का वंदन एवं यहाँ की सांस्कृतिक एकता और अखण्डता का वर्णन आपने इस प्रकार किया हैः-

है न केवल धरा शस्यला श्यामला
पुण्य माँ भारती स्नेहदा मंगला
आज रण-यज्ञ में शीश दो शीश दो

* * * * * *

हम न हिन्दू न मुस्लिम न ईसाई हैं
हम न ब्राह्मण न क्षत्रिय दलित भाई हैं
हम न बंगाली हैं हम न मदरासी हैं

हम न पंजाबी सिंधी न गुजराती हैं
देखने में पृथक मूल से एक हम
रंग में हैं पृथक खून में एक हम
भारती-पुत्र हम आर्य संतान हम
जातियों में बँटे किन्तु हैं एक हम
एक होकर लड़ेंगे बढ़ा शत्रु तो
माँगती बलिधरा, रक्त दो, प्राण दो।
आज रण यज्ञ में, शीश दो, शीश दो।।

गीत श्री पृ. 19

सीमा पर ही नहीं हमें अपने देश के अन्दर भी भ्रष्टाचार, हिंसा, स्वार्थपरता, साम्प्रदायिकता आदि मानवता के शत्रुओं से सजग रहने की आवश्यकता है। राष्ट्रवासियों का आह्वान करते हुए डॉ. गुप्त जी ने अपने एक गीत के माध्यम से निम्न प्रकार उद्‌गार व्यक्त किये हैं :-

क्रान्ति का आह्वान युवक जागो।।
धरती के वीर पुत्र जागो।।
चतुर्दिक अंधकार महामोह तम विकार
लूट मार छीन झपट हिंसा ही बना सार
भूख प्यास और अकाल अनावृष्टि अनाचार
जरा जीर्ण बृद्ध बाल, नारी का चीत्कार
करता मार्मिक पुकार जागो।
धरती के वीर पुत्र जागो।।

गीतश्री पृ. 68

भारत की उर्वरा धरा, यहाँ की संस्कृति एवं प्राकृतिक छटा का वर्णन डॉ. गुप्त जी ने इस प्रकार किया है :-

धरती यह भारत की
सोना अब उगलेगी
निबिया की डाली पर
कोयलिया चहक उठी
बगिया के कोने पर
कोयलिया कुहुक उठी

प्राची का मलय पवन, कानों में कहता है—

सौरभ सर्वोदय की
घर-घर में महकेगी।
धरती यह भारत की
सोना अब उगलेगी।

ऋतु वसन्ती पृ. 30

सदाचार, निष्ठा, सत्यवादिता, अहिंसा एवं परोपकार आदि समय समाज सापेक्ष भाव लिये राष्ट्र- प्रेम से ओतप्रोत भावों की प्रस्तुति आपके अधिकांश गीतों में परिलक्षित है।

कवि, लेखक, समीक्षक, शिक्षाविद, शोध निदेशक विनम्र विद्वान माँ वाणी के सच्चे आराधक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के गीतों में हृदय की अनन्त गहराइयों से निकले राष्ट्र-प्रेम के भाव गुंथे हुए हैं। मैं ऐसे कालजयी साहित्यकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के दीर्घायु एवं सुयश की मंगल कामना करता हूँ।



डॉ. महेश मधुकर
गीतकार, अध्यक्ष संस्कार भारती बरेली (उ.प्र.)
मो. : 7417312999

29

मेरे हमनफ़स



यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अपने ही बीच के हिन्दी के उत्कृष्ट विद्वान् डॉ. सुरेशचन्द्र जी गुप्त की हीरक जयन्ती के अवसर पर *डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अमृत महोत्सव समिति, बरेली* द्वारा उनके सम्मानार्थ एक अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। मेरी हार्दिक प्रसन्नता का कारण किसी व्यक्तिवादी स्तुतियों और आराधना से प्रेरित नहीं है। मेरी दृष्टि में यह प्रयास हिन्दी की एक प्रतिष्ठित विद्वत-परम्परा का अभिनन्दन है। यहाँ यह बता देना जरूरी समझता हूँ कि जब मुझे इस अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए कुछ लिख देने की जिम्मेदारी सौंपी गई तो स्वभावतः मेरे मानस की तन्त्री के वे तार कुलबुला उठे जो मेरे और डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के बीच आत्मीयता के स्वरों से भरे थे।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि कर्मठता एवं सतत् गतिशीलता का नाम ही डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त है। यह दोनों ही गुण डॉ. गुप्त में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। 'चरैवेति चरैवेति' का वैदिक गीत तो मानो उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया है।

भाई सुरेशचन्द्र जी को कर्मठ बने रहने में उनकी जीवन संगिनी आदरणीया भाभी जी का बहुत बड़ा हाथ रहा है। उन जैसी स्नेहिल ममतामयी पत्नियाँ सौभाग्यशाली व्यक्तियों को ही मिलती हैं। यदि वे उनके साथ न होतीं तो जीवन-सफर का यह हिस्सा बड़ी मुश्किल से कटता। भाई सुरेशचन्द्र जी की जिन्दगी की कड़वाहटों को, उनके जिन्दगी के जहर को उन्होंने दोनों अँजुरियों से भर-भर कर पिया है। उन्होंने बहुत दिया है, बदले में भाई सुरेशचन्द्र ने क्या दिया है यह वे ही जानते होंगे।

'विद्या ददाति विनयम्' की उक्ति उन पर पूर्णतया घटित होती है। वे एक

अत्यन्त विनम्र, शिष्ट और आतिथेय व्यक्ति हैं। उनका निश्छल, सरल और सात्विक जीवन एक खुली पुस्तक है जिसका कोई भी पृष्ठ न तो विशृंखलित हुआ है, न ही मैला। एक बात और कह दूँ—डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने 'द' सीखा है—दया, दान और दमन—तीनों ही इसमें शामिल हैं औरों की तो मैं नहीं जानता लेकिन मैंने उनसे बहुत कुछ लिया है। मैं चाहता हूँ कि उनकी यह 'द' प्रवृत्ति जीवन्तता के साथ उनके शेष जीवन को सरल बनाती चले और मित्र सुरेशचन्द्र 'जीवेम शरदः शतम् शृणयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः शतम्' वेदवाणी को सार्थक करें।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह डॉ. गुप्त को ऐसा स्वास्थ्य तथा मन की प्रफुल्लता प्रदान करें कि वह आजीवन सरस्वती की उपासना में लगे रहें, वह जो कुछ भी करें वह उनके मन को सन्तोष प्रदान करे, यश प्रदान करे और वे सदा अपने आदर्शों का पालन कर सकें। ईश्वर की अनुकम्पा और मेरी शुभकामना सदा उनकी रक्षा करे।



डॉ. राम जीत मिश्र
पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष, बरेली कालेज, बरेली
19-20, चाणक्यपुरी, नैनीताल रोड, इज्जतनगर, बरेली- 243122
चलयंत्र : 9897058378

30

अभिनंदनीय व्यक्तित्व के धनी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, बरेली (यू.पी.) की हीरक जयन्ती के सुअवसर पर अभिनन्दन ग्रन्थ शीघ्र ही साया होने जा रहा है, यह जानकर बेहद प्रसन्नता हुई। होनी भी चाहिए थी क्योंकि अभिनन्दनीय व्यक्तित्व के धनी, बहुआयामी व्यक्तियों पर ही तो अभिनन्दन ग्रन्थ निकाला जाता है। यूँ तो अभिनन्दन ग्रन्थों की अपनी परम्परा रही है, परन्तु उसमें आपका यह ग्रंथ अनुपम, अप्रतिम सिद्ध होगा, अपने आप में ऐसा जिसका कोई दूसरा नहीं उदाहरण नहीं मिलेगा। इस अद्वितीय ग्रन्थ में लेख, आलेख, समीक्षा, अभिमत द्वारा उद्भट, मूर्धन्य विद्वान उनके यक्ष प्रयासों से आपके व्यक्तित्व को उजागर करने के हवन में उनके पूरे मनोयोग की आहुति देकर उसे पाठकों के मुंह एवं पेन स्फुटित सराहना प्राप्त करवाने में कोई कसर ऐसी नहीं छोड़ेगे जिससे आह्लाद की अनुगूंज न हो—ऐसी सौ प्रतिशत उम्मीद है। यह बात अलहदा है कि मुझे डॉ. साहब की कृतियों (काव्य संग्रह, जीवनी, शोध प्रबन्ध, अनुवाद, संस्मरण, शोधपत्र संग्रह, यात्रा वृतान्त आदि) से रू-ब-रू होने का मौका नहीं मिल पाया, पर लगता है उन सभी में एकदम अपना अपना अलग वैशिष्टय निश्चित ही होगा जिसे प्रकाशित होने वाला ग्रन्थ हेलोजेनिक प्रकाश में लाएगा और साथ में उसे लोक प्रसिद्धि भी अवश्य-अवश्य दिलवाएगा। इसी आकांक्षा के साथ मैं अनेकानेक शुभकामनाओं की सरिता में अपनी शुभकामनाओं की बूँद भी डाल रहा हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन की सफलता हेतु एक बार पुनः दिले गहराई से सभी पाक कामनाएँ।



सुगनचन्द मांगीलाल पहाड़िया 'जैन'
'आदि निलय; 7 जी 17 आरसी व्यास कालोनी,
भीलवाड़ा- 311001 (राजस्थान)
फोन नं. : (01482) 222998, मो. 092145-56168

31

स्मृतियों के कुशल चितेरे



मनुष्य के जीवन में स्मृतियों का विशेष महत्त्व है। उसके बीते जीवन की स्मृतियाँ ही जीवन भर उसके साथ चलती हुई कभी गुदगुदाती हैं तो कभी उदास कर देती हैं। स्मृतियों के बादल प्रायः अकेलेपन में मनुष्य के मानस पर छाने लगते हैं। कोई पुरानी घटना, प्रसंग या व्यक्ति के याद आते ही उससे जुड़ी समस्त घटनाएँ एक चलचित्र की भाँति दिखाई देने लगती हैं। स्मृतियाँ हमारे अवचेतन में पड़ी होती हैं जो उस जैसी किसी घटना या प्रसंग के सामने आते ही हमारे मानस पटल पर जीवंत होने लगती है।

एक साहित्यकार के जीवन में स्मृतियों का स्थान सर्वोपरि होता है। यदि यह कहा जाए कि ये स्मृतियाँ ही साहित्यकार का खजाना हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि इसी खजाने से वह अपनी सर्जनात्मकता को मूर्तिमान करता है। उसके इसी खजाने से कभी कहानी तो कभी उपन्यास या फिर संस्मरण, रेखाचित्र या अन्य किसी विधा का जन्म होता है। संस्मरण और रेखाचित्र गद्य साहित्य की दो ऐसी विधाएँ हैं जिनका सम्बन्ध पूरी तरह से स्मृतियों से ही है। जीवन के वे प्रसंग एवं घटनाएँ जिन्हें हम भूल नहीं पाते संस्मरण के रूप में लिखी जाती हैं जबकि जीवन में आए ऐसे व्यक्ति जिन्होंने हमारे जीवन को परोक्षापरोक्ष रूप से प्रभावित किया, रेखाचित्र के रूप में लिखे जाते हैं। सच तो यह है कि दोनों ही विधाएँ एक दूसरे के इतने निकट हैं कि कभी-कभी दोनों में अन्तर कर पाना मुश्किल होता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्र हैं।

संस्मरण स्मृतियों का प्रस्तुतीकरण होता है। अपने जीवन की छोटी-से-छोटी घटनाओं को याद रखकर उसका सुन्दर प्रस्तुतीकण ही संस्मरण की

रोचकता को बढ़ाता है। इस दृष्टि से डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक उत्कृष्ट संस्मरणकार के रूप में सामने आते हैं। डॉ. गुप्त एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने किसी विधा विशेष में स्वयं को नहीं बाँधा। एक ओर वे मन की पीड़ा को कविता और गीत के माध्यम से गुनगुनाते हैं तो जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव अपने संस्मरणों-रेखाचित्रों के माध्यम से ऐसे लिखते हैं कि घटनाएँ सामने घटित होती हुई दिखाई देती हैं। डॉ. गुप्त की स्मरण शक्ति विलक्षण है। छोटी-से-छोटी बात भी उन्हें इतनी सरलता से याद रहती है कि अपने आलेखों में वे उसे लिपिबद्ध करना नहीं भूलते।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के द्वारा संपादित त्रैमासिक पत्रिका 'साहित्यायन' में उनके संस्मरण सर्वप्रथम प्रकाशित हुए जिनका पाठकों ने भरपूर स्वागत किया। फिर तो यह क्रम चल निकला और प्रायः प्रत्येक अंक में वे अपने संस्मरण प्रकाशित करने लगे। उन्हीं में से नौ आलेखों को संकलित कर उनकी प्रथम संस्मरणात्मक कृति 'स्मृति के वातायन' का प्रकाशन वर्ष 2010 में हुआ। उसके बाद के संस्मरण 'स्मृति सिंधु से' नामक द्वितीय पुस्तक में दिए गये हैं।

मुझे लगभग नौ वर्षों तक 'साहित्यायन' के संपादन का अवसर मिला और मैंने उनके सभी संस्मरण-रेखाचित्र पढ़े हैं। यहाँ मैं उनकी प्रथम संस्मरण संग्रह 'स्मृति के वातायन' को केन्द्र में रखकर डॉ. गुप्त के संस्मरणों पर चर्चा कर रहा हूँ। डॉ. गुप्त की पुस्तक 'स्मृति के वातायन' में नौ लेख हैं जिनमें पाँच लेख संस्मरण न होकर रेखाचित्र अधिक लगते हैं और शेष चार संस्मरण कहे जा सकते हैं। पाँच लेख डॉ. गुप्त की माता जी, बड़े भाई, उनके मुहल्ले की एक लड़की, उनके मित्र सुन्दर और ठाकुर के व्यक्तित्व पर केन्द्रित हैं जो सही अर्थों में संस्मरण कम और रेखाचित्र अधिक लगते हैं। इनके अतिरिक्त उनके शेष चार लेख संस्मरण कहे जा सकते हैं जिनमें मंधना डिग्री कालेज में उनकी प्रथम नौकरी और वहाँ से विदाई का संस्मरण, उनको मिले प्रथम पुरस्कार की प्राप्ति एवं उनके सहकर्मियों की प्रतिक्रिया का संस्मरण, बरेली कालेज में हुई परीक्षा एवं उसमें घटी लज्जास्पद घटनाओं का संस्मरण तथा एक अन्य संस्मरण जो मृत्यु पर आधारित है संकलित किये गये हैं।

डॉ. गुप्त का अपनी माता जी पर केन्द्रित रेखाचित्र 'माता बिनु आदर कौन करे?' इस संग्रह का सर्वश्रेष्ठ आलेख है। यह उनका अपनी माता जी के प्रति सच्चे प्रेम, लगाव और श्रद्धा का प्रमाण है। अपनी दिवगंत माँ के लिए एक पुत्र की सच्ची श्रद्धांजलि इस आलेख में परिलक्षित होती है। भाषा, भाव और विचार की दृष्टि से डॉ. गुप्त के उत्कृष्ट साहित्य सृजन का उदाहरण इस आलेख

के माध्यम से लगाया जा सकता है। कई स्थलों पर तो डॉ. गुप्त ने अपनी माता जी का उनकी (डॉ. गुप्त की) बीमारी को लेकर अत्यन्त परेशान होने और उनके इलाज के लिए पीर-फकीरों, पंडित-पुरोहितों, तांत्रिकों, मजारों-मन्दिरों, अंधविश्वासों आदि को मानने का इतना भावुक वर्णन किया है कि पाठक की आँखें स्वतः ही नम हो जाती हैं। गला रुँध जाता है। माँ के निस्वार्थ प्रेम का इससे बड़ा उदाहरण और क्या मिलेगा? इस आलेख के लिए डॉ. गुप्त साधुवाद के पात्र हैं।

इसी प्रकार अपने बड़े भाई पर केन्द्रित आलेख में भी डॉ. गुप्त ने अपने लेखन कौशल का परिचय देते हुए बड़े भाई को पिता से भी ऊँचा स्थान दिया है क्योंकि पिता की आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर मात्र सौ रुपये मासिक की नौकरी में ही उनके बड़े भाई ने पूरे परिवार का भरण पोषण का भार अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने जीवन भर डॉ. गुप्त से अपने पुत्र जैसा व्यवहार किया। निश्चय ही डॉ. गुप्त का यह आलेख भी उनके श्रेष्ठ आलेखों में से एक है।

शाहजहाँपुर के उनके मोहल्ले की एक मुस्लिम लड़की 'हसीना' पर केन्द्रित आलेख 'तान के सीना चली हसीना' अवश्य ही पाठकों को भ्रमित कर देने वाला आलेख है क्योंकि पिछले दोनों आलेख जहाँ उनकी भाषा, भाव और विचारों की उत्कृष्टता को दर्शाते हैं, वहीं यह आलेख बहुत ही ओछा प्रतीत होता है। भाषायी दृष्टि से भी डॉ. गुप्त ने इसमें एकदम बाजारू भाषा का प्रयोग किया है।

इसी प्रकार उनके अन्य दो रेखाचित्र 'सुन्दर' और 'ठाकुर' भी साधारण हैं। उसमें कोई वैचारिक या भावनात्मक कौशल दिखाई नहीं देता। फिर भी ठाकुर की अपेक्षा सुन्दर कुछ ठीक है क्योंकि वह उनके बचपन के साथी पर केन्द्रित है।

उनके अन्य चार आलेखों को संस्मरण के रूप में देखा जा सकता है। इनमें उनका सबसे अच्छा संस्मरण उनकी प्रथम नौकरी से विदाई पर आधारित 'बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं' हैं। इसके अन्तर्गत उन्होंने मंधना डिग्री कालेज में की गई नौकरी के अपने छोटे से समय को अत्यन्त संतुष्ट एवं सुखी बताते हुए वहाँ की विदाई का भावपूर्ण वर्णन किया है।

बरेली कालेज की वर्ष 1975 की परीक्षाएँ कालेज के इतिहास का काला अध्याय है। इसी पर केन्द्रित उनका आलेख 'ईश्वर मुझे परीक्षा में मत डाल' डॉ. गुप्त की लेखनी पर आश्चर्य करने वाला आलेख है।

अपने शोध ग्रन्थ के लिए अन्तर्राष्ट्रीय आत्रेय पुरस्कार के मिलने का

संस्मरण अच्छा है किन्तु साधारण भाषा में लिखा यह संस्मरण कम और प्रतिवेदन (रिपोर्ट) अधिक प्रतीत होता है। पुरस्कार मिलना और उससे उनके सहकर्मियों की ईर्ष्यालु वृत्ति का डॉ. गुप्त ने खुलेपन से वर्णन किया है।

'जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः' आलेख का भाव सर्वज्ञात है कि जब तक मौत नहीं आती कोई मर नहीं सकता फिर चाहे वह कितना ही प्रयास कर ले। इससे ठीक विपरीत यदि मौत आ गयी तो कोई बच नहीं सकता। यह आलेख साधारण भाषा में लिखा एक सामान्य आलेख है। कोई विशेष बात इस आलेख में इसके अतिरिक्त नहीं है। हाँ कुछ लोगों की आकस्मिक मृत्यु और कुछ की चाह कर भी मृत्यु न होने के प्रसंग अवश्य ही इस लेख को रुचिकर बनाते हैं।

सारतः डॉ. गुप्त ने अच्छे संस्मरण और आलेख लिखे हैं। उनके आलेखों में कहीं-कहीं तो इतनी पीड़ा और भावुकता के दर्शन होते हैं कि पाठक की आँखों में आँसू आ जाते हैं तो कहीं-कहीं उनकी लेखनी पाठक को गुदगुदाती भी है और कई स्थलों पर लज्जा का भाव उमड़ पड़ता है। एक अच्छे लेखक की यह पहचान है कि वह अपने प्रत्येक रचना के साथ पूरी तरह से न्याय करे। डॉ. गुप्त इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। वे जिस परिवेश और वातावरण पर आलेख लिखते हैं, उनकी शब्दावली और भाषा भी उसी के अनुरूप हो जाती है। डॉ. गुप्त सही अर्थों में एक ऐसे चितेरे हैं जो शब्दों के माध्यम से अपनी स्मृतियों के चित्र खींचने में निपुण हैं।

उनके अभिनन्दन ग्रंथ हेतु हार्दिक बधाई देते हुए ईश्वर से उनके दीर्घायु होने की कामना करता हूँ। वह हिन्दी साहित्य जगत को अपनी रचनाओं से समृद्ध करते रहें इसी मंगल कामना के साथ लेखनी को विराम देता हूँ।



डॉ. लवलेश दत्त
'शिवछाँह', 165-ब, बुखारपुरा, पुरानाशहर, बरेली-243005 (उ.प्र.)
चलयंत्र : 9412345679

32

अनथक यायावर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपनी पुस्तक 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' में अपने पर्यटन सम्बन्धी अनुभवों, विचारों और आह्लादों का सजीव, मनोरंजक एवं कौतूहलपूर्ण वर्णन किया है। डॉ. गुप्त की भावनाओं का रोचक वर्णन उनकी प्रतिभा को उजागर करने में सक्षम है।

मानव-सभ्यता-विकास के साथ ही साथ पर्यटन का सहभागी अस्तित्व विद्यमान रहा है। सारा विश्व पर्यटन-सन्नद्ध होकर एक-दूसरे से परिचित होता रहा है। हमारे ऋषियों और मुनियों ने भी 'चरैवेति-चरैवेति' की उद्घोषणा की है। इस्माइल मेरठी ने भी कहा है—

सैर कर दुनिया की गाफिल, जिन्दगानी फिर कहाँ?
जिन्दगी गर कुछ रही तो, नौजवानी फिर कहाँ?

राहुल सांकृत्यायन (पण्डित केदारनाथ पाण्डेय) ने बचपन में ही इसे पढ़ा और इससे प्रभावित होकर, पत्नी को घर पर ही छोड़कर गृह-त्यागकर भ्रमण को निकल पड़े। रूस, चीन, तिब्बत आदि अनेक स्थानों की उन्होंने यात्राएँ कीं। पर्यटन या यात्रा करने वाले को पर्यटक, यात्री या घुमक्कड़ कहते हैं। मानव-मन एकरसता में जब उब्र जाता है तब भिन्न-भिन्न स्थानों का अवलोकन करके आह्लादित होता है। स्थान-विशेष की स्थापत्य-कला, मानव-संस्कृति एवं भौगोलिक संरचना में वह प्रसन्नता प्राप्त करता है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने विकलांग होते हुए भी अनेक यात्राएँ कीं। 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' इनके इन्हीं पर्यटनों का स्वच्छ, स्पष्ट एवं विस्तृत दर्पण-पटल है। इनके इस सुयोग को इनके गौरव-सम्पन्न परिवार ने सम्भव और सुखद बनाया। इनकी सुयोग्य धर्मपत्नी इन्दुरानी; ज्येष्ठ पुत्र-पुत्रवधू-अभिनव-नेहा; कनिष्ठ पुत्र-पुत्रवधू-अभिलेख-प्रिया; तथा इनकी पौत्री शुभांगी ने इनकी

यह यात्रा साथ-साथ बिना किसी कष्टानुभूति के पूर्ण की। डॉ. गुप्त की इन सम्पूर्ण इच्छाओं की सम्पूर्ति में इनका परिवार सर्वदा जागरुक रहा है। यह तथ्य इन यात्राओं से स्वयंसिद्ध हैं।

डॉ. गुप्त ने विमान की यात्रा, महिषासुर के राज्य 'मैसूर' की यात्रा, दक्षिण भारत के स्विट्जरलैण्ड वीरभूमि कुर्ग की यात्रा, बंगलौर : उद्यानों का नगर बना सिलीकॉन वैली की यात्राओं का सजीव चित्रण किया है।

विमान-यात्रा के विषय में लेखक ने लिखा है—"मैं चाहता था कि विमान से उड़ते समय नीचे धरती की हरियाली देखूँ, वन-पर्वत देखूँ, इठलाती नदियाँ और उनके किनारे बसे नगरों को देखूँ। देखूँ कि जमीन पर चलते हुए पशु और नर-नारी कैसे दीख रहे हैं। मन करता था कि कुछ ऐसा अवर्णनीय देखूँ कि कविता का स्रोत वह निकले।" (जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 28-29) लेखक ने इससे सम्बद्ध नागार्जुन की कविता लिखी है—

ऊपर-ऊपर आते नील गगन
नीचे बादल हैं विसुध मगन
हम भूतल से मीलों ऊपर
उन्चास पवन के पंखों पर....। (वही पृ. 29)

मैसूर की यात्रा में लेखक ने मैसूर के विषय में लिखा है—"किंवदन्ती है कि प्राचीन काल में असुर महिष ही यहाँ का राजा था। उसी के नाम पर इस क्षेत्र को महिषासुर कहा जाता था। उसी से क्रमशः महिषासुर, महिसुर और मैसूर नाम पड़ा। जब हम महिषासुर के सामने खड़े थे, तब चारों तरफ मेला जैसा प्रतीत हो रहा था। वहाँ से हटने का मन नहीं कर रहा था।" (जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 50)

कुर्ग की यात्रा में लेखक ने लिखा है—"अपने सौन्दर्य, शौर्य और स्वागत-सत्कार के लिए कुर्ग के लोग सदियों से विख्यात् रहे हैं। वहाँ के पुरुषों की पहचान परम्परागत युद्ध कौशल है, तो स्त्रियों का आकर्षण उनकी छवि, रूप, देह-यष्टि और साड़ी परिवेष्ठित अंगों में है।" (जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 52)

बंगलौर की यात्रा में लेखक ने लिखा है—"वस्तुतः, बंगलौर की प्राकृतिक सुषमा और जलवायु इतनी सुखद है कि अनेक आध्यात्मिक साधना-केन्द्र बना लिये गये हैं। सत्य साईं का कार्यालय भी बंगलौर में है। यहाँ घूमने और देखने को इतना अधिक है कि मन नहीं भर सकता, जितना देखो और अधिक देखने की लालसा बढ़ जाती है।" (जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 83)

अपने अनुभव के आधार पर लेखक ने यात्रा करने के इच्छुक व्यक्तियों को यह सम्मति प्रदान की है—"अपने परिवार के साथ यात्रा का अपना अलग आनन्द है। अगर सपरिवार यात्रा करना है तो समय और धनराशि का ध्यान रखकर ही योजना बनाकर यात्रा पर निकलना चाहिए। सबसे पहले जरूरी है कि गन्तव्य की पूरी जानकारी प्राप्त कर लें। पुस्तकों, मानचित्रों आदि की सहायता भी ले सकते हैं। यात्रा के वाहन, होटल आदि की जानकारी लें, सामान कम-से-कम लें और वस्त्र मौसम के अनुकूल लें। खाने-पीने में सावधानी रखें और भूख से कम खायें। सुनसान जगहों में न जायें, न ठहरें। मार्ग, होटल आदि में विवादों से बचें। खर्च के लिए जितना अनुमान हो, उससे दोगुना ले जायें और राशि दो-तीन जगह रखें। एक डायरी और पेन भी साथ रखें, जिसमें हर जरूरी चीज लिखते रहें, ताकि भविष्य में काम आये।" (जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 91)

लेखक ने यात्रा करने की इच्छा प्रारम्भ में ही व्यक्त की है—"ऐतिहासिक भवनों, किलों, प्रासादों के अवलोकन की लालसा मुझमें प्रबल रहती है। आगरा का किला, दिल्ली का लाल किला, फतेहपुर सीकरी का किला आदि कई-कई बार देखे हैं। डिस्कवरी चैनल पर और दूरदर्शन के कार्यक्रमों में प्राचीन दुर्गों के बारे में देख-सुनकर प्रत्यक्ष देखने की जिज्ञासा उत्तरोत्तर बलवती हुई है।" (जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 26)

डॉ. गुप्त ने आगे लिखा है—"मेरे अग्रज और अनुज ने सम्भवतः आगरा, देहरादून और लखनऊ के अतिरिक्त कहीं का पर्यटन-सुख नहीं प्राप्त किया है, जबकि मैं सन् 1965 से विकलांग हूँ, फिर भी अनेक नगरों का पर्यटन किया है, कभी अकेले तो कभी सपरिवार।" (जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 27)

पर्यटन के सुख का वर्णन सभी करते हैं। करना भी चाहिए। परन्तु अन्ततोगत्वा लौटकर लगभग सभी अपने घर वापस आते ही हैं। (जैसे उड़ि जहाज को पंछी, उड़ि हजाज पर आवे) क्योंकि, घर जैसी शान्ति और कहीं नहीं मिलती। इस सम्बन्ध में लेखक ने लिखा है—"सफर (यात्रा) का मतलब है सफर करना, यानी घर जैसी सुख-सुविधा अन्यत्र कहाँ? अपने भरे-पूरे परिवार के साथ अनजाने-अद्भुत नगरों, मंदिरों, प्राकृतिक दृश्यों आदि का अवलोकन यद्यपि आत्मिक सन्तोष प्रदान करता है, पर वास्तविक आनन्दधाम तो अपना घर ही है—

यदि पत्नी सुखदा कल्याणी,
तो घर ही है सुख-शान्ति-धाम।

यदि क्लांत विहग को श्रांति मिले,
तो घर ही सच्चा स्वर्गधाम।

(जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 28)

यात्रा बहुत से लोग करते हैं, परन्तु उसका वर्णन बहुत कम लोग करते हैं। लेखक का यात्रा-वर्णन हर दृष्टिकोण से सराहनीय है। इसका प्रमाण यह है कि 'परिशिष्ट' के अन्तर्गत लेखक ने यात्रा वृत्त का सचित्र वृतान्त प्रस्तुत किया है और उन स्थानों से सम्बन्धित स्थानों के चार मानचित्र भी प्रस्तुत किए हैं। एतदर्थ लेखक साधुवाद का पात्र है।



डॉ. भक्तराज शास्त्री
643 स/11 स्नेहीनगर, पोस्ट-सेंटर-सी सीतापुर रोड,
लखनऊ- 226021
मो. नं. : 9415087402

33

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की समीक्षा दृष्टि



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का आधुनिक समीक्षा-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य समीक्षा के मानदंडों को दृष्टि में रखकर अपनी समीक्षा के प्रतिमानों को स्थिर किया है। वे किसी साहित्यिक कृति के सम्बन्ध में केवल अपना मत ही स्थापित नहीं करते हैं अपितु अपनी अन्तर्दृष्टि से कृतिकार के जीवन के विभिन्न पक्षों को समझने का भी भरपूर प्रयास करते हैं। डॉ. गुप्त आधुनिक समीक्षा के किसी सिद्धान्त विशेष के पक्षधर नहीं हैं। उनकी समीक्षा-दृष्टि समन्वयात्मक है जो अवसरानुकूल सभी समीक्षा पद्धतियों को देखती-परखती है।

डॉ. गुप्त एक सफल अध्यापक होने के साथ ही एक प्रतिभासम्पन्न कवि और समर्थ आलोचक हैं। उनकी आलोचनात्मक कृतियों में 'हंस जवाहिर : एक आलोचनात्मक अध्ययन', 'आधुनिक हिन्दी-उर्दू काव्य समीक्षा', 'भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र', 'पंत की दार्शनिक चेतना', 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण', 'कविवर सुमित्रानन्दन पंत' आदि उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त ग्रन्थों के अवलोकन से स्पष्ट है कि डॉ. गुप्त की समीक्षा का आधार प्रायः शास्त्रीय है। एक सच्चे तत्त्वान्वेषी की भाँति वे शास्त्रीय मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में समीक्ष्य कवियों और कृतियों का मार्मिक विश्लेषण करते हैं।

कविता के सम्बन्ध में डॉ. गुप्त का मत है, "कविता समय की शिला पर स्वानुभूतियों का रसात्मक चित्र है।" (छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, पृ. 12) उनकी यह धारणा कविता को युग सन्दर्भ के साथ स्थापित करती है किन्तु इसके साथ ही वे यह भी मानते हैं कि कविता के लिए युग-बोध ही आवश्यक नहीं है अपितु उसमें रसात्मकता अनिवार्य है। रस के अभाव में

काव्यचित्र धुँधला हो जाता है। एक अन्य स्थल पर भी वे काव्य को मानव मनोभावों, विचारों, अनुभूतियों और कल्पनाओं की कलात्मक एवं रसात्मक अभिव्यक्ति मानते हैं। (वही, पृ. 7) इस प्रकार उनकी दृष्टि में कविता भावों और विचारों की अभिव्यक्ति होती है किन्तु वे भाव वैयक्तिक होते हुए भी सबसे संपृक्त होते हैं। वे मानव मात्र से जुडे होते हैं।

काव्य और कल्पना का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कल्पना के द्वारा ही कवि के अनुभूत भाव उदात्त होकर पाठक या श्रोता तक पहुँचते हैं। कवि का कार्य सृजन करना है। वह नये बिम्बों और प्रतिमाओं को गढ़ता है जो कल्पना के बिना सम्भव नहीं है। डॉ. गुप्त ने भी कल्पना के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किये हैं। 'विश्व के महान साहित्यकार' यद्यपि उनकी जीवनीपरक रचना है किन्तु उसमें उनके साहित्य सम्बन्धी विचार भी मिलते हैं। कल्पना के विषय में वे लिखते हैं, "कल्पना का प्रधान कार्य है, मूर्तियों, बिम्बों आदि का अंकन और उनका पाठक या दर्शक के मस्तिष्क में प्रक्षेपण।" (विश्व के महान साहित्यकार, पृ. 109)। अस्तु, कल्पना सौन्दर्य को चित्रित करने और उसका प्रत्यक्षीकरण कराने में सहायक होती हैं।

काव्य और दर्शन दोनों में वैषम्य होते हुए भी समानता है क्योंकि दोनों सत्य को उद्घाटित करते हैं। डॉ. गुप्त ने दोनों की अन्योन्याश्रितता स्वीकारी है। दर्शन को उन्होंने साहित्य की कसौटी माना है। "वस्तुतः दर्शन साहित्य का प्राण है, वही श्रेष्ठ साहित्य की कसौटी है। साहित्य की पूर्णता और सार्थकता इसी में है कि वह दर्शन को अभिव्यक्ति दे।" (पंत की दार्शनिक चेतना, पृ. 44) प्रकारान्तर से डॉ. गुप्त ने काव्य या साहित्य के भीतर समाहित कवि-दर्शन का उल्लेख किया है।

छायावाद के विषय में डॉ. गुप्त की धारणा है, "छायावाद स्वतः स्फूर्त भावोच्छ्वास मात्र नहीं है, वह तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया से उद्भूत कविता-आन्दोलन है।" (कविवर सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 96) उनकी दृष्टि में छायावाद पश्चिमी नकल के आधार पर खड़ा किया गया काव्यान्दोलन न होकर तत्कालीन परिस्थितियों की उपज था। उसमें कवि का अन्तरंग जीवन, उसकी वैयक्तिकता ही प्रमुख नहीं थी अपितु उसमें वह सामाजिक चेतना भी थी जो लोकमंगल की परिधि तक ले जाती है।

छायावादोत्तर काल के सम्बन्ध में डॉ. गुप्त की धारणा नितांत मौलिक और अन्य समीक्षकों से पृथक् है। डॉ. गुप्त ने स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक एवं छायावादी कविता हिन्दी के छायावादोत्तर काल में भी निरन्तर रही है और आज भी है। साहित्येतिहास समीक्षकों ने द्विवेदी युग के बाद के साहित्य को छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, साठोत्तरी कविता,

अद्यतन कविता आदि नाम देकर उसे विभिन्न खेमों में ही नहीं बाँधा है अपितु उसकी समय सीमा भी निश्चित कर दी है। उन्होंने छायावाद का समय 1918 से 1935 और प्रगतिवाद का 1935 से 1940 तक स्वीकारा है। उसके बाद किसी काल में छायावाद या प्रगतिवाद की चर्चा नहीं हुई। उनके अनुसार उस काल विशेष के अनन्तर न तो छायावादी और न प्रगतिवादी कविताएँ लिखी गयीं। डॉ. गुप्त के विचार उनमें अलग हैं। वे लिखते हैं, "छायावाद काल में ही कुछ प्रवृत्तियाँ उभरने लगी थीं, जिन्हें आगे चलकर छायावादोत्तर, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि नाम दिये गये। भारतेन्दु युग से उद्भूत राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता प्रायः हर युग में न्यूनाधिक जीवंत रही है।" (छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, पृ. 4) इस प्रकार डॉ. गुप्त परवर्ती काव्यान्दोलनों के उत्स छायावाद में ही खोजने के पक्षधर हैं।

काव्य प्रयोजन एवं अन्य काव्य मान्यताओं के सम्बन्ध में गुप्त जी ने अपनी पुस्तक *'भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र'* में सविस्तार चर्चा की है। काव्य प्रयोजन के विषय में उनका दृष्टिकोण उपयोगितावादी है। उनकी दृष्टि में काव्य का प्रधान प्रयोजन यशप्राप्ति है। एक अन्य स्थल पर इस सम्बन्ध में उनका मत है, "कौन साहित्यकार है जो यशाभिलाषी नहीं? यश के आकांक्षी होकर दर-दर भटकना, राजाश्रय ग्रहण करना, चाटुकारिता करना, सत्ताधीशों के तलवे चाटना और आत्मविज्ञापनार्थ एक क्वाँरी रचना को छपाने के लिए व्याकुल रहना तथा प्रकाशित हो जाने पर उसे अंक में समेटे इष्ट-मित्रों, परिचितों के घर दौड़े-दौड़े दिखाते-सुनाते भागना साहित्यकार का धर्म बन गया है।" व्यंग्यात्मक शैली में समीक्षक डॉ. गुप्त ने उन आधुनिक साहित्यकारों की कलई खोल दी है, जो धन और यश के लिए दर-दर भटकते हैं।

संक्षेप, में डॉ. गुप्त एक रसवादी समीक्षक हैं, परन्तु किसी एक समीक्षा पद्धति के कायल नहीं हैं। उन्होंने स्थान-स्थान पर भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा के समन्वय पर बल दिया है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि दर्शन जैसे तार्किक विषयों के समंजन में भी उनकी समीक्षा सरस एवं बोधगम्य है। वे निर्भीक एवं सजग आलोचक हैं।



डॉ. कमलाशंकर त्रिपाठी
भू.पू. हिन्दी विभागाध्यक्ष, ज.ना.पी.जी.कालेज, लखनऊ
पता-3/425, विकास नगर, लखनऊ
दूरभाष : 0522- 2738748

34

समर्पित अनुसंधित्सु एवं साहित्यकार



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक प्रतिष्ठित साहित्यकार है। इनका बहुआयामी व्यक्तित्व इनकी अनवरत साधना, प्रतिभा एवं अध्ययनशीलता का परिचायक है। संघर्षों से आक्रान्त इनका जीवन स्वर्ण के समान आभामय होकर दैदीप्यमान हो रहा है। डॉ. गुप्त विकलांग हैं, फिर भी इनकी उन्नतिशील शुभेच्छा इन्हें कभी निराश नहीं करती है। सच पूछिये तो ये 'विकलांग' नहीं 'दिव्यांग' हैं। इस किस्म के लोग विरले ही होते हैं—

हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।

इस कथन की कसौटी पर डॉ. गुप्त पूर्णतः खरे उतरते हैं। इनके दो सुपुत्र (अभिनव और अभिलेख) चमकते हीरे के समान इनकी आभावृद्धि में चार-चाँद लगाते रहे हैं। निर्धनता का दंश झेलते हुए भी आगे बढ़ने वाले बहुत कम लोग होते हैं। डॉ. गुप्त कठिनाइयों से लड़ते हुए आगे बढ़ते रहे हैं। कभी-कभी तो निराश होकर इन्हें कहना पड़ा—

विकलांग बेसहारा,
लकड़ी का न सहारा,
मुझे ले लो राम। (गीतश्री, पृ..11)

डॉ. गुप्त ने अपने संघर्षों के बारे में लिखा है—"लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए., पी.एच.डी.करने के साथ ही नौकरी की तलाश में सीतापुर, हरदोई, कानपुर, एटा, इटावा, कासगंज, खतौली, कछला, चन्दौसी, मैनपुरी,

फर्रुखाबाद, मेरठ, इलाहाबाद, गोरखपुर, बाराबंकी, गाजीपुर, रायबरेली, फैजाबाद, पीलीभीत, बाँदा, झाँसी आदि कितने ही नगरों-महानगरों में प्रवक्ता-पद हेतु साक्षात्कार देने के सन्दर्भ में भटका।" (जेसे उड़ि जहाज को पंछी, पृ. 11) अन्त में बरेली कालेज, बरेली में नौकरी मिली। अध्यापन-जीवन में भी सदैव संघर्ष ही करते रहे। कभी-कभी सोचते—

क्या जीवन है यह भी?
काश!
अध्यापक नहीं
हलवाहा होता। (डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, मनपाँखी, पृ. 73)

सच बात तो यह है कि कठिनाइयों में ही आदमी तप कर बाहर निकलता है, तब उसमें निखार आता है, वह चमकने लगता है। अगर आसानियाँ मिलें तो जीना दूभर हो जाता है—

चला जाता हूँ हँसता-खेलता मौजे हवादिस में,
अगर आसानियाँ हों, जिन्दगी दुश्वार हो जाये।

तुलसीदास जी ने भी कहा है—

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी, आपतकाल परखिए चारी।

रहीम ने भी थोड़े समय के दुःख को लाभकारी माना है—

रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।

प्रसिद्ध कवि श्री सोहन लाल द्विवेदी जी कहते हैं—

लहरों से डरकर नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

कबीर ने भी 'जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ' की बात कही है। कठिनाइयों से डरकर बैठे रहना उचित नहीं होता है। डॉ. गुप्त सर्वदा आशावान रहे हैं। यही कारण है कि आज भी ये क्रियाशील हैं। यही इनके उत्थान का राज है।

डॉ. गुप्त के निर्देशन में कई शोधछात्रों ने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। इनके शोधछात्रों की पीएच.डी. परीक्षा के परीक्षक होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इनकी शोधछात्रा डॉ. समराना फय्याज की पीएच.डी. की मौखिक

परीक्षा के लिए मै बरेली गया। डॉ. नितिन सेठी की पीएच.डी. की मौखिक परीक्षा के लिए मुझे बरेली जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दोनों बार डॉ. गुप्त से मिलकर मुझे अतीव सुख का अनुभव हुआ। इन अवसरों पर इन्हें निकट से जानने और परखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इनकी मिलनसारिता, व्यवहार कुशलता एवं प्रेमविह्वलता की जितनी भी प्रशंसा की जाये कम है। इनकी 'अक्षमता' में भी 'सफलता' का मान होना स्वाभाविक -सा लगने लगता है। इनकी ये सारी उपलब्धियाँ इनके व्यक्तित्व को और अधिक उभारने में सक्षम है। इनके शिष्य सभी प्रशंसा के पात्र हैं। वे सभी गुरू की सेवा निःस्वार्थ भाव से करते हुए दिखलायी दिये। इससे इनकी सजीवता, सजगता एवं प्रेरकता का सुष्ठु स्वरूप हृदय को गद्गद् करने में सक्षम रहा है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी सच्चे अर्थों में अध्यापक रहे हैं। आज भी इनकी अध्ययनशीलता अनवरत प्रवहमान है। जिसका प्रतिफलन इनके विरचित साहित्य में निखरकर सामने आता है। जयशंकर प्रसाद की इन पंक्तियों को इन्होंने पूर्णतः आत्मसात कर लिया है—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना,
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं

साहित्य एवं शोध का त्रैमासिक 'साहित्यायन' इसका जीता-जागता उदाहरण है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि डॉ. गुप्त इसी प्रकार अपने गौरवमय कार्यों से जन-जन को लाभान्वित करते रहें।

ईश्वर से प्रार्थना हमारी, इन्हें सुलभ हो हर्ष।
प्रतिभामय जाज्वल्यमान हों, प्रसरित हो उत्कर्ष।।

अपनी कर्मठता से लोगों का, करते रहें विकास।
फूले-फलें स्वयं, सब इनसे, 'भक्त' करें विश्वास।।



डॉ. भक्तराज शास्त्री
643स/11 स्नेहीनगर, पोस्ट-सेटर-सी सीतापुर रोड,
लखनऊ- 226021
मो. नं. : 9415087402

35

लोकतांत्रिक भारत में : संवेदना का क्षोभ



ईश्वर रचित सम्पूर्ण सृष्टि में मानव सर्वोत्तम है और मानव कृत कर्मों में काव्य-सृजन अनुपमेय है। काव्य अमर है। वह प्रत्येक युग में अपने विविध रूपों में समाज को प्रभावित करता रहा है और उसका दिशा-निर्देशक भी रहा है। छंदबद्ध कविता अपनी लय तथा गेयता के कारण सदा से जनता का कंठहार रही है लेकिन वर्तमान में हिन्दी कविता छंद और अलंकार से दूर होती जा रही है। प्रस्तुत कृति "लोकतांत्रिक भारत में" मुक्त छंद में लिखित सत्तर कविताओं का संग्रह है जो 1997 से 2006 के मध्य रचित है। संग्रह की भूमिका 'संभाषण' में कवि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का कथन है, "इन कविताओं में प्रेम, दर्शन, समाज, परिवार, जीवन, संघर्ष, राजनीति, लोकतंत्र, आतंकवाद, शिक्षा, भ्रष्टाचार, नैतिकता आदि अनेक विषयों पर अनुभूतिपरक जीवंत अभिव्यक्ति प्रस्तुत हुई है। (पृ. 5)

डॉ. गुप्त ने प्यार को ऊर्जा माना, इसी से उनको काव्य-सृजन की प्रेरणा मिली। उन्होंने प्यार को विधाता के वरदान के रूप में देखा है—

जब से मिला मीत मिली ऊर्जा/ गीत मुखर हुए
होठों से झरते हैं शब्द/ प्रणय गीत। (पृ. 11)

प्यार वरदान है विधाता का
सृजन का आधार। (पृ. 19)

कवि का ध्यान पर्यावरण की समस्या की ओर भी गया है। वह पर्यावरण-प्रदूषण की समाप्ति के लिए प्रकृति की हरीतिमा को आवश्यक मानता है। हरी-भरी धरती का प्राकृतिक सौन्दर्य मानव-मन को मुग्ध करने वाला और पर्यावरण को

संतुलित रखने में समर्थ होता है—

देती हूँ / प्राणवायु मैं ही/ दूर कर प्रदूषण
पर्यावरण सुधारती
मैं ही हूँ सहचरी तुम्हारी/ युग-युग से। (पृ. 15)

डॉ. गुप्त की दृष्टि में देश केवल भूखंडों का ढेर नहीं है अपितु वह देशवासियों की अस्मिता और अस्तित्व का परिचायक है। देश से ही संस्कृति, भाषा, परम्परा, धर्म और दर्शन की पहचान होती है—

स्वदेश है अस्मिता
हमारे व्यक्तित्व की, अस्तित्व की
पहचान है हमारी
संस्कृति/ भाषा/ परम्परा/ धर्म और दर्शन की। (पृ. 45)

कवि का दार्शनिक चिंतन सहयोगजन्य भावना पर आधारित है। उसकी दृष्टि में एकान्त में रहकर कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। एकाकीपन जीवन में अन्ततः दुःख ही देता है—

एकांत बहुत सालता है
बिना मौत मारता है एकाकीपन
जब भी नहीं मिलता है साथ तेरा
बहुत दुःख देता है एकान्त। (पृ. 16)

भारतीय समाज में सम्मिलित परिवार की प्रथा खंडित हो रही है। डॉ. गुप्त की दृष्टि में पूँजीवाद और भूमंडलीकरण भी इसका कारण है। विलुप्त होते संस्कारों, टूटती परम्पराओं और स्वार्थों की अंधी दौड़ से एकल परिवारों की स्थापना को बल मिला, जिसकी परिणति सब कुछ खो बैठने में हुई। सारे पारिवारिक सम्बन्ध स्वार्थों की धुरी पर टिक गए। आत्मीयता तिरोहित हो गयी तथा धनार्जन एवं भोग-लिप्सा जीवन के सर्वोपरि उद्देश्य बनकर रह गये। डॉ. गुप्त इस भयंकर सामाजिक विखंडन को पोखरण के महाविस्फोट के समान घातक मानते हैं—

एकल परिवार ऐसे बिखर रहे
जैसे इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान
अलग-अलग रहने को अभिशापित
टूट रहीं, बिखर रहीं पीढ़ियाँ

कहीं कोई चिन्ता नहीं/ निन्दा नहीं
सभी हुए आत्ममुग्ध, आत्मलीन
घर-घर है बना हुआ पोखरण
हो रहा प्रतिपल विस्फोट/ महाविस्फोट। (पृ. 68)

कवि अतीत और भविष्य की तुलना में वर्तमान को महत्त्व देता है। वह पाठक को अतीत की भूलभुलैया से बाहर निकलकर वर्तमान में जीने का प्रेरणास्पद संदेश प्रदान करता है। मनुष्य आगत का अनुचर है, तब फिर भविष्य के विषय में चिंता करने से क्या लाभ? जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा। प्रारब्ध के आगे किसी का वश नहीं चलता। अतः वर्तमान में कर्त्तव्य-निर्वाह कर जीवन जीना ही सार्थक है—

हम वर्तमान में रह रहे हैं
उसे जैसा चाहें/ जी सकते हैं—
इसे भरपूर जियो/ जी भर। (पृ. 17)

कामायनीकार प्रसाद जी की भाँति डॉ. गुप्त भी कठिनाइयों और आपदाओं को मानव-जीवन के अभिशाप के रूप में न देखकर, उन्हें सुअवसरों के रूप में देखते हैं। उनकी दृष्टि में सुविधाजन्य भोग-विलास से भरा जीवन न तो हमें गति दे सकता है और न जीवन के गंतव्य तक पहुँचा सकता है। वे कर्मठ लोगों को ही भाग्यमान मानते हैं—

अगर कुछ बनना है
सीखना होगा जीवन जीना/ कठिनाइयों में। (पृ. 25)

* * * * * * * *

रे मूर्ख!
बड़े भाग्वान हैं वे-/ जो काम करते हैं
जिन्हें अवसर मिल पाता है/ काम करने का। (पृ. 39)

समाज में चतुर्दिक व्याप्त निराशा, अविश्वास, अनाचार और भ्रष्टाचार भी कवि को जीवन के प्रति कुंठित, हताश और आशंकित नहीं कर पाते। वह उनको अवसाद का कारण नहीं मानता, अपितु इनसे संघर्षरत रहते हुए विजयश्री की आकांक्षा रखता है। असफलताओं के शिखरों को लाँघकर निरन्तर कर्त्तव्य-पथ पर चलने वाला मनुष्य ही नवयुग का चारण है—

जीता है मनुष्य इस पर भी
जीवंत उसमें है आज भी
आशा/उदीषा/ औ जिजीविषा
लिखने हैं जीवन के गीत/ काल-पत्र पर
मानव ही चारण है नवयुग का। (पृ. 58)

समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता से कवि की भारतीय गणतंत्र के प्रति आस्था की नींव हिलने लगती है। मूलभूत आर्थिक आवश्यकताओं से वंचित बच्चे बचपन में ही मजदूरी करने के लिए विवश हो जाते हैं। इन परिस्थितियों में भारतीय गणतन्त्र भग्नप्राय महल के सदृश प्रतीत होता है, जो कूड़े के ढेर पर जगमगा रहा है—

बेरोजगारी/ बँधुआ मजदूरी
कुसुमित शिशुओं का बन जाना बाल-श्रमिक
लगता है/ हमारा गणतंत्र एक भग्नप्राय महल
जगमगा रहा कूड़े के ढेर पर। (पृ. 50)

डॉ. गुप्त ने समाज को भ्रष्टाचार से मुक्त करने का संदेश दिया है। उनका संकल्प है कि झूठ, बेईमानी और भ्रष्टाचार से घिरे रहने पर भी अब हमें शोषण और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तैयार रहना होगा। वे समाज के सम्यक् विकास के लिए सामाजिक जीवन में शुचिता के निर्वाह को आवश्यक मानते हैं—

नहीं सहेंगे शोषण रंचक भी
नहीं फँसने देंगे युवकों को चक्र में/ शोषण, बेईमानी के
करेंगे काम कायदे-कानून से/ नहीं लेंगे रिश्वत, न देंगे
निर्वहन दायित्वों का शुचिता से करेंगे। (पृ. 21)

आज शिक्षा के केन्द्र राजनीति के अड्डे बनकर रह गये हैं। पद-लिप्सा के समक्ष सभी आदर्श आँखों से ओझल हो जाते हैं। जन-सेवा की आड़ में स्वार्थों की पूर्ति की जाती है। पारस्परिक फूट की कूटनीति ऐसी दुधारी तलवार है, जिससे एक ओर स्वार्थों की पूर्ति अबाध रूप से होती रहती है तो दूसरी ओर पद एवं प्रतिष्ठा भी सुरक्षित रहती है। इन परिस्थितियों में शिक्षा-केन्द्रों का पतन होना स्वाभाविक है। कवि के शब्दों में—

ऐसी चली कूटनीति/ फूटनीति फैल गयी संघों में
खुद रहे घेरे में सुरक्षा के/ कर दिया असुरक्षित सभी को
नींव डाली/ विभागों, भवनों, तालाबों की
खुद तैर पार गए/ डुबो गये कालेज को गहरे में। (पृ. 27)

डॉ. गुप्त ने शब्दों के सूक्ष्म-भेद द्वारा अपने मंतव्य को कुशलतापूर्वक व्यक्त किया है। उनकी पैनी दृष्टि गुट और गिरोह के अन्तर को पहचान लेती है—

गुट होता है पक्षधरता
वैचारिकता समता/ वैचारिक प्रतिबद्धता का
और गिरोह/ संगठन अपराधियों के
अवसरवादी होते हैं गिरोहबाज। (पृ. 31)

कवि का सामाजिक दृष्टिकोण यथार्थवादी है। उसका प्रगतिशील मन पुरातन आदर्शों को स्वीकार नहीं कर पाता। वह मानव की मुक्ति संन्यास, तपस्या और आत्मा को परमात्मा में लीन करने में नहीं मानता। उसकी दृष्टि में मानव की मुक्ति जनसेवा, अन्याय के प्रतिकार, परदुःख कातरता, सामाजिक समरसता और सर्वजन के हित में है—

तेरी मुक्ति/ जन-जन के कष्टों को हरने में
दुष्टों का दलन कर/
दुखितों को अपनाने/ अपना बनाने में
स्वस्थ, सुखी, समरस समाज संरचना मे
सर्वहित स्वयं के समर्पण में। (पृ. 38)

काव्य-संग्रह की अन्तिम कविता 'लोकतांत्रिक भारत में' (जिस पर संग्रह का नामकरण भी है) में डॉ. गुप्त ने आतंकवाद की ज्वलंत समस्या पर निर्भीकतापूर्वक विचार प्रकट किए हैं। वे आतंकवाद के समूल विनाश की कामना करते हैं। उनकी दृष्टि में भारत में लोकतंत्र उपहास का विषय बन गया है। देश के संविधान में उल्लिखित स्वतन्त्रता, स्वच्छंदता का पर्याय बनकर रह गयी है। सर्वत्र मनमानी का साम्राज्य व्याप्त है। वोट बैंक की राजनीति ने आतंकवाद के उन्मूलन में बाधाएँ खड़ी कर दी हैं। आतंकियों पर वर्षों मुकदमा चलता है। उनके विरुद्ध साक्ष्य मिल नहीं पाते। यदि किसी आतंकवादी को सजा हो भी गयी तो उसको बचाने के लिए नये-नये कानूनों का सहारा लिया जाता है। कवि के शब्दों में—

चलता वर्षों-वर्ष मुकदमा
बिना साक्ष्य के वे छूट जाते
अगर सजा फाँसी की पाते
नेतागण सम्मुख आ जाते
उन्हें बचाने में जुट जाते
संविधान की कसमें खाकर
नये-नये कानून बनाते
जनता को देते आश्वासन
अपराधी को रहे बचाते
फांसी से बचकर अपराधी
हँसी उड़ाते लोकतंत्र की
संविधान की। (पृ. 916)

प्रस्तुत काव्य-संग्रह की अन्तिम कविताओं में डॉ. गुप्त की स्वदेश, स्वधर्म और अपनी संस्कृति के प्रति अडिग आस्था दृष्टिगोचर होती है। उनके हृदयोद्गार अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। कवि के हृदय की सारी ममता, ममता का सारा अनुराग और अनुराग की सारी अधीरता में अपने प्रिय देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा की पुकार है। आसन्न संकट को देखकर, जनसाधारण को सचेत करने वाली उसकी वाणी कोरा वाग्जाल नहीं है अपितु उसमें उसके हृदय की सारी वेदना, वेदना की सारी पीड़ा पीड़ा की सारी कसक, अवसाद और विकलता तथा तज्जन्य क्षोभ मुखर हो उठा है। समग्रता डॉ. गुप्त का काव्य-संग्रह 'लोकतांत्रिक भारत में' सुधी पाठकों को रसास्वादन कराने के साथ-साथ चिंतन के लिए भी प्रेरित करता है।

डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य
377, बी-14, नई बस्ती, बिजनौर
चलयंत्र. : 9457283570

36

ऐसो कौन हितू जग माँहीं



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी के विषय में अपने भावोद्गार लिखित रूप से देने का मुझसे आग्रह किया गया है। यह मेरे लिए सम्मान का विषय है। मेरे लिए यह बिल्कुल अलग अनुभव भी है। कुछ भी, कभी भी, आधिकारिक रूप से—चाहे अपनी संस्था या व्यक्तिगत रूप से, लिखना होता, या लिखे हुए को परिष्कृत करना होता है तो सिर्फ और सिर्फ 'गुप्त जी' पर ही निर्भर रहा हूँ सदैव—और अब, उनके अभिनन्दन हेतु छप रहे ग्रन्थ के लिए हृदयोद्गार लिखना, निश्चय ही सौभाग्य भी है और सम्मान भी।

अब जब कुछ लिखने के प्रयास में विचारों की कड़ियों को ढूँढ रहा हूँ, तो मुझे पुनः-पुनः अपने पिताजी का स्मरण हो रहा है—इसलिए नहीं कि पिताजी की मित्रता थी 'गुप्त जी' से परन्तु इसलिए भी कि 'गुप्त जी' मेरे लिए पितृतुल्य भी हैं। वास्तव में 'गुप्त जी' के अभिनन्दन ग्रन्थ हेतु भावोद्गार-लेख पिताजी को ही लिखना चाहिए था। वह लिखते भी, अगर आज हमारे बीच होते। आज जब मैं स्वयं पुस्तक प्रकाशन उद्योग से जुड़ी बारीकियों और पेचीदगियों में उलझा हूँ तब समझ पाया हूँ लेखक और प्रकाशक के रिश्ते को। आमतौर पर बेहद नाजुक होता है यह रिश्ता। यद्यपि इस रिश्ते में आपसी विश्वास और एक-दूसरे पर निर्भरता की अत्यधिक आवश्यकता होती है, पर फिर भी छोटी सी ठोकर खत्म कर देती है इसे। फिर क्या, पिताजी और 'गुप्त जी' का सम्बन्ध प्रकाशक-लेखक भर का ही था? कदापि नहीं। यद्यपि सम्बन्धों की शुरुआत तो ऐसे ही हुई होगी परन्तु आश्चर्यजनक रूप से परम्परागत 'नाजुक' शब्द की तलवार इस सम्बन्ध में कभी भी नहीं रही। कितनी ही बार दोनों को पुस्तकों के विषय में चर्चा करते सुना है मैंने—एक-दूसरे को सुझाव देते, उत्साहवर्धन करते, कई

बिन्दुओं पर उलझते हुए भी—पर कभी भी अविश्वास नहीं देखा। यह हमारी प्रकाशन संस्थान का सौभाग्य ही है कि 'गुप्त जी' का जुड़ाव हमारे साथ कुछ ऐसा हुआ कि आज भी बरेली, विशेषकर उत्तर प्रदेश के बाहर के लोगों को यह जिज्ञासा होती है कि यह प्रकाशन संस्थान क्या 'गुप्त जी' का है?

मेरा स्वयं का परिचय 'गुप्त जी' से कैसे हुआ? ज्ञात नहीं। परिवार में जैसे निकट सम्बन्धियों—चाचा, ताऊ आदि से परिवार के बच्चों का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं होती, सम्भवतः उसी तरह से 'गुप्त जी' बचपन से ही एक पारिवारिक सदस्य की तरह हैं। मुझे याद आ रहे हैं —मेरे दसवीं बोर्ड की परीक्षाओं के दिन। हिन्दी को एक महत्त्वहीन विषय मान, इसकी तैयारी के प्रति दूसरे विद्यार्थियों की तरह मुझमें भी कोई विशेष उत्साह नहीं था। इसको लेकर मेरी माताजी चिन्तित थीं। परीक्षा से कुछ दिन पूर्व उन्होंने स्वयं 'गुप्त जी' को फोन किया और मुझे उनके पास भेजा, तथाकथित जटिल हिन्दी कविताओं को समझने के लिए। माताजी को यह विश्वास था कि 'गुप्त जी' से एक-आध घंटे पढ़कर ही, अच्छे अंकों की गारंटी हो जाएगी। हमारे परिवार में 'गुप्त जी' के प्रति हमेशा ही अपार विश्वास रहा है। कितनी ही बार पिताजी को 'गुप्त जी' से व्यवसाय के साथ-साथ पारिवारिक विषय पर भी चर्चा करते सुना है। कभी-कभी तो सिर्फ पारिवारिक उलझनों पर राय लेने के लिए पिताजी पहुँच जाते थे 'गुप्त जी' के पास। पिताजी के अलावा स्व. मुन्द्रा साहब (डॉ. सतीश चन्द्र मुन्द्रा) ने भी चर्चा के दौरान कई बार बताया कि किस तरह अपने अनुभवों से 'गुप्त जी' समस्याओं के समाधान की राह दिखा देते हैं। उनकी राय हमारे परिवार में सदैव ही सम्माननीय रही है। मेरा मानना है कि पूरी तरह तोल-मोल पर, अच्छाई और कमियों को परख कर, स्पष्ट राय दी है 'गुप्त जी' ने सदैव। जीवन का कटु-मधुर अनुभव, स्वअर्जित यश-कीर्ति व साहित्यकार की दृष्टि—इन सबने मिलकर 'गुप्त जी' को मनुष्य और परिस्थितियों का पारखी बना दिया है। वर्तमान परिस्थितियाँ हमें भविष्य में कहाँ ले जाएंगी—इसका व्यावहारिक आंकलन 'गुप्त जी' से बेहतर कम ही लोग कर पाएंगे।

'स्पष्टता'—स्पष्ट रूप से 'गुप्त जी' की विशिष्टता रही है। उनके परिचित, उनकी संवाद की स्पष्टता से निश्चय ही परिचित होंगे। यही स्पष्टता उनके साहित्य में भी है—जैसे मानो स्पष्ट छवि उनके सामने होती है और वह उस छवि को शब्दों से कागज पर उतार देते हैं। यही नहीं अपनी पुस्तकों के आवरण, टाइप, टाइप-साइज, कागज आदि की छवि भी पुस्तक बनने से पहले ही उन्हें स्पष्ट होती है। स्पष्टता की विशेषता उनके निर्णय लेने की क्षमता में भी दीखती है।

'गुप्त जी' का जीवन एक सामान्य व्यक्ति के जीवन की तरह ही प्रारम्भ हुआ होगा। परन्तु शारीरिक अक्षमताओं के बावजूद अपने असाधारण व्यक्तित्व से उन्होंने अपने सम्पर्क में आने वाले लगभग सभी —चाहे वे उनके सगे सम्बन्धी हों या विद्यार्थी, साथी शिक्षक हों, साहित्यकार हों, समाज सेवक हों, पड़ोसी हों या मित्र—को आकर्षित ही नहीं किया है, अपने से जोड़ा भी है। आज वह व्यक्ति की परिधि से आगे निकल एक संस्था हो गये हैं। एक ऐसी संस्था जो निःस्वार्थ रूप से, चाहे-अनचाहे न सिर्फ साहित्य सेवा कर रही है अपितु अपने से जुड़े लोगों का कल्याण भी कर रही है, उन्हें आलोकित कर रही है, उनमें उत्साह का संचार कर रही है। निश्चय ही यह अभिनन्दन ग्रन्थ इस पूरी संस्था का अभिनन्दन है। वास्तव में 'गुप्त जी' के प्रति कुछ लिखने का मौका पाकर हम सब अभिभूत हैं—यह हमारा ही अभिनन्दन है। हमारा सौभाग्य है कि हमें 'गुप्त जी' का सान्निध्य प्राप्त है। ईश्वर उनका स्नेह व आशीर्वाद सदैव हम पर बनाये रखे।



राहुल शिंघल
पार्टनर, प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली
चलयंत्र : 9359103571

37

जिनके लिए कर्म ही पूजा है



हिन्दी के असाधारण रचनाकार-सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने कहा है—

लीक पर
वे चलें
जिनके चरण दुर्बल औ'
हारे हैं।
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पंथ
प्यारे हैं।

कविवर सर्वेश्वर दयाल की ये काव्य पंक्तियाँ डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सटीक उतरती हैं। उन्होंने अपने आचार-व्यवहार एवं कर्म के द्वारा उपर्युक्त पंक्तियों को सार्थकता प्रदान की है। वे कर्मठता और जीवटता के मूर्त रूप हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बहुआयामी प्रतिभा के रचनाकार हैं। शिक्षा के क्षेत्र में आपने सर्वोच्च उपाधि पीएच.डी. (हिन्दी) और डी.लिट. (हिन्दी) प्राप्त की। बरेली कालेज में हिन्दी विभाग में सन् 1973 से सन् 2000 तक एसोसिएट प्रोफेसर रहे और महाविद्यालयी विविध दायित्वों को सहर्ष पूर्ण करते रहे। 'कर्म ही पूजा है', यह उनकी साधना का मर्ममंत्र है।

एक आदर्श शिक्षक के रूप में बरेली कालेज के हिन्दी विभाग से सेवा निवृत्ति प्राप्त की और आज भी वे निरन्तर साधनारत हैं। यह लगता ही नहीं है कि वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं। वे 'कर्मयोगी' और 'स्वास्थ्य योगी' की भूमिका को साथ-साथ निभा रहे हैं।

मैं सन् 1977 से फरवरी 1983 तक बरेली में रहा। बरेली कालेज के तत्कालीन हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. कुन्दनलाल जैन 'शास्त्री' के निर्देशन में मैंने पीएच.डी. की उपाधि सन् 1978-79 में पूर्ण की और तत्पश्चात् सन् 1983 में डी.लिट. (हिन्दी) की उपाधि भी बरेली में ही रहते हुए प्राप्त की। इस अवधि में ही सर्वप्रथम डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी से मेरा प्रथम परिचय सन् 1977 के आरम्भ में ही पूज्य गुरूवर डॉ. कुन्दन लाल जैन 'शास्त्री' ने कराया था। परिचय का स्थान था-बरेली के सुभाष मार्केट स्थित 'राज बुक डिपो' की दुकान। उन दिनों 'राज बुक डिपो' की दुकान साहित्यकारों और अध्यापकों की मिलन स्थली थी। यहाँ पर प्रायः अपराह्न 4 बजे से लेकर 6 बजे तक अधिकांश साहित्यकार एवं प्राध्यापक प्रायः आते और मिलते थे। मैं भी अपने नैत्यिक कार्यों से निवृत्त होकर 5 बजे तक 'राज बुक डिपो' पहुँच जाया करता था। वहाँ पर पं. होरीलाल शर्मा 'नीरव' और डॉ. कुन्दन लाल जैन 'शास्त्री' प्रायः नैत्यिक रूप में मिलते ही थे। वस्तुतः गुरुवर डॉ. कुन्दनलाल जैन 'शास्त्री' जी ने मेरा प्रथम परिचय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी से इसी दुकान पर कराया था। समय के साथ-साथ डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी से मेरा परिचय प्रगाढ़ होता चला गया। उनकी साहित्यिकता और प्राध्यापकीयता दोनों ने मुझे अतिशय प्रभावित किया। निःसन्देह बरेली कालेज के हिन्दी विभाग के प्राध्यापकों में पूज्य गुरुवर डॉ. कुन्दन लाल जैन 'शास्त्री' के उपरान्त यदि सबसे अधिक किसी ने मुझे प्रभावित किया है तो वे डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ही हैं। उसका कारण यह भी रहा है कि वे सहज एवं सरल व्यक्तित्व के धनी हैं। आत्मीयता एवं मिलनसारिता उनके व्यक्तित्व के अनन्य गुण हैं। उनमें घमण्ड और द्वेष नाम का लेश भी भाव-विकार नहीं है। वे एक आदर्श सृजक एवं प्राध्यापक हैं और इन सबसे पहले वे एक सच्चे एवं अच्छे आदमी है। शिक्षक एवं साहित्यकार का आदमी होना प्रथम शर्त है और डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त इस शर्त को न केवल भली-भाँति निभाते हैं अपितु उनके रोम-रोम में आत्मीय एवं प्यार भरा है। उनसे जो भी प्रथम बार मिलता है, उनका अपना हो जाता है। उनकी स्मृति-शक्ति विलक्षण है। एक बार परिचय के उपरान्त वे भूलते नहीं। यह उनका स्वभाव और वैशिष्ट्य है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा के अनूठे संगम हैं। गद्य और पद्य की अनेकशः विधाओं में उन्होंने उल्लेखनीय एवं संग्रहणीय कृतियों का सृजन किया है। आपकी साठ से अधिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। सात काव्य-संग्रह, तीन जीवनी ग्रन्थ, तीन शोध ग्रन्थ,दो अनुवादित कृतियाँ, बाल उपन्यास, संस्मरण, शोध-पत्र, निबन्ध संग्रह, यात्रावृत्त आदि के रूप में आपने

हिन्दी जगत को बेशकीमती उपहार दिए हैं। उनकी कुछ प्रमुख कृतियों का रसास्वादन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। ये हैं- 'मन पाँखी', 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'गीतश्री', 'प्रसाद', 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी', 'स्मृति के वातायन', 'लोकतांत्रिक भारत में', 'शोधायन', 'परीजाद' और 'हंस जवाहिर' आदि हिन्दी जगत में चर्चित हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने एक आदर्श शिक्षक के रूप में जहाँ अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी, वहीं एक साहित्यकार के रूप में भी अपना विशिष्ट अवदान हिन्दी को दे रहे हैं। 4 जनवरी सन् 1940 को उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जनपद में उनका जन्म हुआ। अपने जीवन के 76 बसन्त और इतने ही पतझड़ वे देख चुके हैं। शारीरिक विकलांगता हो अथवा अन्य कोई बाधा, उनकी लक्ष्य प्राप्ति हेतु बाधक नहीं बन पाते हैं। उनका जीवन प्रेरणा का महाकाव्य है।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन, समाज और राजनीति उनके काव्य का कलेवर बुनते हैं। वे विद्रूपताओं, विषमताओं, भ्रष्टाचार, दुराचार, कदाचार और शोषण का यथार्थ चित्रण अपनी रचनाओं में करते हैं। लेकिन अपने काव्य के माध्यम से भारतीय आदर्श मूल्यों की स्थापना करना उनके जीवन का महान लक्ष्य है। वे भारतीय संस्कृति के महान साधक हैं। हिन्दी और हिन्दुस्तान से उन्हें असीम प्यार है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा और 'राष्ट्र संघ' की भाषा बने, इसके लिए वे निरन्तर अपनी काव्य-साधना के विविध आयामों के माध्यम से जन जागरण कर रहे हैं। वे एक सुन्दर एवं महान भारत के निर्माण के लिए कृतसंकल्प हैं। 'संकल्प' नामक उनकी कविता की ये पंक्तियाँ देखें—

मैं नूतन निर्माण करूँगा।
जब तक प्राण देह में मेरे
तब तक मैं निर्माण करूँगा।
मैं नूतन निर्माण करूँगा।।

(गीतश्री, पृ. 12)

वे आशावादी हैं। भारत को महान देश बनाना चाहते हैं। 'स्वतन्त्रता का अर्थ' नामक रचना की ये पंक्तियाँ देखें—

माना कि लक्ष्य दूर है
भ्रष्टाचार ने किरणों को ढँक रखा है
पर हमें विश्वास है कि कुहरा छँटेगा
हमें अधिकार है कि सूरज को

धरती पर ला सकें।
स्वतन्त्रता है कि
भारत को स्वर्ग-सा बना सकें।

(स्वर्ण जयंती वर्ष, पृ. 78)

भारत माता के प्रति उनका असीम प्यार 'अभिलाषा' नामक रचना में द्रष्टव्य है—

एक यही है मनोकामना
एक यही है उर अरमान!
जन्म-जन्म में बनकर आऊँ
जननि! तुम्हारी ही सन्तान।।

(प्रसाद, पृ. 31)

सारतः भारतीय संस्कृति के महान साधक, हिन्दी के असाधारण रचनाकार, आदर्श प्राध्यापक और एक सच्चे एवं अच्छे आदमी, जोकि मानवीय मूल्यों के पुंज हैं, ऐसे अग्रज तुल्य डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के लिए मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वे निरन्तर स्वस्थ एवं सानंद रहते हुए आयु-शतक को पूर्ण करें और साहित्य साधना जीवन-पर्यन्त करते रहें।



डॉ. महेश 'दिवाकर'
संस्थापक अध्यक्ष अन्तरराष्ट्रीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद (उ.प्र.) भारत
डी.लिट. (हिन्दी), सेवा निवृत्त आचार्य-हिन्दी
सम्पर्क स्वर. : 09927383777, 09837263411

38

मेरे गुरु मेरे पथ प्रदर्शक



डॉ. गुप्त एक ऐसे मार्गदर्शक हैं कि आपके व्यक्तित्व का फानूस बेनूर जिन्दगी को भी जगमगाने में सक्षम है। आज मुझे सौभाग्य मिला है कि मैं अपने गुरुजी परम आदरणीय प्रो. सुरेशचन्द्र गुप्त के विषय में कुछ लिखूँ। किसी शिष्य व शिष्या के लिए, मेरे विचार से इतना बड़ा सौभाग्य यही हो सकता है कि उसके गुरुवर के विषय में उससे कुछ लिखने के लिए कहा जाए।

गुरुजी सुविख्यात रचनाकार और बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी आपकी प्रकाण्ड विद्वता से बरेली ही नहीं बल्कि अन्य राज्यों के साहित्य प्रेमी भी परिचित हैं। आप एक उत्कृष्ट साहित्यकार, उपन्यासकार एवं आजीवन साहित्य साधना में निरत कवि, समीक्षक, कई भाषाओं के ज्ञाता और बरेली कालेज में अध्यापन करने वाले एक मूर्धन्य साहित्यकार हैं।

जीवन में जब-जब मुझे निराशाओं ने घेरा, चारों ओर सघन अन्धकार के मध्य जब मुझे कोई प्रकाशबिन्दु रूपी मार्ग नहीं दिखाई दिया तब-तब आपने मेरा उचित मार्गदर्शन कर सही मार्ग की ओर अग्रसित किया। मैं सदैव जीवन की नाना समस्याओं को साथ लेकर आपसे मिलती रही। आपने सदैव उन समस्याओं का निराकरण किया एवं मेरा उत्साहवर्धन करते रहे।

जब भी मैं आपसे मिली तब ही मैंने आपको गहन चिन्तन एवं अध्ययन करते हुए देखा। ज्ञान के अथाह सागर हैं आप। मैंने अपने जीवन काल में आप जैसा व्यक्तित्व नहीं देखा। आपकी रचनाएँ जीवनसत्य दर्शन का दर्पण हैं। मुझे याद है मैंने आपके आत्मपरिचय में पढ़ा था कि आपने जीवन में बहुत कष्ट उठाए। लेकिन आपने अपने कष्टों को किसी के साथ नहीं बाँटा। जीवन में व्याप्त सभी कष्टों को हँसते हुए सहजता एवं सरलता से अपनाते हुए उनका सामना

किया। आपका ज्ञान सदैव अनुकरणीय है।

अन्त में मैं सृष्टि संचालक से विनम्र विनती करती हूँ कि वह आपको दीर्घायु करें और आपके उद्देश्य प्राप्ति में एवं उत्कृष्ट कृतित्व में सदैव आपका साथ दें। आप इसी तरह सभी का मार्गदर्शन करते रहें। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ सदैव आपके साथ हैं।



डॉ. सीमा मैत्रा
गुलाबराय सी.से. स्कूल बरेली
269 आलोक नगर, एयरफोर्स स्टेशन नैनीताल मार्ग बरेली
मो.नं. : 9258710426

39

दृढ़ निश्चय और सतत साधना के पर्याय



बरेली के प्रसिद्ध त्रिवटीनाथ मन्दिर के दक्षिणी द्वार के सामने बरेली विकास प्राधिकरण का एक छोटा सा दो मंजिला मकान ऊपरी मंजिल पर प्रवेशद्वार से एक छोटे से कक्ष में पहुँचने पर दर्शन होते हैं एक दिव्यांग पुरुष के जो एक बैड पर लेटे या तो पढ़ते रहते हैं या लिखते रहते हैं। बैड से सटी दीवार की अलमारी में ढेर सारी पुस्तकें। बैड पर भी लेटने की जगह को छोड़कर शेष में एक छोटी सी व्यायाम की मशीन तथा पुस्तकें। यही संसार है सत्तर प्रतिशत विकलांग (दिव्यांग) छिहत्तर वर्षीय युवक (डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त) का। छह घंटे सोने तथा अन्य चार-पाँच घंटे नित्य क्रिया, भोजनादि में व्यतीत करने के बाद शेष समय घंटे लगातार अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा लेखन में व्यस्त रहना ही इनकी दिनचर्या है। घर का वातावरण एकदम शान्त। घर में इनके अलावा केवल पत्नी जो इनके लिए **'देवी माँ, सहचरी और प्राण'** हैं, हर प्रकार सहयोग देने वाली, समर्पित। यही परिचय है डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त डी.लिट्. का जिन्होंने दृढ़ निश्चय और सतत साधना से जीवन के हर अवरोध को पार कर सफलता की जिन ऊँचाइयों को छुआ है उनके लिए यही उक्ति सटीक बैठती है।

जितनी विषम परिस्थितियों में जिनका जीवन सुमन खिला।
गौरव गन्ध उन्हें उतना ही यत्र, तत्र, सर्वत्र मिला।

शाहजहाँपुर नगर के बहादुरगंज गल्ला बाजार में स्थित एक घर में 17 नवम्बर 1939 ई. को एक बच्चे का जन्म हुआ, जिसकी जन्म तिथि स्कूल में 4 जनवरी 1940 लिखाई गई और नाम दिया गया सुरेश। पिता गल्ले

के आढ़ती थे और माता गृहणी। एक बड़े भाई, बड़ी बहन विधवा तथा एक छोटा भाई कुल छह प्राणियों का परिवार। बड़े भाई दसवीं कक्षा की परीक्षा दे चुके थे तभी परिवार पर आपदाओं का वज्रपात हुआ। जुलाई 1948 में लम्बी बीमारी के बाद पिताजी का निधन हो गया। घर में कमाने वाला कोई नहीं रहा। दुकान भी साझीदार ने हथिया ली, गोदाम वाला घर भी छूट गया और पैतृक निवास में रहने आना पड़ा। दरिद्रता ने घेर लिया। घर का सामान बेचकर गुजर हो रही थी कि सौभाग्य से अठारह वर्ष की आयु होते ही भाई की 100 रुपये मासिक पर नौकरी लग गई जिससे परिवार की गाड़ी चल निकली।

सुरेशचन्द्र गुप्त ने 1956 में हाईस्कूल पास किया ही था कि अचानक संधिवात रोग से ग्रस्त हो गये। रोग ने भयंकर रूप धारण किया और सारे शरीर के जोड़ों में विशेषकर हाथ, पैर और घुटनों में सूजन आ गई जो असहनीय पीड़ा दायक थी। यथासम्भव उपचार कराने पर भी इस रोग के कारण सात वर्ष चारपाई से उठना भी सम्भव नहीं हो पाया। ऐलोपैथिक, होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक के साथ-साथ तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक आदि सभी तरह के उपचार व्यर्थ गये। अन्ततः शाहजहाँपुर के ही वैद्य हरिश्चन्द्र मिश्र के उपचार से पूर्णतः रोगमुक्त हो गये, पर घुटने मुड़कर रह गए अर्थात् शैयासीन ही रहता था। इस अवधि में सतत सेवा में रत और इनकी बीमारी के कारण चिन्ताग्रस्त माताजी भी 15 नवम्बर 1960 को चल बसीं। फिर भी साहस नहीं छोड़ा तथा बरेली के मिशन हास्पीटल में डॉ. जे.एस. मखानी से आपरेशन कराया, जिससे चलने फिरने योग्य हुए और जुट गये पढ़ाई में। प्राइवेट इण्टर का फार्म भरा। पैरों में प्लास्टर था फिर भी बाँये पैर में कैलीपर पहनकर परीक्षा देने जाने लगे और हाईस्कूल के 10 वर्ष बाद 1966 में इण्टरमीडिएट सर्वाधिक अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण किया। 1968 में बी.ए. करने के बाद एम.ए. करने लखनऊ विश्वविद्यालय चले गये। जहाँ से 1970 में प्रथम श्रेणी में एम.ए. (हिन्दी) करने के बाद "पंत की दार्शनिक चेतना" विषय पर शोध कार्य में जुट गये और 1973 में शोध प्रबन्ध पूरा कर जमा कर दिया। अपरिहार्य कारणों से डाक्टरेट मिलने में विलम्ब हुआ परन्तु इस शोध प्रबन्ध को जब प्रकाशित कराया तो इसे सर्वश्रेष्ठ शोध ग्रन्थ होने का पुरस्कार मिला।

अध्ययन पूरा कर 1973 में नौकरी पाने हेतु प्रयास किये परन्तु विकलांगता के कारण कई बार असफलता का सामना करना पड़ा। अंततः

कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध एक कालेज में प्रवक्ता बने परन्तु डेढ़ महीने बाद ही बरेली कालेज बरेली से भी नियुक्ति पत्र मिला। अतः 30 अक्टूबर 1973 में बरेली कालेज में शिक्षक के रूप में योगदान दिया और वहीं से सन् 2000 में सेवानिवृत्त हुए। इन सत्ताइस वर्षों के सेवाकाल में अनेक छात्र-छात्राओं को स्नातक, परास्नातक स्तर पर शिक्षा प्रदान की, साथ ही साथ शोधछात्रों का सफल निर्देशन किया। स्वयं भी शोध में रत रहकर "छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण" विषय पर 1999 में डी.लिट. की सर्वोच्च उपाधि से विभूषित हुए।

शिक्षण कार्य की व्यस्तता के साथ-साथ सतत् अध्ययन और लेखन कार्य में रत रहकर हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में विपुल साहित्य का सृजन किया जो अद्यतन चल रहा है। अब तक सात कविता संग्रह, तीन जीवनी, 3 शोध ग्रन्थ, 33 समीक्षायें, भाषा, व्याकरण और पत्रकारिता आदि पर कृतियाँ, दो अनुवाद, तीन सम्पादित कृतियाँ तथा तीन पत्रिकाओं का सम्पादन किया जिनमें 'साहित्यायन' का सम्पादन 2007 से अद्यावधि हो रहा है। बरेली महानगर के प्रथम साहित्य भूषण उपाधि विभूषित प्रो. रामप्रकाश गोयल पर केन्द्रित अभिनन्दन ग्रन्थ का संपादन भी आपके साहित्यिक अवदान को स्थापित करता है।

जीवन में आई विषम परिस्थितियों से संघर्षरत रहकर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने जो कर दिखाया और सफलता की जिन ऊँचाइयों को छुआ है वे हम सबके लिए प्रेरणाप्रद हैं। उन्होंने अपनी विकलांगता के सामने कभी भी घुटने नहीं टेके, सतत संघर्ष किया और सफलता पाई। डॉ. गुप्त ने स्वयं कहा है—

"शरीर व्याधि मन्दिरम्" रोगादि लगे रहते हैं। अन्य प्रकार की बाधायें भी आती रहती हैं। आखिर जन्म ही ऐसे परिवेश में हुआ था, जब सारा संसार भयाकुल और संत्रस्त था। पर बाधाओं ने मात्र अवरोध उत्पन्न किया, कर्म संकल्प से विचलित नहीं कर पायीं। वस्तुतः जितनी प्रबल बाधायें आयीं मनोबल उतना ही सशक्त हुआ। मैंने आयुष्य की सार्थकता कर्मण्य बने रहने में समझी और निरन्तर कर्मशील बना रहा। मेरी जिजीविषा अत्यन्त प्रबल है। चाहता हूँ कि हिन्दुत्व और देश-चिन्तन करते हुए कुछ ऐसा लिख सकूँ कि हिन्दी जगत वर्षों तक याद करे।"

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने "होनहार विरवान के होत चीकने पात" उक्ति रचना को सार्थक करते हुए मात्र 23 वर्ष की उम्र में गीता का पद्यानुवाद कर दिया था और आज भी वे निरन्तर साहित्य साधना में रत

रहकर सम्प्रति धर्मिता से जुड़े हुए हैं। अपने संस्मरण "स्मृति के विहग" बड़े ही रोचक ढंग से पूर्ण करने में व्यस्त हैं। 'साहित्यायन' जैसी स्तरीय पत्रिका का सफल सम्पादन उनकी कर्मठता को प्रमाणित करता है। पारिवारिक स्तर पर भी उन्होंने अपने दोनों सुपुत्रों को इंजीनियर बनाया है तथा उनका भरा पूरा परिवार सानन्द है। विपरीत परिस्थितियों में भी जीवन के हर क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलता उनके दृढ़ निश्चय, कर्मठता तथा लगनशीलता का ही परिणाम है जो सभी के लिए प्रेरणाप्रद है।



डॉ. मुरारीलाल सारस्वत
से.नि. प्रधान वैज्ञानिक, कवि एवं साहित्यकार
21, त्रिशूल एनक्लेब, आईवीआरआई रोड, इज्जतनगर, बरेली- 243122
फोन नं. : 9412462219

40

डॉ सुरेशचन्द्र गुप्त-मेरी दृष्टि में



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी से मेरा प्रथम परिचय लगभग 5 वर्ष पूर्व 'साहित्यायन' के माध्यम से हुआ। हुआ यूँ कि गुप्त जी द्वारा प्रेषित 'साहित्यायन' की प्रति डाकखाना द्वारा (नाम के अनुरूप आचरण करते हुए) उदरस्थ कर ली गई तो मैंने गुप्त जी से मोबाइल पर सम्पर्क कर 'साहित्यायन' की प्रति न मिलने तथा पुनः दूसरी प्रति भिजवाने का अनुरोध किया। गुप्त जी ने तत्काल विनम्रता एवं सादगी से कहा—मैं दूसरी प्रति भिजवाता हूँ। दूसरे दिन गुप्त जी का फोन आया, 'साहित्यायन' की दूसरी प्रति डाक से भेज दी गई है, प्राप्त होते ही बताना।' गुप्त जी के फोन के 15 दिनों बाद डाकखाना द्वारा वह प्रति भी पचा ली गई तो मैंने विवश होकर बड़े संकोच से गुप्त जी को पत्रिका प्राप्त न होने के विषय में बताया और मैं पत्रिका पुनः भेजने को कहता उससे पूर्व ही गुप्त जी ने मेरी बात काटते हुए कहा—कोई बात नहीं मैं पुनः भेज दूँगा। साथ ही यह भी बताया कि बरेली रोडवेज बस स्टेशन के सामने अमुक बुक स्टाल पर पत्रिका की कुछ प्रतियाँ रखवा दी गई हैं, कोई बरेली आए तो आप उससे भी मँगवा सकते हैं। गुप्त जी की विनम्रता से मैं प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। सोचने लगा इतना विद्वान प्रतिष्ठित साहित्यकार और साहित्यिक पत्रिका का प्रधान संपादक। इतना विनम्र एवं सहृदय भी हो सकता है। सरकारी सेवा से सेवानिवृत्त होने के बाद साहित्यिक आयोजनों में सक्रियता बढ़ी तो बरेली के एक आयोजन में 'साहित्यायन' के संपादक मंडल के सक्रिय सदस्य एवं डॉ. गुप्त जी के प्रिय शिष्य डॉ. नितिन सेठी से सम्पर्क हुआ। डॉ. नितिन सेठी द्वारा गुप्त जी के व्यक्तित्व, कृतित्व से परिचित हुआ एवं डा. सेठी द्वारा उपलब्ध कराये गये गुप्त जी के साहित्य के अध्ययनोपरान्त

मैंने जाना कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी हिन्दी के उद्‌भट विद्वान, उत्कृष्ट समालोचक, श्रेष्ठ शोध निर्देशक, गम्भीर लेखक, कला-संस्कृति के मर्मज्ञ, सुयोग्य गुरु , सुकवि एवं परिपक्व संपादक जैसे गुणों से परिपूर्ण बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी हैं। आंशिक रूप से दिव्यांग होने के बावजूद अपनी अप्रतिम जिजीविषा के बल पर उन्होंने साहित्यिक सफलता के शिखर को स्पर्श किया, उनकी साहित्य-साधना स्तुत्य है।

डॉ. गुप्त जी का काव्य संसार—गुप्त जी की कविताओं ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। एक कवि होने के कारण कुछ कविताओं के उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

काव्य संग्रह 'मन पाँखी' की कविता 'काश!' की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

क्या जीवन है यह भी
काश!
अध्यापक नहीं हलवाहा होता
भुरारे ही चला जाता खेतों में।

कविता को आद्योपान्त पढ़कर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि खेती-किसानी के वातावरण से दूर विशुद्ध वणिक परिवार में जन्मा, पला, बढ़ा, पढ़ा व्यक्ति ग्राम्य-जीवन के पात्र हलवाहे का प्रभावपूर्ण व यथार्थ चित्रण भी कर सकता है। पंक्तियों में कवि की अपने वर्तमान से असंतुष्टि एवं निराशा भी दृष्टिगोचर होती है। कविता रुहेलखण्ड के ग्रामीण जीवन से प्रभावित है। कविता में रुहेली बोली के शब्दों यथा भुरारे, बतियार्ती, रोटी-पानी का भी समावेश है। काव्य संग्रह 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' की कविता 'भ्रष्टाचार की गंगोत्री' में देश में व्याप्त भ्रष्टाचार पर कवि का आक्रोश—

भ्रष्ट है आकाश
नहीं जिसका छोर कोई।
भ्रष्ट सारे महासागर
विशद व्यापक और गहरे
नहीं जिनकी थाह कोई।

उपरोक्त पंक्तियों में कवि भ्रष्टाचार से इतना आक्रोशित है कि उसने प्रकृति पर भी भ्रष्टाचारी होने का आरोप लगाते हुए उपमानों का सुन्दर उपयोग करते

हुए विषय की सार्थकता को प्रमाणित करने का सफल प्रयोग किया है। काव्य संग्रह 'गीत श्री' के गीत 'संकल्प' में कवि का आशावादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है—

मैं नूतन निर्माण करूँगा।
हूँ किशोर, यौवन पथचारी
जगती का तम हर, प्रकाश कर
सर्वोदय संदेश कहूँगा।

कवि ने उपरोक्त पंक्तियों के माध्यम से युवा वर्ग को प्रेरित करते हुए उन्नति पथ पर अग्रसर होने का संदेश दिया है जो निसन्देह युवकों में उत्साह का संचार करता है। काव्य संग्रह 'ऋतु वासन्ती' के गीत 'गोधरा कांड की प्रतिक्रिया' के माध्यम से पड़ोसी पाकिस्तान को चेतावनी देते हुए कवि का कथ्य द्रष्टव्य है—

ऐसा कभी न सोचा होगा।
करबाया जब देश विभाजन जिन्ना ने, न सोचा होगा।
एक दिन ऐसा भी आयेगा पाकिस्तान विभाजित होगा।

उपरोक्त पंक्तियों में कवि ने पाठकों का ओज/ वीर रस से साक्षात्कार कराया है। गीत में आतंकवादी घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में देश की तत्कालीन परिस्थितियों का साक्षात् चित्रण प्रस्तुत किया है।

काव्य संग्रह 'आत्म मंथन' की कविता 'जीवन्मृत' एवं 'मिट्टी की बात' की निम्नलिखित पंक्तियों में जीवन एवं मृत्यु के विषय में कवि की सकारात्मक सोच का यथार्थ अवलोकनीय है—

कल-कल करती आनन्दोल्लास मग्न
गाती जीवन गीत बहती है सरिता।

एवं

आखिर मरना तो सभी को है
मुझे भी।
सब मिट्टी ही तो है
कौन होगा शामिल
मेरी मिट्टी में।

एक ओर कवि नदी से जीवन की प्रेरणा लेता है तो दूसरी ओर शाश्वत मृत्यु के कटु यथार्थ का वर्णन भी करता है जो कवि के आशावादी एवं निराशावादी दृष्टिकोण का समन्वय है। कवि का दृष्टिकोण कविता के विषयानुकूल है जो कवि की स्पष्टवादी सोच का परिचायक है।

काव्य संग्रह 'लोकतांत्रिक भारत में' की कविता 'अवमूल्यन' में कवि ने मूल्यों के 'अवमूल्यन' का सटीक वर्णन किया है—

यहाँ पुरस्कृत होते हैं वे—
जो अध्यापक हैं- पर पढ़ाते नहीं
हो जाते हैं रीडर-पर पढ़ना छोड़ देते हैं
वर्षों तक धंधों में लगे रहते हैं—
करते हैं-नवनीतलेपन, चमचेबाजी
गिरोहबाजी, और पाते हैं-पुरस्कार
प्रशंसापत्र, प्रतिष्ठा
हमारे देश में सम्मानित हैं-केवल ये।

कवि ने शिक्षक होते हुए स्वयं के अनुभवों के आधार पर शिक्षा विभाग के अवमूल्यन का चित्र उकेरा है। जो कटु सत्य तो है ही, शिक्षा के गिरते स्तर एवं त्रुटिपूर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह भी है। ऐसी परिस्थितियों में अनेक प्रतिभाएँ दम तोड़ देती हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी का साहित्य सृजन उनके विस्तृत अध्ययन, गम्भीर चिन्तन-मनन, एवं अनुभवों पर आधारित है। जिसमें शृंगार, प्रेम, प्रकृति, राष्ट्रीयता, राजनीतिक विद्रूपता, स्वार्थपरता, मूल्यहीनता, भ्रष्टाचार, विसंगति, षडयन्त्र, शोषण, चाटुकारिता, लोकतंत्र की विडम्बना, यथार्थ-चिन्तन, एवं मानव जीवन की समस्याओं की अनुभूति जैसे प्रमुख एवं ज्वलंत विषयों का समावेश है। गुप्त जी की अतुकान्त कविताएँ (नई कविता) शिल्प के सौन्दर्य का उदाहरण है तो गीत-गीत की गेयता एवं छन्दबद्धता के गुणों से परिपूर्ण है। रचनाओं का भाव पक्ष एवं कला पक्ष प्रबल है। उनकी कविताएं शृंगार, करुण, व्यंग्य एवं ओज/वीर रस से संपृक्त हैं।

अर्थात् यदि कहा जाये कि —डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त स्वयं में हिन्दी साहित्य का एक संस्थान है, तो अतिशयोक्ति न होगी।

मैं बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी, अभिनन्दनीय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी को हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करते हुए शुभाशा करता हूँ कि वे अपनी

कविता की पंक्ति—"मैं अभी थका नहीं मैं अभी रुका नहीं। मैं कभी अड़ा नहीं मैं कभी झुका नहीं।" को चरितार्थ करते हुए स्वस्थ रहें, शतायु हों, सतत् सक्रिय रहें तथा अपनी साहित्य साधना रूपी वर्षा की बूंदों से हिन्दी साहित्य की धरा को अभिसिंचित कर उर्वरा बनाते रहें।

श्रेष्ठ समीक्षक, कवि, गुरु, अरु निर्देशक शोध।
संस्थान हैं स्वयं में, हमें कराते बोध।।



डॉ. सतीश चन्द्र शर्मा 'सुधांशु'
प्रधान संपादक- "नये क्षितिज" साहित्यिक पत्रिका एवं संस्थापक अध्यक्ष- के.बी. हिन्दी साहित्य समिति (पंजीकृत) बिसौली-बदायूं (उ.प्र.) 'बाबू कुटीर' ब्रह्मपुरी बिसौली-243720
मो. नं. : 8394034005

41

यायावरी के अनुरागी : डॉ. गुप्त



जीवन की चिर यात्रा में प्रारब्धवशात् कभी-कभी ऐसे सहयात्री मिल जाते हैं जो हमारे जीवन की दिशा ही नहीं बल्कि जीवन के प्रति दृष्टिकोण को ही बदल देते हैं। ईश्वर प्रदत्त जो पाथेय हमें जीवन-यात्रा के सापेक्ष अत्यल्प किंवा नगण्य जान पड़ता है वह अचानक पर्याप्त ही नहीं वरन् बहुत लगने लगता है और मन ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने लगता है।

ऐसे ही एक अग्निप्रेरक व्यक्तित्व को निकट से देखने और समझने का सुअवसर संयोगवश.... नहीं सौभाग्यवश कुछ ही समय पूर्व प्राप्त हुआ। वे हैं हिन्दी जगत् के मूर्द्धन्य विद्वान, आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त। वे एक श्रेष्ठ कवि के साथ-साथ उत्कृष्ट कोटि के गद्यकार भी हैं। 'गद्यं कवीनाम् निकषं वदन्ति' उक्ति के निकष पर वे शुद्ध चौबीस कैरेट वाले व्यक्ति हैं। निबन्ध, आलोचना, इतिहास, अनुवाद, उपन्यास, शोध, सम्पादन, यात्रावृत्त, डायरी, संस्मरण आदि विभिन्न विधाओं में आपकी लेखनी ने अनगिनत रचनाएँ रचकर समाज के प्रत्येक वर्ग का मार्ग प्रशस्त किया है।

इसे मैं अपना दुर्भाग्य ही कहूँगा कि एक ही विषय और एक ही नगर से जुड़ा होने पर भी मैं आप तक इतने विलम्ब से पहुँचा वो भी इसलिए कि मुझे आपके द्वारा सम्पादित पत्रिका में अपना एक 'शोध-पत्र' प्रकाशित कराना था। खैर... मैंने मिलते ही पहचान लिया कि स्नातक में बरेली कालेज, बरेली में वे मेरे गुरु रहे थे किन्तु उनके सान्निध्य का लाभ मैं नहीं ले सका क्योंकि संस्थागत छात्र के रूप में अध्ययनरत होने पर भी मैं व्यक्तिगत छात्र जैसा रहा। कालेज जाने का उद्देश्य उपस्थिति मात्र था। अतः दो वर्षों में दो-एक बार ही आपसे मिलना हुआ वह भी औपचारिक। दर्शन मात्र कहना अधिक उचित है। मैं तीन वर्ष

और बरेली कालेज में रहा किन्तु तब तक आप सेवानिवृत्त हो चुके थे। तदनन्तर मैंने अपने अध्ययन और प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु आपकी दो-एक पुस्तकें भी खरीदकर पढ़ीं। उन्हें पढ़ने पर आपसे मिलने की उत्कण्ठा तो हुई किन्तु वह उत्कण्ठा बलवती न हो सकी इसलिए फलीभूत भी न हुई। कदाचित पूर्व जन्मों के कुछ पाप रहे हों जिन्होंने श्रेष्ठ जन से मिलने को रोके रखा। कहते हैं समय से पूर्व कुछ नहीं होता। हो सकता है सही समय अब आया हो। जो भी हो अध्ययन काल के 16-17 वर्ष पश्चात् आदरणीय गुरु जी डॉ. गुप्त जी से मिलकर एक नवीन ऊर्जा का संचार हुआ। शारीरिक रूप से अक्षम व अशक्त होते हुए भी आपकी लेखनी अनवरत चल रही है और कितने ही अज्ञान-तिमिर में भटकते ठोकर खाते निराश-हताश जनमानस को ज्ञानालोक से आप्लावित कर सद्मार्ग की ओर अग्रसर करने के गुरुतर दायित्व का निर्वहन कर रही है। यह देख मैं श्रद्धावनत हूँ।

आदरणीय गुरु जी से जब भेंट हुई तो उन्होंने अपने द्वारा सम्पादित दो-तीन पत्रिकाएँ सस्नेह आशीष के रूप में प्रदान कीं जिन्हें मैंने दो-तीन दिन में ही पढ़ डाला। उनके संस्मरण इतने रोचक लगे कि उन्हें पुनः पढ़ा और साथ ही अपनी धर्मपत्नी को भी पढ़कर सुनाया। तत्पश्चात् पत्नी ने भी उन पुस्तकों को पढ़ा। गुरु जी से पुनः भेंट होने पर मैंने पढ़ने हेतु कुछ और पुस्तकें माँगीं तो उन्होंने मुझे आदेश दिया कि जाओ पीछे के कमरे में रखी अलमारियों में से जो पुस्तकें अच्छी लगें ले आओ। आदेश का पलन करते हुए मैने साहित्यायन के कुछ अंश एक विशेषांक तथा उनका यात्रावृत्त 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' का चयन कर लिया। जिसके प्रथम पृष्ठ पर आदरणीय गुरु जी ने सप्रेम भेंट के साथ मेरा नाम लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिए तो लगा मानो मुझे कोई अमूल्य निधि सहज ही प्राप्त हो गई हो। बातों ही बातों में ज्ञात हुआ कि गुरु जी का *हीरक जयन्ती वर्ष* है और इस अवसर पर एक ग्रन्थ का प्रकाशन होने जा रहा है। यह जानने पर मेरे मन में आया कि काश मैं भी इसमें कुछ लिख सकता। अपनी इस अभिलाषा को सत्वर गुरु जी के समक्ष प्रकट भी कर दिया। इस पर उन्होंने कहा कि ठीक है तुम 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' यात्रावृत्त पर ही कुछ लिखो। ऐसा आदेश पाकर मैं घर वापस आ गया। कई दिन तो इस उठापटक में बीत गए कि इतने विद्वान व्यक्ति की रचना के विषय में प्रारम्भ कहाँ से करूँ। मुझ सरिस तुच्छ व्यक्ति द्वारा उनके विषय में कुछ कहना *'सूर्यस्य दीप दर्शनम्'* ही होगा। किन्तु फिर स्नेहिल व्यक्तित्व के धनी आदरणीय गुरु जी के श्री चरणों का ध्यान कर लिखने

बैठ गया। *'जैसे उड़ि जहाज को पंछी'* को किसी रोचक कहानी की भाँति शीघ्र ही पढ़ डाला। आनन्दानुभूति के साथ आश्चर्य भी हुआ कि शारीरिक विकलांगता की भीषण झंझावात के बीच यायावरी के प्रति ऐसा विलक्षण अनुराग! मैदानी या रेगिस्तानी क्षेत्र की ही नहीं बल्कि, नैनीताल, हरिद्वार, देहरादून,मसूरी, सहस्त्रधारा आदि दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों की यात्रा भी कई-कई बार आपके द्वारा की गयी। यायावरी के प्रति आपका यह अनुराग सहज ही आकर्षित करने के साथ ही हृत्तंत्री को झंकृत कर गया।

यायावर हिन्दी भाषा का बड़ा ही सुन्दर शब्द है कदाचित् 'घुमक्कड़' के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पर्यायवाची शब्द यही है। यद्यपि एक अन्य वैकल्पिक शब्द 'खानाबदोश' भी है किन्तु भाव के स्तर पर मैंने प्रायः महसूस किया है कि 'खानाबदोश' में जहाँ रोजी-रोटी के लिए दर-दर की भटकन का बोध है वहीं 'यायावर' में भटकन के साथ मनमौजी और जिज्ञासु प्रवृत्ति वाला भाव भी परिलक्षित होता है।

'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' में विद्वान लेखक की यही प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। मूल्यांकन हेतु सहयोगियों के साथ झाँसी जाने के अवसर पर जहाँ सभी सशक्त व सक्षम सहयोगियों का उत्तर पुस्तिकाएँ जाँचने के उपरान्त अपने-अपने कक्ष में घुस जाना किन्तु प्रायः पराश्रित लेखक का अकेले ही ताँगा करके रानी लक्ष्मीबाई के किले के सहित अनेक स्थलों का भ्रमण कर आना तथा बरेली से रतलाम तक की यात्रा अकेले ही कर आना इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं।

यात्रा-आनन्द के विषय में आपका कथन अक्षरशः सत्य है कि "यात्रानुभवों का आनन्द पाने के लिए सबसे अधिक अपेक्षित है अभिलाषा, इच्छाशक्ति। अगर मन हो और ईश कृपा भी प्राप्त हो जाए तो सब कुछ सम्भव है। प्रभु का नाम लो और अपने गंतव्य पर चल निकलो *"क्योंकि जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई।"*

वास्तव में अभिलाषा, इच्छाशक्ति और ईश कृपा की पावन त्रिवेणी में अवगाहन कर कोई भी कार्य किया जाए तो वह आनन्ददायक ही होगा।

यात्रा साहित्य यद्यपि 'स्वान्तः सुखाय' रचना है किन्तु यदि उसे रोचक शैली में कुतूहलपूर्ण ढंग से लिपिबद्ध किया जाए जिसे पढ़ते समय पाठक लेखक से तादात्म्य स्थापित कर स्वयं यायावर बन जाए तो वह साहित्य 'परान्तः सुखाय' बन जाता है। इसके लिए लेखक में जिज्ञासु प्रवृत्ति के साथ-साथ ऐसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि होनी चाहिए जो अवगुण्ठन को भेद कर नैसर्गिक सौन्दर्य का

अवलोकन कर सके। यह गुण डॉ. गुप्त के यात्रावृत्त में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

डॉ. गुप्त में ऐतिहासिक भवनों, महलों-प्रासादों के अवलोकन की प्रबल लालसा है। इसी की पूर्ति हेतु उन्होंने राजस्थान की, दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी आदि स्थलों की यात्राएँ कीं। राजस्थान के आमेर का किला नाहरगढ़-जयगढ़ नामक दुर्ग, शस्त्रागार, संग्रहालय कर्नाटक के श्री रंगपट्टम में टीपू सुल्तान का ग्रीष्म महल, वृन्दावन गार्डन, चामुण्डेश्वरी मन्दिर, मैसूर का राजप्रासाद, बौद्ध साधना केन्द्र, विशाल नन्दी प्रतिमा व महिषासुर की भीमकाय प्रतिमा आदि को उन्होंने मात्र देखा ही नहीं बल्कि मुझ जैसे कितने ही अल्पज्ञों को सरल, सरस व सामासिक शैली में एक बृहद् इतिहास से परिचित करा दिया।

देश के विभिन्न क्षेत्रों की भिन्न-भिन्न भाषाओं, वेशभूषाओं, रहन-सहन, आचार-विचार व संस्कृति के प्रति आकर्षण ने ही शायद डॉ. गुप्त जी को यायावरी का अनुरागी बना दिया है। यात्रा के दौरान उनकी पैनी और सूक्ष्म दृष्टि लोगों की वेशभूषा का सिंहावलोकन करने लगती है। चाहें वह स्पाइस जेट विमान की परिचारिकाओं द्वारा लेखक की आशा के विपरीत जाँघों तक पहने गये अदृश्य प्राय मोजे, मिनी स्कर्ट व शर्ट हों अथवा कुर्ग की महिलाओं की छवि, रूप, देहयष्टि और साड़ी परिवेष्टित अंग। बंगलौर की कामवालियों के ढीले ढाले गाउन सरीखे गहन वर्ण वाले मलिन वस्त्रों में अधोवस्त्रों के होने न होने का अनुमान लगाने का प्रयास उनकी सूक्ष्म दृष्टि का ही परिचायक है।

यात्रा में अर्थ प्रबन्धन की महती भूमिका होती है। यह समझाने के लिए लेखक ने बंगलौर के मैया होटल में 125 रुपये देकर सादे बर्तनों में भोजन करना उचित समझा बनिस्वत चाँदी के पात्रों में उसी भोजन के 350 रुपये देने के। तो वहीं स्पाइस जेट में परिजनों द्वारा खाने का सामान लेने पर भी स्वयं कुछ नहीं लिया कारण स्वयं का शुद्ध शाकाहारी होना बताया तो दूसरा कारण भी बेवाकी के साथ धीरे से बता दिया कि सामान अत्यधिक महँगा था। यह आपके अर्थ प्रबंधन के साथ-साथ आपकी खाँटी वणिक वृत्ति का भी परिचायक है।

कहते हैं पढ़ा लिखा चिन्तन प्रधान व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को सशंकित भाव से देखता है किन्तु सन्देह से उत्पन्न भय से आक्रान्त होकर वह भागता नहीं बल्कि उससे कुछ नया अनुभव प्राप्त करता, कुछ कल्याणकारी देखता है कहा भी गया है—

न संशयमनारूह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारूह्य यदि जीवति पश्यति।।

ऐसे ही लेखक की फ्लाइट के उड़ान भरते ही उन्हें उसके दुर्घटनाग्रस्त हो जाने की आशंका ने भयभीत कर दिया किन्तु शीघ्र ही उन्होंने आशंका के उस अंकुर को जड़ से उखाड़ फेंका क्योंकि उन्हें भयाक्रांत होकर यात्रा के आनन्द को धूमिल नहीं करना था।

संसार को विभिन्न दृष्टिकोण से देखने की अभिलाषा ने ही लेखक को विमान यात्रा हेतु प्रेरित किया क्योंकि वह बचपन से ही पक्षियों को अनन्त नील गगन में उड़ते देखकर सोचते थे कि इन पक्षियों को ऊपर से यह संसार कैसा दिखता होगा? काश! मैं भी पक्षियों की भाँति उन्मुक्त गगन से संसार का सुन्दर चित्र देख सकता। विमान द्वारा बंगलौर की यात्रा पर जाते समय उनका वह स्वप्न आज वास्तविकता के धरातल पर साकार होने जा रहा था किन्तु अफसोस! सघन मेघमाला एवं कुंझटिकाच्छादित आकाश में कुछ भी देख पाना सम्भव न हुआ तो लेखक डॉ. गुप्त जी ने आत्मस्थ होकर आँखें मूँद लीं। ऐसे में उनका अंतःस्थ सुप्त कवि जाग्रत हो गया और वह उस विमान में स्वयं को माँ के नाल से बँधे उस गर्भस्थ शिशु के समान कैद अनुभव करने लगे जो बाह्य संसार में आकर किल्लोल करने, पक्षियों के स्वर में स्वर मिलाने, प्रकृति की सुकुमारता से अपनी तुलना करने और परमात्मा की सुन्दर सृष्टि इस जगती के प्रत्येक सुख व आनन्द प्राप्त करने को आतुर है किन्तु विवश है। इस हेतु उसकी छटपटाहट व अन्य प्रयास पिष्टपेषण मात्र हैं। उन्हीं के शब्दों में—

दूरस्थ व्योम में मम विमान
धँसता जाता हो हिल्लोलित
जैसे शिशु हो गर्भस्थ नाल
से बँधा हुआ, रह-रह चलता
हिल्लोलित करता मातृ-कुक्षि
हो बाहर आने को आतुर

* * * * *

पर, विवश और निरुपाय
सदृश उसके ही मैं अपने मन में
गर्भस्थ गगन में देख रहा
आगे बढ़ता अपना विमान
पर, नहीं दृश्य था कुछ भी तो
मानो मैं था गर्भस्थ भ्रूण।

ऐसा नहीं था कि लेखक के जीवन में हवाई यात्रा का यह प्रथम संयोग था इससे 4 दशक पूर्व सन् 1970 ई. में उड्डयन विभाग द्वारा 20 रुपये में 20 मिनट तक लखनऊ के आकाश का परिभ्रमण कराने का विज्ञापन निकला था। लोग इसका आनन्द भी लेने लगे थे। एक दिन डॉ. गुप्त जी भी अपने मित्र के साथ इस यात्रा हेतु अमौसी हवाई अड्डा गये। किन्तु दुर्भाग्य! माइक पर उद्घोषणा हुई कि आज लखनऊ का परिभ्रमण नहीं कराया जाएगा, कारण भी नहीं बताया गया। सच ही है ईश कृपा के बिना और समय से पूर्व कुछ नहीं होता।

'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' को पढ़कर ज्ञात हुआ कि डॉ. गुप्त जी को ईश्वर और उसकी अहैतुकी कृपा पर पूर्ण विश्वास है। क्योंकि बात-बात में ईश-कृपा की चर्चा करना, गंगा पार करते समय परम्परानुसार गंगा माँ की गोद में सिक्का समर्पित करना, देवालयों के दर्शन करना आदि इसके प्रमाण हैं। विश्वास हो भी क्यों न? कहते हैं जब ईश्वर एक दरवाजा बन्द करता है तो दस खोलता भी है यदि उसने लेखक को शारीरिक रूप से पराश्रित किया तो आर्थिक और सामाजिक रूप से सम्पन्न बनाने हेतु उत्कट मेधा प्रदान की जिसके बल पर उन्हें श्रेष्ठ पद, प्रतिष्ठा और जीविकोपार्जन हेतु सरकारी सेवा में श्रेष्ठ शिक्षक बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

माँ जैसी ममता की छाँह प्रदान करने वाली पत्नी, राम-लक्ष्मण सरीखे आज्ञाकारी पुत्र, उन्हीं की अनुगामिनी पुत्र वधुएँ भी आपकी सेवा में तत्पर रहते हैं, यह भी ईश कृपा ही है।

शायद इसीलिए लेखक डॉ. गुप्त इतने सुन्दर-सुन्दर स्थानों महल-प्रासादों, मन्दिरों, प्राकृतिक दृश्यों आदि का अवलोकन कर आनन्द तो प्राप्त करते हैं किन्तु सच्चा आनन्द धाम अपना घर ही बताते हैं। उन्हीं के शब्दों में—

यदि पत्नी सुखदा कल्याणी,
तो घर ही है सुख शान्ति धाम।
यदि क्लांत विहग को श्रांति मिले,
तो घर ही सच्चा स्वर्ग धाम।।

सत्य ही है व्यक्ति आनन्द और आत्मिक शान्ति की खोज में पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकता फिरता है किन्तु उसे कहीं प्राप्त नहीं कर पाता। एक कवि ने इसका कारण बताते हुए लिखा है—

आत्मिक शान्ति तो व्यक्तिगत चीज है,
विश्व में उसका हल फिर कहाँ से मिले।।

जिस प्रकार जहाज का पंछी यत्र-तत्र भटककर पुनः जहाज पर ही आश्रय और विश्राम पाता है उसी प्रकार लेखक को भी अपने घर वापस आने पर सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। घर उन्हें सुख, शान्ति और स्वर्ग धाम सदृश लगता है। इसीलिए उन्होंने अपने यात्रावृत्त को 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' अभिधान से अभिहित किया है। जो सर्वथा सार्थक व समीचीन है।

ऐसे ही श्रेष्ठ विपुल साहित्य के प्रणेता श्रद्धेय गुरु जी डॉ. गुप्त जी की हीरक जयंती पर ईश्वर से कामना करता हूँ कि वे नैरुज्यपूर्ण जीवन जीते हुए चिरायु हों और चिरकाल तक शोधार्थियों एवं साहित्य प्रेमियों को ज्ञान-गंगा की अजस्र धारा में अवगाहन कराते रहें।

|| किमधिकम् ||



डॉ. गोविन्द दीक्षित
ग्राम व पोस्ट-शिवपुरी, आँवला (बरेली)
प्रवक्ता, जयनारायण इण्टर कालेज, बरेली
चलयंत्र : 08004426048, 08954883951

42

एक सफल व्यक्ति एक वृहद् संस्था



4 जनवरी 1940 को शहीदों की नगरी शाहजहाँपुर के बहादुरगंज मुहल्ले में गल्ले के आढ़ती के घर जन्मा शिशु कालान्तर में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बनकर बरेली के साहित्याकाश का जाज्वल्यमान नक्षत्र बनकर स्वयं प्रकाशित है और अनेक साहित्य मनीषियों को आलोकित कर रहा है। दुर्योग से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के तुरन्त बाद गुप्त जी संधिवात के रोग से ग्रस्त हो गये और फिर किसी भी उपचार से रोग मुक्त नहीं हो सके। चिकित्सीय भाषा में वह विकलांग हो गये पर उनकी इच्छाशक्ति, आत्मबल और स्वयं को स्थापित करने का संकल्प इतना दृढ़ था कि उनकी कोई न्यूनता उन्हें आगे बढ़ने से रोक न सकी। वह अपनी योग्यता के बल पर बरेली कालेज जैसे महान कालेज में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए और 1973 से 2000 तक 27 वर्षों की सेवा के पश्चात् अवकाश ग्रहण कर अपने घर आ गये। पर न विकलांगता उन्हें रोक पायी और न सेवा मुक्त होने से उनकी सक्रियता में कोई कमी आयी। अपने निजी प्रयास के बूते पर वह 'साहित्यायन' जैसी समृद्ध पत्रिका का प्रकाशन और संपादन कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य का यह पुरोधा साहित्य की सभी विधाओं में सक्रिय है। वह लेखक भी है, कवि भी, आलोचक भी है और शोध निर्देशक भी। सभी क्षेत्रों में डॉ. गुप्त ने कलम चलायी है और अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की है। वह अनन्त उर्जा के कोष हैं और निरालस्य भाव से साहित्य की साधना में लीन रहते हैं। वह एक सफल व्यवस्थापक, प्रभावशाली कवि, श्रेष्ठ समीक्षक और समालोचक, एक लोकप्रिय शिक्षक, विद्वान शोध निदेशक, एक प्यारे पति, सम्मानित पिता और सन्मित्र है। उनका हर रूप सम्पूर्ण है और अपनी संपूर्णता में डॉ. सुरेशचन्द्र

गुप्त एक अच्छे मानव हैं। मानवीय मूल्यों का शब्दों से संवाहक है। वह मानव मूल्यों का शब्दों से उद्घोष नहीं करते वरन् अपने जीवन में जीते हैं। वह जीवन जीने की कला के मर्मज्ञ हैं और सार्थक जीवन जीने के पक्षधर। डॉ. गुप्त जीवन की गुणवत्ता और अर्थवत्ता पर बल देते हैं पर वह मनुष्य को अर्थ पशु बनाने को स्वीकार नहीं करते। पैसे के लिए सर्वस्व निछावर करने की जीवन शैली से वह बहुत दूर हैं। अपने पुत्रों को भी वह यही सलाह देते हैं कि अपनी आय में संतुष्ट रहने की आदत डालो। पैसे के पीछे मत भागो। देश में ही रहकर अपने परिजन पुरजन और राष्ट्र की सेवा करो। पैकेज के चक्कर में देश छोड़ कर विदेश भागने की आदत को वह बिल्कुल पसन्द नहीं करते। उनकी दृष्टि में प्रतिभा पलायन व्यक्ति, परिवार समाज और राष्ट्र को भारी क्षति पहुँचाता है। वह मानते हैं कि परिवार में परिवार के साथ और परिवार के लिए जीने की स्थिति सबसे उत्तम स्थिति है। नौकरी व्यापार आदि के क्रम में मानसिक दूरी से कोई रिश्ता नहीं। हृदय में परिवार रहना चाहिए और परिवार में हार्दिक सौहार्द। उनकी सहधर्मिणी भी इसी मत की अनुयायी हैं और एक शुद्ध भारतीय नारी की तरह अपने पत्नी धर्म का निर्वाह करती हैं। बच्चे की तरह डॉ. गुप्त के सुख सुविधा का भरपूर ध्यान रखती है और यथा आवश्यकता उन्हें सारी वस्तुएँ और सुविधाएँ उपलब्ध कराती हैं। वह एक घरेलू महिला हैं और घर आये अतिथियों को अपने आतिथ्य से गद्गद कर देती हैं। परिवार की दृष्टि से डॉ. गुप्त सौभाग्यशाली हैं ऐसी सहचरी, आज्ञाकारी पुत्र, पुत्री की तरह आह्लादित करने वाली पुत्रवधुयें और स्नेहिल पौत्र पौत्रियाँ। डॉ. गुप्त की वंश-लता के ये फल-फूल प्रभु की कृपा के सुखद प्रसाद हैं। डॉ. गुप्त का परिचय इन शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है—

भीतर से पूर्ण शान्त
बाहर से पूरी तरह क्रियाशील
स्वरूप में स्थित पूरी तरह संतुष्ट
ज्ञान से भरपूर वचन व्यवहार में शिष्ट

किसी ने कहा है ज्ञान जितना परिष्कृत होगा वाणी और व्यवहार उतना ही श्रेष्ठ होता है। डॉ. गुप्त को देख सुनकर इन पंक्तियों की प्रामाणिकता पर संदेह नहीं रह जाता। डॉ. गुप्त की लेखनी सतत सक्रिय है और अपनी कलम से कागज पर वह अपनी और जमाने की बातें उकेरते रहते हैं। धन्य हैं डॉ. गुप्त। ऐसे ही साधकों के लिए कहा गया है—

जब भी स्याही का निशाँ कलम से कागज पर आ गया
सारा जहान सिमट के कागज पे आ गया

गुप्त जी की रचनाओं में लोक की चिन्ता है। उनके चिन्तन में मानव समस्याओं का निदान व निराकरण समाहित है। रचनाओं के कालजयी होने के विषय में अन्सार कम्बरी साहब की यह कसौटी डॉ. गुप्त को सही कलमकार सिद्ध करती है—

रह जायेंगे जहाँ में अश्आर वही जिनमें
थोड़ी सी फिक्र भी हो थोड़ी सी शायरी हो

गुप्त जी के काव्य और लेखों में काव्य साहित्य के मूल तत्त्व तथा समस्याओं की चिन्ता स्पष्ट दिखायी देती है। हिन्दी के आचार्य होने के कारण हिन्दी भाषा और साहित्य पर उनकी अद्‌भुत पकड़ है। शब्द अनुशासन और व्याकरण की पकड़ से उनके वाक्य अर्थवान और प्रभावी बन जाते हैं। उनकी कविता आदर्श की नहीं यथार्थ की चिन्ता करती है, भाषा भावानुरूप है और शब्द उनके संकेत पर नर्तन करते हैं।

साहित्य, कला, संस्कृति एवं शोध का समन्वित स्वरूप जब मूर्तिमन्त होता है तो डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जैसे व्यक्तित्व की रचना होती है। भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था में वणिक वर्ग वाणिज्यिक एवं व्यापारिक गतिविधियों के द्वारा धनार्जन के लिए सुविख्यात् हैं पर ये लक्ष्मीपुत्र हाथ में लेखनी लेकर जब माँ वाणी की साधना करते हैं तो सरस्वती की अपार कृपा के अधिकारी हो जाते हैं। भाई सुरेशचन्द्र गुप्त की प्रतिभा इसी शृंखला की एक कड़ी है। व्यवसायी परिवार में जन्म लेकर भी शिक्षानुराग से अनुप्राणित डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा, अपनी जन्मस्थली शाहजहाँपुर में प्राप्त की तथा जी.एफ. कालेज से बी.ए. करने के बाद आपने प्रदेश की राजधानी लखनऊ की ओर प्रस्थान किया और लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. और पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपका एम.ए. का लघु शोध 'कासिमशाह कृत हंस जवाहिरः एक आलोचनात्मक अध्ययन' सूफी काव्य और वर्णन को रूपायित करता है। आपके पीएच.डी. का शोधप्रबंध 'पंत की दार्शनिक चेतना' को प्रकाशित ग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ शोधग्रंथ का नकद पुरस्कार भी आपको प्राप्त हुआ है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के साथ मेरा रिश्ता विविध रूपों में रहा है। मेरे सहयोगी, मेरे आत्मीय स्वजन और मेरे मित्र सभी संबोधन मेरे सम्बन्ध को

परिभाषित करते हैं। साहित्यानुरागी, विद्याव्यसनी और सरस्वती के आराधक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का व्यक्तित्व प्रेरक और अनुकरणीय है। डॉ. गुप्त में साहित्य सृजन की अद्‌भुत क्षमता है। प्रायः यह देखा गया है कि रचनाकार अच्छे समीक्षक नहीं सिद्ध होते और अच्छे समीक्षक अच्छे रचनाकार नहीं बन पाते क्योंकि रचना सृजनात्मक भाव की अभिव्यक्ति है, और समीक्षा आलोचनापरक नकारात्मक भाव से प्रसूत होती है। पर डॉ. गुप्त में दोनों गुणों के निर्वाह की अपार क्षमता है। उनका कवि गद्यकार से श्रेष्ठ लगता है तो गद्यकार कवि से बाजी मारता दिखाई देता है। महादेवी वर्मा जी का यह कथन कि ''गद्य कवि का निकष है'', डॉ. गुप्त के संदर्भ में सटीक प्रतीत होता है क्योंकि उनके प्रकाशित ग्रंथों की संख्या लगभग डेढ़ दर्जन है जिसमें गद्य-पद्य और चम्पू का अद्‌भुत योग देखने को मिलता है।

स्वनामधन्य डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अपने नाम को पूरी तरह सार्थक करते हैं। अपने नाम की बर्तनी से ध्वनित होने वाले सभी गुण उनमें समाहित हैं।

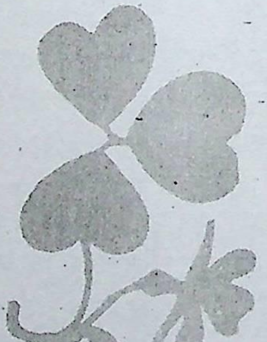
सु—सुव्यवस्था के पर्याय सुमधुर वाणी
रे—रेशम की तरह कोमल भावनाओं से परिपूर्ण
श—शक्ति के सदुपयोग के व्रती
च—चरैवेति चरैवेति के भाव के पथिक
न्—न्यास की वृत्ति के स्वामी
द्र—द्रवित होने का भाव
गु—गुणों की खान
प्—प्यार ही प्यार
त—तथ्यपरक कथ्य के पक्षधर

हम सब अपना जीवन तीन तल पर जीते हैं—तन का तल, मन का तल और आत्मा का तल। तन के तल पर जीने वालों का फोकस भौतिक उपलब्धियों पर रहता है, मन के तल पर जीने वाले व्यक्ति सौन्दर्य प्रेमी होते हैं, अनुभूति को सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य से आपूरित ये व्यक्ति कवि, कलाकार, शिल्पकार तथा साहित्यकार होते है। आत्मा के तल पर जीने वालों का सारा ध्यान आत्मिक और आध्यात्मिक उन्नति पर रहता है। हर मानव में तन मन मस्तिष्क और आत्मा की उपस्थिति होती है पर मनुष्य बनता वही है जिस तत्त्व की उसमें प्रधानता होती है। कुछ विरले मनुष्य तन मन और आत्मा के तल पर एक साथ जीने की सामर्थ्य रखते हैं और सतत् सक्रिय रहकर समाज को कुछ ऐसा अवदान प्रदान करते हैं जो उन्हें अमर बना देता है। लोग उन्हें जिन्दगी के

साथ भी और जिन्दगी के बाद भी आदर का पात्र मानते हैं, अनुकरणीय, आदर्श और समाज के शिखर पुरुषों में स्थान देते हैं ऐसे ही एक महापुरुष हैं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जो अपनी अलौकिक प्रतिभा के बल पर सतत् सक्रिय सहकर साहित्य साधना करते हुए जीवन के सांध्य काल में भी बाल सुलभ सरलता, युवाओं सी सक्रियता, परिपक्व चेतना के माध्यम से अपने व्यक्तित्व के आयाम को इतना विस्तार देने में सफल रहे हैं कि अब वह एक व्यक्ति नहीं संस्था बन गये हैं।



डॉ. एन. एल. शर्मा
भूतपूर्व प्राचार्य एवं अध्यक्ष वाणिज्य विभाग, बरेली कालेज बरेली
आवास—14, कीर्तिनगर बरेली
चलयंत्र : 9412287774



43

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त : एक कर्मठ व्यक्तित्व



गुप्त सर पर आज जब कुछ लिखने बैठा हूँ तो मन उमड़-घुमड़ कर बरेली कॉलेज में बिताये गये अपने जीवन के उन मूल्यवान वर्षों की ओर जा रहा है जिनका मेरे जीवन-निर्माण में महनीय योगदान है—'मन ह्वै जात अजौ वहीं वा जमुना के तीर।' बरेली कॉलेज, बरेली—मेरे जीवन की निर्माणकर्त्री संस्था तो गुप्त सर की कर्मभूमि। उनके जीवन-निर्माण और विकास में भी बरेली कॉलेज की जो भूमिका है, वह मेरे जीवन से कहीं अधिक ही है। इसलिए एक छात्र के रूप में मेरे मन में वह जितना रचा-बसा है, एक अध्यापक के रूप में उससे कहीं बहुत अधिक उनके जीवन में घुला-मिला है।

डॉ सुरेशचन्द्र गुप्त—अब याद नहीं कि इस नाम से मेरा पहला परिचय उनके लिखे किसी दिग्दर्शन पर छपे नाम के द्वारा एक लेखक के रूप में हुआ, अथवा कक्षा में प्रथमतः एक अध्यापक के रूप में; पर यह अच्छी तरह याद है कि दोनों तरह की भूमिकाओं का निर्वाह उन्होंने वखूबी किया। कक्षा में वे पढ़ाने आते थे और जब आते थे तो सुसंगत ढंग से पढ़ाते भी थे। उनकी लिखी गाइड में बहुत कुछ रहता था, तथापि कक्षा में कुछ अलग मिलने की चाहत हम लोगों को उनकी कक्षा में बैठने को उत्साहित किये रहती थी। बरेली कॉलेज में मेरा प्रवेश बी.ए. में सन् 1989 में हुआ और 1994 में हिन्दी में एम.ए. करने तक हिन्दी विभाग से मेरा सम्बन्ध प्रत्यक्षतः और नियमित बना रहा। यों 1995 में बी.एड. करने और सन् 2002 में पीएच-डी. पूरी होने तक यह सम्बन्ध लगभग सीधे ही जुड़ा रहा। 1996-97 के सत्र में तो खैर मुझे बरेली कॉलेज में पढ़ाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। सो, सम्बन्ध तो अलबत्ता क्या कभी टूटेगा अपनी मातृसंस्था से, पर मुझे यह कहना ही होगा कि गुरुवर डॉ. भगवानशरण भारद्वाज के

सेवानिवृत्त होने के बाद बरेली कॉलेज जाना कम हुआ और डॉ. अशोक उपाध्याय सर के बरेली कॉलेज से विदा होने के साथ ही विभाग का वह अन्तिम सूत्र भी मुझसे छूट गया कि जिसके सहारे मैं निस्संकोच हिन्दी विभाग में धड़धड़ाता हुआ घुसकर उसे अपना कह सकता था। अब तो जाने से शायद मुझे कोई वहाँ पहचानने वाला न मिले। अस्तु।

आज जब याद करने बैठता हूँ बरेली कॉलेज को, तो पाता हूँ कि क्या ही भरा-पूरा हिन्दी विभाग था तब का। नौ शिक्षक और सबके सब अपने-अपने क्षेत्रों में विशेष पारंगत, सुयोग्य, सक्षम एवं तेजोमय। डॉ. भगवानशरण भारद्वाज अध्यक्ष फिर डॉ. रमाकान्त शर्मा, डॉ. उमाकान्त शर्मा, डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, डॉ. प्रेमप्रकाश रस्तोगी, डॉ. विद्याधर त्रिपाठी, डॉ. वीरेन्द्र डंगवाल, डॉ मंजरी त्रिपाठी तथा डॉ. अशोक कुमार उपाध्याय। सभी अपनी कुछ-न-कुछ निजी विशेषताओं को लिए हुए। खेद कि आज रमाकान्त सर, उमाकान्त सर और डंगवाल सर हमारे बीच नहीं हैं—आह! मुझे प्रथम से भी नीचे की शिशु कक्षा से लेकर बी.ए., बी.एड., एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी. तक उन सभी कक्षाओं को पढ़ाने का सुयोग प्राप्त हुआ है, जिनमें से बहुतों को मैने भी नहीं पढ़ा है। बरेली कॉलेज से शुभारम्भ कर साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, जे.एन. कॉलेज, पासीघाट, दोजी पोलो गव. कॉलेज, कामकी और अब राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, ईटानगर तक पाँच शिक्षण-संस्थाओं में हिन्दी का उच्च से लकर उच्चतर स्तरीय अध्यापन करने का सुअवसर मिला है और बहुतों के बारे में जानने-सुनने का अवसर मिला है। हर जगह की अपनी विशेषताएँ, कुछ राजनीति भी। देश भर के कई बड़े-बड़े हिन्दी विभाग अपनी थोड़ी बहुत राजनीति के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। बरेली कॉलेज भी इससे एकदम अछूता तो न था, पर मैं अपने को इस मामले में सौभाग्यशाली ही कहूँगा कि मेरे मामले में यह कहीं भी आड़े नहीं आयी। हर जगह मैं सन्तुलन साधने में सफल रहा। बरेली कॉलेज के हिन्दी विभाग को भी मैं इसी सुखद अहसास के साथ याद करता हूँ कि मुझे अपने सभी गुरुजनों का पर्याप्त स्नेह -सौजन्य प्राप्त हुआ। गुप्त सर से भी मुझे यथेष्ट स्नेह प्राप्त हुआ है। इसे यों भी कह सकते हैं कि गुरुजनों में आपस में चाहे थोड़े-बहुत मतभेद भी रहे हों, पर उन्होंने विद्यार्थियों के सामने उन्हें प्रकट नहीं होने दिया, यह उनकी महानता रही।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त नाम है एक कर्मठ, जुझारू, लगनशील ऐसे व्यक्ति का, जिसने अपनी शारीरिक दुर्बलता को अपनी उन्नति एवं विकास के मार्ग में कभी आड़े नहीं आने दिया। शारीरिक स्तर पर निरन्तर संघर्ष करते हुए भी उन्होंने

अपनी मानसिक क्षमता एवं संकल्प-शक्ति से अपने जीवन को निखारा है, व्यक्तित्व को चमकाया है। 'साहित्यायन' पत्रिका में प्रकाशित उनके जीवन-संघर्षों को पढ़कर उनकी जिजीविषा, संघर्ष-शक्ति एवं आत्मबल का लोहा मानना ही पड़ता है। लखनऊ विश्वविद्यालय से शोध कार्य पूरा कर जब वे एक बार बरेली कॉलेज में नियुक्त होकर बरेली आये तो फिर यहीं के होकर रह गये। बरेली कॉलेज को उन्होंने अपनी भरपूर ऊर्जास्विता के साथ अपना जीवन दिया तो बरेली कॉलेज ने भी उन्हें वह सब कुछ दिया है जिसके वे अधिकारी हैं और जिसने उनके जीवन को सफल बनाया है। सन् 1973 से लेकर 1999 तक 26-27 वर्ष उन्होंने बरेली कॉलेज को समर्पित किये। वहाँ पढ़ाया, बहुत से शिष्य और मित्र प्राप्त किये, खूब लिखा और सम्मान अर्जित किया।

गुप्त सर ने इधर काफी मात्रा में गम्भीर लेखन भी किया है। कविता, शोध, आलोचना, संस्मरण, आत्मवृत्त, यात्रा-वृतान्त आदि अनेकानेक विधाओं में उन्होंने हाथ आजमाया है और अब पत्रकारिता का भी आनन्द ले रहे हैं, तथापि विद्यार्थियों में उनकी प्रसिद्धि का बड़ा आधार एक दिग्दर्शन लेखक के रूप में ही है। रुहेलखण्ड क्षेत्र के हिन्दी पढ़ने वाले अधिकतर विद्यार्थी उनका नाम जानते ही होंगे, भले वे नामवर सिंह, रामविलास शर्मा, मैनेजर पाण्डेय, विश्वनाथ त्रिपाठी, नन्ददुलारे वाजपेयी, गोपाल राय, नगेन्द्र, निर्मला जैन आदि के नामों से अपरिचित हों। दिग्दर्शन (गाइड) लेखकों- जिन्हें 'कुञ्जी-लेखक' कहा जाता है, उन्हें विद्वानों (अध्यापकों) में हेय दृष्टि से देखा जाता है। पर, सच तो यह है कि आज की 'शार्ट कट' वाली दुनिया में विद्यार्थियों का काम भी इसके बिना चलता नहीं। आजकल के तो बहुतेरे अध्यापक भी-जिनको पढ़ाने के अलावा और बहुत सारे काम रहते हैं और ऊपर से रोना यह कि विद्यार्थी ही कक्षा में पढ़ने नहीं आते- प्रत्यक्षतः तो गाइड और गाइड लेखक की आलोचना करते हैं, पर परोक्षतः प्रसन्न ही होते हैं कि चलो अपना भी बवाल टला। समय बचा-दूसरे 'महत्त्वपूर्ण' कामों के लिए। विद्यार्थी भी खुश और अध्यापक भी...।

फिर, गाइड लिखना कोई इतना आसान काम भी नहीं है। आखिर, मोटी -मोटी पुस्तकें लिख डालना कोई यूँ ही बैठे-ठाले का खेल नहीं है। ऊर्जा तोउसमें भी खपती है, परिश्रम तो करना ही पड़ता है। दिग्दर्शन की भी अपनी एक अलग महत्ता और उपयोगिता है, अगर वह अध्ययन-प्रक्रिया में एक साधन का काम करती है। दिक्कत वहाँ आती है जब वह साधन के स्थान पर स्वयं साध्य बनने लगती है। खास तौर पर उन विद्यार्थियों के लिए तो स्वाध्याय हेतु दिग्दर्शन और भी आवश्यक हो जाता है जहाँ छात्र 'विद्यार्थी कक्षा में पढ़ने आते ही नहीं' और

'अध्यापक कक्षा में पढ़ाते ही नहीं' की लाचारी के मारे होते हैं। ऐसे विद्यार्थी जायें तो जायें कहाँ—जहाँ पढ़ने-पढ़ाने से बचने के हजार बहाने मौजूद हैं। तो, ऐसे में दिग्दर्शन उनके बहुत काम आती है। आज अगर यह समस्या उत्पन्न हुई है कि 'गाइड', कुञ्जी' और 'गैस पेपर' के सामने सन्दर्भ-पुस्तकें तो दूर, पाठ्य पुस्तकों तक का चलन बन्द-सा हो गया है तो इसमें दोष एकमात्र इनको लिखने वालों के सिर डालकर पिण्ड नहीं छुड़ाया जा सकता। इस हेतु दोषी वे अध्यापक भी हैं जो पढ़ाते नहीं, दोष उन विद्यार्थियों सहित पूरी शिक्षा-व्यवस्था का भी है जिसमें मात्र कुञ्जी पढ़कर ही सफलता प्राप्त हो जाती है, उत्तरदायित्व कहीं-न-कहीं उन पुस्तक-विक्रेताओं का भी है जो मोटे मुनाफे के चक्कर में पुस्तकें रखना-बेचना ही नहीं चाहते अपनी दुकानों पर यह रोना रोते हुए कि 'अब क्या करें साब! कोई पुस्तकें खरीदता ही नहीं तो क्या करें रखकर, सब तो यही खरीदते हैं।'

अपनी सुदीर्घ यात्रा में अनेकानेक रेलवे स्टेशनों से जब गुजरता हूँ तो वहाँ थोड़ा-सा समय मिलने पर भी एक बार वहाँ की पुस्तकों की दुकान पर अवश्य दृष्टि डाल लेता हूँ। एकाधिक बार तो इस चक्कर में गाड़ी छूटते-छूटते बची है, क्योंकि पुस्तकों-पत्रिकाओं की खोज में कई बार गाड़ी से उतरकर दूसरे प्लेटफार्म तक जाने का जोखिम लिया है। आवश्यक नहीं किसी बुक स्टाल या व्हीलर पर जाकर कोई पुस्तक या पत्रिका खरीदूँ ही, पर एक बार दृष्टिपात की इच्छा जरूर रहती है जो वहाँ खींचकर ले जाती है। सो, ऐसे ही किसी समय बरेली जंक्शन पर गाड़ी का इन्तजार करने के क्रम में अपना यह शौक पूरा कर रहा था कि एक छोटी सी पत्रिका पर दृष्टि पड़ी—'साहित्यायन'। हाथ में लिया तो सम्पादक के रूप में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का नाम देखकर खरीद लिया। पढ़ा तो उन्हें एक पत्र भी लिख दिया। फिर तो जब भी कभी आते-जाते बरेली जंक्शन या सिंडिकेट या राज बुक डिपो पर नया अंक दिखा तो लाता रहा। बाद में तो खैर, सर ने अंक वहाँ भेज़ने ही शुरू कर दिये। असल में बरेली से कुछ मोह ही ऐसा है कि वह कभी और कहीं छूटता ही नहीं। अतएव, बरेली से कुछ अच्छा हो रहा हो और उससे कुछ अपने भी जुड़े हों तो लगाव होना स्वाभाविक ही है।

यूँ तो 'साहित्यायन' में बहुत कुछ रहता है। अपने लघु स्वरूप के बावजूद कविता, कहानी, संस्मरण, शोध, आलोचना, पुस्तक-समीक्षा आदि-आदि अनेकानेक विधाओं के अन्तर्गत यह प्रभूत सामग्री अपने भीतर समाये रहती है, तथापि इस पत्रिका में क्रमशः प्रकाशित होते रहे सर के धारावाहिक संस्मरणों ने

विशेष चर्चा प्राप्त की। उनके जीवन की बचपन से लेकर अब तक की खट्टी-मीठी यादें, उनके जीवन-संघर्ष और सफलताएँ, पारिवारिक-सामाजिक सम्बन्धों के दायरे आदि तो इन संस्मरणों में समाये ही हैं, अब ये पचासों साल पहले के पीछे छूटे हुए सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की झाँकी भी दीखती है जो नयी पीढ़ी के लिए औत्सुक्य, जिज्ञासा और कुछ-कुछ विस्मय की चीज भी है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात इस पत्रिका में छपने वाले उनके विस्तृत सम्पादकीय होते हैं, जिनमें किसी एक विषय को उठाकर वे विस्तार से उसका विवेचन-विश्लेषण करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा, भीष्म साहनी, तस्लीमा नसरीन जैसे कितने ही चर्चित और ख्यात रचनाकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व पर उन्होंने अपनी बेबाक राय सामने रखी है, और सविस्तार उनका साहित्यिक परिचय प्रस्तुत किया है। इस पत्रिका में विभिन्न विधाओं में प्रकाशित अनेक पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय भी सम्मिलित रहता है जो बड़ा महत्त्वपूर्ण है। मेरी भी कुछ पुस्तकों का परिचय इसमें प्रकाशित हो चुका है।

गुप्त सर ने काफी परिमाण में लेखन-कार्य किया है। उन्हें लेखन सहज-साध्य है और उनकी लेखनी निरन्तर सक्रिय रही है। विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों हेतु उन्होंने बहुत से दिग्दर्शन लिखे हैं जिन्हें पढ़कर न जाने कितने विद्यार्थियों का उद्धार हुआ है। संक्षिप्तता और सटीकता उनके दिग्दर्शनों की विशेषता रही है जिसकी वजह से वे छात्र-छात्राओं में काफी लोकप्रिय रहे हैं। उनके दिग्दर्शन की भाषा स्तरीय, ठोस, स्पष्ट और विषय वस्तु के अनुरूप रहती है। अनावश्यक विस्तार उसमें नहीं रहता। दिग्दर्शनों के अलावा भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। कविता, निबन्ध, शोध, समीक्षा, संस्मरण, यात्रा-वृतान्त, आत्मवृत्त आदि कितनी ही विधाएं हैं जिनमें उन्होंने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। बहुत सारी पुस्तकें उनकी प्रकाशित हैं, जिनमें से कुछ को पढ़ने का अवसर मुझे भी मिला है। 1996-97 में मैं जब बरेली कालेज के हिन्दी विभाग से विद्यार्थी की बजाय अध्यापक के रूप में जुड़ा तो उसी सत्र में गुप्त सर की किसी उपलब्धि के उपलक्ष्य में एक संक्षिप्त समारोह (सम्भवतः उनकी पीएच.डी. के शोध-प्रबन्ध के पुरस्कृत होने पर) हुआ था जिसमें कॉलेज के प्राचार्य डॉ. आर.पी. सिंह तथा हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. भगवानशरण भारद्वाज समेत कई लोग सम्मिलित हुए थे। उस अवसर पर सर ने अपने पुस्तक रूप में प्रकाशित लघु शोध-प्रबन्ध 'हंस जवाहिरः एक अध्ययन' तथा अपने कविता संग्रह 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष' की एक-एक प्रति मुझे भी प्रदान की थी। फिर बाद में आते-जाते 'पन्त की दार्शनिक चेतना'; 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य'; 'लोकतान्त्रिक भारत में'; 'स्मृति के वातायन'; 'जैसे

उड़ि जहाज को पंछी' आदि पुस्तकें भी मुझे प्राप्त हुईं।

सर के एम.ए. में लिखे गये लघु शोध प्रबन्ध से लेकर पीएच.डी. तथा डी.लिट. के शोध-प्रबन्ध तक सभी प्रकाशित हो चुके हैं। 'पन्त की दार्शनिक चेतना' उनकी पीएच.डी. के शोध-प्रबन्ध पर आधारित पुस्तक है जिसमें उन्होंने विभिन्न दार्शनिक प्रभावों को आत्मसात करके विकसित हुई सुप्रसिद्ध छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पन्त की काव्य-चेतना का विश्लेषण किया है और इस दृष्टि से उनके काव्य का मूल्यांकन किया है। उनके डी.लिट. का शोध प्रबन्ध भी दर्शन शास्त्र से ही सम्बन्धित है जो इस विषय में उनकी गहरी रुचि को प्रमाणित करता है। 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित इस ग्रन्थ में उन्होंने दार्शनिक दृष्टि से छायावादोत्तर काव्य की पड़ताल की है और छायावादोत्तर कहे जाने वाले कवियों के दार्शनिक विवेक को टटोलते हुए उनके काव्य पर पड़े विभिन्न समसामयिक दर्शनों के प्रभाव को रेखांकित किया है। सर की कविताओं के विषय प्रधानतः दो रहे हैं—एक आत्मानुभूतियाँ तथा दूसरा वर्तमान जीवन की विडम्बनाओं-विसंगतियों के प्रति आक्रोश। इनमें भी निज जीवन की अपेक्षा बाह्य-जगत की विद्रूपताओं और त्रासदियों पर प्रहार ही उनकी कविताओं में अधिक देखने को मिलता है। 'स्मृति के वातायन' उनकी जीवन से जुड़े संस्मरणों से सम्बन्धित पुस्तक है जिसमें अपने घर-परिवार के सदस्यों से लेकर मित्रों-परिचित्रों से जुड़ी घटनाओं एवं अनुभूतियों को उन्होंने प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में 'पुरस्कार भगवान दिलाये नहीं किसी को' शीर्षक संस्मरण में उन्होंने अपने शोध-प्रबन्ध पर 'अमन सिंह आत्रेय पुरस्कार' मिलने का विस्तार से ब्योरेवार विवरण दिया है तो 'ईश्वर! मुझे परीक्षा में मत डाल' संस्मरण में सन् 1975 में हुई बरेली कॉलेज की परीक्षाओं के वीभत्स यथार्थ को चित्रित किया है। इस आलेख में लेखक की भाषा कुछ स्थलों पर मर्यादाओं का अतिक्रमण भी कर गयी है। 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' में गुप्त सर ने अपनी यात्राओं विशेषकर दक्षिण भारत और उसमें भी बंगलोर, मैसूर से सम्बन्धित अनुभवों का विवरण प्रस्तुत किया है। यात्रा-सम्बन्धी उनके इन वर्णनों में विशेष बात यह है कि वे सिर्फ उन स्थलों का ऊपरी चित्रण करके नहीं रह जाते अपितु उनके अतीत और वर्तमान से जुड़े महत्त्व और महात्म्य पर भी यथेष्ट प्रकाश डालते चलते हैं। छोटी-छोटी चीजों के भी ब्योरे इन यात्रा-वृत्तों में दिये गये हैं। यहाँ पर भी कहीं-कहीं विवरण अपनी सीमाओं को पार कर गये हैं, जैसे-'हम लोगों ने पहले मूत्र विसर्जन किया, फिर आराम से जलपान किया। जब बाहर जाने के लिए गेट खोले गये तो एक बार पुनः शौचालय गये।...' (पृ. 25)

वस्तुतः आधुनिक जीवन की जो विडम्बना है कि बड़े होने के साथ ही बच्चों के पंख निकल आते हैं और वे उड़कर दूर जाकर अपना बसेरा बना लेते हैं, वह गुप्त सर के भी साथ है। उनके दोनों बेटे सर्वसमर्थ होकर अपने-अपने परिवारों के साथ बाहर रह रहे हैं। सन्तानें यदि लायक निकल जायें और स्वावलम्बी हो जायें तो माता-पिता के लिए यह सन्तोष, आह्लाद और गर्व का विषय होता है, परन्तु इसका एक दूसरा पहलू यह भी है कि माता-पिता अकेले हो जाते हैं। जिन बुजुर्गों के पास कुछ करने को होता है और जो अपने जीवन के लिए कुछ लक्ष्य चुन लेते हैं, उनकी व्यस्तता उनको इस अकेलेपन का अहसास कम होने देती है। गुप्त सर ने इस अकेलेपन की त्रासदी से बचे रहने के लिए अपना रास्ता बहुत पहले से ही चुन लिया था। यह रास्ता है-अध्ययन-सृज़न का, इसलिए जीवन की अनेकानेक कठिनाइयों में भी उन्होंने अपने लेखन को प्रभावित नहीं होने दिया है। पत्रिका 'साहित्यायन' से उन्होंने अपना एक साहित्यिक परिवार निर्मित कर लिया है जो उन्हें 'एकोऽहं बहुस्यामि' का बोध अवश्य कराता होगा। वे अभी सक्रिय हैं, लेखन के प्रति समर्पित हैं, पठन की उनकी रुचि अभी जाग्रत है, यह बहुत अच्छी बात है। मैं उनको इस अवसर पर बहुत बधाई देता हूँ और कामना करता हूँ कि यूँ ही वह तन-मन से स्वस्थ बने रहकर लिखते पढ़ते रहें और दीर्घायु प्राप्त करें। हमारे जैसे उनके अनेक शिष्यों-मित्रों, शुभचिन्तकों की शुभकामनाएँ उनके साथ हैं।



प्रो. हरीशकुमार शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, रोनोहिल्स
दोइमुख, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश- 791112
मोबाइल नं. : 9436053279, ई. मेल : hksgpn@gmail.com

44

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के काव्य में शृंगार रस



साहित्य में रस का महत्त्व सर्वविदित है। काव्यशास्त्र में रस को काव्य का जीवन तत्त्व कहा गया है। ऋग्वेद् में इसका प्रयोग गौ-दुग्ध, मधु के अर्थों में हुआ है-'जन्मे रसस्य वावृधे'। ऋग्वेद् से कामसूत्र तक रस का अर्थ बदलता रहा। साहित्य में रस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम भरतमुनि के द्वारा किया गया। उनका प्रसिद्ध सूत्र है-'तत्र विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिस्पत्तिः।' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रस का अर्थ 'आनन्द' करते हैं। वास्तव में रसानुभूति का आधार मूल भाव की व्यापकता में निहित है। डॉ. नगेन्द्र ने रस सिद्धान्त में काव्य के प्रसंग में रस शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में किया है—भावमूलक काव्य सौन्दर्य के अर्थ में, भावमूलक काव्य सौन्दर्य की अनुमिति के अर्थ में, सामान्य काव्य सौन्दर्य के अर्थ में। वास्तव में रस की स्थिति एक ओर तो कवि या कलाकार के हृदय में रहती है तथा दूसरी ओर पाठक के हृदय में।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार हैं। आप गद्य व पद्य, दोनों ही विधाओं में समानधर्मी कारयित्री प्रतिभा के उदाहरण हैं। आपने कुल सात काव्यसंग्रहों का प्रणयन किया है। जिनके नाम क्रमशः मन पाँखी, स्वर्ण जयन्ती वर्ष, गीतश्री, ऋतु वसंती, आत्ममंथन, लोकतांत्रिक भारत में तथा देवी माँ सहचरी प्राण हैं। आपके काव्य में सामाजिक चेतना, मनोवैज्ञानिकता, राष्ट्रीयता की भावना के साथ-साथ रसानुभूति भी मिलती है। कदाचित् आपके काव्य का यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष कहा जा सकता है। कवि डॉ. गुप्त के काव्य में सभी नौ रसों का परिपाक पुष्टता से हुआ है। सभी रस अपनी सुन्दरता से काव्य पंक्तियों को अभिसारित व अभिभाषित करते हैं। परन्तु शृंगार मनुष्य की नैसर्गिक चेतना है। काव्य यात्रा के प्रारम्भिक चरण से ही शृंगार उनका सहगामी व सहयात्री रहा है। सौन्दर्यानुभूति की यही दृष्टि गुप्त जी के काव्य में शृंगार रस का परिपाक करती है। प्रथम रस का नाम ही शृंगार रस है।

शृंगार शब्द की उत्पत्ति शृंग शब्द से हुई है। इसका अर्थ है 'कामोद्रेक'। 'आर का अर्थ है गति या प्राप्ति। अतः शृंगार का अर्थ है-'कामोद्रेक की प्राप्ति'। रामदहिन मिश्र के अनुसार, "प्रेमियों के मन में संस्कार रूप से वर्तमान रति या प्रेम रसावस्था को पहुँचकर जब आस्वाद योग्यता को प्राप्त करता है, तब उसे शृंगार रस कहते हैं।' शृंगार रस के दो प्रमुख भेद हैं—संयोग तथा (वियोग) विप्रलम्भ। इसका स्थायी भाव रति है। साहित्यदर्पण में रति की परिभाषा दी गई है—'पतिर्मनोऽनुकूलेऽये मनसः प्रवणातियम्' अर्थात् मन के प्रिय वस्तु के विषय में प्रेमपूर्ण उन्मुखी भाव का नाम 'रति' है। वास्तव में मन की अनुकूल अवस्था, जिसमें प्रेमी-प्रेमिका साहचर्य लाभ प्राप्त करते हैं, वही रति है। डॉ. गुप्त के काव्य में संयोग व विप्रलम्भ- दोनों ही शृंगार के भेद प्राप्त होते हैं।

संयोग का लक्षण है-संयोग कालावच्छिन्नत्वेन प्रकृष्ट रति विषयः संभोगः[6] अर्थात् जिस मिलन में नायक-नायिका प्रसन्न होकर रस-सागर में अवगाहन करते हैं, वह भाव संयोग है। काव्य संग्रह 'मन पाँखी', 'गीत श्री', 'ऋतु वसन्ती' की रचनाएँ मूलतः शृंगारिक ही हैं। 'मन पाँखी' के पृष्ठ संख्या 8 पर एक कविता 'प्यार का पाथेय' शृंगार का सुन्दर भाव रखती है—

तुम, मेरा प्राण, और तुम्हारा प्यार मेरे जीवन का पाथेय
तुम, मेरा सर्वस्व, और तुम्हारा प्यार, मेरे जीवन का ध्येय

यहाँ कवि आलम्बन है, प्रेयसी उद्दीपन। प्रेम की व्यंजना अनुभाव का कार्य कर रही है। 'अंग बोलते हैं' कविता भी शृंगारिकता का पुट लिये हुए है-

चरण चपल गोरी के, पायल की रुनझुन
कहती है पथिक जरा रुक जाओ
स्निग्ध गौर कदली सी संगमरमरी जंघायें
कंपित स्वर-मत जाओ (पृ. 36)

कवि यहाँ षोडशी बाला का चित्रण करता है। सुसज्जित नायिका प्रियतम के समागम को तैयार है। यहाँ रति स्थायी भाव है। उद्दीपन अंगों की शोभा है। प्रिय का ठहरना, रोमांच, कम्प, अनुभाव है। संचारी भावों में हर्ष, ब्रीड़ा, कौतूहल है। 'ब्रीड़ा और प्रजनन' पूर्णतया शृंगार रससिद्ध कविता है। यहाँ कायिक, मानसिक, वाचिक, सात्विक, चारों अनुभाव गुंफित हो गये हैं। शृंगार की परम्परा में पाँच प्रकार की रतियो का वर्णन पाया जाता है—कांता विषयक, राजा विषयक, देव विषयक, पुत्र विषयक, सखा विषयक। गुप्त जी के काव्य में कांता विषयक रति

प्रधान रूप से पाई जाती है। इसमें नायक-नायिका की रति का वर्णन होता है। 'संभवामि युगे-युगे' में यही रति अंकित की गई है—

नर हो या नारायण सबकी एक ही चाह
कंचन के साथ ही मिले कामिनी षोडशी सुंदरी आह। (पृ. 36)

काव्यशास्त्रियों ने मिलनेच्छा, पूर्वस्मृति, मिलनानुभूति, मान, ये चार संयोग शृंगार के लक्षण बतलाये हैं। डॉ. गुप्त के काव्य में ये चारों अवस्थायें निर्दिष्ट हैं। 'मिलनानुभूति' अवस्था का चित्र देखिये—

दिल कहता है देखूँ तुम्हें और देखता रहूँ युग-युग तक
दिल कहता है देखता रहूँ छूता रहूँ अंग-अंग समेट लूँ अपने में
और निर्झर सी फूट पड़े रस-कविता (पृष्ठ 62)

आत्ममंथन में 'पूर्वस्मृति' का रंग भी द्रष्टव्य है

तेरह की थी जब 'हुई ऋतुमती प्रथम बार
भय और लज्जा एक साथ
तभी हुई अनुभूति प्रथम बार-नारीत्व की (पृ. 75)

ऋतु बसंती के कई गीतों में संयोग शृंगार की झलक मिलती है। प्रकृति को उद्दीपन के रूप में व्यक्त करता हुआ कवि कहता है-

विहँसता शतदल सरों में, झूमती झंझा स्वरों में
गा उठा पी-पी पपिहरा कूकती कोकिल वनों में
चल रहा रति का हिंडोला, प्रिय मिलन की मधुर बेला।। (पृ. 75)

यहाँ विशिष्ट उद्दीपकों का प्रयोग उल्लेखनीय है। स्वीकृति व समन्वय का संयोग काव्य पंक्तियों में संभोग शृंगार को सार्थकता प्रदान कर रहा है। 'गीत श्री' संग्रह में 'पावस-गीत' एक लोकगीत है जो विभिन्न अनुभावों व संचारी भावों की सार्थक व सफल निष्पत्ति करता है—

सिजिया विछाय गोरी, कीन्हें लागी बतियाँ
सजना की गुदिया बिसरि गई दुनियाँ
बरसै री बदरिया, हो बरसै री बदरिया[13] (पृ. 72 'गीत श्री')

वास्तव में शृंगार रस तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में झलकता है। कवि डॉ. गुप्त

जी ने जीवन के इन्हीं मीठे पलों की सुधियों व स्मृतियों को सँजोकर संयोग श्रृंगार का योग अपनी काव्यकृतियों में किया है। यहाँ संयोग श्रृंगार अपनी पूर्णावस्था व सफल रूप में प्राप्त होता है। चारों पुरुषार्थों में से 'काम' का अपना ही महत्त्व है। यहाँ संयोग श्रृंगार के कामासक्त वर्णन उपलब्ध हैं।

जीवन में संयोग के साथ-साथ वियोग भी है। कवियों ने विरह का वर्णन भी प्रचुरता के साथ किया है। विप्रलम्भ श्रृंगार साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जहाँ आश्रय और आलम्बन का पारम्परिक वियोग हो, वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार होता है। विप्रलम्भ के चार भेद स्वीकार किये गये हैं-"स च पूर्वरागभान प्रवास करुणात्मकस्चतुर्धा स्यात्" अर्थात् पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण, ये चार भेद विप्रलम्भ श्रृंगार के होते हैं। डॉ. गुप्त जी के काव्य में विरह के ये चारों भेद मिलते हैं।

'पूर्वराग' का रंग द्रष्टव्य है—

सच मानो, रह-रह आती याद तुम्हारी
दिन के उजाले में दीखता अंधेरा ('मन पाँखी' पृ. 24)

'मान' का भाव देखिये-

अभी से चल दिये प्रिय क्यों, अभी तो रात बाकी है
कि वीराने में बिजली की चमक, तुमको बुलाती है
('गीत श्री' पृ. 25)

आशा के विपरीत अपराधजनित प्रणय कोप 'मान' कहलाता है। 'मान' का भाव निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

तुम क्या रूठे सजन, रूठी दुनिया मेरी
बेबफा भी बनूँ, कोई तुमसा नहीं ('ऋतु बसन्ती' पृ. 23)

प्रिय के विदेश गमन पर उत्पन्न वेदना को 'प्रवास विप्रलम्भ' कहते है। कवि मन उत्कंठित हो उठता है। 'प्रवास' के चित्र देखिये-

प्रियतम बोलो कब आओगे
होगी पूनम की मधुर रात्रि, ज्योत्सना धरा पर विहँसेगी
आ भेटेंगा राकेश उसे, चन्द्रिका उसे अभिसारेगी।
(ऋतु बसन्ती' पृ. 54)

यहाँ आश्रय कवि तथा आलम्बन पुरुरवा है। प्रेम आकुलता अनुभाव है। विषाद

आदि संचारी भाव हैं। वियोग का पराकाष्ठा पर पहुँच जाना 'करुण' है। डॉ. गुप्त के काव्य में करुणात्मक वियोग के दर्शन भी होते हैं। यहाँ प्रियतम से मिलन की आशा अभी जीवित है। निम्नलिखित भाव देखिये—

जग निष्ठुर, दग्ध हृदय है, सींचो रह-रहकर इसको।
बाहर आकर क्यों दोगे, हँसने के कटु क्षण जग को।[19]

('गीत श्री' पृ. 60)

और भी पंक्तियाँ देखिये—

नित्य के प्रसंग हैं मार्मिक, पर आँखों में आँसू नहीं आते
मन, करुणा से नहीं पसीजता ('आत्ममंथन' पृ. 52)

ध्यातव्य है कि यहाँ काम की अभिलाषा, चिंता, उद्वेग, उन्माद जैसी दशायें भी प्राप्त होती हैं। ऐसी ही एक भाव दशा देखिये—

टूट गयी नींद औंचक सी जाग गयी
चौंक गया हिरनी सा मन, बाबरा। ('आत्ममंथन' पृ. 66)

'उन्माद' का रूप दर्शाती अधोलिखित काव्यपंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

तुम्हारे एक आँसू पर कुँआरी जान दे दूँगा
वियोगी राजरोगी हूँ, जहाँ की खाक छानूंगा ('गीत श्री' पृ. 54)

वास्तव में कवि किसी रस को साधकर यत्नपूर्वक काव्यपंक्तियों का सृजन नहीं करता। रस पेशलता तो अनायास ही उसके काव्य का अंग बन जाती है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी की कविताओं में भी शृंगारिक वर्णन जहाँ-जहाँ भी प्राप्त होते हैं, वहाँ अपने पूर्ण राजत्व के साथ। यद्यपि कहीं कहीं ये वर्णन अतिक्रमित से भी हैं परन्तु शृंगारिकता के छलकते मधुप्यालों में ये मन को गुदगुदाते से हैं। कवि ने स्वयं के आलम्बन को लेकर विभिन्न उद्दीपक चित्र खींचे हैं। शृंगार रस का जैसा अभिव्यंजन डॉ. गुप्त के काय में सम्प्राप्त है, वह उनके काव्य-सृजन को भी शृंगारिक करता है।



डॉ. नितिन सेठी
सी-231 शहदाना कालोनी मॉडल टाउन, बरेली
चलयंत्र : 9027422306

45

समय साक्ष्य : चिरन्तन सत्कार!



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त 'बरेली हिन्दी परिवार' के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सम्मानित सदस्य हैं। इन्होंने 30 अक्टूबर 1973 ई. को बरेली कॉलेज के हिन्दी विभाग में ज्वाइन किया और 30 जून 2000 ई. को सेवानिवृत्ति प्राप्त की। जिस समय इनका हिन्दी विभाग में पदार्पण हुआ उस समय मैं एक विद्यार्थी था किन्तु इनके सौजन्यपूर्ण व्यवहार से मुझे कभी यह अनुभव नहीं हुआ कि मैं महत्त्वहीन हूँ। प्रायः मेरे प्रति इनका व्यवहार मित्रवत ही रहा। यथावसर सबकी सहायता करना, सबके प्रति समुचित आदर प्रकट करते हुए उदारता प्रदर्शित करना इनका स्वभाव है। मुझे अच्छी तरह याद है कि बी.एससी. के किसी विद्यार्थी को प्रेक्टिकल करते समय या किसी अन्य विशेष कारण से घड़ी की आवश्यकता थी गुप्त जी ने बिना किसी संकोच के घड़ी यह कहकर दे दी कि "जब परीक्षा समाप्त हो जाये तो यदि चाहो तो लौटा देना। वैसे इस समय मुझे यह अनुभव हो रहा है कि इसकी आवश्यकता मुझसे अधिक तुम्हें है।" डॉ. साहब प्रायः विद्यार्थियों की फीस अपने पास से दे देते थे और जब वे पैसे वापस करके लौटाते तो प्रायः उन्हें कुछ पैसे यह कहकर दे देते थे कि 'ये रखो, ठीक से घर पहुँचना।' अखबार वाले की साइकिल चोरी होने पर अपने बेटे की साइकिल उसे देने की घटना भी मुझे अब तक याद है। समय पर कॉलेज आना, विशेषज्ञतापूर्ण ढंग से पढ़ाना इनका स्वभाव था, जो कि अब भी आवश्यकतानुसार वैसा ही है। इनका सहकर्मी बनकर हिन्दी विभाग में कार्य करने का अनुभव भी मेरे लिए पर्याप्त सुखद और स्मरणीय है। वर्ष 2000 ई. में मुझे विभागीय पुस्तकालय का प्रभारी बना दिया गया था। डॉ. साहब ने विधिवत् सभी पुस्तकें वापस कीं और अन्त में

लगभग 20 मिनट तक कक्षा के बाहर अदेय प्रमाणपत्र लेने के लिए खड़े रहे। जब मैंने इनसे कहा कि "आप तो बड़े हैं-कक्षा में ही आ जाते।" तो आँखों में आँसू भरकर जो उत्तर दिया वह मुझे अब भी याद है कि "यार, आखिरी साल में तुम्हें पढ़ाते हुए कुछ देर तक देख लेने दो।"

डॉ. गुप्त जी ने लगभग 80-90 पुस्तकें लिखी हैं। इनमें गद्य भी है, शोध ग्रन्थ भी है और पद्य भी। मुझे सबसे प्रिय है इनका डी.लिट्. का शोध ग्रन्थ—'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण'। इसमें इन्होंने ठीक ही लिखा है कि "कविता सत्य की उज्ज्वलतम किरण है। वह 'स्व' के सीमित क्षेत्र से 'पर' के अनन्त क्षेत्र में प्रवेश कराती है। मनीषी कवि अहं का विगलन कर सम्पूर्ण मानव समाज को आनन्द-सरोवर में स्नान कराने का प्रयास करता है। वह आदर्श का प्रेमी और मानवता का पुजारी होता है। उसका प्रयास रहता है कि धरा-जीवन में स्वार्गिक सत्ता अवतरित करा दे। वह यथार्थ के धरातल पर खड़ा होकर आदर्शोन्मुख सत्-काव्य का सृजन करता है, और चेष्टारत रहता है कि मनुष्य आत्मस्वरूप को पहचाने और दुःख-द्वन्द्व से परे रहकर परमानंद की अनुभूति करे।" इसके प्रारम्भ में लिखी कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी पठनीय हैं—

आभारी हूँ
उन सबका भी
जिनसे, किसी भी रूप में
सहायता-सहयोग मिला,
और उन बाधाओं का भी
जो आत्मबल बन जाती हैं
विषम क्षणों में।

सात अध्यायों में विभक्त इस ग्रन्थ में छायावादोत्तर काव्य की पृष्ठभूमि, वेदोपनिषदिक दर्शन, गांधी दर्शन, मार्क्स दर्शन, अरविन्द दर्शन इत्यादिक का विशद निरूपण हुआ है। इनकी प्रासंगिकता पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते में अपार विश्वास प्रकट करते हुए गुप्त जी ने अपनी लेखन और शोध साधना का अभूतपूर्व प्रदर्शन इसमें किया है। सुमित्रानन्दन पन्त के शब्दों में—

सद्सद् कारण कार्य प्रकृति के केवल मात्र प्रयोजन,
देव तुम्हारी अमित दया से होता भव का पालन,

तुमसे रहित अचिर अपूर्ण जग, तुमसे पूर्ण चिरन्तन,
तुम हो भव है, शून्य एक के गुण से गणित निरन्तर।

सबसे अधिक प्रसन्नता तब हुई मुझे जब इनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर किये गये शोध कार्य पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने वाले अभ्यर्थी के साक्षात्कार का सुअवसर महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय के द्वारा आमंत्रित विषय-विशेषज्ञ के रूप में मिला। जीवन काल में ही यश-समृद्धि की उपलब्धि का ऐसा संयोग प्रायः कम साहित्यकारों को ही मिलता है। इसीलिए डॉ. गुप्त जी का शतशः अभिनन्दन, वे शतायु हों, यही मेरी मंगल कामना है।



डॉ. अशोक उपाध्याय
पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बरेली कालेज बरेली
आवास—डाक्टर्स कालोनी, सिविल लाइन्स, बरेली
चलयंत्र. : 9927373723

46

"बहुआयामी कृतित्व के पुरोधा"



साहित्य की प्राणदायिनी शक्ति का स्रोत साहित्यकार के व्यक्तित्व में निहित है। साहित्य में लेखक के व्यक्तित्व की छाप और उसका प्रभाव आ ही जाता है। कवि लेखक और समीक्षक ''डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी'' का बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्व उन्हें कवि, गीतकार, निबंधकार, शोध-समीक्षक, कहानीकार, संस्मरणकार आदि रूपो में प्रतिस्थापित करता है।

कविवर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त हिन्दी काव्य जगत के सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर हैं, साथ ही अविराम लेखनी के धनी भी। गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में इनकी सर्जना शक्ति सक्रिय है। डॉ. गुप्त के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का गठन अनेक तत्वों के सम्मिश्रण से हुआ है। वह जीवन के पग-पग पर मिलने वाले अच्छे-बुरे को साथ लेकर चले हैं, फलतः अनुभूति की सम्पदा के गुप्त जी पूर्ण धनी हैं। गुप्त जी स्वभाव से विनम्र मिलनसार, हँसमुख प्रकृति के हैं। नई-नई पुस्तकों-पत्रिकाओं को पढ़ना तथा समीक्षा आदि लिखने में गुप्त जी की विशेष अभिरुचि है। अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक संस्थाओं से जुड़े डॉ. गुप्त निरभिमानी सद्-संस्कारों के प्रबलचेता भद्रपुरुष हैं, उनके संतुलित व्यक्तित्व में समरस-शान्त स्वभाव, सोच और मानवतावादी दृष्टिकोण आदि को रेखांकित किया जा सकता है।

लेखन कार्य में आपकी रुचि बचपन से ही थी शायद दुःख पीड़ा और अभावों ने उनके अन्तर्मन को भावुक और संवेदनशील बना दिया था। बाल्यकाल से ही रोगग्रस्त हो जाने के बाद भी बाल मन उद्वेलित होता रहा अपनी छः-सात वर्षों की बीमारी के अन्तराल में जो मिला पूरे मनोयोग से पढ़ा, गीता, रामायण, महाभारत आदि पढ़ने में विशेष रुचि रही, गीता के कई अध्याय उन्हें पूर्णतः

कंठस्थ थे। शायद गीता ने उन्हें और सबल बनाया, उन्हीं दिनों उन्होंने कुछ कहानियाँ, बाल उपन्यास, और गीत भी लिखे, गीता का पद्यानुवाद भी किया, उन्हीं दिनों कई कवितायें अखबारों, पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई। 1968 से ही वे अपने विद्यालय की पत्रिकाओ के संपादक भी रहे।

सन् 1972 में छपी ''आधुनिक हिन्दी-उर्दू काव्य समीक्षा'' आपकी पहली प्रकाशित पुस्तक थी। बरेली कालेज में शिक्षण कार्य करते हुए अनेक छात्रोपयोगी पुस्तकें भी लिखीं, राज बुक डिपो, प्रकाश बुक डिपो (बरेली) यूनिवर्सिटी बुक डिपो (हल्द्वानी) आदि आपके प्रमुख प्रकाशक रहे हैं। गुप्त जी स्वयं अपना भी एक प्रकाशन संस्थान चला रहे हैं, जिसका नाम है-''अभिलेख प्रकाशन''। अब तक आपकी पचास से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

समकालीन हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान रखने वाले, डॉ. गुप्त ने साहित्य की अनेक विधाओं को अपने मूल्यवान सृजन से समृद्ध करने का कार्य किया है, जिसे मैने संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है—

डॉ. गुप्त का कवि भावप्रवण भी है और बौद्धिक भी, उनकी मूल चेतना अनुभूतिपरक है, वह आन्तरिक है और उनके उद्वेग का उच्छ्वास है। आपकी अपनी गरिमा है। सामाजिक अनुभव व शिक्षा ने उन्हें जो बौद्धिकता दी बहुत सी कविताओं में वह प्रखर हो गई है। आपका कविता संग्रह-मन पाँखी (1990) स्वर्ण जयन्ती वर्ष (1998) गीत श्री (2005), ऋतु बसन्ती (2006) आत्ममंथन (2008) लोकतांत्रिक भारत में (2009) और देवी माँ सहचरी प्राण (2014) अब तक प्रकाशित काव्य संग्रह हैं।

कवि व गीतकार डॉ. गुप्त जी ने बाह्य से अंतस्थ की यात्रा अपनी कविताओं में की है, समय की धड़कनों को पहचानकर आपने अनेक गीतों का सृजन किया है। आपके गीतों में मानव का नारी विषयक, प्रेम व सौन्दर्य भी उजागर हुआ है, मन पाँखी, गीत श्री, ऋतु बसन्ती आदि में मनमोहक गीत अपने सौन्दर्य के साथ द्रष्टव्य है।

आपने शोध, आलोचना अनुवाद आदि विविध रूपों में साहित्य सृजन किया। आपके शोध ग्रन्थ 'हंस जवाहिर : एक अध्ययन' एक सूफी प्रेमाख्यान पर आधारित है। 'पंत की दार्शनिक चेतना' आपका प्रमुख शोध ग्रन्थ था, 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य' विषय पर आपने डी.लिट. किया जिसे विद्वानों द्वारा सराहा गया।

गुप्त जी ने समय-समय पर निबन्ध भी लिखे हैं, आपके निबन्ध भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित ललित शैली में लिखे गये हैं। आपके निबन्ध जीवनीपरक

व विचारात्मक हैं, ज्योतिवाफुले, कार्लमार्क्स, कामिल बुल्क आदि पर जीवनी परक निबन्ध लिखे जो विशेष रूप से सराहे गये हैं।

गुप्त जी ने कहानी लेखन में भी अपनी अभिरुचि दिखवाई है। उनकी 'प्राण प्रिया मल्लिका' प्रसिद्ध कहानी है।

डॉ. गुप्त की सम्पादन कला के दो रूप सामने आते हैं। एक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक के रूप में तथा दूसरा साहित्यिक पुस्तकों के रूप में। आपके 'नवजीवन' और 'स्वतन्त्र भारत में' अनेक लेख व कवितायें प्रकाशित हुई। पत्रिका 'साहित्यायन' के प्रधान सम्पादक भी डॉ. गुप्त ही हैं। इस पत्रिका में शोधपरक आलेख, शोध-पत्र आदि का प्रकाशन विशेष रूप से किया जाता है। हिन्दी-उर्दू काव्य समीक्षा, भारतीय काव्य-शास्त्र, सूर साहित्य का विशिष्ट अध्ययन हिन्दी भाषा ज्ञान एवं रचना (1994), हिन्दी व्याकरण एवं रचना (1995) हिन्दी मौखिकी परीक्षा दर्शन (1981) पत्रकारिता और संपादन कला (1990) हिन्दी एक व्यावहारिक धरातल (2003) हिन्दी भाषा एक ऐतिहासिक परिदृश्य (2003) प्राचीन एवं मध्ययुगीन हिन्दी काव्य (प्रबन्ध-काव्य 1989) आदि आपकी प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ हैं।

डॉ. गुप्त एक संवेदनशील सचेत व जागरूक व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उनके जीवन के अनुभव जगत से परिचित कराने वाले संस्मरण हैं— 'मेरे दादा' 'बिछुरत एक प्रान हरि लेही', जो स्मृति के वातायन में संग्रहीत है।

समग्रतः डॉ. गुप्त का बहुआयामी व्यक्तित्व न केवल समीक्षा, कहानी तथा काव्य जगत् में अपितु संपादन क्षेत्र में भी है। साहित्य की विविध विधाओं में आपका लेखन आज भी अविरल अवाध गति से सक्रिय है। वैचारिक सादगी और पीयूषमयी वाणी आपके बहुआयामी व्यक्तित्व के सूचक हैं। वस्तुतः गुप्त जी सुसंगठित व्यक्तित्व तथा बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं।



डॉ. आराधना वैश्य
प्रवक्ता हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली
चलयंत्र : 9897713433

47

सुयोग्य शिक्षक और सुधी साहित्यकार



बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ सुदृढ़ स्तम्भ हैं। साहित्य साधक अपनी साधना से पुष्पवत् सम्पूर्ण परिवेश को सुवासित करता है। उसका रचना धर्म जहाँ समाज में दर्पण का कार्य करता है वहीं युग-युगान्तरों तक आने वाली संततियाँ उसके रचनात्मक सृजन से अपना पथ प्रशस्त करती हैं, पीढ़ियां गर्व करती हैं तथा शताब्दियां यशगान करती हैं। डॉ. गुप्त निश्चय ही ऐसी साधना के सशक्त हस्ताक्षर हैं।

वे हिन्दी के यशस्वी साधक, रचनाकार, कवि, लेखक, वरिष्ठ शिक्षाशास्त्री, समालोचक, समीक्षक, पत्रकार एवं सफल शोध निर्देशक हैं। डॉ. गुप्त से मेरी भेंट सन् 1999 के अक्टूबर माह के अन्तिम सप्ताह में हुई। उस समय सेवा में एकल स्थानान्तरण के तहत मैंने बरेली कालेज हिन्दी विभाग में वरिष्ठ प्रवक्ता पद पर कार्यभार ग्रहण किया था। विभाग में अन्य वरिष्ठ शिक्षकों के साथ डॉ. गुप्त जी का भी स्नेहाशीष मुझे प्राप्त हुआ। सर! प्रायः पुस्तकों के अध्ययन में व्यस्त रहते। स्नातक एवं परास्नातक कक्षाओं के छात्र-छात्राएँ सर से बहुत प्रसन्न रहते थे। कारण, कक्षा में पढ़ाने के साथ ही सर परीक्षा से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी विद्यार्थियों को देते थे। विद्यार्थियों के लिए निर्देश पुस्तिका भी सर तैयार करते थे। यह एक शिक्षक का महत्त्वपूर्ण दायित्व था कि विद्यार्थियों का परीक्षाफल बहुत सम्मानजनक और खुशियों भरा हो। सन् 2000 में डॉ. गुप्त सेवानिवृत्त हुए फिर भी कालेज और छात्र-छात्राओं के लिए उनका मार्गदर्शन बना रहा।

'साहित्यायन' पत्रिका में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के संस्मरण (अप्रैल-जून 2016) (स्मृति के विहग) में अपनी बाल्यावस्था, अपने भाई अग्रज और अनुज तथा पूज्य माँ का उनकी देखरेख और उन्हें उनके कदमों और जीवन में स्थापित

करने का करुणासिक्त वर्णन है। डॉ. गुप्त का संस्मरण 'ममानुज' अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। आज के समय में भी ऐसा सम्भव है। असहनीय परिस्थितियों में अध्ययन और फिर उच्च शिक्षा एम.ए., पी-एच.डी. प्राप्त कर गौरवशाली बरेली कालेज में शिक्षक बनना उनकी दृढ़प्रतिज्ञा और धैर्य का प्रतीक है। डॉ. राहुल अवस्थी की पंक्तियाँ डॉ. गुप्त जी की जिजीविषा का ही मानो उद्‌घोष है—

उसे मंजिल को पाने से, कहीं भी कौन रोकेगा।
जिसे कठिनाइयों में कद, बढ़ा लेने की आदत हो।।
भला उस शख्स का, आंधी-बवण्डर क्या बिगाड़ेगा।
जिसे तूफान को सर पर चढ़ा लेने की आदत हो।।

तीन दशक तक आपने बरेली कालेज में अध्यापन कार्य किया। आपके शोधग्रन्थ "पंत की दार्शनिक चेतना" को सर्वश्रेष्ठ शोध प्रबन्ध का प्रतिष्ठित "आत्रेय पुरस्कार" प्राप्त हुआ। तदुपरान्त "छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण" पर आपको डी.लिट् की उपाधि से नवाजा गया।

डॉ. गुप्त सौम्य, मृदुभाषी, गम्भीर, मननशील व्यक्तित्व के धनी है। आप उच्चकोटि के साहित्यकार हैं। अब तक आपके सात कविता संग्रह 'मन पाँखी, 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'गीतश्री', 'ऋतु बसन्ती', 'आत्ममंथन' 'लोकतांत्रिक भारत में' और देवी माँ सहचरी प्राण क्रमशः 1990 से 2014 तक प्रकाशित हुए। यदि "मन पाँखी" कवि की सहजता की मूल पूंजी है—'जिसकी बूंद साकार हुई मेरे रूप में उसको' समर्पण है तो "स्वर्ण जयन्ती वर्ष" कवि की शब्द शक्ति के अमोघ अस्त्र का संग्रह है। 'मेरा भारत महान', 'स्वतन्त्रता का अर्थ' तथा 'वन्देमातरम्' शीर्षक कविताएँ इसका प्रतीक हैं जो जाग्रत समाज और साहित्यकार की अनुभूति का चेतना के विशदीकरण और कर्त्तव्य बोध की भावना का आदर्श उपस्थित करती प्रतीत होती है। "गीतश्री" गेय गीतों का संग्रह है। ये गीत कवि की किशोरावस्था के भावोद्‌गार हैं। संग्रह के अधिकांश गीतों में कवि की आत्माभिव्यक्ति एवं आकुल व्यथा विविध रूपों में मुखर हुई है। कवि ने अपने मन की व्यथा, दुःख एवं नैराश्य को सशक्त अभिव्यक्ति दी हैं। "गीतश्री" वैविध्यमयी भावों की रसधार है। इसमें प्रेम, शृंगार, विरह, उत्साह, उल्लास, दृढ़ निश्चय, नैराश्य, राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति के साथ कवि की रागात्मकता भी द्रष्टव्य है। "ऋतु बसन्ती" के गीत अपनी मोहकता एवं मधुर अनुगूँज से गुंजित है। कुछ पंक्तियाँ—

ऋतु बसन्ती हो रहा है जग बसंती,
मन बसंती हो रहा है तन बसंती।
फूल सरसों, गंध की आवाज देकर
टेरती, दिखला, सुनहरा मग बसन्ती।

''आत्ममंथन'' विषय वैविध्य का संकलन है। इस संकलन की रचनाएँ यथार्थ की उस कठोर धरती पर जन्मी प्रतीत होती हैं जिनमें जीवन का सत्य मुखरित हुआ है। पहली ही कविता 'कवि' के हृदय की पीड़ा का चीत्कार है—

किन्तु यहाँ तो
नहीं तेल की एक बूँद भी।
कैसे दीप जलाऊँ।
(दीवाली है...)
अंधकार में ही बैठा हूँ।
मैं कवि हूँ।

''आत्ममंथन'' कवि का आत्ममंथन, भावनाओं का आलोड़न, विलोडन है। जो कवि-चेतना को सहज प्रवाहित होने से रोक न सका। अनुभूति, विचार, दर्शन, संस्कृति, साहित्य कला का 'नवगीत' बन गया और कवि ने आत्ममंथन को उन्मुक्त कर दिया। ''लोकतांत्रिक भारत में'' कविता संकलन समकालीन चेतना को अभिव्यक्ति देने वाली कृति है। अपने कथ्य तथा शिल्प की दृष्टि से हिन्दी काव्य जगत की सराहनीय पुस्तक है जिसमें अतीत के गौरव के साथ-साथ वर्तमान की विसंगतियों के होते हुए भी सुखद भविष्य का संदेश दिया गया है।

जीवनी साहित्य के अन्तर्गत गुप्त जी ने ''विश्व के महान साहित्यकार'' 'सुमित्रानंदन पंत', 'बाबा नागार्जुन' जैसी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ दी हैं। शोध ग्रन्थ में 'हंस जवाहिर' उनका लघु शोध प्रबन्ध है जो 'सूफी कवि कासिम शाह कृत' महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन है। ''पंत की दार्शनिक चेतना'' डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का पीएच.डी. का शोध प्रबन्ध है जो सर्वश्रेष्ठ शोध प्रबन्ध की दृष्टि से 'आत्रेय' पुरस्कार से पुरस्कृत है। "छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण'' शोध प्रबन्ध पर आपको डी.लिट् की उपाधि प्राप्त हुई।

समीक्षा की दृष्टि से आपने 33 पुस्तकों की समीक्षा की तथा भाषा व्याकरण पत्रकारिता को लेकर सोलह पुस्तकों पर कार्य किया। अनुवाद की दृष्टि से आपकी दो रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं पहली ''प्रसाद'' जो बांग्लादेश के कवि 'काजी अशरफ महमूद' विरचित गीत-संग्रह 'प्रसाद' का हिन्दी लिप्यान्तर

है जिसमें भगवान कृष्ण के प्रेम की अभिव्यंजना है। 'अभिगीता' (श्रीमदभगवद्गीता का संस्कृत से हिन्दी पद्य में) काव्यानुवाद है। गीता का मूल मंत्र 'कर्म' है। यह धरती कर्मभूमि है और मानवयोनि 'कर्म' प्रधान है। कर्म को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करना ही योग है। यह पद्यानुवाद श्रीभगवान के श्रीचरणों में विनम्र काव्यांजलि है। गुप्त जी का अंत में यह कहना ही पर्याप्त है—

अर्जुन! इससे अधिक जानना, तुझको नहीं अभीप्सित है।
अखिल विश्व मम योगशक्ति के एक अंश में स्थित है।। (अभिगीता)

संपादक रूप में आपने 'प्राचीन एवं मध्ययुगीन हिन्दी काव्य' (प्रबन्ध काव्य) प्राचीन एवं मध्ययुगीन हिन्दी काव्य' (गीत एवं मुक्तक) 'भक्ति और रीतिकालीन हिन्दी काव्य' का संपादन किया। आपने 'प्रो. रामप्रकाश गोयल अभिनन्दन ग्रन्थ' का संपादन भी किया है।

पत्रिका संपादन में 'नागरी', 'पांचाली' तथा 'साहित्यायन' (2007-अद्यतन) का संपादन कर रहे हैं। 33 छात्र-छात्राओं को अब तक शोध कार्य करवाया है। अब तक शारीरिक बाधाओं ने आपके जीवन में मात्र अवरोध उत्पन्न किया किन्तु कर्म संकल्प से विचलित नहीं कर पाये, अपितु आपका मनोबल उतना ही सशक्त हुआ। "आयुष्य की सार्थकता कर्मण्य एवं कर्मशील बने रहने में है" के संकल्पी डॉ. गुप्त ने 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' यात्रावृतान्त में 'यायावर' की पुलक अनुभूति प्रकट की है जो उनकी स्वानुभूति है। आपके लिए—

सृष्टि में हो ऊ र्ध्वता जिनको अभीप्सित,
उच्चता के वे शिखर झुकते नहीं हैं।
चल-चला-चल, चल-चला-चल लक्ष्य जिनका,
गतिजता के वे चरण रुकते नहीं हैं।।

अन्त में 'हीरक जयन्ती' के मंगलमय अवसर पर 'जीवेत् शरदं शतं' की मंगल कामनाओं सहित सश्रद्ध डॉ. कमलेश बहुगुणा।



डॉ. कमलेश बहुगुणा
सेवानिवृत एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बरेली कालेज, बरेली
आवास—48ए, सनसिटी विस्तार, फेज I, पीलीभीत रोड, बरेली
चलयंत्र : 9997261411

48

सरल होना कठिन है...



कबिरा जब पैदा हुए, जग हँसा, हम रोए।
ऐसी करनी कर चलें, हम हँसे, जग रोए।।

कबीर का यह दोहा उन लोगों पर सटीक बैठता है, जिन्होंने अपनी कारयित्री एवम् भावयित्री प्रतिभा का लोहा उस समाज, संस्कृति, देश से मनवा लिया, जहाँ वे जन्में भर नहीं हैं, वरन् अपने यथा-सामर्थ्य तन, मन, धन से, सर्वरूपेण मनुष्यत्व को साधने में, मानवता को प्रगति उन्मुख करने में प्राणपण से जुटे रहे हैं। ऐसे ही लोग अपने 'होने' को या अपने अस्तित्व को लोक के सामने तो सिद्ध करते ही हैं, वरन् मनुष्य एवम् मानवता के लिए सदा सर्वदा प्रेरणास्रोत बने रहते हैं।

महात्मा गांधी से किसी पत्रकार ने पूछा—"मानवता के लिए आपका क्या संदेश है?" गांधी जी ने उत्तर दिया—"मेरा जीवन ही मेरा संदेश है।" एक वाक्य में कहें तो डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी का जीवन, उनका व्यक्तित्व और कृतित्व शिक्षकों, प्राध्यापकों, हिन्दी सेवियों, साहित्यकारों के साथ ही सम्पूर्ण मनुष्य जाति के लिए प्रेरणाप्रद है, अनुकरण करने का सुन्दर उदाहरण है।

हिन्दी भाषा एवम् साहित्य के प्रचार-प्रसार में संलग्न प्रोफेसर डॉ. सुरेशचन्द्र जी ने श्रेष्ठ प्राध्यापक के रूप में न जाने कितने विद्यार्थियों की नैया पार लगाई, न जाने कितनों को सहृदयता, उदारतापूर्वक शोध कार्य कराए, डॉक्टरेट की डिग्री दिलवाई, न जाने कितनों का जीवन सँवारा...। अध्यापन के साथ ही विश्वविद्यालयी गुरुतर दायित्वों के निर्वहन में निरत रहते हुए भी अवाधित रूप से लेखन कार्य भी करते रहे हैं। आप लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। आपकी लेखनी सतत् नैरंतर्य को धारण करती आज भी अभंग क्रम में सत्साहित्य के सर्जन में रत है। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में आपकी लेखनी ने अपना

अभूतपूर्व योगदान हिन्दी साहित्य के संवर्द्धन हेतु दिया है, और यह क्रम अन्यान्यों के लिए प्रेरणाप्रद है।

कवि, कथाकार, संस्मरणकार, समालोचक के साथ ही आपने प्रभूत बाल साहित्य का सृजन किया है। बच्चों के लिए वे ही लिख सकते हैं जो सरल, सरस, सुलझी एवं स्वाभाविक मनोवृत्ति के होते हैं। आज के समय में सरल होना ही सबसे कठिन है। यही कारण है, कि आज साहित्यकार तो बहुत है किन्तु 'बाल साहित्यकार' विरले ही हैं। प्रकारांतर से यह कि क्लिष्ट लिखना सरल है, किन्तु सरल तथा सरलतम् लिखना बेहद कठिन है।

बाल मनोवृत्तियों का अवगाहन करते हुए बाल सुलभ सारल्य साधने से ही 'बाल साहित्य' की साधना की जा सकती है। डॉ. सुरेशचन्द्र जी ने बखूवी यह साधना की है।

वैसे तो आज साहित्यकारों की कई श्रेणियाँ हैं। एक वे हैं, जो पूरी संवेदना के साथ अपने समय और समाज की विसंगतियों को देखकर क्षुब्ध हो, आक्रोशित लेखन करते हुए अन्यान्य देशों, सभ्यताओं और संस्कृतियों के उदाहरण देकर, उनके प्रकाश में स्व राष्ट्र, समाज एवम् मनुष्य को आइना दिखाते हैं। एक वे हैं जो यथास्थिति का मार्मिक चित्रण करके अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करते हैं। और एक वे हैं जो अपने देश, समाज, सभ्यता की समस्याओं, विडम्बनाओं से आहत हो, इस कटु यथार्थ चित्रण के साथ ही अपनी लेखनी से वैकल्पिक संभावनाओं के द्वार खोलते हैं, साथ ही मनुष्य और समाज की बेहतरी के लिए स्वयं भी अपने दायित्वों का क्रियारूप में निर्वाह करते हैं, डॉ. सुरेशचन्द्र जी इसी श्रेणी/ कीर्ति के उच्चतम दायित्व सजग रचनाकार हैं। तन, मन, धन से साहित्य को समर्पित यह रचनाकार विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न, बहुआयामी व्यक्तित्व का धनी है।

समय के एक-एक क्षण का सुन्दर सार्थक सदुपयोग करने वाले डॉ. सुरेशचन्द्र जी साहित्यिक पत्रकारिता के अन्यतम रूप में हिन्दी साधना कर रहे हैं। जो लोग पत्रिका निकालते हैं, वे भलीभाँति जानते हैं कि यह कार्य कितना समय-साध्य, श्रमसाध्य एवं धनसाध्य है। अतिरिक्त चेतना सम्पन्नता, के बिना यह कार्य नहीं हो सकता। डॉ. गुप्त जी दशकों से यह समय, श्रम और धनसाध्य कार्य सम्पन्न कर रहे हैं। यही कारण है कि आपके संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'साहित्यायन' जैसी उत्कृष्ट, प्रगतिशील विचारधारा से संपृक्त, स्वस्थ चिंतन सामग्री से युक्त पत्रिका हिन्दी पट्टी के साथ ही देश के दूरातिदूर अंचलों/ क्षेत्रों में भी अपने सरोकारों के कारण प्रतिष्ठित है। साहित्यायन के संपादकीय

पूर्ण पारदर्शिता के साथ देशीय नीतियों, समस्याओं का विश्लेषण करते हैं। कई बार ये संपादकीय देशी, विदेशी साहित्य तथा साहित्यकारों के साथ ही वहाँ के नीति नियामकों, नस्लों की खूबियों, खामियों से परिचित कराते उनके 'सारतत्व' को प्रश्रय दे अपने समय के विद्रूपों से निबटने, सुलझने की संभावनाओं के द्वार खोलते हैं। कहना न होगा ये संपादकीय अपनी सम्पूर्णता में साहित्यिक सरोकारों, सामाजिक सरोकारों से युक्त हैं जो पाठकों को चेतना सम्पन्नता प्रदान करते हैं। जहाँ आज कई पत्रिकाएँ विधा केन्द्रित हैं, वहीं साहित्यायन का मंच प्रत्येक साहित्यिक विधा की रचना को स्थान देता है। ज्ञानयज्ञ में साहित्यायन की आहुति इसलिए भी उल्लेखनीय है कि इस पत्रिका ने प्रतिष्ठित रचनाकारों, विद्वानों के साथ ही 'नवचेतना' को प्रश्रय दिया है। जहाँ आज एक ओर पत्रिका-मंच के द्वारा न जाने कितने संपादकों ने अपने घर भरे हैं, अनेक प्रकार से स्वार्थ साधन करते हुए लेखकों पर अनावश्यक दबाव बनाया है, वहीं दूसरी ओर 'साहित्यायन' के संपादक ने परिचितों, अपरिचितों दोनों तरह के रचनाकारों को 'साहित्यायन' में स्थान दिया है। हाँ यह अवश्य है कि संपादक की हंसवृति ने कभी भी रचना की मूल्यवत्ता से समझौता नहीं किया। चयन का आधार रचना को बनाया न कि पहचान को या अन्य किसी अवांछनीयता को...। एक उदाहरण तो मैं स्वयम् हूँ। मैंने तो डॉ. साहब को देखने का उनसे मिल-बैठने का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं किया किन्तु डॉ. साहब ने मेरी लेखनी को साहित्यायन में स्थान दिया...।

जैसे वायु में मिश्रित सुगंधि प्रसारित हो अपनी सत्ता की अनुभूति अथवा प्रतीति करा देती है वैसे ही डॉ. गुप्त का नाम एवम् काम ही उनके व्यक्तित्व की पहचान बन देश के दूर पास के अंचलों में समादृत है। आपकी सहृदयता, सौम्यता, नमनीयता, विनम्रता, बहुज्ञता का कायल हर वह व्यक्ति होगा, जो डॉ. साहब से किसी भी रूप में प्रत्यक्ष अथवा परोक्षतः (पत्र, दूरभाष) जुड़ा होगा। युवा ऊर्जा के साथ इस ज्ञानवृद्ध साहित्यकार की स्मरण शक्ति अत्यन्त तीव्र है। वर्षों की बातें, प्रसंग, रचनाएँ आपकी स्मरण शक्ति में इस प्रकार से विराजमान है, मानो उनका घटनाक्रम आजकल में ही हुआ है। माँ भारती के वरदान की यह नियामत उन्हें ही मिलती है जिनकी चेतना 'शुद्ध बुद्धि निष्पाप हृदय' के मार्ग का अनुगमन करती है, ऐसा हमारे आर्ष वांड्मय में लिखा है। निश्चय ही डॉ. गुप्त इस श्रेष्ठ सत्पथ के पथिक हैं।

डॉ. गुप्त जी जिस प्रकार से समाज ऋण, शिक्षा ऋण, साहित्य ऋण और भाषा के ऋण से उऋण होने की ओर प्रवृत्त हैं उनका यह स्तुत्य प्रयास हमारे लिए तथा आगत पीढ़ियों के लिए इस दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है, देता

रहेगा। डॉ. साहब के अभिनंदन समारोह के अवसर पर मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वीणापाणि के वरदपुत्र डॉ. सुरेशचन्द्र जी "जीवेम शरदः शतम्" को चरितार्थ करते हुए साहित्य, समाज और मानवता को अपने व्यक्तित्व एवम् कृतित्व से सदा सर्वदा उपकृत करते रहें।

इति शुभमस्तु!

इत्यलम्!



दया दीक्षित
आवास— 128/387 वाई-वन ब्लॉक,
किदवई नगर, कानपुर, उ.प्र. 208011
चलयंत्र : 9415537644

श्याम तन, कटि क्षीण, पुष्ट उरोज लघु-लघु
कमल नयनी, दंत-मुक्ता, स्मिति मृदु-मृदु
केश श्यामल, दीर्घ वेणी, पुष्प-गुम्फित
मोहते मन-भ्रमर, आमंत्रण वसंती
दाह शीतल,
तन तपाती चाहना की।
क्यों पुकारे गंध-
मुझको वासना की ?
आयु के बंधन रहे हो शिथिल पल-पल
मान मर्यादा बहे पाषाण गल-गल
है सरकती जा रही थी-बुद्धि शृंखल
बिंध रहे उर प्राण, तेरे रंग वसंती
मिट मिलूँ तुझमें,
प्रिये ! इति साधना की।
क्यों पुकारे गंध--
मुझको वासना की ?

49

'किंचित मननीय' के परिप्रेक्ष्य में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की विचारधारा



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त हिन्दी के अधिकारी विद्वान हैं। अध्यापन तथा शोध निर्देशन के लम्बे अनुभव के साथ-साथ मौलिक गद्य और पद्य लेखन में सतत् साधनारत हैं। उन्होंने कई पुस्तकों के सम्पादन के साथ पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया है। 1975 में 'नागरी' तथा 1976-78 में 'पांचाली' के सम्पादन के बाद 2007 से अद्यावधि 'साहित्यायन' त्रैमासिक के प्रधान सम्पादक के रूप में ख्याति अर्जित की है। इस पत्रिका में उनका सम्पादकीय कौशल, विशेष रूप से सम्पादकीय 'किंचित मननीय' के परिप्रेक्ष्य में उनकी विचारधारा अत्यधिक चर्चित रही है। किसी भी विषय को लेकर उस पर उपलब्ध जानकारी देते हुए किंचित मननीय यह भी है के रूप में उस पर अपने स्पष्ट विचार देना ही उनकी विशेषता है जो उन्हें अन्य सम्पादकों से विशिष्ट श्रेणी प्रदान करती है।

प्रस्तुत आलेख में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के 'साहित्यायन' में दिये गये अब तक के सम्पादकीय 'किंचित मननीय' के परिप्रेक्ष्य में उनकी विचारधारा को मुख्य रूप से प्रकाश में लाने का प्रयास किया है। डॉ. गुप्त के ये विचार बहुत से विषयों में अब तक व्याप्त भ्रान्तियों को तोड़ते भी दिखाई देते हैं। यह सम्पादक के रूप में उनकी सामर्थ्य, साहस तथा स्पष्टवादिता के साथ निडरता को भी सिद्ध करता है।

'काम, अध्यात्म और वैलेंटाइन डे' शीर्षक आलेख में धर्म, अर्थ, काम तीन लौकिक पुरुषार्थ तथा मोक्ष जैसे परालौकिक पुरुषार्थ का विशद वर्णन करते हुए भारतीय वाङ्मय विशेष रूप से ऋषि वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के महत्त्व को दर्शाते हुए अतीत काल से बसंत ऋतु में मदनोत्सव मनाने की परम्परा की

कड़ी में ही डॉ. गुप्त वैलेंटाइन डे को देखते हैं और स्पष्ट मत रखते हैं कि मदनोत्सव के नवीन संस्करण के रूप में वैलेंटाइन डे का स्वागत होना चाहिए न कि विरोध।

पाकिस्तानी लेखिका अतिया दाऊद ने अपनी आत्मकथा 'आइने के सामने' में नारी विमर्श पर खुलकर चर्चा की है विशेषकर यौन शोषण और यौन उत्पीड़न पर। आत्मकथा लेखक विशेष रूप से लेखिका चाहे वह भारत की हो या पाकिस्तान की ऐसे प्रसंग उजागर करते हैं जिन्हें लिखना न सम्भव है न ही उचित। इस्लाम में औरत की स्थिति "बाहर निकलना तो बुरके में, नमाज पढ़ना, कुरान छूना निषिद्ध आदि कई तरह के प्रतिबन्धों द्वारा बयान की है। वामपंथी विचार रखने वाले वास्तव में क्या होते हैं इसका वर्णन भी है कि किस प्रकार बातों में फुसलाकर वे यौन शोषण करते हैं। विचारणीय यह है कि भारत और पाकिस्तान चाहे दो राष्ट्र हैं परन्तु दोनों में नारी दमन, शोषण और यातना एक जैसी ही है। मननीय यह भी है कि मार्क्सवादी कहने को तो समता और समाजवाद के पोषक हैं परन्तु वास्तव में वे ऐसे भेड़िये हैं जो छद्म प्रगतिशीलता की आड़ में शिकार करते हैं।

'प्रवासी पूत और वृद्ध माता-पिता' अतिभौतिकवाद और बाजारीकरण के चलते प्रतिभा पलायन तथा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित हमारी मानसिकता के कारण स्वदेश के स्थान पर विदेशों में जाकर युवकों के स्थापित होने की त्रासदी का वर्णन करती है। अधिकतर युवक डॉक्टर, इंजीनियर व अन्य मेधावी अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, आस्ट्रेलिया आदि देशों की चकाचौंध में वहाँ चले जाते हैं पर न वहाँ उनका दाम्पत्य जीवन सुखी रहता है और न भारत में उनके माता-पिता का बुढ़ापा। यहाँ तक कि माँ-बाप मरने पर बेटे द्वारा मुखाग्नि के लिए तरस जाते हैं निश्चित ही यह स्थिति शोचनीय है। मननीय यह है कि इस स्थिति में 'परिवार' नामक संस्था जो भारत की विशेषता रही है बिखर रही है। क्या वृद्ध माता-पिता अपनी संतति को देखने को यों ही तरसते रहेंगे। प्रतिभा पलायन पर रोक आवश्यक है। 'प्रवासी दिवस मनाकर तथा प्रवासी भारतीयों को देश में आने का आह्वान कर प्रधानमंत्री मोदी ने सराहनीय कदम उठाया है उसे सभी का समर्थन मिलना चाहिए।

'नारी कामशास्त्र और आधुनिक नारी' शीर्षक से सम्पादकीय में नारी मुक्ति आन्दोलन के चलते आज नारी जिस ओर जा रही है वह चिन्ता का विषय है। आपसी तालमेल स्नेह से दाम्पत्य जीवन जीने की जगह नारी हर क्षेत्र में पुरुष के सामने खड़ी हो गई है। यहाँ तक कि सहवास में भी नारी अब समर्पण

भाव नहीं दिखलाना चाहती। श्रीमती जी.के. आर. इन्दिरा ने ''स्त्रैण कामसूत्र'' वात्स्यायन के कामसूत्र के समानान्तर लिखकर कुंठा ही प्रदर्शित की है। मननीय है कि जब लेखिका स्वयं ही कुंठित, दिग्भ्रमित और असफल है तो अन्य नारियों का मार्गदर्शन भला क्या करेगी। किंचित मननीय यह भी है कि क्या ऐसे विषय पर सम्पादकीय लिखा जाना चाहिए? उत्तर हाँ है क्योंकि ऐसे विवादपूर्ण विषयों पर संवाद आवश्यक है। नारी कामशास्त्र निश्चय ही वर्तमान में मननीय विषय है।

'इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिये' शीर्षक सम्पादकीय में अमीर खुसरो से लेकर डा. नजीर मोहम्मद तक अनेक मुसलमान कवियों व साहित्यकारों के देश-प्रेम, साम्प्रदायिक सौहार्द्र तथा हिन्दुओं की भगवद्भक्ति के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। मननीय प्रश्न यह है कि ऐसी साहित्यिक - सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बावजूद देश का विभाजन क्यों हुआ। यदि यह राजनेताओं की भूल थी तो अब कट्टरता और असहिष्णुता क्यों बढ़ रही है? साम्प्रदायिक दंगे क्यों होते हैं? आतंकवाद क्यों पनप रहा है? क्या यह शिक्षा व्यवस्था की कमी है? आवश्यकता है सारे भारतवासी प्रेम, सद्भाव और सहयोग के साथ रहें। साहित्यकार इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

'विभाजन की राजनीति' शीर्षक सम्पादकीय में भी जातिवाद, धर्मवाद के नाम पर साम्प्रदायिकता फैलाकर देश को विभाजित करने की राजनीतिज्ञों की साजिश की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है मननीय है कि भारत में हजारों जातियाँ उपजातियाँ, ईसाई, पारसी, मुसलमान सभी हैं। इन सभी को एकजुट होकर एक शक्तिशाली राष्ट्र के निर्माण में योगदान देना चाहिए। बुद्धिजीवी व साहित्यकार इसमें अपनी अहम् भूमिका का निर्वहन करें।

'दामिनी काण्ड' में जिस प्रकार बस में मेडिकल छात्रा के साथ छह बहशी दरिन्दों ने बलात्कार किया वह शर्मनाक है। इस पर जिस प्रकार की प्रतिक्रिया होनी चाहिए थी हुई भी। मननीय है फिर भी बलात्कार की घटनायें बढ़ रही हैं। मननीय है कि राजनेता अपराधियों को संरक्षण देने लगे हैं इस पर अंकुश लगना ही चाहिए।

दादा भाई नौरोजी, जमशेद जी, टाटा तथा फिरोज गांधी पारसी थे। पारसी धर्म ईसा पूर्व 660 के आसपास अस्तित्व में आया। जरथुस्त्र ने इसे अत्यन्त विस्तार दिया। ईरान जिसे फारस भी कहा जाता है इसका उद्भव स्थान है। जरथुस्त्र ने 'जिनदावेस्ता' धर्म ग्रन्थ रचा जो ऋग्वैदिक संस्कृत की फारसी शाखा 'अवेस्था' भाषा में है। भारत में कनिष्क (78 ईस्वी) के समय पारसी धर्म को प्रोत्साहन मिला। शीरी-फरहाद भी जरथुस्त्र के अनुयायी थे। विश्व में पारसी केवल 2 लाख

ही हैं। भारत में 80 हजार। जहाँ अन्य धर्मावलम्बी संख्या में बढ़ रहे है। वहीं पारसी घट रहे हैं। भारतीय रंगमंच में पारसी थियेटर का योगदान विशेष है। मननीय है कि इनकी संख्या घट क्यों रही है? इसका कारण क्या अपने आप में सिमटे रहना, वैवाहिक सम्बन्धों में संकीर्णता आदि है। पारसियों को भी यहूदियों की तरह इजरायल जैसा छोटा स्वतन्त्र देश मिल जाता तो ये फल-फूल सकते थे। भारत सरकार को भी इन्हें संरक्षण देना चाहिए।

मद्य सेवन और कविता के सम्बन्ध पर सम्पादकीय में कहा गया है कि कुछ लोग मानते हैं कि काव्य रचना में कल्पना की उड़ान के लिए मद्य सेवन आवश्यक है। अनेक नाम इनके समर्थन में दिये जाते हैं। अंग्रेजी कवि कीट्स ने मात्र चार वर्ष में शेक्सपियर के तीस वर्ष के बराबर काव्य अफीम सेवन के कारण ही लिख दिये। फिराक, नीरज आदि का नाम भी आता है। परन्तु तुलसीदास, सूरदास, कबीर क्या मदिरापान करते थे? मननीय प्रश्न यही है कि कुछ कवि विशेष ही इसके आदी होते हैं, तथा सृजन से मद्य-सेवन का कोई सम्बन्ध नहीं है।

यौन शुचिता और यौन शिक्षा को विस्तार से समझाते हुए सम्पादकीय में यौन शिक्षा की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है। मननीय यह है कि यौन शुचिता को अति की सीमा तक वरेण्य न माना जाये और न ही स्वैरता, स्वेच्छाचारिता को प्रोत्साहित किया जाये।

'दादा साहब फाल्के और प्रतिभा पलायन' शीर्षक सम्पादकीय फाल्के द्वारा किये गये भारतीय सिनेमा में योगदान का उल्लेख करते हुए भारत में रहकर वह सब कुछ करने को सत्यापित करता है जिसके लिए भारतीय युवक विदेश जाते हैं। यह प्रतिभा पलायन शोचनीय है। दादा साहब फालके के संघर्षमय जीवन से प्रेरणा लेकर भारतीयों को देश सर्वोपरि मानना चाहिए और मातृभूमि के लिए समर्पित होकर देश में रहकर ही काम करना चाहिए। इसी तथ्य को उजागर किया है। 'ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं' सम्पादकीय के माध्यम से। प्रवासी भारतीय अपनी जन्मभूमि देखने को लालायित रहते हैं परन्तु मननीय है कि उन्हें उज्ज्वल भविष्य के लिए वृद्ध माँ बाप को छोड़कर क्या जाना चाहिए था? आज वे अपनी मेहनत के बूते उच्च पद तो पा गये किन्तु हमें उनसे बहुत आशा नहीं करनी चाहिए।

'स्वयंवरः संघर्ष एवं दासता का प्रस्थान बिन्दु' सम्पादकीय स्वयंवर जैसी कुरीति को बढ़ावा न दिये जाने का आह्वान है। प्राचीन स्वयंवर प्रथा अपने बदले रूप में आज भी विद्यमान है मननीय है कि अतीत की घातक परम्पराओं से आगे

बढ़कर भारत में धर्म, लिंग, जातिविहीन और अखण्ड समतामूलक समाज की स्थापना की जाये। स्वस्थ समाज के लिए वैवाहिक जीवन की मर्यादाओं का संरक्षण आवश्यक है।

'वृद्धावस्था में प्रेमासक्ति' शीर्षक सम्पादकीय में डॉ. गुप्त ने वृद्ध राजाओं, राजनेताओं तथा साहित्यकारों की कामासक्ति के बारे में अनेक उदाहरण देकर चर्चा की है तथा उसके दुष्परिणाम भी बताये हैं। शारीरिक रचना में भिन्नता होने के कारण नर और नारी की कामोत्तेजना में भी अन्तर होता है। नारी में तुलनात्मक रूप से यह अवधि कम होती है जबकि पुरुष में बुढ़ापे तक बनी रहती है। कामेच्छा और काम क्षमता में अन्तर है। क्षमता न रहने पर भी कामेच्छा बनी रह सकती है। किंचित मननीय है कि वृद्धावस्था में कामासक्ति को क्या समाज के प्रति अपराध माना जाये अथवा मनोवैज्ञानिक विकार या परिस्थितिजन्य दुर्बलता मानकर उपेक्षणीय समझा जाये?

तसलीमा नसरीन की अदम्य जिजीविषा और 'द्विखण्डित' शीर्षक से सम्पादकीय बांग्लादेश की निर्वासित लेखिका तसलीमा नसरीन के सम्पूर्ण लेखन विशेष रूप से उनकी द्वितीय कृति 'द्विखण्डित' के परिप्रेक्ष्य में उनके स्वतन्त्र विचारों से अवगत कराते हुए उन जैसी प्रगतिशील लेखिका का निर्वासित होकर मारी-मारी फिरने को लेकर चिन्ता भी व्यक्त की गई है। सम्पादक ने मननीय के रूप में अपने विचार देते हुए स्पष्ट कहा है कि तसलीमा नसरीन के लेखन को अश्लील, विध्वंसकारी और धर्म विरोधी कहकर जितना उनका दमन किया जा रहा है, वे पाठकों के दिलों में उतना ही सम्मान प्राप्त करती जा रहीं हैं। 'द्विखण्डित' मात्र आत्मकथा नहीं है अपितु समकालीन समाज का जीवंत दस्तावेज है।

'गांधी का हिन्दुस्तान और जिन्ना का पाकिस्तान' भारत के विभाजन के लिए जिन्ना की सांप्रदायिक सोच, अवसरवादिता तथा अतिशय महत्त्वाकांक्षा के साथ उनका कट्टरपंथी होना जिम्मेदार है। गांधीजी की राजनीति का मूलतत्त्व देश की आजादी और राष्ट्र का उत्थान था। वे त्याग, तपस्या, बलिदान और विश्व मानवता में विश्वास करते थे, जबकि जिन्ना भोग विलास, ईर्ष्या और हिंसा में विश्वास रखता था। उसके लिए हिन्दू मुस्लिम सौहार्द आवश्यक नहीं था वरन् इनकी आपसी लड़ाई सत्ता हथियाने का साधन थी। यही भावना पाकिस्तान बन जाने के बाद भी वहाँ के लोगों में भरी गई। जिसका परिणाम आज न पाकिस्तान में शान्ति है और न भारत में। मननीय यह है कि अब भी भारत में पाकिस्तान से अधिक मुसलमान हैं तथा शान्ति से रहते हैं जबकि पाकिस्तान इन्हें भी आतंक

के मार्ग पर चलने को उकसाता है। मननीय यह भी है कि भारत में भी धारा 370, आरक्षण आदि बाधायें दूर की जानी चाहिए ताकि प्रेम और सद्भाव का मार्ग प्रशस्त हो सके।

रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' को राजेन्द्र यादव ने दुर्दम्य और दुर्धर्ष संघर्ष की कथा निरूपित किया है। इसी 'हादसे' को अपराजेय नारी की दुर्धर्ष संघर्ष गाथा' को सम्पादकीय का विषय बनाकर रमणिका गुप्त के स्वतन्त्र विचार, नारी मुक्ति को लेकर नर-नारी सम्बन्धों और प्रेम विवाह आदि के साथ यौन सम्बन्धों में खुलापन तथा समाज सेवा और राजनीति के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए किये गये समझौते आदि के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत विवरण देते हुए कुछ मननीय प्रश्न उठाये गये हैं, जैसे—

(1) क्या राजनीति में (अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में) सक्रिय नारी को यौन शोषण का संकट झेलना ही पड़ता है?

(2) स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों के सन्दर्भ में क्या लोहिया जी के विचार भारतीय मान्यता व संस्कारों के विपरीत अर्थात् अमान्य नहीं हैं?

(3) क्या सार्वजनिक जीवन में गृहणी का सक्रिय होना भारतीय जीवन मूल्यों के लिए घातक और स्वयं सम्बन्धित नारी के लिए विडम्बनापूर्ण नहीं है?

यहाँ मननीय यह भी है कि हर नारी रमणिका नहीं बन सकती। उनका जीवन संघर्ष 'आदर्श' तो हो सकता है पर अनुकरणीय नहीं।

हिन्दी कथा साहित्य में महिला रचनाकारों यथा मैत्रेयी पुष्पा, महुआ माजी, नासिरा शर्मा, मधु काँकरिया आदि ने कथ्य की नवीनता, अनुभूति की प्रामाणिकता और भाषा शिल्प में अभिनव प्रयोग कर उपन्यासों को ताजगी प्रदान की है। मधु काँकरिया के ऐसे ही उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में धार्मिक पाखण्ड की वेदी पर नारी शोषण और प्रताड़ित नारी मुक्ति संग्राम की मार्मिक व्यथा कथा पर आधारित सम्पादकीय में जैन धर्म में व्याप्त पाखण्ड, भ्रष्टाचार तथा वासना पर विचार किया गया है। धर्म का चाबुक मुख्यतः स्त्री पर ही पड़ता है। धर्म की आड़ में सामाजिक तिरस्कार भी नमस्कार में बदल जाता है। जो लोग सुसंस्कारित कहलाते हैं एकान्त पाते ही अत्यन्त घृणित कुत्सित पापाचार पर उतर आते हैं। सभी धर्मों में धर्माधिकारी पुरुष ही होते हैं और उन्होंने धर्म को स्त्री-पुरुष में भेदभाव का माध्यम बना लिया है। वस्तुतः 'सेज पर संस्कृति' धार्मिक पाखण्ड के प्रति संवेदनशील नारी का मननीय शंखनाद है।

'आज के अतीत' प्रख्यात लेखक भीष्म साहनी की आत्मकथा है। भीष्म जी ने प्रचुर साहित्य सृजन किया है। उनके पुरखे कंधार से रावलपिंडी आये थे

और भारत विभाजन के समय उन्हें भारत आना पड़ा। विभाजन के समय की साम्प्रदायिक हिंसा की लोमहर्षक कहानी उन्होंने अपने उपन्यास 'तमस' में व्यक्त की है। उनकी आत्मकथा भी स्पष्ट रूप से कई मननीय प्रश्नों का समाधान करती हैं। उनके साहित्य से पता चलता है कि इस्लाम एक धर्म या मजहब न होकर एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें धर्म की आड़ लेकर संकीर्ण, कट्टर और विस्तारवादी संस्था की स्थापना करके हिंसा, लूटपाट और दंगा फैलाने का अनंत क्रम चलाया जाता है। यहाँ यह भी मननीय है कि साम्यवाद किसी का भला नहीं कर सकता, यहाँ तक कि साम्यवादियों का भी नहीं, परन्तु पूँजीवादी कम से कम पूँजीपतियों का भला तो करता ही है। प्रगतिशील विचारक होकर भी भीष्म साहनी जी, प्रेमचन्द, अमृतराय, नागार्जुन आदि की परम्परा के अनुगामी ईमानदार लेखक हैं। साम्यवादी होते हुए भी साम्यवादी देशों की राजनीति के पतन, भ्रष्टाचार आदि का खुलकर चित्रण 'आज के अतीत' में किया गया है।

भीष्म साहनी न स्वयं भ्रम पालते हैं और न समाज को दिग्भ्रमित करने का प्रयास करते हैं वे समाज के यथार्थ को जीवन्त करने वाले लेखक हैं। किंचित मननीय यह भी है कि 'आज के अतीत' साहित्यिक कृति ही नहीं अपितु समकालीन समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि गतिविधियों का ऐसा स्मारक है जो सदा प्रासंगिक रहकर नवीन चिन्तन की प्रेरणा देता रहेगा। यह अतीत के आधार पर आधुनिक समाज को आलोकित करने का ज्योति स्तम्भ है।

'काशी का अस्सी' काशीनाथ सिंह का अत्यन्त चर्चित उपन्यास है जिसमें पाँच अध्याय हैं जो काशीनगर और क़ाशीनाथ दोनों के पूरक हैं। इन अध्यायों में धर्म, राजनीति, शिक्षा, भ्रष्टाचार आदि पर खुलकर चर्चा की गई है। उपन्यास की विशेषता है उसकी भाषा और शिल्प जिसमें निहायत ही अश्लील भाषा का प्रयोग होनेपर भी रोचकता में कमी नहीं है और यही इस कृति की विशेषता है। खाँटी भाषा सजीव पात्रों द्वारा व्यक्त की गई है। सम्पादकीय में उपन्यास के सभी अध्यायों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए सम्पादक ने अपने विचार मननीय के रूप में रखे हैं।

मननीय है कि अश्लील भाषा के जो शब्द उपन्यास में हैं वे हमारे ग्रन्थों में भी मिलते हैं। गालियाँ भी प्रायः हमारे समाज का अंग है।

द्वितीय मननीय है कि राजनीति सेवा का नहीं मेवा खाने का माध्यम बन गई है। आज युवक उद्योगधंधों व नौकरियों को छोड़ नेता बनना चाहता है।

उदारीकरण, भौतिकवाद, विज्ञापन का बोलबाला है लोग अपनी संस्कृति भूलकर टी.वी. सीरियलों में व्यस्त हैं। बच्चे खेलना कूदना भूलकर होमवर्क से

दबे रहते हैं।

मननीय है कि जो कुछ काशीनाथ सिंह ने इस उपन्यास में कहा है वह चरितार्थ भी हो रहा है। अनपढ़ मुख्यमंत्री, हाईस्कूल फेल मंत्री और उपमुख्यमंत्री बनते हैं।

'कागजी है पैरहन' एक विशेष प्रकार की आत्मकथा है जिसकी लेखिका 'इस्मत चुगताई' 1965 में बदायूँ में जन्मीं तथा बरेली में भी रहकर शिक्षण कार्य करती रहीं। यह आत्मकथा नारी विमर्श का ऐसा दस्तावेज है जो हर प्रबुद्ध पाठक को चिंतन-मनन के लिए विवश कर देता है। लेखिका का कहना है कि यह मर्द की दुनिया है यहाँ औरत उसके रहमोकरम पर ही है। एक मुल्क की तरक्की के लिए शिक्षित माँओं की जरूरत होती है तभी पुत्र-पुत्रियाँ आला तालीम पा सकते हैं।

राजनीतिक सन्दर्भ में भी इस्मत जी का अपना चिन्तन है। उनके अनुसार "सियासत दुनियाँ का सबसे मुनाफाबख्श पेशा है इसीलिए नाकारा भी इसमें सफल हो जाते हैं। जातिवाद, धार्मिक संकीर्णता के कारण दंगे भड़कते हैं।

'इस्मत चुगताई' की यह आत्मकथा अत्यन्त रोचक पठनीय और मननीय है। भारतीय नारी विशेषकर मुस्लिम नारी के लिए अनुकरणीय भी है।

'एडोल्फ हिटलर' एक तानाशाह था और पूरे विश्व में इसी रूप में जाना जाता है, परन्तु वह महान विचारक, देशभक्त और राष्ट्र गौरव से आप्लावित मातृभूमि का सपूत भी था। यह उसकी आत्मकथा माइन काम्फ के पढ़ने से पता चलता है। हिटलर के विचारों, सिद्धान्तों और तानाशाही मनोवृत्ति के अनेक बिन्दुओं से असहमति के बावजूद उसका संघर्ष और देशप्रेम स्पृहणीय है जो हम भारतीयों में भी ओज, उत्साह, इच्छाशक्ति, जुनून, देशभक्ति जैसी भावनाओं को जाग्रत, उत्प्रेरित कर सकता है। मननीय और अनुकरणीय है कि हमें जर्मनों और यहूदियों की भाँति सशक्त बनने की कोशिश करनी चाहिए ताकि हर परिस्थिति का सामना कर सकें और हर विषम परिस्थिति को अनुकूल बना सकें।

'प्रभा खेतान' एक ऐसा नाम है जिसने व्यवसाय तथा साहित्य में समान रूप से आशातीत सफलता पाई है। उनका व्यवसाय देश में ही नहीं विदेशों में भी फैला है। इसी प्रकार उनका साहित्य भी सदैव चर्चा का विषय रहा है। सर्वाधिक लोकप्रिय उनकी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' है जिसे अत्यधिक बोल्ड, साहसपूर्ण और निर्भीक आत्म स्वीकृति माना गया है। इसी कारण वे निर्लज्ज, बेशर्म, अश्लील, कुत्सित लेखिका भी कही गईं। उनकी यह आत्मकथा वास्तव में नारी शोषण, दमन और अत्याचार के प्रति मौन का मुखर अस्वीकार है। अपने लम्बे साहित्यिक और व्यावसायिक जीवन में प्रभा जी को अनेक प्रकार के समझौते करने पड़े हैं कभी दबाव में कभी स्वेच्छा से अतः उनकी आत्मकथा कई मननीय बिन्दु हमारे

सामने रखती है जिनको डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपने सम्पादकीय में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया है जैसे—

1. 'विवाह' नामक संस्था पर प्रश्न चिह्न लगाना क्या उचित है? निःसन्देह नहीं क्योंकि स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए विवाह अनिवार्य विधान है।

2. आर्थिक स्वावलम्बन नारी स्वातंत्र्य का प्रथम सोपान है यह अर्द्ध सत्य है क्योंकि स्वावलम्बन के बावजूद स्त्री को पुरुष का संरक्षण अनिवार्यतः अपेक्षित है।

3. क्या पितृ सत्तात्मक समाज पर प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है? निःसन्देह नहीं, क्योंकि व्यवस्था बनाये रखने के लिए परिवार में पिता अथवा माता का वर्चस्व होना आवश्यक है।

4. चतुर्थतः क्या स्त्रियों को आत्मकथा लिखनी चाहिए, क्योंकि स्त्री की आत्मकथा चुप्पी के प्रति इनकार और प्रतिरोध होता है। इसका उत्तर है लिखना चाहिए क्योंकि इससे बुद्धिजीवी वर्ग को आत्मविश्लेषण की प्रेरणा मिलती है।

सम्पादक का निष्कर्ष यह है कि 'छिन्न मस्ता' नारी के यातनावरण की दारुण संघर्ष गाथा के रूप में नारी के अनन्य गोपन प्रसंगों को अनावृत करने वाली यह आत्मकथा जितनी रोचक और पठनीय है उतनी ही विचारोत्तेजक और मननीय भी है।

कुल मिलाकर 'साहित्यायन' त्रैमासिक के सम्पादक के रूप में अपने सम्पादकीय 'किंचित मननीय' को डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने लीक से हटकर बहुत ही विचारोत्तेजक और मुखर होकर लिखा है। एक साहित्यिक पत्रिका में जिस प्रकार के विषयों पर चर्चा की जानी चाहिए वैसी ही उन्होंने की है। वर्तमान में साहित्य में जो कुछ भी लिखा जा रहा है और चर्चित हो रहा है उस पर पाठकों तथा आलोचकों की राय भी भिन्न-भिन्न होती है। कुछ उसे अश्लील कहकर नकारते हैं वहीं कुछ उसका समर्थन करते हैं। ऐसी स्थिति में इन उपलब्ध साहित्यिक कृतियों पर सम्पादकीय की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। इतने स्पष्ट रूप से 'मननीय' विचार देने का प्रयास कर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने साहित्यिक पत्रकारिता में एक आदर्श प्रस्तुत किया है इससे इनकार नहीं किया जा सकता। 'किंचित मननीय' की यह धारा सतत् प्रवहमान रहे इसी आशा और विश्वास के साथ मैं मंगलकामना करता हूँ।



डॉ. मुरारीलाल सारस्वत
से.नि. प्रधान वैज्ञानिक, कवि एवं साहित्यकार
आवास—21, त्रिशूल एन्क्लेव, आईवीआरआई रोड,
इज्ज़तनगर बरेली- 243122
चलयंत्र : 9412462219

50

संकल्पों के सुमेरु : डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



सद्ग्रंथों, शास्त्रों एवं संत सूफियों द्वारा जीवन की एक-एक श्वास ईश्वर प्रदत्त बतायी गयी है, जिसको पाने के लिए जीव ब्रह्म का अंश होते हुए भी भौतिक सुख-सुविधाओं और प्रबल माया के बंधन में अपने सत्कर्म भूलकर नित्य की आवश्यकताओं के अंधकार में खो जाता है, और सत्य के प्रकाश से दूर होकर पुनः जन्म-मरण के जाल में फँसकर कितने ही जन्म लेता है परन्तु, मनुष्य जीवन बड़ा कठिन तपस्या और पूर्वजन्म के सुकर्मों से तथा ईश्वर की असीम कृपा से ही मिलता है। मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर धर्म-अधर्म के पाश से बच नहीं पाता क्योंकि मदांध जीव जघन्य पाप करने में नहीं चूकता और भी स्वार्थ पूर्ति ही अपना धर्म समझता है और फलस्वरूप घिनौनी योनियों में जन्म-मरण का बन्धन नहीं तोड़ पाता। अपने यश-कीर्ति के लिए जीवन क्षरण करता रहता है जबकि ईश्वर ने मन के छः घोड़ो की लगाम अपने हाथ में रखी है (हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश)। कोई कितना भी श्रम व प्रयास कर ले लेकिन, समय आने पर ईश्वरीय कृपा से ही प्राप्य सुलभ हो पाते हैं और ज्ञानी पुरुष ईश्वर प्रदत्त जीवन को ईश्वरीय ज्ञान को समर्पित कर अपने लक्ष्य को पाने में सफल होते हैं। वे लौकिक अनुभूतियों का पारलौकिक शक्तियों से साक्षात्कार करने में समय और परिस्थितियों से समझौता नहीं करते। सुमेरू से सुदृढ़ संकल्पों के प्रति सजग होकर चुनौतियों का सामना करते हैं और निजी सुख-सुविधाओं को भूलकर अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सभी बाधाएँ पार करते हैं। मनुष्य को रूप की नहीं ज्ञान की पूजा करनी चाहिए। ज्ञान यदि किसी अबोध से मिले तो भी ग्रहण करने में अपमान न समझकर ईश्वर का प्रसाद ही मानकर सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। सुख-दुःख तो धूप-छाँव की अनुभूतियाँ मात्र हैं इनसे

विचलित न होकर साधनारत व सत्य पथ का अनुयायी ही उस प्रकाश-पुंज में समाहित होता है।

मानव जीवन में प्रकृति का साथ और सहयोग शक्ति प्रदान करता है। सावन की हरीतिमा और बसंत में बंजरों में बहार के फूल अपनी रंग-सुगंध से मानव हृदय में नवजीवन भर देते हैं और प्रेरणा देते हैं कि इसी तरह अपने लिए नहीं दूसरों के लिए हँसते रहो। शायद इन्हीं सिद्धान्तों पर विश्वास करने वाले कर्त्तव्यनिष्ठ संकल्पों के सुमेरू, विद्याविद् डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के जीवन में दैहिक-दैविक और भौतिक आपदाओं ने विष घोला। समय की चुनौती को सहर्ष स्वीकारते हुए अपने पैर मंजिल की ओर बढ़ाये तो बढ़ते ही रहे और एक निर्झर की भाँति विसंगतियों के पत्थरों से टकराते हुए शिक्षा का धरातल पाकर सरस सरित की भाँति अपने गुणों से कितने ही लाभार्थियों की प्यास बुझाकर उदासीनता में भी प्रफुल्लता की फुलवारी को सींचते रहे। अटल विश्वास के धनी, श्रम-साध्य, डी.लिट्. की शिक्षा इसका जीवित प्रमाण है, शालीनता और प्रतिभा उनके आभा मण्डल पर झलकती है। शारीरिक पीड़ाओं को झेलते इतने लम्बे मार्ग की चुनौतियों का गरल भी सहर्ष स्वीकारा और 'विद्या ददाति विनयम्' के साथ 'चरैवेति चरैवेति' सिद्धान्त को अंगीकार करते हुए सृजन-पथ पर आज भी गतिशील हैं। विद्या का प्रकाशित दीप अपने उज्ज्वल प्रकाश-पुंज से अँधेरी गलियों में भी प्रकाशवान है, जो समय और बलिदान का साक्षी है।

चले बलिदान के पथ पर वही जीवन सफल होता।
जागता और जगाता है स्वर्णिम स्वप्न को जीता।।
पतझर की उदासी में ही खिलते फूल वासंती।
अनुगामी सरसता का है कभी सावन नहीं रोता।।

श्रम-साध्य जीवन सदा शौर्य का मुकुट पहनता है । यह डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपने शोध-कार्यों से सिद्ध कर दिखाया है। कितने ही शोध-प्रबन्ध इसके साक्षी हैं। समय और भाग्य के सितारे सदा साथ रहे हैं और प्रगति पथ पर धैर्य और संतोष से सब कुछ पाया है। उगता सूर्य कभी स्वयं नहीं कहता कि सवेरा हो गया है और हीरे को भी अपना मोल बताना गरिमा के विरुद्ध लगता है।

सवेरा ही सुखद जिसका सुहानी शाम होती है।
सुयश की दुंदुभी बजती विजय के नाम होती है।।
कदम रोके न रुक पाते मुकद्दर के सिकन्दर के,
छुपाये छुप नहीं पाती कहानी आम होती है।।

यद्यपि चरणों की चलने की अपनी असमर्थता है परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में दौड़ लगाकर डॉ. गुप्त ने अपनी सार्थकता सिद्ध कर दी। बरेली कालेज में रीडर पद से सेवानिवृत्त होकर भी शोध निर्देशन, लेखन की कमान एक वीर सिपाही की भाँति सम्हाले हुए है। साहित्य-सृजन की अबाध सुरसरि धार कितने ही निर्जन-घाटों को तीर्थ बनाती हुई शिक्षाशास्त्रियों के अधरों की प्यास बुझती, दग्ध हृदय में शीतलता प्रदान कर बंजरों को सींचती है। शिक्षा जिसका कोई छोर नहीं और प्रदान करने पर श्री वृद्धि ही होती है, शिक्षा का स्रोत सूखता नहीं। उनकी लेखनी का प्रवाह गतिशील है। वे बरेली के गौरव है जहाँ ऐसी विभूतियाँ समाज को अपने स्नेहिल दीपक का प्रकाश बाँट रही है; जो वस्तुतः धनोपार्जन नहीं अपितु निष्काम भावनाओं से साहित्य की सेवा करने वाले ऐसे विद्वान पूजनीय, और अनुकरणीय हैं जिनके मार्ग-दर्शन से गन्तव्य का लक्ष्य पूरा किया जा सकता है।

जीवन में सब कुछ मिलने के बाद भी कोई न कोई परिस्थिति दीवार बनकर अवरोध उत्पन्न कर देती है। आदरणीय गुप्त जी के पैरों में चलने की शक्ति नहीं, परन्तु उनका साहस और धैर्य का परिचय उनकी शिक्षा-दीक्षा से मिलता है। उनके दीक्षित विद्यार्थी सफलता की पूँजी पाकर फल-फूल रहे हैं। सहिष्णुता और सौहार्द उनका मूल-मंत्र है, जो बरबस अपनी ओर खींचता है, उनका स्नेहिल सामीप्य यदा-कदा सौभाग्य और समय का सामंजस्य ही है। मेरी पुस्तकों में उनकी समीक्षात्मक कृपा-दृष्टि ने कृतज्ञता प्रदान की है, जिससे मेरी आगे बढ़ने की प्रेरणा बलवती हुई। उनकी जीवन की गहराइयों को नापना वास्तव में दुर्लभ है जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। गुणों का सौदागर हूँ उनके जीवन के अन्य पक्षों को पटल पर न ला सका यह मेरी विवशता ही समझें। उनकी लेखनी तो मानों उनकी सहचरी बन गयी है, उनका कहना है कि दीपक की भाँति जलते रहो जहाँ तक प्रकाश जायेगा; अंधकार तो दूर ही करेगा।

हम जले लेकिन उजाला तो हुआ।
पंथ-जीवन का निराला तो हुआ।।
अंधकारों को न भायी रोशनी;
पर शलभ का प्रेम-प्याला तो हुआ।।

भाव सद्भावना के ही आते रहें।
फूल इन्सानियत के खिलाते रहें।।
दे जलें कल को हँसता सवेरा नवल;
दीप की भाँति हम जगमगाते रहें।।

रूप अनुराग का जब निखर जायेगा।
इत्र मानवता का बिखर जायेगा।।
बनके चन्दन मिटा दे कपट की तपन;
कटुता का विषम विष उतर जायेगा।।

परम आदरणीय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त हमारे आदर्श हैं। यहाँ उनके लिए कुछ श्रद्धा-सुमन एवं प्रेमोद्गार प्रेषित हैं—

सौम्यशील, साहस के पर्याय सुरेशचन्द्र, गुप्तवंशी, शान्त, सत्य-पंथ के पुजारी हैं।
शारदा के कृपापात्र विद्याविद्, ज्ञानकोष, तेज-पुंज, कान्तिमय महाव्रतधारी हैं।
दान करते हैं ज्ञान दीक्षित बने अनेक, सृजन के साक्षी, शोध-ग्रन्थ भण्डारी हैं।
बहुआयामी प्रतिभा के सुधन्य वीर, अविरल लेखनी के पूर्ण अधिकारी हैं।।

दैवी प्रकोपवश, चलने में असमर्थ, लाँघते हैं पर्वतों को, लेखनी के पंख से।
जागते-जगाते सद्भाव, सद्गुण-प्रिय, साहित्य-सृजन, उद्घोष, शब्द-शंख से।।
विषम चुनौती का चीरकर अंधकार, आँधियों में दौड़ते सूर्य के तुरंग-से।
झेलते प्रहार धूप-छाँह के असीम नित, साहस न हारा, जीते जीवन की जंग से।।

बीते बसंत बहु चंदनी बयार बही, बहुरंगी फूलों ने मन न लुभाया है।
शीत-ताप के कहर सहे हैं समय के साथ, सत्पंथी जीवन का मधुरस लुटाया है।।
मानवीय जीवन की बहुरंगी क्यारियों में, बीज सद्भावना का निष्ठा से उगाया है।
अनुरागी, शिष्ट, सभ्यता का कुलीन स्वप्न, साकार करने को पलकों पर झुलाया है।।

सृजन, समय का सदुपयोग, चलते रहना, जीवन की सार्थकता और धैर्य तथा संतोष द्वारा सम्बल, अनुभूतियों से अनुभव, त्याग और सेवा से शालीनता, विद्या से विनम्रता जो जीवन के प्रगति पथ को प्रशस्त करते हैं, सर्वगुण सम्पन्न प्रतिभा के धनी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त (डी.लिट्.) के यशस्वी एवं तपस्वी जीवन की साधना को साधुवाद के साथ स्वस्थ-दीर्घायु व सूर्य की भाँति प्रकाश से पथ आलोकित करने की मंगलमयी कामना के साथ कोटिशः बधाई और शत् शत् नमन...।



श्री राममूर्ति गौतम 'गगन'
साहित्य सुरभि,
आवास—'253-ए, करुण कुंज, प्रहलाद नगर, मढीनाथ रोड, बरेली
चलयंत्र : 9412345589

51

गीतकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का साहित्यिक अवदान विविध आयामी है। एक कृतिकार के रूप में वे अपनी कृतियों में निरपेक्ष दृष्टिकोण के साथ उपस्थित होते हैं। वे अपनी मान्यताओं को किसी पर थोपते नहीं हैं, वरन् उनकी पारदर्शी व्याख्या करते हैं। भाषा इतनी सरल और सहज कि पाठक के अन्तस्तल तक निर्बाध पहुँचकर ठहर जाती है। डॉ. गुप्त साहित्य के गद्य और पद्य दोनों स्वरूपों के निपुण सृजेता हैं, वे अपनी अनवरत सृजनयात्रा में संघर्ष और सामर्थ्य को साहित्य में रूपान्तरित करते हैं। एक गीतकार के रूप में डॉ. गुप्त रागतत्त्व को पूरी प्रतिष्ठा देते हैं। यही कारण है कि वे उदास पतझड़ में भी वसन्त का आह्वान करते हैं। युगीन विसंगतियों ने जिस तरह से मनुष्य की रागात्मकता को क्षत-विक्षत किया है, समकालीन गीत भी उससे अछूता नहीं रहा है। जीवन के अत्यधिक जटिल प्रश्नों में गीतों से भी इनके समाधान की अपेक्षा की अतः गीत भी अपनी पारम्परिक भाव भंगिमाएँ बदलकर इन विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष पथ पर उतर आया। यह स्वाभाविक भी है, किन्तु जो रागात्मकता मनुष्य के जातीय बोध का अभिन्न अंग रही है, जिससे मनुष्यता परिभाषित हुई है, वह प्रभावित हुए बिना न रह सकी। डा. गुप्त के गीतों में समकालीन रागात्मकता के इसी अभाव को भरने की कोशिश विभिन्न रूपों में हुई है। उनका मानना भी है कि अनुराग की पारसमणि को छूकर मन कंचन बनता है अतएव उनके गीत मानवीय रागात्मकता की मर्मस्पर्शी व्यंजना करते हैं। डा. गुप्त के गीत उनकी मनःस्थितयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कवि के अन्तःकरण की तीव्र भावानुभूति ही गीतों की उद्भावना शक्ति है।

गीत की भावभूमि विस्तृत और विराट होती है इसीलिए काव्यगत विधाओं

में गीत श्रेष्ठ है। वह अनुभूतियों में सिन्धु के समान अटल और अभिव्यक्ति में आकाश के समान अछोर है। गीत कविता का चिरंजीवी वंशज है। अतएव डॉ. गुप्त का कवि हृदय अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए गीत का ही आश्रय लेती है। गीत में ही इतनी सामर्थ्य है कि वह कवि के चिरदग्ध हृदय के प्रति सहानुभूति व्यक्त करता हुआ उसकी व्यैयक्तिक प्रेम भावना को भी समाजगत मंगल कामना में रूपान्तरित कर सके। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की गीतात्मक काव्य कृतियाँ गीत के इसी वैशिष्टय को गतिमान करती है। उनके गीत संग्रह 'ऋतु वसन्ती', 'देवी माँ सहचरी प्राण' और 'गीतश्री' इसी रागात्मक भाव भूमि पर उन्हें कुशल गीतकार के रूप में स्थापित करती हैं। 'ऋतु वसन्ती' में कवि की चिर वेदना मुखरित हो उठती है—

गाऊँगा मैं दुःख में भी
गौर गात चला क्षणों में, प्राण रज्जु समीर कंपित
गल चली यौवन-श्री शुभ ढल चुकी मादक सुरासित

दुःख बना है मीत फिर भी
गाऊँ गा मैं दुःख में भी
उर सुकोमल भीत कातर, अधर निष्ठुर तदपि हँसते
विजन स्मृति में सुबकते नेत्र रह-रह व्यथा कहते
सुख न देगा साथ कुछ भी
गाऊँगा मैं दुःख में भी

यद्यपि कवि का स्वर नैराश्य के गहन तम में घिरा है तथापि दुःख को समान भाव से ग्रहण करने का संकल्प उसे सुखद स्थितियों के प्रति आश्वस्त भी करता है—

था कभी आगार सुख का, आज दुःखागार हूँ मैं
गीत गा लूँ आ जी भर, कब न जाने चल बसूँ मैं।।

सुखों से सूखा जगती के जीवन को कवि की अश्रुधारा से सिंचित सुखों की हरीतिमा युक्त आशा का अंकुरण होता है। गीतकार का चिरदग्ध हृदय समस्त सांसारिक सम्बन्धों में कहीं अपनत्व नहीं पाता कवि के अनेक गीतों में कवि का उसके जीवन संघर्ष अपने कटु अनुभवों के साथ व्यक्त हुए है। माना जाता है कि मनुष्य का अन्तर्जगत असंख्य अनुभूतियों का संग्रहालय है। जीवन व्यवहार की

कोई ऐसी घड़ी नहीं जिसकी क्रिया अथवा प्रतिक्रिया का प्रभाव अन्तर्जगत में संग्रहीत न हो, वस्तुतः तमाम अवरोधों, प्रतिकूलताओं के बीच ही मनुष्य अपने अस्तित्व का परीक्षण करता है बिना विषमताओं की अग्नि परीक्षा पार किए हम अच्छे या बुरे का भेद कभी नहीं कर पाते। कवि का अन्तर्मन ऐसी अनेक परीक्षाओं को पार करता है और अपनी तीव्रानुभूतियों को गीतों में व्यक्त करता है। ऐसी संचरणशील मनोवृत्तियाँ कवि के अधिकांश गीतों में बिखरी हुई हैं—

सकल सृष्टि ही तो यहाँ हँस रही है
प्राची दिशा में उषा खिल रही है
प्रभावी उठी गा दिशा मंद स्वर में
सुमन हैं उठे झूम इन घाटियों में
तो फिर यूँ, मुझे ही विवश कर दिया क्यों
ओ मेरे विधाता मुझे दुख दिया क्यों

अथवा

जो बनाया था अमृत सभी के लिए
बन गया है गरल वह खुदी के लिए
उम्र की मत कहो, रात कटनी कठिन
तुम क्या जानो कि कैसे गुजरते हैं दिन

कवि अपनी अन्तर्वेदना से जब बाहर झाँकता है तब उसे भारत की धरती की विविधता/ क्रान्ति का आह्वान, पूँजीवादी विषमताएँ, हिन्दी भाषा, राजनीति आदि के विषय अपनी वैयक्तिक वेदना से बड़े दिखाई देते हैं। दरअसल सांसारिकता में आकंठ डूब जाना जीवन का एक छोर है तो वैराग्य ग्रहण कर संसार का परित्याग कर देना जीवन का दूसरा छोर। जीवन में इनका समन्वय आवश्यक है, रचना का प्रत्येक तत्त्व समन्वय में ही निहित होता है अतः वस्तु या भावगत अर्जन और विसर्जन, राग और विराग बन्धन और मुक्ति दोनों ही पक्ष जीवन के लिए आवश्यक हैं। किसी एक का परित्याग कर जीवन की पूर्णता प्राप्त नहीं की जा सकती। कवि हृदय इस सत्य को समझता है और वेदनाभिव्यक्ति के कई विकल्प उसके सामने आ खड़े होते हैं और तब वह गा उठता है—

धरती यह भारत की, सोना अब उगलेगी
प्राची का मलय पवन, कानों में कहता है
सौरभ सर्वोदय की, घर-घर में महकेगी।

क्रान्ति का आह्वान युवक जागो
धरती के वीर पुत्र जागो
चतुर्दिक अंधकार, महा मोह तम विकार
लूटमार, छीन-झपट, हिंसा सर्वस्व सार
भूख प्यास औ' अकाल, अनावृष्टि अनाचार
जरा जीर्ण वृद्ध बाल, नारी का चीत्कार
करता मार्मिक पुकार जागो
धरती के वीर पुत्र जागो।

(ऋतु वसंती)

गीतकार पूंजीवादी व्यवस्था का तुलनात्मक चरित्रांकन करता हुआ बहुत से अनकहे प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत कर देता है। सामान्यजन और पूँजीपति में केवल आर्थिक विभेद ही नहीं होता, आचरण विभेद भी होता है। पूँजीपति की सभ्यता बहिर्मुखी और वैभव प्रदर्शन में होती है जबकि सामान्य जन की सभ्यता अन्तर्मुखी और अन्तरंग व्यवहार में होती है। पैसे के बल पर विशिष्ट जन कहलाने वाला पूंजीपति अपनी शोषणवादी मूल प्रवृत्तियों को अपनी धनिक आभा के आवरण से ढँक लेता है।

तुम धवल वस्त्र पहने तथापि मन काले
हम तन के काले किन्तु स्वच्छ मन वाले
तुम नगर निवासी सदा सभ्य कहलाते
यद्यपि सारे ही दुर्गुण तुममें बसते (ऋतु वसंती)

कवि की गीत चेतना जगत की पीर के साथ आत्मसात होना चाहती है। कवि के कुछ गीत कालखण्ड की सीमाओं से परे आज भी मनुष्य की वेदनामय स्थितियों में प्रासंगिक है और समय सापेक्ष है। मनुष्य जीवन की जटिलताओं से जिस तरह जूझ रहा है, समृद्ध और अधिक समृद्ध तथा दरिद्र और अधिक दरिद्र होते चले जा रहे हैं। इस असन्तुलन में केवल आर्थिक विसंगतियाँ ही पैदा नहीं की है, मानसिक विसंगतियाँ भी पैदा कर दी हैं। ऐसे में गीतकार कवि अनेक स्तरों पर समानता के अधिकारों से वंचित इस सामान्य जन की पीड़ा को आत्मसात करता हुआ संकल्प व्यक्त करता है—

अब न मैं यूँ जी सकूँगा।
हूँ धरा का कवि अकिंचन भाव सुमनों को सजाता।
पीर जग भर की समेटे एक नई दुनिया बनाता।

यथाकांक्षी साधनारत मान बिनु न रह सकूँगा।
अब न यूँ मैं जी सकूँगा।

कवि की इस संकल्पबद्धता में व्यक्तिगत भावुकता को समूहगान संवेदना में बदलते देखा जा सकता है—

मैं नूतन निर्माण करूँगा
जब तक प्राण देह में मेरे
तब तक मैं निर्माण करूँगा
हूँ किशोर, यौवन पथ चारी
साहस, शौर्य, जोश, बलशाली
जगती का तम हर प्रकाश कर
सर्वोदय संदेश कहूँगा
मैं नूतन निर्माण करूँगा। (गीत श्री)

मातृभूति की अर्चना में गीतकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का स्वर सांस्कृतिक और सामाजिक एकता का उदाहरण प्रस्तुत करता है—

गीत गुरिया की बना माला पिन्हाऊँगा तुम्हें मैं
भारती माँ भाव सुमनों से सजाऊँ गा तुम्हें मैं
शब्द होंगे पुष्प मेरे लय बनेगी डोर उसकी
पुष्प लय डोरी से विंधकर महकती माला बनेंगे
नाद भूषित भाव मेरे भारती का गीत होंगे
काव्य रूपी थाल लेकर, आरती लूँगा तेरी मैं
गीत गुरिया की बना, माला पिन्हाऊँगा तुम्हें मैं

(गीत श्री)

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त मूलतः रूप-राग के गीतकार हैं। संयोग और वियोग की वैयक्तिक प्रेम दशायें व्यापक रूप में उनकी अनुभूतियों को विस्तार देती हैं। एक तरह से उनकी गीत साधना उनकी नवीन साधना के समान्तर चलती है। गीतकार आत्मपीड़, उपालम्भ, अभिसार के विविध आयामी चित्र अपनी अनुभूतियों की तूलिका से सृजित करता है।

मनः क्षितिज पर फैल रही रूप माधुरी जिसकी
प्रेम-राशि की रजत रेख है चित्रित, अंग-भंग उदभासित

श्याम गात जैसे पावस में चपला से होता आलोकित
रति-पति का साभार निमंत्रण जिसको
कैसे भूलूँ उसको

(ऋतु वसंती)

अथवा

प्रिय मिलन की मधुर वेला
चल दिया गृह से अकेला

प्रिय की मोहक और मादक छवियों के बिम्ब उसे सम्मोहित कर अपने सौन्दर्य के सिन्धु में डूबने को आमंत्रित करते हैं। गीतकार कहता है—

होगी पूनम की मधुर रात्रि ज्योत्सना धरा पर विहँसेगी
आ भेंटेगा राकेश उसे चन्द्रिका उसे अभिसारेगी
होगी दोनों की मिलन रात्रि तब साजन मुझे जगाओगे
प्रियतम बोलो कब आओगे

डॉ. गुप्त के गीतों में अपनी मस्ती, अपना जीवन दर्शन, अभिव्यक्ति की अपनी भाव भंगिमाएं हैं जो वर्जनाओं को अपनी दृष्टि से देखते और कहते हैं। डॉ. सुरेश के सन्दर्भ में नारी कवि जीवन की चेतना है। कवि का अन्तर्मन नारी के विविध रूपों के चुम्बकीय व्यक्तित्व से सदा आकर्षित रहा है। कवि स्वयं भी स्वीकारता है कि मेरे पुरुष मन को सर्वाधिक आकर्षित-उद्वेलित उसके प्रेयसी और पत्नी रूप ने किया है। उनकी कृति 'देवी, माँ, सहचरी, प्राण' इसका जीवन्त साक्ष्य है। गीतकार अपने गीतों में प्रणयानुभूति, आनन्द, उल्लास की सभी छवियों को बड़े निःसंकोच भाव से व्यक्त करता है। इन आत्मलीन प्रणय गीतों में कवि भाव विभोर प्रतीत होता है।

डा. गुप्त अनुभूति का संवरण नहीं करते, प्रत्युत तत्काल अभिव्यक्त कर देते हैं। उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति में कहीं कोई मध्यांतर नहीं है, और न ही उनके बीच अंतरंग क्षणों पर गोपनीयता का कोई आवरण। कवि अपनी भाषिक संरचना में ऐसे किसी निषेध या आचार-संहिता को स्वीकार नहीं करता जो उसकी नैसर्गिक अनुभूतियों को बाधित करे। उनके गीतकार के लिए अन्तर्मन की सन्तुष्टि ही सबसे बड़ी उपलब्धि है। 'देवी, माँ, सहचरी, प्राण' में संग्रहीत उनकी कविताएँ व गीत उनके इसी जीवन दर्शन को रूपायित करते हैं

और यही जीवन दर्शन उनकी कविता को प्रवाह देता है।

क्यों पुकारे गंध मुझको वासना की?

ऋतु वसंती हो रहा है जग वसन्ती
मन वसन्ती हो रहा है तन वसन्ती
फूल सरसों गंध की आवाज देकर
टेरती दिखला सुनहरा मग वसन्ती
गुदगुदाये चाह मुझको कामना की

श्याम तन, कटि क्षीण, पुष्ट उरोज लघु लघु
कमलनयनी, दंत-मुक्ता, स्मिति मृदु-मृदु
केश श्यामल, दीर्घ वेणी, पुष्प-गुम्फित
मोहते मन भ्रमर आमंत्रण वसंती

तन दाह शीतल तपाती चाहना की
क्यों पुकारे गन्ध मुझको वासना की

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का गीतकार रूप 'ऋतु वसंती' में पूर्णतः मुखरित हुआ है उनके गीतों में रागात्मकता सर्वत्र व्याप्त है जो गीतों को सम्प्रेषणीय बनाती है। उनके संयोग वियोग दोनों में नैसर्गिक भावोद्रेक के दर्शन होते हैं। विशेषकर वियोग का सम्बन्ध विप्रलम्भ शृंगार रस से होता है जिसकी दस अन्तर्दशाओं का उल्लेख मिलता है यथा-अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। इन्हें काम दशा भी कहा गया है क्योंकि इनका सम्बन्ध रति या प्रेम से होता है। डॉ. गुप्त ने इन अन्तर्दशाओं का यथावत निरूपण किया है।

आली प्रीति की रीति निराली
दहके अंतर असह्य अग्नि में
रुकता नहीं नीर नयनों में
जगना और भीगना आली।
गीति की रीति निराली।।

कवि अपने गीतों में उस अव्यक्त अगोचर की चेतन शक्ति के प्रति भी भावोद्गार

व्यक्त करता है जो सृष्टि की संचालक है, जहाँ कवि दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहता है—

ये जीवन-तार झंकृत कर, बजाता कौन वीणा है?
प्रभाती के खुले स्वर में सुनाता कौन वीणा है?
गयी है रात सपनों की गया है चाँद पूनम का।
सितारों की गई दुनिया गया जुगनू मचलता सा।
लो आँगन को उजाले की किसी ने धुन सुनाई है।
प्रभाती के खुले स्वर में सुनाता कौन वीणा है।

गीतकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त अपने गीतों में जीवन की विविध आयामी व्यंजना करते हैं, उनमें कवि के स्वतंत्र एवं स्वच्छंद अनुभूतियों के मनमोहक चित्र प्रस्तुत होते हैं। वे जहाँ अपने गीतों में शृंगार के उद्दामवेग को रूपायित करते हैं वहीं उसके संयोग और वियोग के मर्मस्पर्शी चित्र भी प्रस्तुत करते है। संयोग की मादकता और वियोग की भाव प्रवणता अद्वितीय है। नारी के रूप माधुर्य, उसकी गरिमा, ममता एवं महिमा से कवि प्रेरित होता है और इस प्रेरणा का स्तवन भी करता है। इतना ही नहीं कवि ने मानव जीवन का गहन अनुशीलन किया है। जीवन के कटु अनुभव जहाँ उसे दारुण दुःख देते हैं, वहीं दिशा भी देते हैं। गीत कवि की लेखनी मानव के स्वार्थ, लोभ, असत्य व अन्याय आदि मनोविकारों पर भी अपनी रचनात्मक प्रतिक्रिया देती है। मानवीय स्थितियों के प्रति उसकी सहज संवेदना आपसी विश्वास और रागात्मकता का विखण्डन होने से बचाती है।



श्री रमेश गौतम
'रागभूमि', 78-बी, संजयनगर
आवास—बाईपास रोड, बरेली 24305
मोबाइल नं. : 09411470604

51

गीतों का पावन संगम है 'गीतश्री'



साहित्य-जगत इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं कि हिन्दी भाषा और साहित्य के मूर्धन्य विद्वान डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के शोध-ग्रन्थों 1. पन्त की दार्शनिक चेतना, और 2. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण, से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि हुई है। डॉ. गुप्त ने विश्व के महान साहित्यकारों की जीवनी लिखकर शोध-छात्रों और सुधी पाठकों का ज्ञानवर्धन किया है। वे केवल विद्वान लेखक और समीक्षक ही नहीं, अपितु एक सहृदय व्यक्ति भी हैं। उनकी सहृदयता से ही कविता ने जन्म लिया है। सहृदय व्यक्ति ही दूसरों के दुःख को देखकर दुःखी हो सकता है और यही भाव करुणा है।

डॉ. गुप्त का जीवन अध्यापक का, मस्तिष्क आलोचक का और हृदय कवि का है। यही कारण है कि वह रचनाधर्मी विवेक से सम्पन्न एक संवेदनशील कवि हैं। उनके काव्य का मुख्य स्वर राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत हैं। सन् 1962 में चीन के आक्रमण को लेकर काव्य के क्षेत्र में जो ओजस्वी धारा प्रवाहित हुई, उसमें डॉ. गुप्त की सहभागिता भी सराहनीय रही।

गीतों के पावन संगम 'गीतश्री' में उन्होंने चीन को ललकारते हुए कहा—

चीनी बौनो सुनो, हिमालय शिखर बहुत ऊँचा है
मत दिन में ही सपने देखो, जीवन-क्षेत्र नया है
अगर हमारे बढ़े चरण, या तनी भौंह प्रलयंकर
धूलि-धूसरित हो जाओगे, नाचेंगे जब शंकर (पृष्ठ 64)

डॉ. गुप्त भी काव्य को समय-सापेक्ष और समाज-सापेक्ष रचनात्मक कर्म मानते हैं। वह प्रेम-गीतों की तुलना में प्रासंगिक रचनाओं को अधिक महत्त्व देते है—

कवियों! क्यों रचते प्रेम-गीत हो रातों में
क्यों रहते हो रत हर क्षण हास-विलासों में
क्या जगनिक, वरदाई का तुमको ध्यान नहीं
क्या हल्दी घाटी, पानीपत का ध्यान नहीं
बन्धुओं! शपथ तुमको प्रलयंकर शंकर की
बन्धुओ! लिखो गाथा नवीन बलिदानों की (पृष्ठ 62)

वह भारत माता के वीर पुत्रों का आह्वान करते है—

क्रान्ति का आह्वान, युवक! जागो
धरती के वीर पुत्र! जागो (पृष्ठ 68)

भारत की राजपूती आन का स्मरण करते हुए और हिन्दुस्तान की शपथ लेते हुए वह कहते हैं—

सुनो, हूँ वंशधर राणा-शिवा का
रखूँगा मान निज रजपूत कुल का (पृष्ठ 65)

बन्धुओ! तुमको शपथ उस आन की
शौर्य, विक्रम और उस बलिदान की (पृष्ठ 58)

उनका मानना है कि भारत-भूमि सदैव सोना ही उगलेगी और हमारा देश कभी निर्धन नहीं कहलायेगा।

धरती यह भारत की, सोना अब उगलेगी
धन-धान्य वैभव से, धरती पट जायेगी (पृष्ठ 56)

माँ भारती की अर्चना करते हुए वह कहते हैं—

भारती माँ, भाव-सुमनों से सजाऊँगा तुम्हें मैं
काव्य रूपी थाल लेकर, आरती लूँगा तेरी मैं (पृष्ठ 24)

इसी क्रम में उनका 'संकल्प' भी उल्लेखनीय है—

जब तक प्राण देह में मेरे
तब तक मैं निर्माण करूँगा
मैं नूतन निर्माण करूँगा (पृष्ठ 12)

'गणतंत्र दिवस' को केन्द्र में रखकर वह अपने प्रगतिशील उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहते हैं—

शिक्षा का विस्तार करेंगे, दुःख-दरिद्रता दूर करेंगे
श्रम से नव निर्माण करेंगे, देशभक्ति का भाव भरेंगे
नहीं लड़ेंगे आपस में, हम सब हैं भाई-भाई
छब्बीस जनवरी आई, गणतंत्र दिवस है लाई (पृष्ठ 16)

डॉ. गुप्त ने पूँजीपतियों की दुष्टता और चरित्रहीनता पर प्रहार करते हुए लिखा है—

तुम पैसे वाले, जेब पराई तकते
हम हैं गरीब, पर तुष्ट स्वयं में रहते
तुम लम्पट कुकुर समान, पर स्त्री गामी
हम माँ-बहनों-सा पूजें, पर बदनामी (पृष्ठ 74)

डॉ. गुप्त ने 'गीतश्री' को उन दुःखों, एकान्त क्षणों और प्रेरक तत्त्वों को समर्पित किया है जो गीतों में अभिव्यक्त हुए हैं। इस संग्रह में माँ की पुकार, विरह गीत, दीपावली, गांधी जयन्ती, झोपड़ी और महल, विदा वेला, आँसू, मुझे दुख दिया क्यों, जमाने की बदली हवा, उद्‌बोधन, बहन की याद में, पावस गीत आदि शीर्षक से लिखे गए गीत भी सुन्दर और पठनीय हैं। चूँकि इस संग्रह के अधिकांश गीत रचनाकार के प्रारम्भिक दिनों के हैं, इसलिए गीतों में तुकान्त का सुन्दर निर्वाह नहीं हो पाया है। प्रारम्भ में सरस्वती वन्दना बहुत सुन्दर और प्रभावशाली है। कुल मिलाकर, छान्दसिक रचनाओं का यह पहला प्रयास सराहनीय है।



श्री हरिशंकर सक्सेना
आवास—145, कर्मचारी नगर, बरेली'- 243 122
मोबाइल नं. : 9760783993

53

साहित्य साधक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



4 जनवरी 1940 में शाहजहाँपुर में जन्में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का कर्म क्षेत्र बरेली जनपद रहा। आपने वहाँ बरेली कालेज बरेली के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग में अध्यापन किया। सम्प्रति शोध निर्देशक के रूप में शोध कार्यों को नूतन आयाम दे रहे हैं। आपके शोध प्रबन्ध का नाम है— "हंस जवाहिर : एक आलोचनात्मक अध्ययन (लघु प्रबन्ध)। आपने विविध विधाओं में लेखन किया है- आधुनिक हिन्दी-उर्दू काव्य समीक्षा, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र, हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास, विश्व के महान साहित्यकार सुमित्रानन्दन पन्त', बाबा नागार्जुन, पंत की दार्शनिक चेतना (पीएच.डी.), छायावादोत्तर हिन्दी काव्य (डी.लिट्)। आपके काव्य संग्रहों में प्रमुख हैं-मन पाँखी, स्वर्ण जयन्ती वर्ष, गीतश्री, ऋतु बसन्ती, आत्ममंथन तथा लोकतांत्रिक भारत में। आपने बाल साहित्य भी लिखा है जिसमें आपकी कृति है परीजाद (बाल उपन्यास)। 'अभिगीता' नाम से आपने श्रीमद्भगवतगीता का काव्यानुवाद किया है। 'प्रसाद' नाम से बांग्ला गीतों का हिन्दी लिप्यान्तर किया है। आप साहित्यायन 'नामक त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादक हैं जिसे डॉ. नितिन सेठी एवं डॉ. लवलेश दत्त का भरपूर सहयोग मिल रहा है। दोनों शिष्य ऋण चुकाने में निष्ठा के साथ लगे रहते हैं। "साहित्यायन" के अब तक कई महत्त्वपूर्ण तथा शोध पर केन्द्रित अंक निकल चुके हैं। अभिलेख प्रकाशन से प्रकाशित उक्त त्रैमासिक महत्त्वपूर्ण तथा शोध छात्रों के लिए उपयोगी है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त उच्च शिक्षित होने के साथ-साथ विनम्र एवं संवेदनशील हैं।

साहित्य दो प्रकार का है सत्साहित्य एवं असत्साहित्य, किन्तु सत्साहित्य ही जनमानस का मार्गदर्शन करता है। अश्लील साहित्य-लेखन अर्थहीन तथा

समाज का पथभ्रष्टक है। "साहित्य" शब्द को स्वयं मैंने अपने शब्दों में लिखने का प्रयास किया है—

लिखता है हित सहित जो देता शुभ साहित्य।
वो साहित्यसाकाश का कहलाया आदित्य।।

करते हैं जो साधना, साधक वे अभिराम।
हर पल बढ़ते साध्य हित गंगा से अविराम।।

हृदय पटल पर विश्व के अंकित जिनका नाम।
अर्थवान साधक रहे, बोले जिनके काम।।

सबल लेखिनी बन चले दिखलाये शुभराह।
आलोकित साधक रहे मेटें पथ का स्याह।।



डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी
डी.लिट्, साहित्य भूषण
आवास—आंचल कालोनी, श्यामगंज बरेली, 243005 उ.प्र.
मोबाइल नं. : 9719687166

ऐसा कभी न सोचा होगा

हिन्दुस्तान हमारा प्यारा
हिन्दू जय श्रीराम कहेगा
लेकिन हिन्दू काश्मीर का,
शरणार्थी निज देश में होगा-
ऐसा कभी न सोचा होगा।
करवाया जब देश विभाजन
जिन्ना ने, न सोचा होगा।
एक दिन ऐसा भी आएगा,
पाकिस्तान विभाजित होगा।
ऐसा कभी न सोचा होगा।

54

संघर्षों की अग्नि में तपकर बना कुन्दन



'पंत की दार्शनिक चेतना', 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य' का दार्शनिक विश्लेषण', 'हंस जवाहिर : एक अध्ययन'; व 'विश्व के महान् साहित्यकार', जैसी दर्जनों गम्भीर आलोचनात्मक कृतियों के प्रणेता; 'मन पाँखीं', 'स्वर्ण जयन्ती वर्ष', 'गीत श्री', 'ऋतु वसन्ती', 'आत्ममंथन', 'लोकतांत्रिक भारत में' और 'देवी माँ, सहचरी, प्राण' जैसी उल्लेखनीय काव्य-कृतियों के सर्जक डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने हिन्दी साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में पर्याप्त लेखन-कार्य किया है; गुणात्मक स्तर पर भी और परिमाण के स्तर पर भी।

लेखक और कवि रूप के अलावा भी उनके कई रूप हैं, जो मन मोहते हैं। जैसे वे एक बेहतर, सफल, सुलझे, समझदार और संवेदनशील इंसान हैं। शिष्य वत्सल हैं। सम्पर्क साधक हैं। सम्बन्धों को जीने वाले हैं। उच्च कोटि के सम्पादक हैं। अच्छे प्रेमी, पति और पिता हैं। स्मृतियों को सहेजे-सँजोये रखने वाले कुशल शिल्पकार हैं। निश्छल हैं। अपने आप पर और अपनी गलतियों पर हँस सकने का अपार साहस रखने वाले डॉ. गुप्त का कुछ भी गुप्त नहीं है। उनका सब कुछ चमकते शीशे की तरह समाज के सामने हैं। उनका किंचित मननीय' ही नहीं अपितु सब कुछ मननीय है। 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी' पुनि जहाज पर आवै; वैसे ही डॉ. गुप्त का बाल और यौवन मन आज भी उसी जमुना के तीर जाने के लिए बेकल-बेचैन दीखता है, जिसे कभी वे अपने संघर्षों का दिन कहते हैं।

एक और दावा है कि एक बार जिसने डॉ. गुप्त के सर्जनात्मक साहित्य का रसास्वादन कर लिया, वह हमेशा के लिए उनका प्रशंसक और पाठक हो गया। वह वर्ग भी जो शराफत और नफासत का चोला पहनकर खजुराहो की

मूर्तियों में अश्लीलता का दर्शन कर नाक-भौं सिकोड़ता है और तकिये के नीचे रख-छिपाकर काम-कला की पुस्तकें पढ़ता है तथा रति-आनन्द के सूत्र तलाशता है। सौन्दर्य से ईर्ष्या करता है, और लुक-छिपकर उसे देखने की चेष्टा भी करता है। अर्थात् डॉ. गुप्त का साहित्य बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, शोधार्थी, सरस-रसिक, सामान्य-असामान्य, विशिष्ट-अतिविशिष्ट, सरल-कठिन , सर्जक-समीक्षक और पाठक-लेखक सभी को सन्तुष्ट करता है; सम्पूर्ण आनन्द देता है। ऐसा लगता है कि डॉ. गुप्त के सर्जना-कर्म का उद्देश्य भी यही है।

इसी उद्देश्य की पूर्ति में हाल ही में उनकी दो कृतियाँ—'किंचित् मननीय' और 'स्मृति सिन्धु से' प्रकाश में आयी है। किंचित मननीय आपके सम्पादन में पिछले आठ-नौ वर्षों से छप रही पत्रिका 'साहित्यायन' के सम्पादकीय टिप्पणियों का संकलन है। वस्तुतः किंचित मननीय है लीक और परम्परा से हटकर, सर्वथा नया तेवर लिए हुए। इस पुस्तक पर अलग से चर्चा फिर कभी। अभी मन उस 'स्मृति-सिन्धु' में गोते लगाने का कर रहा है, जिसमें से डॉ. गुप्त ने अनगिनत मोती निकाल कर सुधी समाज के सामने रखे हैं, जिज्ञासु और पिपासु छात्रों के लिए जीवन-समाधान रूपी मोती के रूप में भी संघर्षशील एवं प्रयासरत युवा तथा नयी पीढ़ी के लिए जीवन के पाथेय-रूप में भी।

पूरी पुस्तक कुल आठ अध्यायों में बँटी हुई है। परिशिष्ट खण्ड के दोनों हिस्सों को मिला दिया जाये तो कुल दस अध्यायों में। यद्यपि पुस्तक के सभी अध्याय एक दूसरे से अलग और पृथक् हैं, पर गुण-धर्म और प्रकृति की दृष्टि से नहीं अपितु घटनाक्रम और तिथियों आदि की दृष्टि से; किन्तु इतने पर भी उनमें सर्वत्र एक लय-साम्यता है, सांगीतिक व्याकरण है, प्रतिबद्धता है और पाठक को शुरू से अन्त तक अपने से जोड़े रखने का महत्त्वपूर्ण गुण है। 'चरैवेति चरैवेति' के सिद्धान्त पर डॉ. गुप्त ने प्रस्तुत पुस्तक में अपने पूरे जीवन-संघर्ष और शिक्षा व्यवस्था की कमियों (खामियों) को उजागर कर रख दिया है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन के पीछे संस्मरणकार के इस मन्तव्य से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका उद्देश्य क्या है और पुस्तक के भीतर पाठक को संस्मरणकार के अनुभव की किन-किन अजन्ता और एलोरा की गुफाओं से साक्षात होगा। बानगी आभार-प्रदर्शन में ही मिल जाती है, जहाँ लेखक शिक्षण-संस्थाओं, गुरुओं, मित्रों-सहपाठियों और सगे सम्बन्धियों एवं परिवारीजनों के साथ ही उन बाधाओं-व्यवधानों का भी आभार प्रदर्शित करता है, जो बार-बार आकर उसके जीवन में प्रसुप्त ऊर्जा को जगाते रहे, साथ ही आभारी है उन

विरोधी मित्रों, और व्यक्तियों का भी, जिन्होंने सशक्त औरऊर्जावान बनाकर लेखक को कर्मनिष्ठा के प्रति सदैव दृढ संकल्पिक किया। आभारी है-धर्मपत्नी और परमपिता परमात्मा के भी, जिन्होंने परोक्ष-अपरोक्ष प्रतिपल उसका साथ दिया। आखिर मानसकार गोस्वामी जी भी तो यही कहते हैं—

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिने बाएँ।।
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरे हरष विषाद बसेरे।।
पर अकाजु लगि तनु परहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं।
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस्र बदन बरनई पर दोषा।।

अर्थात् बिना काज दाहिने-बायें होने, दूसरे का नुकसान करने और किसी की उन्नति, यश-वृद्धि से ईर्ष्या रखने वाले की वन्दना किसी पीड़ा के क्षण में गोस्वामी जी भी करते हैं। ऐसे अवसर पर मुझे महादेवी जी की कुछ पंक्तियां याद आती हैं—

मत व्यथित हो फूल, किसको सुख दिया संसार ने?
स्वार्थमय सबको बनाया, है यहाँ करतार ने।
जब न तेरी दशा पर, दुःख हुआ संसार को।
कौन रोयेगा सुमन हमसे मनुज निःसार को?

पर 'स्मृति-सिन्धु' के भीतर गोते लगाते हुए यह कहना पड़ता है कि इस सु-मन ने संसार को अपनी सु-वास से सुन्दर और सुगन्धित किया है। उस सु-वास से, जो शायद कभी त्याग और तपस्या की आँच पर न पका होता तो कुन्दन की जगह अभिशापित कहा जाता। कहना कुछ अनुचित नहीं होगा कि 'एक लम्बे समय तक गम्भीर रोग का शिकार होकर शय्यागत रहने और दिव्यांगता की हद तक पहुँचने वाले उस डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जो विद्यालय के नल पर अंजुलि (अँजुरी) के सीधे न बन पाने की वजह से ठीक से कभी पानी नहीं पी पाये, हथेली के नीचे से बहने-चूने वाले पानी को पीकर दस प्रतिशत तक ही प्यास बुझा पाने वाले ने अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति से यह साबित कर दिया कि— *"कभी-कभी लोहा भी कंचन बन जाता है। तन का बहा पसीना चन्दन बन जाता है/ (और) निष्ठा से यदि श्राप पूजता रहा मनुज/ (तो) वहीं श्राप एक दिन अभिनन्दन बन जाता है।"* सचमुच ऐसे ही लोग दिव्यांग कहे जाने के योग्य हैं; अन्यथा अधिकांश जन शरीर से एकलांग और सबलांग होते हुए भी मानसिक और वैचारिक तौर पर तो विकलांग होते

हैं। ऐसे ही लोगों के लिए शायद कभी किसी ने कहा होगा कि—

कभी महक की तरह हम गुलों से उड़ते हैं,
कभी धुएँ की तरह पर्वतों से उड़ते हैं;
ये कैंचियाँ हमें उड़ने से खाक रोकेंगी,
हम परों से नहीं हौसलों से उड़ते हैं।

और कहा भी गया है कि— *"मंजिलें उन्हीं को मिलती हैं, जिनके सपनों में जान होती है/ पंख होने से कुछ नहीं होता, हौंसलों से उड़ान होती है।"*

डॉ. गुप्त की इस पुस्तक को पढ़ने के बाद यह बात पूर्ण दावे के साथ कही जा सकती है कि सचमुच अपने हौसले से उन्होंने वह उड़ान तय की है, वह मुकाम हासिल किया है, जहाँ पहुँचना और जिसे पाना हर व्यक्ति (रचनाकार-साहित्यकार) को अभीष्ट होता है। नतीजा, आज वे बहुतों के लिए प्रेरणास्रोत, सम्बल पुरुष और आश्रयदाता हैं तो अपने समकालीन अनेक लोगों के लिए ईर्ष्या के पात्र भी। लेकिन उन्हें इससे कोई मतलब नहीं कि कौन उनसे ईर्ष्या कर रहा है और कौन उनकी प्रशंसा कर रहा है। उन्हें तो बस अपने काम से काम। आराम भी लेटकर पढ़ने के रूप में। नींद भी पढ़ते-पढ़ते सोने के क्रम में। मनोरंजन भी तनोरंजन की दुनिया से दूर या तो सत्साहित्यिक किताबों-पत्रिकाओं के बीच अथवा शाम छः बजे से बारह बजे तक टी.वी. के सामने; देश-दुनिया के हाल-चाल, समाचार,मनोरंजन आदि के साथ। 'कालो गच्छति धीमताम्' के रूप में। यही उनका शगल है और यही उनकी आदत, जो उन्हें अन्यों से अलग ही नहीं अपितु विशिष्ट भी बनाती है। बचपन से ही सृजनात्मक कार्यों में रुचि। सत्रह वर्ष की उम्र में 'परीजाद' उपन्यास की रचना। 'गुलकावली', 'किस्सा हातिमताई', 'किस्सा तोता मैना', 'प्रेमसागर', 'सुखसागर', 'चन्द्रकान्ता सन्तति', 'भूतनाथ', 'गीता', 'रामायण' आदि पन्द्रह-सोलह की आयु तक पढ़ लिये थे। तेरह-चौदह वर्ष की उम्र में 'जासूसी दुनिया' और 'रूमानी दुनिया' के तहत इलाहाबाद से प्रतिमाह छपने वाले उपन्यासों, 'अमेरिकन रिपोर्टर', 'सोवियत भूमि' आदि विदेशी पुस्तकें और तरह-तरह की फिल्मी, धार्मिक, राजनीतिक आदि पत्रिकाएँ उसी (खेलने-कूदने की) उम्र में मनोयोग से पढ़ गये थे। इस पढ़ने और लिखने की ललक ने उन्हें एक बेहतर इंसान बनाया और बिना पढ़े लेखक बनने के चक्कर में लिक्खाड़ बनने की जगह वे अच्छे रचनाकार बने। कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध सब लिखे और बढ़िया लिखे। उत्कृष्ट और उच्च कोटि के लिखे। अन्यथा

आजकल तो लोगों में पढ़ने की प्रवृत्ति ही लुप्त होती जा रही है। विवेकीराय जी ने एक व्यंग्य-लेख लिखा है—'लेखक बनना है पढ़ें क्यों? खुशी है कि डॉ. गुप्त लेखक से पहले एक बड़े और सधे पाठक हैं, सजग और सचेत विद्यार्थी हैं, जागरूक-संवेदनशील और समझदार रचनाकार हैं; उसके बाद लेखक हैं। "नैसर्गिक पाठशालाः मेरा शहर शाहजहाँपुर' से लेकर 'अध्यापन और अध्ययनः डी.लिट्' तथा डी.लिट. के शोधकार्य सम्बन्धी आपबीती को पढ़ने के बाद यह बात दावे के साथ कही जा सकती है।

अपने शहर शाहजहाँपुर, जहाँ उनका जन्म हुआ था, को उन्होंने नैसर्गिक पाठशाला के रूप में याद कर, और अंतरिक्ष यात्री राकेश जी के इन्दिरा गांधी के प्रश्न के जवाब में दिये उत्तर—'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' को उद्धृत कर डॉ. गुप्त ने आरम्भ में ही अपनी उस मंशा को जाहिर कर दिया है, जहाँ जननी और जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर बताया गया है। उन्होंने यह भी संकेत दिया है कि जननी और जन्मभूमि को कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस लेख में डॉ. गुप्त ने शाहजहाँपुर का 'महाभारत' 'रामचरितमानस' और पौराणिक आख्यानों से उद्धरण देते हुए 'मेरी बेरी के बेर बड़े मीठे', 'प्रातः भ्रमण', 'पतंगबाजी', 'पिताजी-प्रसाद : चाय-हलवा', 'टमटम की सवारी', 'शहीदों की चिताओं पर', 'पिताजी का निधन', 'पैतृक घर में', 'दो आँगन वाला घर', 'मशकवाला', 'लैटमैन रामचरन', 'भौंरा खाना', 'ईंट-भट्टा', 'सरोवर शिक्षायतन', 'लूटल बीच बाजार', 'झूलहिं सखी संग मिलि गावहिं', 'खोंचे, सुई, चूड़ी वाले यानी फेरी वाले' और 'प्राणों का मोह' शीर्षक में बाँटकर जो सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक और राजनैतिक यात्रा करायी है, वह मनोरम होने के साथ-साथ आकर्षक और कुतूहलवर्धक भी है। जैसे कभी आजादी-पूर्व के गाँवों का दर्शन करने के लिए प्रेमचन्द का साहित्य पर्याप्त बताया गया, आजादी-बाद के गाँवों का दर्शन कराने के लिए विवेकी राय का साहित्य, उसमें भी खासकर उनका औपन्यासिक साहित्य है, उसी प्रकार शाहजहाँपुर का समग्र दर्शन करने के लिए डॉ. गुप्त का यह लेख पर्याप्त है।

व्याधियाँ और विकलांगता का जीवन सबसे विषम बाधाएँ हैं। सोलह-सत्रह की वय तक आते-आते उसने बिस्तर पकड़ लिया और एक बार पकड़ा तो पकड़ा फिर छोड़ने का नाम नहीं। न बिस्तर को रोगी छोड़ पा रहा था और न रोगी को रोग। सात वर्ष तक लेखक शय्यासीन रहा। पिता का निधन पहले ही हो चुका था, माँ भी न रहीं। तरह-तरह के उपचारों-आपरेशन आदि से

रोग से मुक्ति तो मिली, पर ऐसी मुक्ति कि जिसमें पल-पल व्यक्ति मृत्यु की कामना करे; पूर्णतः विकलांग बनाकर। लेकिन उस विकलांगता को आपने अपनी प्रतिभा, जिजीविषा और लगन के बल पर दिव्यांगता में बदल दिया। जो शरीर कभी

अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ, ऊर्जास्वित या वीर्य्य अपार,
स्फीति शिरायें, स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार।

का प्रतीक था, वह पूरी तरह टूट चुका था लेकिन जैसे मनु के नैराश्य भरे जीवन में श्रद्धा का आगमन होता है और वह ललकार के स्वर में कहती है—

जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल
ईश का वह रहस्य वरदान, कभी मत इसको जाओ भूल
और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान
शक्तिशाली हो, विजयी बनो विश्व में गूँज रहा जयगान।

उसी तरह डॉ. गुप्त के जीवन में 'इन्दु' का आगमन होता है, जिससे उनका निराशा और दुराशा से भरा जीवन आशा में बदल जाता है। फिर वे 'चिन्ता' से हटकर आशा के संचार में 'काम' की ओर बढ़ते हैं, लेकिन उनका काम भी 'वासना' के लिजलिजेपन से दूर 'लज्जा-युक्त काम है; जहाँ 'कर्म' के प्रति जागरूकता और सन्देश तो है, पर 'ईर्ष्या' नहीं। बीच के जीवन में 'इड़ा' के रूप में 'पी-जी' का आगमन होता है लेकिन वह एक बुरे 'स्वप्न' की तरह जल्दी ही उनके जीवन से चली जाती है। आगे चलकर जीवन में 'संघर्ष' का दौर चलता है। रोगों से संघर्ष, आर्थिक मोर्चे पर संघर्ष, अध्ययन-प्राप्ति में संघर्ष, नौकरी-साक्षात्कार आदि में संघर्ष, पीएच.डी., डी.लिट्. आदि के कार्य में संघर्ष, विभागीय लोगों से संघर्ष, किन्तु इन संघर्षों से आपने कभी हार न मानी। टूटे नहीं। अपितु चट्टान की तरह हमेशा अडिग रहे। नतीजा औरों के लिए उनका जीवन-दर्शन 'रहस्य' बना रहा और वे शनैः पन्था शनैः कन्था की तर्ज पर स्वयं अपने विधायक हुए। 'अप्प दीपो भव' बने और 'निर्वेद' से होते हुए 'आनन्द' की महाचिति तक पहुँचे। उस स्थान पर पहुँचे जहाँ मात्र— *''चेतना एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।''* कारण, आपने प्रसाद की इन पंक्तियों को अपना आदर्श जो बना लिया है—

औरों को हँसते देखो मनु-हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।

सो, आपने अपने सुख को विस्तृत बनाया। स्मृति सिन्धु में गोते लगाये और फिर क्या! सुधी समाज के आगे मणि-माणिक्य की झड़ी लगा दी।

प्रसंगवश बता दूँ कि स्मृतिकार अपनी स्मृतियों में सजाने-सहेजने में जितना ईमानदार है, उसकी प्रस्तुति में भी वह उतनी ही ईमानदारी, साफगोई एवं निश्छलता का परिचय देता है। आलोच्य पुस्तक से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

"पता नहीं किन कारणों से व्यापार में इतना घाटा हुआ कि हवेली नीलाम हो गयी। अम्मा ने बताया था कि औरतों के पास इतना सोना था कि हबेली बचाई जा सकती थी, पर गहना तो स्त्री का धन, है, किसी महिला ने गहने नहीं दिये और हवेली नीलाम हो गयी।" (पृ. 17)

प्रारम्भिक शिक्षा को याद करते हुए डॉ. गुप्त बड़ी बेवाकी से आज की शिक्षा-पद्धति और प्रवेश-प्रक्रिया पर व्यंग्य करते हैं। डॉ. गुप्त लिखते हैं—"आज के माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति सर्वाधिक सचेत देखे जा रहे हैं। वे यथासम्भव हर सुख-सुविधा उपलब्ध कराने का प्रयत्न करते हैं।... ज्येष्ठ पुत्र अभिनव का पुत्री की शिक्षा के प्रति चिन्तित होना स्मरण हो रहा है। उसका सबसे अच्छे स्कूल में नाम लिखवाने के लिए मेरे सहपाठी मित्र आई.ए.एस. अधिकारी (गृह सचिव, भारत सरकार) से फोन कराना पड़ा था और नाम लिखवाने में इतना खर्च आ गया, जितने में मैं हाईस्कूल पास कर गया था।" (पृ. 26)

आर्थिक अभावों से पीड़ित होकर भी गुप्त जी शिक्षार्जन कर सके, इसका कारण उस समय की शिक्षा व्यवस्था है। लेखक के समय में "स्कूल में नाम लिखाना कोई समस्या नहीं थी। नाम लिखाने के लिए माता-पिता के जाने, साक्षात्कार जैसी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता था। स्कूल कम थे, इसलिए स्कूल के चयन का प्रश्न नहीं था, और प्रवेशार्थियों की संख्या भी कम हुआ करती थी, इसलिए जो चाहे नाम लिखा ले और जिस कक्षा में चाहे लिखा ले। फीस (पैसा) भी नहीं ली जाती थी।" (पृ. 29)

घर से पाटी (तख्ती) रंगकर ले जायी जाती थी। घोंटा (बोतल की पेंदी) घिसकर पाटी चमकायी गयी रहती थी। भोजन बनाने पर तबे या कड़ाही में लकड़ी के धुएँ से जम गयी महीन राख को चिमटे आदि से खरोंचकर कालिख बना ली

जाती थी, जो पाटी रंगने के काम आती थी। एक-दो आने की अपनी एक बालपोथी होती थी, उसी में 'अ', 'आ', 'गिनती-पहाड़', 'गणित', आदि सब कुछ हुआ करता था। एक बस्ता, जो प्रायः हाथ से सिला थैला होता था, उसमें किताबें और कलम। कलम भी फ्री की। हर जगह पतेल उगी रहती थी, उससे सेंठा (वास्तव में पेन्सिल या पेन जैसा मोटा तना) लिया, और चाहो तो घर से निब जैसा आकार बना या बनवाकर ले जाओ अथवा स्कूल में शिक्षक से बनवा लो। हाजिरी लेने, पढ़ाने, अनुशासन बनाये रखने आदि के साथ-साथ सेंठे को छीलकर कलम बनाना भी शिक्षक का अतिरिक्त कर्म हुआ करता था।

यह भी दैवी विपत्ति रही कि सन् 1946 में कक्षा एक में प्रवेश लेने वाले बालक सुरेश ने तीन वर्षों में तीन स्कूल बदले और सन् 1948 में रेती वाले स्कूल में गया। सब में ही कक्षा एक प्रवेश दिलाया गया। श्री राधेमोहन त्रिपाठी, जो लेखक के बड़े भाई श्री सूरजप्रसाद के मित्र थे और बी.ए. पास करके श्री मंगलसेन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक हो गये थे, की सलाह पर बालक सुरेशचन्द्र गुप्त का जुलाई 1951 के प्रथम सप्ताह में कक्षा छः में प्रवेश होता है। तब लेखक दस वर्ष की आयु पूरी कर चुका था और उस अवस्था तक वह मात्र तीन कक्षाएँ ही उत्तीर्ण कर सका था। जमाना कितना बढ़िया था कि मात्र तीन कक्षा पास विद्यार्थी का गणित, हिन्दी आदि की सामान्य-सी परीक्षा लेकर सीधे कक्षा-6 में प्रवेश हो गया। उल्लेख्य बिन्दु यह भी है कि बच्चे भी कितने तेज (कुशाग्र) और मेधावी-मेहनती हुआ करते थे कि तीसरी दर्जा पास होने के बाद छठवीं कक्षा तक के स्तर के प्रश्नों के हल निकाल लिया करते थे। अन्यथा आज तो जिस कक्षा में पढ़ते हैं, उसी कक्षा के प्रश्नों को अगर थोड़ा-सा क्रम बदलकर पूछ लें तो जवाब पाना मुश्किल हो जाता है।

नाना व्यवधानों और बीमारी के बावजूद आपने पढ़ाई जारी रखी। अच्छे अंकों के साथ द्वितीय श्रेणी में हाईस्कूल उत्तीर्ण करना, जबकि उन दिनों 40-45 प्रतिशत छात्र ही पास हो पाते थे वह भी तृतीय श्रेणी में, प्रथम श्रेणी तो शायद नगर में भी एक-दो लोग पाते रहे हों; ऐसे में लेखक की सफलता घर-परिवार वालों के साथ उसके मनोबल को भी आगे बढ़ा रही थी, पर आगे का रास्ता बन्द दीख रहा था। कारण पैर में दर्द (बीमारी से बाधा), नौकरी मिलना आसान नहीं, इण्टर कालेज बहादुरगंज का घर से 4 कि.मी. दूर होना, मंगलसेन स्कूल में केवल 10वीं तक की पढ़ाई आदि कई ऐसी समस्याएँ थीं, जिनसे मुक्ति का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। दादा (बड़े भाई) ने भी अब आगे और न पढ़ा पाने की बात कहकर हाथ खड़े कर दिये थे। निरुपाय बालक सुरेशचन्द्र गुप्त को

कुछ सूझ नहीं रहा था। किंकर्त्तव्यविमूढ़ अवस्था में एक साल बीत गया। जून 1957 में सूचना मिली कि श्री मंगलसेन हाईस्कूल को इण्टर तक की मान्यता मिल गयी है। म्लानमुख खिल गया। स्कूल खुलते ही विद्यालय में प्रवेश हो गया। पर, आदमी के किये या चाहे क्या होता है। होता वही है, जो ऊपर वाला चाहता है। सो, अभी ठीक से पढ़ाई शुरू भी नहीं हो पायी थी कि बीमारियों (सन्धिवात) ने प्रबल वेग से जकड़ लिया और ऐसा बीमार पड़े कि कहने-लिखने में भी कलेजा काँप जाता है। झाड़-फूँक, तंत्र-मंत्र, सारी पैथी (होम्योपैथी, आयुर्वेद, एलोपैथी) आदि के सभी उपचार असफल। मेडिकल कॉलेज, लखनऊमें उपचार हुआ-वह भी असफल। सब निष्फल। अन्ततः शय्याग्रस्त होना पड़ा। माँ का निधन हुआ। अष्टाग्रह योग पड़ा। पं. हरिचन्द्र वैद्य के प्रयास से कुछ रोग से मुक्ति मिली थी। पर, कलाई-घुटने के जोड़ जकड़कर रह गये थे। मिशन हास्पिटल बरेली में दोनों घुटनों का आपरेशन हुआ। पैरों में जाँघ में घुटनों के नीचे टखनों तक प्लास्टर चढ़ा। इसी अवस्था में इण्टर का व्यक्तिगत छात्र के रूप में फार्म भरा गया। स्वाध्याय (घर पर रहकर ही) का क्रम चला। अपेक्षित पुस्तकें एकत्र हुईं। परीक्षा के दिनों के नजदीक आने तक प्लास्टर काटा जा चुका था और लेखक कैलीपर्सयुक्त विशेष जूते पहनकर बिना किसी सहायता के चलने-फिरने लगा था। धीरे-धीरे इतना अभ्यास बढ़ गया कि वह बिना किसी परेशानी के दो-तीन किलोमीटर तक चलने का अभ्यस्त हो गया। जीना (सीढ़ी) आदि भी चढ़ लेने में सक्षम हो गया। परीक्षा के समय खन्नौत नदी पर नया पुल बनाये जाने की स्थिति में बहुत नीचे ढाल पर से जाना पड़ा। अनुज सुरेन्द्र या पड़ोस के सहपाठी बनवारी लाल के साथ साईकिल के डण्डे पर बैठकर जाना पड़ता था। लेखक की इस अप्रतिम जिजीविषा को, अपार साहस को नमन करने के लिए विवश होना पड़ता है।

बी.ए. प्रथम वर्ष की अर्द्धवार्षिक परीक्षा में आप दोनों सेक्शनों में, सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के कारण अपने अध्यापकों के प्रिय पात्र और चहेते बने, उन अध्यापकों के भी जो उनके पाटले के पैजामों के कारण उनके प्रति वक्र दृष्टि रखते थे। कभी अंग्रेजी के वयोवृद्ध प्रोफेसर ने उन्हें पाटले के पैजामे के प्रति टोका भी था और पैजामे को इंगित कर वक्र दृष्टि से कुछ टिप्पणी भी की थी। उनकी दृष्टि में लेखक के प्रति भर्त्सना का भाव था। पर, सर्वाधिक अंक पाने के कारण उन्हीं गुरु ने उन्हें अपने पास बुलाया और उपस्थित छात्रों के सामने शाबाशी दी। उस दिन से उन्हें हमेशा वे आगे (अपने सामने) की सीट पर बैठाने लगे। पूज्य सन्त अवधूत भगवान राम ने कहा है—"मांगो मत, लेने के काबिल बनो।"

लेखक ने भी मांगा नहीं, अपितु काबिल बनकर प्राप्त किया और अब तक कर रहे हैं।

दूसरी स्मृति है, भूगोल विषय को लेकर। जहाँ उन्हें सत्ताइस-अट्ठाइस वर्ष के, गौरवर्ण, बेहद सुन्दर और स्मार्ट किस्म के शिक्षक प्रो. काजमी साहब याद आते हैं, जो कक्षा में खड़े होकर लेक्चर देते.....धाराप्रवाह अंग्रेजी में पढ़ाते। एक बार भूगोल की परीक्षा में लेखक ने विषय की पुस्तक के अनुसार अपेक्षित उत्तर देने के साथ जयशंकर प्रसाद की ये पंक्तियाँ भी लिख दी थीं—

किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से हम आये थे नहीं।।
वही है रक्त वही है देश, वही साहस, है वैसा ज्ञान।
वही है शान्ति, वही है शक्ति, वही है दिव्य आर्य संतान।।

इन पंक्तियों को भूगोल-शिक्षक पर यह असर पड़ा कि उन्हें कक्षा में उपस्थिति के समय खड़े होकर 'यस सर' बोलने की जगह बैठे-बैठे बोलने की अनुमति मिल गयी। पर, इन सारी सुविधाओं और सुख सम्मान के बावजूद, प्रकृति-प्रदत्त कष्टों की वजह से लेखक को कुछ परेशानियाँ भी रहीं, जिनकी चर्चा वह "कुछ परेशानियाँ" और 'एक और बाधा' शीर्षक के तहत करता है।

डॉ. गुप्त ने 'स्मृति सिन्धु से' को 'मेरा अध्ययन काल' उपशीर्षक बड़ा सार्थक दिया गया है। आर्थिक विवशताओं और व्याधिजन्य बाधाओं के साथ ही, प्रायः सम्पूर्ण अध्ययनकाल नाना विषमताओं और बाधाओं से ग्रसित होता रहा है। प्रारम्भ में, तीन वर्षों तक अध्ययनरत रहने के बाद भी कक्षा एक का छात्र रहना, जैसे-तैसे हाईस्कूल करने के बाद फिर एक वर्ष की बाधा और इण्टर में नाम लिखवाने के बाद फिर लम्बी बीमारी- फलतः 1956 में हाईस्कूल और इण्टर 1966 में , वह भी व्यक्तिगत छात्र के रूप में। 1968 में बी.ए. और 1970 में एम.ए. उत्तीर्ण किया। सौभाग्य से लखनऊ विश्वविद्यालय से पीएच.डी. करने का संयोग मिला, पर पुनः बाधाएँ मुँह बायें आ खड़ी हुई। मार्च 1973 में शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर गुप्तजी अपने घर शाहजहाँपुर आ गये। कुछ ही दिनों में पी.ए.सी. विद्रोह हो गया। पुलिसवालों ने विश्वविद्यालय के कार्यालयों, लकड़ी के कलात्मक छज्जों, जीनों आदि में आग लगा दी। 'कहीं मेरा शोध ग्रन्थ तो नहीं जला दिया गया'-इस आशंका से ग्रस्त गुप्त जी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में पहुँचे। पता चला कि शोधग्रन्थ अभी विभाग में ही है और लोहे की अल्मारी होने के कारण पूर्णतः सुरक्षित है।

पर बाधाओं-व्यवधानों का अन्त नहीं हुआ। शोधग्रन्थ परीक्षकों में से डॉ इन्द्रनाथ मदान ने रिपोर्ट दी कि शोधग्रन्थ इतना सुन्दर है कि शोधार्थी की मौखिकी अनावश्यक है, जबकि डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी आख्या में शोधग्रन्थ को 'कड़ा' निरूपित कर दिया। अन्ततः तृतीय परीक्षक के पास भेजा गया। तृतीय परीक्षक डॉ. रघुवंश ने न केवल शोधग्रन्थ को उपाधि हेतु सही ठहराया, अपितु मौखिक परीक्षक भी वही बने। यहाँ यह संज्ञान में लेना आवश्यक है कि प्रकाशित होने पर 'पंत की दार्शनिक चेतना' संज्ञक पीएच.डी. के शोधग्रन्थ को सर्वश्रेष्ठ घोषित कर पुरस्कृत भी किया गया है।

अब डी.लिट. की बाधा का प्रकरण। रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् सन् 1976 में शोध समिति की प्रथम बैठक में ही गुप्तजी को 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' विषय पर शोध कार्य करने की अनुमति प्राप्त हो गई। कतिपय बाधाओं के कारण आठ-दस वर्ष बीत गये कि अचानक विश्वविद्यालय का पत्र मिला। रूपरेखा की पुनः प्रस्तुति, साक्षात्कार आदि की लम्बी प्रक्रिया से ऊब कर गुप्त जी ने विश्वविद्यालय को लिखा कि इसी विषय और रूपरेखा को स्वीकृति दी जाये, तभी डी.लिट. करूँगा, अन्यथा नहीं। शोध समिति ने काफी विचार-विमर्श कर उसी विषय पर कार्य करने की अनुमति दे दी। शोध ग्रन्थ जमा हुआ और 1976 में स्वीकृत विषय पर सन् 1998 में डी.लिट. की उपाधि प्राप्त हो गई।

'स्मृति सिन्धु से' संज्ञक इस द्वितीय संस्मरण विधा की पुस्तक का उपशीर्षक है मेरा अध्ययन काल'। एक शिक्षक सदैव छात्र रहता है। अच्छा विद्यार्थी ही अच्छा अध्यापक बन सकता है। पर गुप्त जी, केवल शिक्षक ही नहीं हैं, वे शोधार्थी, शोध निर्देशक, साहित्यकार और पत्रकार भी हैं। शिक्षक, शोधार्थी, साहित्यकार और पत्रकार के लिए हर क्षण अध्ययन और चिंतन-मनन आवश्यक है। आशय यह कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त शिक्षक बनकर आजीविकोपार्जन और गृहस्थ जीवन में ही अपने कर्मनिष्ठ जीवन की इतिश्री नहीं समझ बैठे, और न ही नित्य प्रति की बाधाओं -व्यवधानों से थक-हार कर टूट गए, अपितु साहित्य और समाज की सेवा में स्वयं को समर्पित कर दिया। आपके द्वारा सृजित प्रचुर साहित्य, पैंतीस से अधिक छात्रों को पीएच.डी. उपाधि दिलाना और विगत दस वर्षों से त्रैमासिक 'साहित्यायन' का संपादन प्रकाशन इस तथ्य का ज्वलंत प्रमाण है। आपका गहन अध्ययन और साहित्य सृजन के प्रति समर्पण प्रशंसनीय है। मुझे तो प्रतीत होता है कि पल-पल और पग-पग पर आने वाली बाधाओं के प्रति संघर्ष ने ही आपके व्यक्तित्व को कुन्दन के समान दैदीप्यमान बनाया है।

अन्त में, अपने प्रिय और अपने समय के हिन्दी साहित्य के बड़े रचनाकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के लिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की इन पंक्तियों को उद्धृत करना चाहूँगा—

जितने कष्ट-कंटकों में है, जिनका जीवन-सुमन खिला।
गौरव-गंध उसे उतना ही, यत्र-तत्र सर्वत्र मिला।।



डॉ. चन्द्रशेखर तिवारी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
अवधूत भगवान राम स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अनपरा, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश, पिन-231225
चलयंत्र-094159-70693

मत सोचो
कि अभागा हूँ
कि, वरण किया दुखों ने।

जागो!
खोल दो जीवन-नौका को
तान दो वितान पुष्ट पालों का
असीम सागर की अठखेलियों में
और देखो,
सौभाग्य समीरण संचरित हो उठा है।

55

स्वाध्यायी मनीषी : समर्पित शिक्षक



पिछली सदी के आठवें दशक के प्रारम्भ में 'हिन्दी भाषा' एक अलग विषय के रूप में विश्वविद्यालयों में स्वीकृत हुई। अतः उस काल में बड़ी मात्रा में प्राध्यापकों की रिक्तियाँ हुईं। परिणामस्वरूप 1975 तक जितने भी प्रतिभाशाली विद्यार्थी स्नातकोत्तर परीक्षाओं में अच्छी श्रेणी के साथ उत्तीर्ण हुए, वे सब किसी न किसी विश्वविद्यालय या सम्बद्ध महाविद्यालयों में हिन्दी प्राध्यापक नियुक्त हो गये। इस काल में विविध महाविद्यालयों में साक्षात्कार में आते-जाते लोगों में परिचय और प्रगाढ़ आत्मीयता होती गयी। ऐसे ही कुछ साक्षात्कारों में आते-जाते डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी से आत्मीयता बढ़ी। गुप्त जी के एक पैर में समस्या है वे इस दृष्टि से किंचित दिव्यांग हैं परन्तु उन साक्षात्कारों में अकेले वही थे जो उस समय पीएच.डी. थे। एकाध शायद और भी था परन्तु उन्होंने ध्यान आकर्षित किया। उनके व्यक्तित्व में स्वाध्याय से प्रदीप्त आत्मविश्वास की झलक थी। स्वर में विनम्र दृढ़ता थी। वार्तालाप में अपना मन्तव्य वे बहुत आत्मविश्वास के साथ रखते थे। इसी का परिणाम था कि वे इस काल के आगरा विश्वविद्यालय के बहुत प्रतिष्ठित महाविद्यालय बरेली कालेज, बरेली के हिन्दी विभाग में नियुक्ति पा गये। इधर-उधर टकराते-टकराते हुए एस.आर.के. स्नातकोत्तर महाविद्यालय फिरोजाबाद में मुझे भी नियुक्ति मिल गयी। उस समय तक मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सक्रिय कार्यकर्ता हो चुका था। एक आत्मीय वार्तालाप ने सी.एल. जैन महाविद्यालय फिरोजाबाद के गणित विभागाध्यक्ष एवं संघ के बड़े अधिकारी श्रीराम स्नेही, गुप्त जी ने बताया कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त उनके आत्मीय रिश्तेदार हैं। इसके बाद डॉ. गुप्त से सम्बन्ध लगभग विच्छिन्न रहा। परन्तु उनकी प्रारम्भिक आत्मीयता और विनम्रता का प्रभाव मन पर बना रहा।

'साहित्यायन' की प्रति मिलने पर पुनः वह आत्मीयता जाग्रत हो गयी और सम्बन्ध प्रगाढ़ हो गया। वस्तुतः डॉ. गुप्त अध्यवसायी, स्वाध्याय प्रिय, सरल, आत्मीय, विनम्र व्यक्ति हैं। वे समर्पित शिक्षक हैं। उनकी आत्मकथा के जो अंश मैंने पढ़े हैं उससे उनकी लेखकीय ईमानदारी और भाषा पर उनके अशेष अधिकार का पता चलता है।

ईश्वर उन्हें दीर्घायु करे। स्वस्थ, कर्मठ और वे व्यस्तता भरा जीवन जीते हुए 100 वर्ष का जीवन पायें।



डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर', डी.लिट्.
कृतकार्य एसो. प्रोफेसर शोध एवं स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
एस.आर.के. पी.जी. कालेज, फिरोजाबाद
86, तिलक नगर, बाईपास रोड फिरोजाबाद- 283 203
चलयंत्र- 09412316779, 09411200688

दाम्पत्य जीवन का सुख
रूठने - मनाने में।
मीठी - मीठी बातें ही,
रस भरती जीवन में।।
रस घट रिक्त न रहे, विधाता नाटक रचता है।
स्त्री का रूठना, पुरुष को बहुत सुहाता है।।
मनाना अच्छा लगता है।

56

एक पुरुषार्थी साहित्यकार



माँ वाणी के वरदपुत्र डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने जन्म से ही संघर्षरत रहकर अपने पुरुषार्थ के बल पर जीवन में सफलतायें अर्जित कीं। आपका जन्म एक कुलीन वैश्य परिवार में चार जनवरी उन्नीस सौ चालीस को हुआ। आपको सबसे अधिक लगाव अपनी माता से रहा। माँ की गोद में लेटकर उनसे सारगर्भित कहानियाँ सुनकर आपके बाल्यकाल का आरम्भ हुआ। आपके पिताजी जिन्हें आप 'चच्चा' कहते थे, आपके बाल्यकाल में ही स्वर्गवासी हो गये। वह बड़ा कठिन समय था, अतः आपकी माता जी ने ही परिवार का पालन-पोषण किया। आपकी शिक्षा का आरम्भ चुंगी के स्कूल से ही हुआ। माध्यमिक शिक्षा में पदार्पण करते ही आपके बायें पैर के अंगूठे, टखने और घुटने में दर्द रहने लगा। इनकी माताजी ने इनके इलाज के लिए हरसम्भव प्रयास किये। अन्ततः कैलिपर के सहारे चलने योग्य हुए। इन कठिनाइयों के मध्य भी आप अपनी पढ़ाई साहस के साथ करते रहे। यद्यपि विकलांगता स्थायी रूप ग्रहण कर चुकी थी फिर भी आपने लखनऊ जाकर एम.ए., पीएच.डी. तथा रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से डी.लिट. किया। तदुपरान्त आप बरेली कालेज बरेली में अध्यापन से सेवारत हो गये। आपका शोध प्रबन्ध "पंत की दार्शनिक चेतना" पुरस्कृत है।

आपने साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है जिसमें कविता, गीत, निबन्ध, अनुवाद, डायरी लेखन, संस्मरण, बाल साहित्य और यात्रा वृत्तों को सहज, सरल और बोधगम्य भाषा शैली में अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। संपादन और प्रकाशन के क्षेत्र में भी आपने 'नागरी', 'पाँचाली', और 'साहित्यायन' के माध्यम से हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया है।

"साहित्यायन" पत्रिका में आपके संपादकीय अविस्मरणीय और रोचक हैं। पत्रिका में प्रतिष्ठित साहित्यकारों के साथ युवाओं को भी अवसर प्रदान किया गया है। हिन्दी के साथ-साथ आपने उर्दू और बांग्ला में भी आधुनिक हिन्दी उर्दू काव्य समीक्षा एवं बांग्ला गीतों का लिप्यान्तर किया है। अनेक शोध छात्रों का निर्देशन और हिन्दी साहित्य का संवर्धन कर अतुलनीय योगदान किया। उन्हीं शोध छात्रों को संपादन के क्षेत्र में संपादक और उपसंपादक नियुक्त कर प्रशिक्षत किया है। आपकी साहित्य की विभिन्न विधाओं में लगभग इक्कीस कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिन्होंने आपको साहित्यिक आकाश में ध्रुव तारे के समान स्थापित कर दिया है।

आपने श्रीमद्भगवद्गीता का संस्कृत के श्लोकों से सरल भाषा में काव्यानुवाद कर उसको आम जनमानस तक पहुँचाने का विलक्षण कार्य किया है। यद्यपि यह कार्य गद्य और पद्य में अपनी-अपनी तरह से अनेक विद्वानों ने भी किया है जिसमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 'गीता-रहस्य' के द्वारा महात्मा गांधी ने 'अनासक्ति योग' द्वारा, श्री अरविन्द घोष ने 'एसेज आन गीता' के माध्यम से, आचार्य विनोबा भावे ने 'गीता प्रवचन', और स्वामी विवेकानन्द ने 'राजयोग-कर्मयोग-ज्ञानयोग' का विश्लेषण कर गीता की वाणी को जन-जन तक पहुँचाया। जनपद बरेली में भी पं. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने गीता का काव्यानुवाद पं. राधेश्याम कथावाचक की रामायण बहर तवील की तर्ज पर, श्री शिवशंकर यजुर्वेदी ने घनाक्षरी छन्दों के माध्यम से मोक्षदायिनी गीता का काव्यानुवाद किया है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म प्रधान माना है जिसे डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने अपने जीवन में व्यावहारिक रूप प्रदान कर अद्भुत कार्य किया है जिसके लिए आप साधुवाद के पात्र हैं।

"देवी, माँ, सहचरी, प्राण" शीर्षक से दो हजार चौदह को प्रकाशित कृति में नारी के विभिन्न स्वरूपों को काव्य रचनाओं द्वारा प्रस्तुत किया है। आपने संदेश दिया है कि नारी विधाता की अनुपम सृष्टि है, पुरुष उसके बिना अपूर्ण है, मानव समाज का अस्तित्व नारी से है, कन्या, कामिनी, माता, प्रेयसी, भाभी, चाची, नानी, अर्द्धांगिनी आदि नाना रूपों में वह पुरुष जीवन को संचालित करती है। इसका जीता-जागता उदाहरण आपकी पत्नी श्रीमती इन्दुजी हैं। यह कहावत है कि हर सफल व्यक्ति के पीछे कोई नारी होती है। श्रीमती इन्दु ने आपकी जीवन नैया को सफलता पूर्वक खेने में पतवार की भूमिका का कुशलतापूर्वक निर्वहन कर अपने धर्म का पालन किया है और आज आपका परिवार सुशिक्षित और सुसंस्कृत है। इसके लिए मैं श्रीमती इन्दु की भी सराहना

करता हूँ तथा उन्हें बधाई प्रेषित करता हूँ। सदा से नारियाँ लौकिक साहित्य दर्शन और ललित कलाओं में प्रवीण मानी जाती हैं। नारियों द्वारा काव्य रचनाओं के उल्लेख प्राचीन काल से मिलते हैं। शीला, सुभद्रा, मदालसा एवं महादेवी वर्मा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आपने नारी के मान-सम्मान का प्रमुखता से विश्लेषण किया है जो नारी उत्थान का एक समुचित प्रयास है।

साहित्यायन के संपादकीय में आपने 'किंचित माननीय' शीर्षक से अनेक विषयों जिसमें काम, अध्यात्म, नारी विमर्श, राजनीति, यौन शिक्षा, नारी स्वातंत्र्य आदि पर निर्भय होकर स्पष्टवादिता के साथ लेखनी चलाई है। इसी प्रकार 'साहित्यायन' में प्रकाशित समीक्षात्मक लेखों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि आपने पारदर्शिता के साथ दूध का दूध और पानी का पानी किया है।

मेरा आपसे मिलना-जुलना तो कम ही हुआ है परन्तु साहित्यायन तथा अन्य कुछ कृतियों को पढ़ने का सौभाग्य मिला है जिससे आपकी रचनाधर्मिता का विराट स्वरूप देखने का सुअवसर मिला जिससे मैं बहुत प्रभावित हूँ। जब मुझे ज्ञात हुआ कि अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है तो मैंने सोचा कि इस यज्ञ में एक आहुति मैं भी दूँ। आपके कर्म योग का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए अपनी लेखनी को विराम देता हूँ क्योंकि आपके व्यक्तित्व और कृतित्व पर तो ग्रन्थों की रचना हो सकती है। यह अभिमत तो सूरज को दिया दिखाने के समान है। मैं आपके पुरुषार्थ, लगन, परिश्रम, साहित्यनिष्ठा, अध्ययन, और अभिव्यक्ति की कुशलता को नमन करता हूँ। आपके सुखी जीवन और दीर्घायु होने की कामना करता हूँ।



श्री रणधीर प्रसाद गौड़ "धीर"
कवि एवं शायर,भू.पू.सी.से. इंजीनियर पूर्वोत्तर रेलवे, इज्जतनगर
448, साहूकारा, बरेली।
मो. 9456078597

57

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी परम श्रद्धेय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी



मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर ही अपना दायित्व निभाता है। उसके लिए विविध सामाजिक उत्तरदायित्वों में से किसी एक को समाज श्रेष्ठ दायित्व के रूप में निर्धारित करना हो तो निःसंकोच वह शिक्षा क्षेत्र ही माना जायेगा।

एक शिक्षक अपनी जिन्दगी के बहुमूल्य वर्षों को व्यतीत करते हुए समाज के लिए भावी पीढ़ी के चरित्रनिर्माण की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वर्ग (कक्षा) ही उसके लिए स्वर्गतुल्य होता है। शिक्षाविद् श्रीमान कोठारीसाहब ने 'कोठारीपंच' के अध्यक्ष के रूप में अपना मंतव्य देते हुए कहा था कि— "भारत के भावी (भविष्य) का निर्माण वर्गखण्डों में निर्धारित हो रहा है। अपनी जिन्दगी के कई वर्षों को छात्रों के व्यक्तित्व निर्माण एवं जीवन उत्कर्ष हेतु समर्पित करने वाले शिक्षक की अनमोल सेवा का कोई मोल नहीं किया जा सकता।"

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी शिक्षक की आत्मा हैं। विचार एवं कर्म दोनों क्षेत्रों में महिमामंडित हैं। जिन्दगी के कई वर्ष बिना रुके, बिना थके, हिन्दी साहित्य जगत् की तन्मयता से सेवा की है। उनका समग्र जीवन शिक्षण को समर्पित रहा है। अध्यापन कार्य के साथ ही उन्होंने शोध-समीक्षा, मार्गदर्शक आदि क्षेत्र में भी अपनी अभिरुचि का सक्रिय परिचय दिया है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी ज्ञान प्रचारक भी है और प्रसारक भी। उन्होंने साहित्य की सभी विद्याओं पर कलम चलाई है। गुप्तजी की काबिलियत है कि एक अनजाने, अजनबी एवं अपरिचित व्यक्ति को पूरी तरह से अपना बना लेना, उसके साथ एक आत्मीय रिश्ता जोड़ लेना तथा जो अपने पास है वह सब

कुछ अपने शिष्य को देने की चाह उनमें लाने जैसा कार्य डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जैसे महान व्यक्ति ही कर सकते हैं।

परम श्रद्धेय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी साहब को उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु प्राप्त हो तथा उनके हाथों सरस्वती की सेवा होती रहे, यही शुभकामनाएँ व्यक्त कर कृतज्ञता का अनुभव करता हूँ।

जिन्हें शक है वो करे और खुदाओं की तलाश,
हम तो अच्छे भले इन्सान को दुनिया का खुदा कहते आये हैं।



डॉ. कान्तिलाल शाह चोटलिया
(एसोशिएट प्रोफेसर श्री महिला आर्ट्‌र्स एवं कामर्स कालेज, हिन्दी विभाग, जोशीपुरा जूनागढ़)
75-'सहज', कृष्णापार्क, झांझरडा रोड, जूनागढ़ (गुजरात) 362001 (गुजरात)
दूरभाष : (0285)2611290 चलयंत्र : 9426444677
email : kschotaliya@yahoo.in

नारी देवी, कल्याणी है, साकार मूर्ति सुन्दरता की।
अनुपमा विभा आलोकमयी, अद्‌भुत कृतित्व प्रभु स्रष्टा की।।

कन्या अम्बा जगदम्बा है
जननी जगदम्बा है नारी।
लज्जा कोमलता की शाश्वत
कमनीय कान्त प्रतिमा नारी।।

आँचल में है मादक यौवन
आनन पर कुंतल केश सघन।
बाला तन्वंगी चाल चपल
आमंत्रण खंजन नयन मदन।।

58

मूर्द्धन्य विद्वान व साहित्यकार : डॉ. गुप्त



बरेली महानगर की हीरक जयन्ती आयोजन समिति आदरणीय डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की "हीरक जयन्ती" के पावन अवसर पर अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रही है। यह जानकर अपार हर्ष और सुख का अनुभव हुआ। सुदूर दक्षिण भारत में मेरे जैसे हिन्दी अनुरागी का डॉ. गुप्त से कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं है पर "साहित्यायन" जैसी उत्कृष्ट पत्रिका ने मेरा आपसे मानसिक सम्पर्क करा दिया। मेरी कुछ गजलें और लघु कथायें साहित्यायन में प्रकाशित हुईं तो स्वाभाविक ही मुझे गर्व और आत्मसंतोष का अनुभव हुआ। ''साहित्यायन'' प्रायः अनवरत प्राप्त होती रही है जिसे मैं अपने मित्रों को भी पढ़वाता हूँ। लघु कलेवर की इस पत्रिका में प्रकाशित लेख कवितायें, कहानियां आदि श्रेष्ठ हैं। डॉ. गुप्त के संस्मरणों को पढ़ने में अद्‌भुत आनन्द मिलता है। तो 'किंचित मननीय' स्तम्भ में प्रकाशित सम्पादकीय गहन चिन्तन और मनन को प्रेरित करते हैं। पत्रिका के अध्ययन से पता चला कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त न केवल मूर्द्धन्य विद्वान और साहित्यकार हैं अपितु श्रेष्ठ पत्रकार भी हैं।

ऐसे महान साहित्यकार और पत्रकार डॉ. गुप्त को मेरा शत् शत् नमन। ईश्वर उन्हें स्वस्थ और दीर्घायु जीवन प्रदान करे।



श्री पी.आर. वासुदेवन 'शेष'
जी-4, अक्षय फ्लैट्स, 53 इरा सप्पू स्ट्रीट ट्रिप्लीकिन चेन्नई
600005 चेन्नई
मोबाइल : 94411-70451

59

बहुआयामी एवं आकर्षक व्यक्तित्व-डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



हिन्दी साहित्य का यह सुमन 4 जनवरी 1940 को उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर में अवतरित हुआ। यह भारतीय इतिहास का अंग्रेजी शासनकाल था। भारतमाता अंग्रेजी दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई थीं। अंग्रेज अफसर और उनके कारिन्दे दोनों हाथों से सोने की चिड़िया के पर नोचने में जुटे थे। भारतीय जनता में त्राहि-त्राहि मची थी। जनता और नेता देश की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन कर रहे थे, अनेकों देशभक्त एवं वीर सपूत आजादी के लिए कुर्बान हो चुके थे। आन्दोलनकारियों को जेलों में डाला जा रहा था। भारतमाता स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व की प्रसव पीड़ा झेल रही थीं। अन्ततः देश स्वतन्त्र हुआ। भारत माँ की कोख से पाकिस्तान का जन्म हुआ तथा भारत माँ की सन्तान हिन्दू और मुस्लिम के रूप में बँट गयी। देश में हिंसा भड़की, जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे हुए, और कुछ लोग निर्वासित होकर भारत आये तथा कुछ लोग भारत से पाकिस्तान गये। इस प्रकार गतिरोध के वातावरण में गुप्त जी को यथार्थ के कठोर धरातल पर ऊबड़-खाबड़ रास्तों से गुजरना पड़ा। दुनिया को ठीक से देखते समझते, तब तक मात्र 8 वर्ष की उम्र में पिता जी का साया सिर से उठ गया। यह उनके कोमल मन पर वज्राघात था। पिताजी के जाने के बाद आर्थिक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा।

छात्र जीवन में गुप्त जी प्रतिभावान रहे हैं तथा राष्ट्रवादी संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में आपकी आस्था रही है लेकिन राजनीति से दूरी बनाये रखी। आप अध्ययन कर ही रहे थे कि दुर्भाग्यवश सन्धिवात की बीमारी ने जकड़ लिया जिस कारण 6-7 वर्षों तक शय्या पर रहना पड़ा। घुटनों के आपरेशन के कारण बीमारी ने स्थायी रूप से विकलांग बना दिया। माताजी

अपने लाड़ले का मार्गदर्शन एवं स्नेह संबल की वर्षा कर रही थी कि उसी दौरान माँ की ममता का आँचल भी गुप्त जी के सिर से उठ गया। दस वर्षों के अन्तराल के पश्चात् अध्ययन पुनः शुरू किया। अपने धैर्य, निष्ठा एवं परिश्रम के बल पर उच्चतम शिक्षा प्राप्त की तथा पीएच-डी एवं डी.लिट. की डिग्रियां प्राप्त कीं। तीस वर्षों तक बरेली में अध्यापन कार्य किया तथा सेवानिवृति के बाद स्थायी रूप से बरेली में ही निवास कर रहे हैं। राष्ट्र के प्रति प्रेम तथा समर्पण भावना आपके दिल में कूट-कूट कर भरी है। राष्ट्र भाषा हिन्दी आपके रोम-रोम में व्याप्त है तथा मातृभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए आप पूर्णतः समर्पित हैं। हिन्दी की आपने भरपूर सेवा की है। हिन्दी माह में हिन्दी प्रोत्साहन के लिए आयोजित होने वाली प्रतियोगिताओं में अपने कार्यालय के कर्मचारियों के लिए आपसे अनेकों बार सहयोग प्राप्त हुआ है। इसी सम्बन्ध में बरेली प्रवास के दौरान आपसे मुलाकात शुरू हुई थी।

आप मिलनसार हैं और आत्मीय व्यक्तित्व के धनी हैं। आपकी स्थिर वाणी की मधुरता आपके व्यक्तित्व का चुम्बकीय आकर्षण है जो बार-बार आपसे मिलने के लिए लालायित करता है। आपसे मिलकर अनूठे सुख एवं शान्ति की अनुभूति होती है। आत्म विश्वास की दमक से प्रफुल्लित चेहरा, होठों पर अठखेलियाँ करती छलकती मलकती मुस्कान, सादगी से उठती हुई सुगन्ध आपके प्रेम पूर्ण और तनाव रहित व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती है जो आपकी सफलता और उपलब्धियों की परिचायक हैं। आपकी सृजनशीलता ही आपकी विद्वता का परिचय है। आपके व्यवहार में सरलता है। वाणी में मधुरता है एवं व्यक्तित्व में सौम्यता है। आपने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है जिसमें अनेकों शोधपत्र, यात्रा वृतान्त, जीवनी एवं संस्मरण सम्मिलित हैं। कविता संग्रह "स्वर्ण जयन्ती वर्ष" समकालीन समाज, राजनीति और संस्कृति का ज्वलन्त दस्तावेज है तो "लोकतांत्रिक भारत में" प्रेम, दर्शन, समाज, परिवार, लोकतंत्र, आतंकवाद, भ्रष्टाचार और नैतिकता की जीवन्त अभिव्यक्ति है। इसके अलावा और भी अनेकों उत्कृष्ट कृतियों की रचना आपने की है।

स्वतन्त्र भारत में जो एक नया आत्मविश्वास आया, एक नये ढंग की जो आधुनिकता आई उसका प्रतिबिम्ब हम गुप्तजी की कविताओं में महसूस कर सकते हैं। गुप्त जी प्रगतिशील एवं राजनीतिक चेतना के कवि हैं। उनमें बड़बोलापन नहीं है और शब्दों का अपव्यय तो बिल्कुल नहीं है। आपकी रचनाओं में काव्य कौशल और सफाई भी है और आत्मस्वीकृति भी। आपके

लेखों में वैश्विकता है जो आपके विस्तृत अध्ययन को बताता है। आपने सामान्य जन के अनुभवों को अपने अनुभवों के साथ मिलाकर यथार्थ का उद्घाटन किया है। आपके यात्रा वृतान्तों में सजीवता का चित्रण हुआ है। आपकी रचनायें हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि हैं तथा आपकी कृति "अभिगीता" जनमानस के लिए अनुपम भेंट है। आप उच्च कोटि के कवि एवं लेखक होने के साथ-साथ एक कुशल सम्पादक भी हैं। आप साहित्यिक पत्रिका "साहित्यायन" का श्रेष्ठ सम्पादन कर रहे हैं जिसमें सदैव स्तरीय रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। आपके चिन्तन में दर्शन है, आप शान्त हैं, प्रखर हैं। आपका मौन भी मुखर है। उसमें समर्पण की भावना है और सभी के सुख की कामना है। आपका बहुआयामी व्यक्तित्व बरेली शहर का खरा कुन्दन हैं। किसी ने ठीक ही कहा है—

पत्थर से देवता वो यूँ ही तो नहीं हुआ।
गुजरा है वो जमाने के हर इम्तिहान से।।

ऐसे आप्त पुरुष का अभिनन्दन करना अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना है। यह ग्रन्थ लोगों को सत्कार्य की ओर प्रेरित करेगा ऐसा हमारा विश्वास है। वस्तुतः महापुरुषों के उदाहरण प्रस्तुत करके ही भावी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ अभिनन्दन ग्रन्थ के स्तर से ऊँचा उठकर एक दिशा बोध का प्रेरक ग्रन्थ बन जाता है। माँ भारती के वरदपुत्र का अभिनन्दन करने के लिए कुशल समिति ने जिस विलक्षण व्यक्तित्व के अभिनन्दन करने का निश्चय किया है वह सत्कार्य सराहनीय भी है और संतुल्य भी। ऐसे समाजसेवी, जनसेवी, मनस्वी एवं यशस्वी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व सर्वथा वन्दनीय, अभिनन्दनीय एवं स्पृहणीय है।

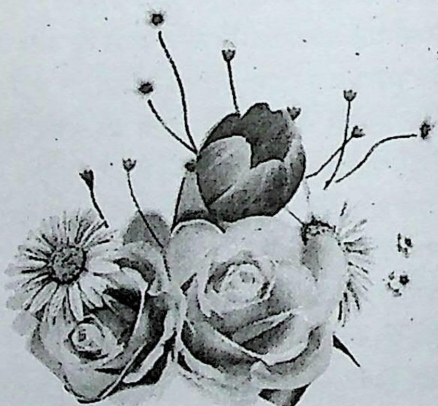
अपने जीवन के 76 बसन्त देख चुके गुप्त जी जीवन यात्रा में न तो कभी रुके हैं न ठहरे हैं।

"चरैवेति-चरैवेति" आपके जीवन का आदर्श सिद्धान्त है। श्रमशीलता, श्रमसहायता और दूरदृष्टि के साथ अनुशासित जीवन आपके जीवन के खास पहलू हैं। आप सफलताओं और उपलब्धियों का पर्याय हैं। अपनी क्षमता और सामर्थ्य से न केवल आपने बच्चों को उच्च शिक्षा देकर सुख और सम्पन्नता की ऊँचाइयों पर पहुँचाया है बल्कि उन्हें अच्छे संस्कार भी दिये हैं तथा साहित्यिक उन्नयन के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं और शोध प्रबन्ध व शोध कार्यों का निर्देशन एवं समाज का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में अपूर्व योगदान देने वाले कविवर, आदर्श लेखक एवं श्रेष्ठ सम्पादक श्री सुरेशचन्द्र गुप्त जी के सम्मान में प्रकाशित होने वाले अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना की सफलता की मैं कामना करता हूँ तथा डॉ. गुप्त के सुखी, स्वस्थ और सुदीर्घ जीवन के लिए कोटि-कोटि शुभकामनाएँ व्यक्त करते हुए उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के प्रति नतमस्तक हूँ।



श्री हंसराज भाटी
पासपोर्ट अधिकारी (से.नि.)
ए-71, जीवन विहार, शास्त्रीनगर, गाजियाबाद
मो. 9457064802



60

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त : एक अद्‌भुत व्यक्तित्व



बरेली से प्रकाशित होने वाली एक लघु पत्रिका "साहित्यायन" में मैंने डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की जीवनी/आत्मकथ्य जो कि धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो रही थी को पढ़ा तो उससे प्रभावित होकर मैंने डॉ. गुप्त को फोन किया, बस यह थी मेरी डॉ. साहेब से फोन पर पहली बात-चीत और मुलाकात। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी कुछ पुस्तकें मेरे पास भेजीं जिन्हें पढ़कर डॉ. गुप्त के वैचारिक वैदग्ध्य का मुझे आभास हुआ और फोन पर अक्सर हमारी बातचीत का सिलसिला चल पड़ा।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने आत्मकथ्य के द्वारा अपने आपको बेहद ईमानदाराना तरीके से पाठकों के समक्ष रखा है। उनके आत्म कथ्य के जरिये ही मैंने उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा-दीक्षा और उनके जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को नजदीक से जाना और मुझे लगा कि उनका जीवन संघर्ष और अध्यवसाय का जीवन्त उदाहरण है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त गद्य और पद्य दोनों के लेखन में ही सिद्धहस्त हैं। डॉ. गुप्त का रचना संसार अत्यधिक विशद और बहुआयामी है। अनेक विषयों और स्थितियों को केन्द्र में रखकर रचा गया उनका साहित्य उनकी दृष्टि और असीमित उर्जा का जीवन्त दस्तावेज है। गुप्त जी के सात काव्य संग्रह उनकी विचारधारा और जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों को हमारे समक्ष रखते हैं।

रोचक संस्मरणों को समेटे हुए उनकी दो पुस्तकें हैं—"स्मृति के वातायन" और "स्मृति सिन्धु से"। "अभिगीता" में भगवद्‌गीता जैसे ग्रन्थ का काव्यानुवाद और "प्रसाद" में बांग्ला गीतों का लिप्यांतर उनकी साहित्यिक रचना-क्षमता को रेखांकित करता है।

''जैसे उड़ि जहाज को पंछी'' के माध्यम से डॉ. गुप्त यात्रा वृत्तान्तों का एक बहुत बड़ा जखीरा हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

डॉ. साहेब की पुस्तक ''किंचित मननीय'' में उनके आलेख अद्भुत रहस्यों को उद्घटित करते हुए अनेक व्यक्तित्वों, विषयों, ऐतिहासिक प्रसंगों और मानवीय संवेदनाओं को जिस शिद्दत से पाठकों को परोसते हैं वह डॉ. गुप्त की साहित्यिक साधना का प्रमाण है।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त एक भावुक कवि, उद्भट विद्वान, मनस्वी पत्रकार और प्रखर विचारक होने के साथ-साथ सहृदय और सुसंस्कृत व्यक्ति भी हैं। "साहित्यायन" जो कि विशुद्ध रूप से एक साहित्यिक पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित है, का प्रकाशन उनकी साहित्यिक दृष्टि और निष्ठा को रेखांकित करता है।

दो दर्जन से अधिक पुस्तकों के रचयिता डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का सम्पूर्ण जीवन साहित्यमय है। डॉ. गुप्त स्वयम् तो साहित्य के प्रतिष्ठित और स्थापित हस्ताक्षर हैं ही आज की पीढ़ी के लिए भी प्रकाश स्तम्भ हैं।

ईश्वर डॉ. गुप्त को साहित्यिक रूप से समृद्ध, निरन्तर रचनात्मक और स्वस्थ दीर्घायु प्रदान करें तथा वे निर्बाध रूप से साहित्य की मशाल को थामे रचनात्मक पथ पर अग्रसर रहें मेरी यही शुभकामना है।

'स्वस्ति नो सन्तु पन्थानः'



विज्ञान व्रत
एन-138, सैक्टर 25,
नोएडा- 201301
मो. : 9810224571



61

विलक्षण चुंबकीय व्यक्तित्व



आशा और आकांक्षा की तरलता, जीवन की कठिनता और कोमलता, सौन्दर्य-बोध के पुरातन एवं नूतन संस्कारों से ओतप्रोत, अस्तित्व-बोध और मानवीय चेतना की गहरी संवेदनशीलता, सतत् अध्ययनशीलता और गहन ज्ञान की अभिव्यक्ति की निरन्तर आतुरता एक साथ जिसमें लक्षित होती है वे हैं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त। उनमें अटूट जिजीविषा है जो विषम परिस्थितियों में भी निरन्तर उन्हें कार्य करने की प्रेरणा देती रहती है। उनकी ऋजुता और कोमलता ऐसी कि एक बार जो उनसे मिलता है उन्हीं का हो जाता है।

डॉ. गुप्त से मेरा परिचय बहुत पुराना है। 1968-69 में मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एम.ए. द्वितीय वर्ष में अध्ययनरत था। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने उसी वर्ष एम.ए. में प्रवेश लिया था। वे मुझसे एक वर्ष पीछे थे लेकिन वय में मुझसे अधिक थे इसलिए मैं उनको भरपूर सम्मान देता था। वे बेहद मिलनसार थे। हिन्दी विभाग के बरामदे में खड़े-खड़े एक बार उनसे मुलाकात हो गई। फिर तो हम लोगों का मिलना बराबर होता रहा। एम.ए. में उनके सहपाठी थे विनोद कुमार त्रिवेदी, ललित किशोर मिश्र और निशा जायसवाल। वे इन सबके साथ प्रायः हिन्दी विभाग में मिल जाते थे। उन्होंने अपनी समीक्षात्मक कृति 'बाबा नागार्जुन' अपने लखनऊ के उन मित्रों को समर्पित की है जिनके प्रति उनकी आत्मीयता थी। सुरेशचन्द्र गुप्त हबीबुल्ला छात्रावास के अंतेवासी थे। वहाँ उन्हें सारी सुविधायें प्राप्त थीं। दिन में डालीगंज बाजार की चहल-पहल और शाम को आई.टी. चौराहे की रौनक दोनों ही उनके लिए सुलभ थीं। मेरी उनसे भेंट कभी-कभी उनके छात्रावास, विभाग या टैगोर लाइब्रेरी में हो जाती थी। उनके सभी मित्र उनसे अधिक दूर रहते थे। विनोद कुमार त्रिवेदी आलमबाग की रेलवे कालोनी में

रहते थे, जहाँ वर्ष में एकाध बार हमारा जाना होता था। मेरा आवास हजरतगंज में था जहाँ आज जनपद बाजार है जो अंग्रेजों से लोहा लेने वाली बेगम हजरत महल की कोठी को गिराकर बना है। डॉ. गुप्त अपने मित्र विनोद त्रिवेदी के साथ प्रायः हमारे आवास पर आ जाते थे और देर तक बातें हुआ करती थीं।

काव्य-सृजन के संस्कार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त में पहले से ही थे। हिन्दी विभाग में प्रवेश से पूर्व भी वे कवितायें लिखा करते थे। लखनऊ के हबीबुल्ला छात्रावास का वातावरण उनकी काव्य-रुचि को जाग्रत, परिष्कृत और परिमार्जित करने में पर्याप्त अनुकूल रहा। वे प्रायः कवितायें लिखा करते थे और कभी-कभी सुनाते भी थे। उनके काव्य संग्रह 'ऋतु वसन्ती' की कविताओं की पृष्ठभूमि लखनऊ प्रवास का वातावरण ही हैं। उन दिनों स्थानीय दैनिक 'स्वतन्त्र भारत' और 'नवजीवन' में उनकी कवितायें प्रकाशित होती थीं। अन्य पत्रिकाओं में भी वे कभी-कभी प्रकाशनार्थ कवितायें भेजते थे। नवजीवन के उस समय संपादक श्री ज्ञानचन्द्र जैन थे जो नवयुवकों को प्रोत्साहित करते थे। डॉ. गुप्त ने अपने जीवन के लिए 3-4 महीने तक स्तम्भ (कालम) भी लिखे किन्तु अध्ययन में बाधा के कारण छोड़ दिया।

उन दिनों आकाशवाणी लखनऊ के हिन्दी के कार्यक्रमों के प्रभारी पं. कमलापति मिश्र थे जो संस्कृत के उद्‌भट विद्वान होते हुए भी हिन्दी के प्रति समर्पित थे। वे नयी प्रतिभाओं को हमेशा अवसर देते थे। तब लखनऊमें दूरदर्शन नहीं था। अतः रेडियो में कार्यक्रम का प्रसारण सम्मानजनक समझा जाता था और बड़े-बड़े साहित्यकार आकर कार्यक्रम देते थे। एक बार डॉ. प्रभाकर शुक्ल के नेतृत्व में चार छात्रों का समूह आकाशवाणी में समूह परिचर्चा के लिए गया। वह कार्यक्रम इतना अच्छा हुआ कि उससे प्रभावित होकर हम लोगों को आकाशवाणी में अवसर मिलने लगा। उन दिनों डॉ. आशाराम त्रिपाठी हिन्दी प्रभाग में कार्यक्रमों का ध्वन्यंकन करते थे। उन्होंने हम लोगों को कई बार समूह परिचर्चा एवं स्वतन्त्र कार्यक्रम के लिए भी अवसर दिये। डॉ. गुप्त की कवितायें आकाशवाणी से उन दिनों प्रसारित होती थीं। अपनी अध्ययनशील प्रवृत्ति के कारण अन्य कार्यक्रमों में भी उनकी सहभागिता होती थी।

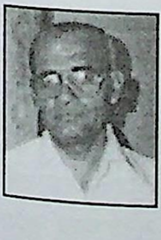
लखनऊ विश्वविद्यालय में उस समय एम.ए. द्वितीय वर्ष में एक प्रश्नपत्र के विकल्प रूप में लघु शोध प्रबन्ध होता था। एम.ए. प्रथम वर्ष में 55 प्रतिशत से ऊपर अंक वाले छात्र इसके लिए अर्ह थे। सुरेशचन्द्र गुप्त ने डॉ. प्रभाकर देव शुक्ल के निर्देशन में कासिमशाह कृत 'हंस जवाहर' : एक अध्ययन विषय पर कार्य करना आरम्भ किया। उन दिनों सूफी काव्यों की टीकायें उपलब्ध नहीं थीं।

छात्र उन काव्यों को पढ़कर स्वयं उनके ऊपर कार्य करते थे। मैंने भी 1969 में 'उसमान' कृत 'चित्रावली' पर कार्य किया था। मेरे सामने भी कठिनाइयाँ थीं लेकिन किसी तरह मैंने अपना कार्य पूरा किया। डॉ. गुप्त को मैंने अपना लघु शोध प्रबन्ध सुलभ करा दिया जिससे उनका कार्य थोड़ा सरल हो गया। 1996 में यह प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है जिसमें गुप्त जी ने मेरे शोध-प्रबन्ध का उल्लेख कर सदाशयता का परिचय दिया है।

लखनऊ छोड़ने के बाद जब वे बरेली कालेज बरेली में प्राध्यापक हो गए तब भी उनसे मेरा सम्पर्क बना रहा। दूरभाष से तो वार्ता होती ही थी नव वर्ष के अवसर पर उनका काव्यात्मक पत्र आता था। कविता उनके जीवन में बसी थी। धीरे-धीरे कविता सें हटकर वे गद्य की ओर अग्रसर हुए और गद्य की सभी विधाओं को अपनी लेखनी से समलंकृत किया। उनकी निरन्तर विकसित सारस्वत-साधना का प्रमाण मुझे बराबर प्राप्त होता रहा। जब भी वे कोई नयी कृति प्रकाशित कराते मुझे अवश्य भेजते थे। अपनी शारीरिक सीमा-दिव्यांगता को निरन्तर नकारते हुए उन्होंने दो-चार लेखकों के बराबर अकेले लिखा। उनके लेखन में भी विविधता, स्तरीयता, रुचिरता एवं मौलिकता है। आज भी उनकी प्रतिभा लेखन के नये क्षितिज को नापने में निरन्तर क्रियाशील है।

मेरी इच्छा थी कि डॉ. गुप्त के समग्र साहित्य पर कुछ लिखूँ अथवा उनकी किसी एक कृति का सविस्तार परिचय दूँ किन्तु यह कार्य दूसरे अनेक विद्वानों द्वारा हो चुका है। अतः पुनरुक्ति से बचते हुए मैंने उनके लखनऊ प्रवास के क्षणों का रेखांकन समीचीन समझा। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त के लेखन को निरन्तरता देने और धारदार बनाने में उनकी पत्नी की भी प्रमुख भूमिका है। वे यदि उन्हें तमाम सुख-सुविधा उपलब्ध नहीं करातीं तो उनके लेखन में कदाचित् उतनी गति नहीं आ पाती।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त हिन्दी के प्रति समर्पित हैं। उनके साहित्य में पाठकों को सम्मोहित करने की शक्ति है।



डॉ. कमलाशंकर त्रिपाठी
3/425 विलासनगर, लखनऊ- 226022
मो. 9452464668

62

"समदर्शी इच्छा कछु नाही"



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त विश्वविद्यालय के अध्ययनकाल में मेरे गुरुवत् सहपाठी रहे हैं। परास्नातक के अध्ययनकाल में इनके बगल के कमरे में मैं रहता था। इनका अध्ययनकाल समाप्त हो चुका था। शोध प्रबन्ध जमा हो चुका था। खाली थे मुझे अपने कमरे में बैठाकर लिखना-पढ़ना सिखाते रहे। मैंने पाया कि ये बाहर भीतर से एक हैं। छुपाने के लिए इनके पास कुछ भी नहीं। आइए हम अपने दिल के दरवाजे खोलें और देखें, कितने कमरे हैं। एक कमरा ऐसा है जहाँ आम जनता को प्रवेश मिलता है अर्थात् हम अपनी बात हर व्यक्ति को बताना चाहते हैं। एक कमरा ऐसा है जिसमें गेस्ट लोगों का प्रवेश होता है। कुछ खास-खास लोगों के प्रवेश की अनुमति है अर्थात् हम अपनी बात कुछ खास लोगों से साझा करते हैं। एक तीसरा कमरा है जिसमें हमारा माल एवं रुपया आभूषण रखा है। हम उसमें अकेले जाना चाहते हैं अर्थात् हमारी कुछ बातें ऐसी हैं जो अपने पास ही रखते हैं किसी अन्य से शेयर नहीं करना चाहते। हम उस रहस्य पर पर्दा डालना ही उचित समझते हैं। किन्तु एक चौथा कमरा ऐसा है जिसका कभी ताला नहीं खुला है। वहीं यथार्थ सत्य है। जहाँ हम खुद नहीं जाना चाहते हैं किन्तु अग्रज गुप्त जी के पास चौथा गोपनीय कक्ष है ही नहीं, बाहर-भीतर एक। छुपाने के लिए कुछ भी नहीं है। खुली किताब की तरह हैं। मैं कुछ अन्य साहित्यकारों से मिल चुका हूँ और पाया है कि वे किसी दूसरी दुनियाँ के मनुष्य लगते हैं। 'स्व' की गुफा में बैठकर पीड़ा की मणि खोज रहे हैं। अहमन्यता और वर्जनाओं से ग्रसित।

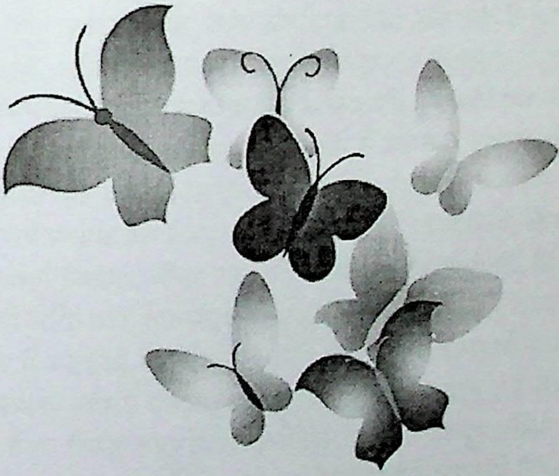
किन्तु डॉ. गुप्त की संवेदना एवं करुणा देखकर लगता है कि सरस्वती के वरद पुत्र डॉ. गुप्त "भवन्ति नम्रः तरवः फलागमै" है। डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

का रचना संसार व्यापक एवं अथाह है। हिन्दी की सारी विधाओं में इनकी सारस्वत साधना मुखरित हुई है। जयशंकर प्रसाद की व्यापकता और प्रेमचन्द की सरलता। बाल साहित्य, आत्मकथा, संस्मरण, अध्यात्म, कहानी, समालोचना, कविता आदि में प्रायः हिन्दी साहित्य के अनछुए पक्षों को अभिव्यक्त किया है। श्रीमद्भगवत गीता की पद्यात्मक व्याख्या देख कर लगता है कि डॉ. गुप्त अध्यात्म के प्रकाण्ड विद्वान हैं। 'अभिगीता' शीर्षक में पूरी गीता को समेट दिया है।

मैं डॉ. गुप्त को दीर्घजीवी एवं स्वस्थ होने की शुभकामना करता हूँ।



डॉ. सुधाकर उपाध्याय
पूर्व प्राचार्य, के.बी.पी.जी. कालेज, मीरजापुर
'ऋतम्भरा भवन, मुंदर घाट, मीरजापुर
चलयंत्र : 09454376376



63

सच्चे पथ प्रदर्शक गुरुदेव डॉ. गुप्त



मुझे सच्चा मार्ग दिखाकर के
जिन्होंने मेरा कल्याण किया।
शत् शत् नमन उन गुरुजनों को
जिन्होंने मेरा निर्माण किया।।

अन्धकारपूर्ण जीवन में गुरु ही ऐसे व्यक्ति हैं या हो सकते हैं जो पथ-प्रशस्त कर अपने स्नेह रूपी उजाले से सच्चाई का कठिन मार्ग भी सरल बना देते हैं। यूँ तो मेरे जीवन एवं मेरी सफलता में अनेक गुरुजनों का स्नेह और आशीर्वाद साथ रहा है परन्तु कुछ शिक्षकों ने वास्तव में गुरु कहलाने का पूर्ण दायित्व निभाते हुए कठिन जीवन यात्रा को सरल-सहज बना दिया है, और बड़ी से बड़ी बाधा से लड़ने की हिम्मत एवं हौसला दिया है ऐसी ही गुरु परम्परा में मेरे श्रद्धेय गुरुदेव डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी भी आते हैं। वे मेरे एक बहुत ही अच्छे शिक्षक के भी शिक्षक रहे; उन्हीं के माध्यम से मुझे गुरुजी की पत्रिका "साहित्यायन" से जुड़ने का अवसर मिला। छोटे रूप में होते हुए भी 'साहित्यायन' हिन्दी साहित्य का असीम भण्डार स्वयं में समेटे हुए है। 'साहित्यायन' से जुड़े सभी साहित्यकार एवं लेखक उच्च कोटि के विद्वान एवं हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ प्रतीत होते हैं जो गुरुजी के निर्देशन में साहित्य सेवा में संलग्न है। यह गुरुजी की असीम सफलता और उनके कुशल नेतृत्व को दर्शाता है। श्रद्धेय गुरुदेव जी के प्रथम दर्शनार्थ जब बरेली जाने का अवसर मिला तब उनसे मिलकर मेरे पतिदेव एवं मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। गुरुजी ने जिस स्नेह एवं अपनत्व के साथ हम दोनों की शैक्षिक क्षेत्र में सहायता की वह ऋण हम सदैव स्वयं पर महसूस करते रहेंगे। एक बात और जो श्रद्धेय गुरुदेव जी के व्यक्तित्व की मेरे मन को छू गयी वो ये कि वह अपने छात्रों के प्रति

असीम लगाव और स्नेह रखते हैं। मेरे शिक्षक जो गुरुजी के छात्र होते हैं, उनके लिए जो भाव, अपनापन, स्नेह मैंने महसूस किया है उसे मैं शब्दों में नहीं उतार सकती, वो अकथनीय है। गुरुजी वास्तव में वही हैं जिनकी आज भी समाज को हर पल हर क्षण आवश्यकता है। यह मेरा सौभाग्य ही है कि गुरुजी का सम्पूर्ण साहित्य पढ़ने का अवसर मुझे मिला है। निसंकोच होकर प्रत्येक विषय पर लिखना उनकी प्रखरता एवं साहित्य के प्रति सच्चाई को दर्शाता है। अपनी अनुभूति एवं व्यक्तिगत जीवन को साहित्य में उतारना प्रत्येक के वश की बात नहीं।

'साहित्यायन' की प्रतीक्षा रहती है क्योंकि समसामयिक विषयों का ज्ञान तो होता ही है उसमें अनेक विद्वानों की उत्कृष्ट रचनाएँ भी पढ़ने को मिलती हैं।

बरेली की 'हीरक जयन्ती समिति' आदरणीय गुरुदेव के सम्मान में 'अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित कर प्रशंसनीय कार्य कर रही है। ईश्वर से प्रार्थना है कि 'साहित्यायन' के संपादक गुरुदेव डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त को स्वस्थ और दीर्घायु जीवन प्रदान करें, ताकि गुरुजी का आशीर्वाद प्राप्त होता रहे। गुरुदेव को शत्-शत् नमन।



डॉ. शहला अंजुम
प्रधानाचार्य
पू.मा.वि. मोचीपुरा
नजीबाबाद- 9457191670



64

हमारे प्रेरणापुंज—आदरणीय गुरु जी



अपार हर्ष का विषय है कि हम सभी शोधार्थी अपने आदरणीय, श्रद्धास्पद एवं अखण्ड स्नेह-सागर गुरुजी के 75वें वर्ष पूर्ण होने पर 'हीरक-जयन्ती' मनाने जा रहे हैं। ऐसा प्रतीत ही नहीं हो रहा है कि आप 75वर्ष पूर्ण कर चुके हैं। लगता है जैसे कल की ही बात हो, जबकि मेरी पीएच.डी सन् 2000 में अवार्ड हो गयी थी।

आपके साथ बिताया हुआ हर पल, हर क्षण मुझे याद आता है। आपके समझाने का तरीका मेरे मानस-पटल पर हमेशा-हमेशा के लिए अंकित हो गया है। जब भी कभी डगमगाती हूँ तब आपकी प्रेरणादायक बातें मुझे याद आती हैं और मैं उसी क्षण स्वयं को संभाल पाने में सक्षम होती हूँ। यदि आप प्रेरणा-पुंज बनकर अपना संरक्षण प्रदान न करते तो शायद मैं कभी भी पीएच.डी. की डिग्री न प्राप्त कर पाती। मैं जब कभी भी डगमगाई, आपने एक नाविक की भाँति मेरी नौका को डूबने से बचा लिया। गुरु, ईश्वर और मनुष्य के बीच की धुरी है। ईश्वर तक पहुँचने के लिए गुरु का होना अनिवार्य है। गुरुः ब्रह्मा, गुरुः विष्णु, गुरुः देवो महेश्वरः, गुरुः साक्षात्, परम् ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।

आपके द्वारा लिखी सभी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं, पढ़कर मुझे आगे बढ़ने हेतु प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मुझे इतने योग्य गुरु के सान्निध्य में शोध कार्य करने का अवसर मिलेगा। शायद ईश्वर ने ही मुझे आप तक पहुँचाया।

वर्तमान में आपके निर्देशन में अनेक शोधार्थी शोध कार्य कर रहे हैं। सम्भवतः 30-35 छात्र-छात्राएऋशोध-कार्य पूर्ण कर उपाधि प्राप्त कर चुके हैं।

आपका स्वयं का जीवन अत्यधिक शारीरिक परेशानियों से आक्रांत रहा है फिर भी आपने कभी हार नहीं मानी और आज उन सभी विसंगतियों को मात

देकर साहित्याकाश की असीम ऊँचाइयों पर प्रतिष्ठित हैं। यहाँ ऊँचाइयों से तात्पर्य अर्थ-शक्ति से ही नहीं वरन् मानसिक शक्ति से भी है। आप शारीरिक असमर्थताओं के पश्चात् भी विशाल प्रबुद्ध समुदाय के प्रेरणा-स्रोत बने हुए हैं। हिन्दी साहित्य-जगत् में आपकी अमिट पहचान है। वस्तुतः जीवन की अनेकानेक विषमताएँ ही आपके आगे बढ़ने में सहायक हो रही हैं।

आपके व्यक्तित्व और कृतित्व को पूर्णतः जानने के लिए आपके द्वारा लिखित साहित्य को पढ़ना अत्यावश्यक है। आपने अनेक विधाओं में साहित्य-सृजन किया है, जैसे—कविता, समीक्षा, निबन्ध, बाल-साहित्य, अनुवाद, डायरी, संस्मरण आदि।

आपके शोध-प्रबन्ध 'पन्त की दार्शनिक चेतना' को सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ चुना गया तथा श्री अमन सिंह आत्रेय हिन्दी विकास संस्थान, मेरठ द्वारा 'आत्रेय पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ। अमन सिंह आत्रेय हिन्दी विकास संस्थान,

अन्त में आपके स्वस्थ, दीर्घायु होने की कामना के साथ आपके श्री चरणों को अर्पित....



डॉ. पूनम गुप्ता
श्री शान्ता नेरी छात्रावास वनस्थली विश्वविद्यालय वनस्थली
निवाई, जिला-टोंक, राजस्थान, पिन- 304022
चलयंत्र : 09166154319

65

शिक्षक, साहित्यकार और शोधनिर्देशक डॉ. गुप्त



मैंने वर्ष 1993 में बी.ए. प्रथम वर्ष मे बरेली कालेज, बरेली में प्रवेश लिया था। बरेली कालेज में पढ़ना अपने आप में गर्वोक्ति का अनुभव-सा प्रतीत होता था। मैं फतेहगंज पूर्वी से बरेली कालेज नियमित यात्रा करता था। रेलवे, बस में या ट्रक में बड़े रौब के साथ लोगों को अपना आई.कार्ड दिखाकर कहता था कि मैं बरेली कालेज का छात्र हूँ। लोग बहुत प्रतिभाशाली व योग्य छात्र समझते थे, खैर ...

बरेली कालेज में पहली बार का स्मरण आज भी मानस पटल पर चित्र की तरह अंकित है। पहली बार मैं जब पढ़ने गया तो अजीब-सा रोमांच का अनुभव हो रहा था, पता नहीं क्या होगा? कक्षा में बैठा तो देखा लगभग पूरी कक्षा भरी थी। हिन्दी का पीरियड था, तभी कक्षा में गुरु जी का पदार्पण हुआ। गुरु जी रिक्शे से आते थे, दिव्यांग थे। मन श्रद्धा से झुक गया कि बच्चों को पढ़ाने की प्रबल उत्कण्ठा लिये गुरु जी इस अवस्था में भी बच्चों को घूम-घूमकर पढ़ाया करते हैं। पढ़ाने का ऐसा अद्भुत ढंग जो अविस्मरणीय है। आज भी आँखें बन्द कर अनुभव करता हूँ तो लगता है गुरु जी कक्षा में पढ़ा रहे हैं। गुरु जी ने कक्षा में हाजिरी ली और अपना परिचय दिया। अपना नाम डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त बताया, बच्चों से परिचय पूछा। पहले ही दिन से इतनी आत्मीयता का अनुभव हुआ कि लगा, जैसे कोई अपना अविभावक समझा रहा हो। बच्चों के प्रति ऐसा समर्पण, पढ़ाने की अद्भुत कला, समझाने का अलग तरीका और फिर बच्चों से प्यार से पूछना, न बताने पर बच्चों को इस प्रकार से समझाना जैसे माँ बाप अपने बच्चों को समझाते हैं। सचमुच उनका वात्सल्य, उनकी योग्यता और उनकी मेधाशक्ति व स्मरण की अनूठी कला जैसे सामने किताब के पृष्ठ पलट रहे हों

जबकि गुरुजी ने कभी किताबों का सहारा लेकर नहीं पढ़ाया। अपने पाठ्यक्रम को सत्र में दो बार पढ़ाना और परीक्षाओं के सन्दर्भ में विशेष तैयारी करवाना, नोट्स बनवाना महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को बताना। गुरुजी की लिखी पुस्तकों व गाइडों को पढ़कर बच्चों ने प्रथम श्रेणी में परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं, यहाँ तक कि अन्य शिक्षक भी गुरुजी द्वारा लिखी गयी गाईड से पढ़ाते थे। निष्कर्षतः यह कहा जाये कि कक्षा के प्रथम दिन से ही गुरु जी कठोर शिक्षक के रूप में न होकर एक अच्छे आदर्श प्रेरणास्रोत व दोस्त के रूप में बात करते थे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

हमारे साथियों व हमारे लिए गुरुजी सबसे ज्यादा प्रिय थे। गुरुजी एक अच्छे साहित्यकार भी हैं। अक्सर आपके लेख पत्र-पत्रिकाओं में व अखबार में मिल जाया करते हैं। आप अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन भी करते हैं। आपका 'साहित्यायन' त्रैमासिक हिन्दी पाठकों की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। गुरुजी 'अमर उजाला' अखबार में 'पाठकों के पत्र' नामक स्तम्भ का सम्पादन करते थे। छात्रों की पुस्तकों पर गुरुजी का एकाधिकार था। आलोचनात्मक अध्ययन, गाइड जैसी अनेकों पुस्तकें गुरुजी द्वारा लिखी गईं। कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया है। पैर व्याधिग्रस्त होने के बावजूद वे इतना कार्य कैसे करते हैं यह रहस्य और शोध का विषय है। गुरुजी के आत्मबल व एकाग्रता में उनकी पत्नी श्रीमती इन्दु गुप्त का बहुत बड़ा योगदान है। कहना गलत न होगा कि गुरुजी की धर्मपत्नी कर्त्तव्यपरायणा व गुरुजी का कदम-व-कदम साथ देने वाली न होती तो शायद गुरुजी आज इस मुकाम पर नहीं होते, यह मेरा अपना निजी अनुभव है। गुरुजी को अनेकों पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हो चुके हैं जो हम जैसे लोगों के लिए गौरव का विषय है और हम अपने आपको सौभाग्यशाली मानते हैं। गुरुजी से मेरा सीधा जुड़ाव है। मैंने आपको प्रत्येक रूप में साक्षात् देखा है। साहित्यकारों की श्रेणी में गुरूजी का स्थान सर्वोपरि है। गुरुजी शलाका पुरुष हैं। आपका व्यक्तित्व विराट है। हिन्दी जगत में गुरुजी मूर्द्धन्य साहित्यकार के रूप में जाने पहचाने जाते हैं।

'गुरुजी' शब्द आते ही श्रद्धा से सिर झुक जाता है। स्नातक से लेकर आज तक मैं गुरु जी से लगातार 23 वर्षों से सम्पर्क में हूँ। बी.ए. के अध्ययन से लेकर आज मैं गुरुजी के निर्देशन में शोध कर रहा हूँ। मुझे नहीं लगता कि इतना बड़ा अवसर किसी अन्य को मिला होगा। गुरुजी अब तक 35 शोध करा चुके हैं। गुरुजी का शोध का तरीका भी अपने आप में निराला

है। प्रत्येक शोधार्थी को रूपरेखा पास होने के बाद कौन-कौन सी पुस्तकें मंगाई जायें या पुस्तकालय में कहां मिलेंगी तथा अपने पास से ही उपलब्ध करा देना, अधिक से अधिक लिखाना प्रतिदिन अपने पास बुलाना, अशुद्धियाँ शुद्ध करवाना, दो तीन बार पढ़कर शोधार्थी द्वारा टंकित करवाना और अन्त में बाइंडिंग के लिए मार्ग दर्शन करना और तो और शोध कार्य सम्पन्न होने के बाद भी निरन्तर छात्रों से सम्पर्क बनाये रखना, अपने से जुड़े प्रत्येक छात्र को प्रत्येक मांगलिक कार्यों में निमन्त्रण व सम्मान देना, गुरु जी नहीं भूलते। मैं हर अवसर पर गुरु जी के मध्य होता हूँ। इससे मेरा मान बहुत बढ़ता है और मुझे आत्माभिमान होता है कि मैं उनके समीप होकर आशीर्वाद प्राप्त कर रहा हूँ। सच्चे अर्थों में गुरु जी एक अच्छे शिक्षक, अच्छे साहित्यकार व अच्छे शोध निर्देशक के रूप में नक्षत्र मण्डल में धूमकेतु की तरह प्रतिस्थापित हैं।

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का नाम स्मृति में आते ही एक चुम्बकीय व्यक्तित्व व बहुआयामी प्रतिभा से सम्पन्न साहित्य के आधारस्तम्भ के रूप में जो प्रतिमा प्रत्यक्ष होती है उसे मैं गुरू जी के रूप में जानता हूँ। आपकी ही प्रेरणा से मैंने बी.ए., एम.ए. हिन्दी से किया। आपने एल.एल.बी. का सुझाव दिया, तो बरेली कालेज से लॉ किया और 15 वर्षों से फौजदारी अधिवक्ता के रूप में कार्य कर रहा हूँ। तमाम स्वयंसेवी संगठनों से भी गुरुजी ने जुड़ाव कराया। धार्मिकता व देशभक्ति का जज्बा जो आज मुझमें है वह आपकी ही देन है। आपने मुझे धार्मिक व साहित्यिक पुस्तकालय खोलने का सुझाव दिया जिसे मैंने शिरोधार्य किया। आज महर्षि च्यवन पुस्तकालय में लगभग 2000 धार्मिक व साहित्यिक पुस्तकें हैं जो मेरा सम्बल हैं।

चारों वेद, अठारह पुराण, छः शास्त्र, विभिन्न प्रकार की रामायण (लगभग 8 प्रकार की) स्मृतियाँ, उपनिषद्, बोध कथाएँ, आत्मकथाएँ, निबन्ध, कहानी, ज्योतिष, चिकित्सा, जातिवर्ण सम्बन्धी अनेक पुस्तकों की भरमार है। आज मैं गुरुजी के निर्देशन में शोध करके उन सभी पुस्तकों का लाभ उठा रहा हूँ और क्षेत्र के लोगों को सहज उपलब्धता और पठन-पाठन की सुविधायें प्रदान कर पुस्तकालय की सार्थकता सिद्ध कर रहा हूँ।

गुरुजी की योग्यता अवर्णनीय है। मेरी क्षमता कहाँ कि मैं उनके बारे में कुछ लिख पाऊँ। बहुत बटोरकर लिख रहा हूँ कि शायद गुरु जी के अभिनन्दन ग्रन्थ में मुझे भी कुछ स्थान मिल जायेगा, जो अमिट व अविस्मरणीय रहेगा।

उनसे मुझे नैतिक शक्ति व आत्मबल मिलता है। गुरुजी ने ही मुझे अपने पूर्वजों के नाम से महाविद्यालय खोलने का सुगम मार्ग दिखलाया और कई लोगों से मिलवाया। अन्ततः गुरुजी के आशीर्वाद से मेरा महाविद्यालय आज मंडल के अग्रणी महाविद्यालयों में जाना जाता है। यह सब आपके उचित मार्गदर्शन का ही परिणाम है। यहाँ तक कि मैं आज अपने संयुक्त परिवार में 25 सदस्यों के साथ इतने सुख के साथ रहता हूँ कि शायद वह सुख इन्द्रलोक में भी न हो।

गुरुजी के घर में मुझे लगातार गुरुमाता का आशीर्वाद भी प्राप्त होता रहता है। वे तो साक्षात् देवी की प्रतिमूर्ति हैं। मैंने कभी उनमें आलस्य-प्रमाद नहीं देखा है। हमेशा मुस्कराहट के साथ 'और बेटा संजीव ठीक हो' कहकर पानी पिलाना यथायोग्य जलपान कराना गुरुमाता की नित्य दिनचर्या का हिस्सा है। यह उनका अनुराग है और ममत्व भी। गुरुजी जैसा दाम्पत्य जीवन बहुत बिरलों को प्राप्त होता है। ईश्वर गुरुजी और गुरुमाता को दीर्घायु प्रदान करे जिससे हम जैसे लोगों को निर्वाध रूप से शिक्षा व आशीर्वाद प्राप्त होता रहे। गुरुजी पर प्रकाशित ग्रन्थ की परिकल्पना व संरचना करने वाले सभी अनुभवी व योग्य रचनाकारों, टीकाकारों लेखकों को गुरुजी के सबसे लघु शिष्य का कोटि शः प्रणाम। गुरुजी, गुरुमाता व आप सभी से निरन्तर आशीर्वाद मिलता रहे, इसी विश्वास व कामना के साथ।



संजीव शर्मा एड.(शोधार्थी)
चेयरमैन-ग्लोरियस कालेज ऑफ मैनेजमेंट एण्ड टैक्नोलॉजी,
फतेहगंज, पूर्वी बरेली।
मो. 94121.91970

66

मेरे स्वजन साहित्यकार



पूजनीय गुरुजी डॉ. सुरेशचन्द्र मेरे सजातीय सम्बन्धी और स्वजन हैं। हम लोग शाहजहाँपुर जनपद से सम्बन्धित रहे हैं। मेरा जन्म जनपद शाहजहाँपुर की तहसील पुवायाँ के ग्राम सतवाँ में हुआ। अतः मेरी प्राथमिक शिक्षा पुवायाँ में ही हुई। तदुपरान्त बरेली आकर मैंने एफ.आर. इस्लामियाँ इण्टर कालेज बरेली से इण्टरमीडिएट परीक्षा 1972 में उत्तीर्ण की और 1973 जुलाई में मैंने बरेली कालेज बरेली में बी.ए. में प्रवेश लिया। यहाँ डा. सुरेशचन्द्र गुप्त मेरे क्लासटीचर रहे। यहीं से मेरी उनसे घनिष्ठता बढ़ी। इसका एक मुख्य कारण सजातीय, सम्बन्धी होना और अकेले रहना था। मैं उनका विद्यार्थी तो था, ही धीरे-धीरे उनके स्नेह के कारण सहायक के रूप में उनकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर सका। डॉ. साहब का विवाह विकलांगता के कारण देर से हुआ, अतः मेरा उनका उठना बैठना साथ-साथ होने लगा और आत्मीयता प्रगाढ़ होती गयी। इस प्रकार लगभग 5 वर्ष हमने साथ-साथ व्यतीत किये और उनका वरदहस्त सदा ही मुझ पर रहा। उस प्यार और स्नेह को मैं कभी भुला नहीं सका। 1978 में एल.एल.बी. करने के पश्चात् मैं खुटार जनपद शाहजहाँपुर में अपने व्यापार में व्यस्त रहने लगा। यद्यपि मैं अपने गुरु से दूर अवश्य हो गया था किन्तु अध्ययनशील और साहित्यानुरागी होने के कारण उनकी साहित्यिक रचनाओं, पत्रिकाओं और अन्य कृतियों का पठन-पाठन करता रहा और मन से सदैव उनसे जुड़ा रहा।

1990 में मैंने पुनः बरेली आकर व्यापार प्रारम्भ किया तो पुराने सम्बन्धों में एक नयी जान आ गयी और अक्सर मिलने-जुलने का क्रम शुरू हो गया।

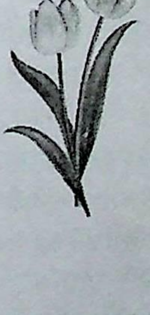
मैंने 'साहित्यायन' पत्रिका में उनके सम्पादकीय के विषय में प्रकाशित अभिमत पढ़े हैं जिसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि देश के बड़े-बड़े

साहित्यकार, और शिक्षाविद, उनकी साहित्यिक सेवाओं को सराहते रहे हैं। उनका रचना संसार, कथा साहित्य, समीक्षायें, कवितायें पढ़कर हर्ष की अनुभूति होती है। उन्होंने अपने संस्मरण और यात्रावृत्तों को बड़ी सहजता, कुशलता और सरल भाषा में अभिव्यक्त किया है। विगत चालीस वर्षों में आपने साहित्य साधना के माध्यम से अपने वैयक्तिक कष्टों को धूमिल कर दिया है और साहित्य में संजीवनी का कार्य किया है।

गुरु की महिमा सर्वविदित है, अतः उनकी प्रशंसा में कुछ कहना छोटा मुँह बड़ी बात होगी तथा उनके लिए शब्दों का चयन बड़ा कठिन होगा। मैं उनके अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन से पुलकित एवं हर्षित हूँ। मुझे आशा है कि इस अभिनन्दन ग्रन्थ के माध्यम से विद्वानों, साहित्यकारों और कवियों के विश्लेषण से उनके साहित्य को देश-विदेश में प्रसिद्धि प्राप्त होगी और उनके लेखन का वास्तव में समुचित मूल्यांकन होगा। इससे अधिक कुछ कहना मेरे वश में नहीं है। मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करते हुए गुरु जी को शत्-शत् प्रणाम व अभिनन्दन करता हूँ।



श्री अशोक कुमार गुप्त
रूपम चैन ज्वैलर्स, 25, साहूकारा, बरेली
मो. 9412672851



67

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त : मेरे सबसे अच्छे पड़ोसी



अमृत महोत्सव समिति बरेली द्वारा डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त (डी.लिट.) के हीरक जयंती के सुअवसर पर एक भव्य स्मारिका व अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन हो रहा है यह जानकर अपार हर्ष का अनुभव करते हुए संयोजक जी श्री डॉ. नितिन सेठी जी को शत् शत् नमन् एवं बधाई।

मैं अपनी तुच्छबुद्धि से अपने अच्छे पड़ोसी डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी के प्रति उनकी हीरक जयन्ती के सुअवसर पर अपने हृदयोदगार एवं संस्मरण प्रस्तुत करता हूँ—

बरेली विकास प्राधिकरण द्वारा निर्मित कालोनी में भवनों का आवंटन हो चुका था। आवंटी धीरे-धीरे अपने-अपने भवनों में आने लगे। वर्ष 1984 सम्भवतः जुलाई मास में अपने नन्हें मुन्ने दो नौनिहालों को गोद में लिए अपनी धर्मपत्नी श्रीमती इन्दु गुप्त के साथ रिक्शे से डा. सुरेशचन्द्र गुप्त जी आए और भवन संख्या एम-12 पर उतरे। मैं उस समय अपने भवन सं. एम-18 पर खड़ा था। उसी समय मेरा श्री गुप्त जी से प्रथम परिचय हुआ।

सरल और मृदु भाषी गुप्त जी हमसे ऐसे घुल मिल गए जैसे चिर परिचित हों। लगभग प्रतिदिन बातें हो जाती रहीं क्योंकि मैं और गुप्ता जी लगभग हम उम्र और हमपेशा रहे हैं इसलिए बातचीत मेलजोल रोज की बात हो गयी।

बी.डी.ए. कालोनी चूँकि नई बनी थी और ठेके पर बनी थी अतः कमियाँ काफी थीं। धीरे-धीरे उनका प्रकट होना तो स्वाभाविक ही था। कुछ भवनों में और भी लोग आने बसने लगे अतः कालोनी की रौनक बढ़ने लगी।

कालोनी में विभिन्न समस्याओं की चर्चा प्रायः हो जाती और सकारात्मक सुझाव भी श्री गुप्त जी से मिलते रहे।

अन्त में एक टीवरीनाथ बी.डी.ए. कालोनी वेलफेयर सोसायटी का गठन

किया गया जिसमें श्री गुप्त जी को अध्यक्ष और मुझे उपाध्यक्ष तथा अन्य लोगों को विभिन्न पदों पर चुना गया।

सोसायटी का कार्य विशेष रूप से बरेली विकास प्राधिकरण का ध्यान समस्याओं को इंगित कर उनके समाधान की ओर रहा। इसमें श्री गुप्त जी के बहुमूल्य सुझाव समय समय पर मिलते रहे।

1985 मार्च में होलिकोत्सव प्रथम सोसायटी द्वारा बड़े जोर-शोर से मनाया गया। चन्दे की रकम का हिसाब श्री गुप्त जी रखते रहे और उन्होंने पाई-पाई का हिसाब बड़े मन से लिखित में बनाया जो आज भी उनके पास सुरक्षित मिल जाएगा।

शारीरिक विषमताओं के होते हुए भी श्री गुप्त जी होली के उत्सव में सक्रिय रहे- बैंड बाजा आया। सब एक दूसरे के घर जाकर होली की बधाई देते गुलाल अबीर से स्वागत करते और महिलाएँ भी उत्सव को सतरंगी बनाने में पीछे नहीं रहतीं। थालों में सजी गुझियाँ आदि से एक दूसरे का स्वागत करतीं—

अन्त में हम सभी आठ नौ लोग श्री गुप्त जी के घर बैठकर गुझिया और प्रेम रस पगे भाभी जी के हाथों के शकर पारे, नमकीन, सेब आदि का आनन्द चाय की चुस्की के साथ लेते। होली की बातें करते गुप्त जी निरन्तर आग्रह करते?, अरे यह गुझियाँ तो आपने ली ही नहीं। यह उनका उदार मन है जो हम सब आज भी उनके घर बैठकर गुझियाँ खाते हैं। विगत 30 वर्षों से यह सिलसिला अनवरत चला आ रहा है—

मनुष्य देह परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति है किन्तु अनेक मनुष्य इस अमूल्य मानव शरीर को पशुवत जीकर व्यर्थ गवाँ देते हैं उन्हें लोग धरती का बोझ भी कह देते हैं, किन्तु श्री गुप्त जी एक ऐसा उदाहरण हैं जिन्होंने शारीरिक विषमताओं की चिन्ता किए बिना बड़े मनोयोग से अपने जीवन को उस लक्ष्य की ओर ले जाने का अथक प्रयास करके उन ऊँचाइयों को छुआ है जहाँ विरले ही पहुँच पाते हैं। ज्ञातव्य है कि अन्धकार को धिक्कारने से नहीं वरन् एक दीप जलाने से अंधेरा दूर होता है। डॉ. गुप्त एक ऐसे ही प्रकाशवान् दीपक हैं।

मुझे श्री गुप्त जी अपनी प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'साहित्यायन' बड़े प्रेम से ध्यानपूर्वक भेजना कभी नहीं भूलते। यह स्वभाव हृदय की विशालता और लगनशीलता को परिलक्षित करता है।

उनके द्वारा लिखे विभिन्न लेखों को पढ़ता हूँ और बहुत सी जानकारी प्राप्त करता हूँ—जैसे कुर्ग की यात्रा मुझे आश्चर्य में डाल देती है कि श्री गुप्त जी किस प्रकार दक्षिण दुर्गम 920 फिट की ऊँची पहाड़ियाँ और ऊँची-ऊँची

मन्दिरों की सीढ़ियाँ चढ़ सके होंगे। हवाई यात्रा का अति मनोरम और रोचक वर्णन कोई कलम का धनी ही इतनी बारीकी से उकेर सकता है। वे बंगलौर का दुर्ग एवं अनेक दर्शनीय स्थलों का आनन्द उठाने में बिल्कुल पीछे नहीं रहे।

जीवट, कर्मठ, कर्मयोगी, कर्मशील, गुप्त जी ने दुःखों और कष्टों से घबराकर कभी पलायनवादी और आत्मघाती प्रवृत्ति को नहीं अपनाया। 1970 में आर्थिक स्थिति अच्छी न होते हुए भी 20 रुपए का लखनऊ में हवाई जहाज से लखनऊ भ्रमण का टिकट खरीदना और उसमें बैठकर भ्रमण करने का मन कोई अति उत्साही और हिम्मत वाला व्यक्ति ही कर सकता था।

शारीरिक विषमता उनके जीवन का अभिशाप नहीं बनी उनके चंचलमन की उड़ान को रोक न सकी, बल्कि प्रेरक शक्ति बनी।

उन्होंने अपने जीवन में पीछे मुड़कर देखना सीखा ही नहीं—पंक्षी एक पंख के बिना नहीं उड़ सकता तो गुप्त जी की पत्नी श्रीमती इन्दु गुप्ता दूसरे पंख के रूप में एक सच्ची अनुसुईया के रूप में जीवन संगिनी हैं। मैं उनकी जितनी प्रशंसा करूँ उतनी कम है। श्री गुप्त जी के दोनों पुत्र बड़े-बड़े पदों पर आसीन हैं और पुत्रवधुएँ भी भाग्य से बड़ी सुन्दर शालीन और सुशील हैं— मैं सभी के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें सुख, समृद्धि सम्मान सदैव मिलता रहे।

अन्त में मैं कहना चाहूँगा कि श्री गुप्त जी मेरे एक अच्छे पड़ोसी और सच्चे मित्र हैं। मुझे उन पर गर्व है और एक तपस्वी की भाँति उन्होंने हिन्दी साहित्य सृजन में अपना जीवन अर्पण कर हिन्दी की विभिन्न विधाओं को चमकाने, सजाने, जगमगाने का सफल प्रयास कर एक उपकार किया।

मैं उनके परिवार की सुखद जीवन की कामना करते हुए प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि इसी प्रकार अपनी बलवती लेखन से सृजित रचनायें हिन्दी साहित्य जगत को प्रदान करते रहें।

जीवेम शरदः शतम्



आर.एस. गोयल
(भू.पू. अंग्रेजी प्रवक्ता) एम-18, टीवरीनाथ कालोनी, बरेली,
मो. : 955791667, 8126225533

68

स्वस्थ और चिरायु हों!



प्रिय सुरेश मेरे लिए अनुजवत् हैं, यद्यपि मेरी पत्नी के भाई होने के कारण रिश्ते में साले हैं पर, हमारे बीच कभी साले बहनोई जैसा सम्बन्ध नहीं रहा। बात सम्भवतः 1947 की है। एक-दो दिन पूर्व ही मेरा विवाह हुआ था। सूरज प्रसाद जी पहली बार मेरे घर आये थे। मैं कक्षा 10 उत्तीर्ण कर चुका था और सूरजप्रसाद जी कक्षा नौ। मुझे याद है कि सुरेश के बारे में पूछने पर बताया था-ये पढ़ने में बहुत तेज है। तब ये शायद 6-7 वर्ष के थे और कक्षा एक में पढ़ते थे।

कालान्तर में मेरे श्वसुर जी का निधन हो गया और सूरज प्रसाद जी को गृहस्थी संभालनी पड़ गई। मैं मंगलसेन स्कूल में टीचर लग गया था। स्कूल उसी वर्ष खुला था। मैं अपने माता-पिता की छत्रछाया में एक-एक कर सरकारी नौकरियाँ करता और छोड़ता गया साथ ही साथ निरन्तर पढ़ता रहा। सन् 1956 में मैं लखनऊ सचिवालय में कार्यरत था और सुरेश अपनी संधिवातजन्य बीमारी के उपचार के लिए लखनऊ मेडिकल कॉलेज दिखाने आये थे। उन दिनों, इन्हें 'कम्पटीशन मास्टर' पढ़ता देखकर मुझे लगा था कि ये वास्तव में ही अध्ययनशील हैं। फिर लम्बा अंतराल। मैं बी.ए, एम.ए., एल.एल.बी., एल.एल.एम. और आई.आर.एस. (भारतीय राजस्व सेवा) आदि परीक्षायें उत्तीर्ण कर आयकर विभाग में आ गया।

सन् 1973 में सुरेश ने एम.ए., पीएच.डी. करके बरेली कॉलेज में पढ़ाना शुरू कर दिया था। सन् 1983 में आयकर अधिकारी के रूप में मैं भी बरेली आ गया। सुरेश धर्मकाँटे के पास रहते थे और मैं रामजानकी मन्दिर के पास बने सरकारी आवास में। स्वाभाविक है कि आना-जाना लगा रहता था।

सन् 1985 में मेरी प्रोन्नति आयकर आयुक्त के रूप में हो गई और हम

मुरादाबाद आ गये। सन् 1986 में सेवानिवृत्त होकर मैं लखनऊ आ गया और कुर्सी रोड पर यादव लोहा भंडार के पास लगभग छह हजार वर्ग फीट के भूखण्ड पर अपना मकान बना लिया। छोटा बेटा संजय एम.बी.बी.एस. कर रहा था। विचार था कि घर में ही अस्पताल खोल देंगे।

संयोग ऐसा हुआ कि छोटा बेटा आई.ए.एस. में भी आ गया और दिल्ली सरकार में उच्च पदस्थ हो गया। बड़ा बेटा अजय, जो चार्टर्ड एकाउटेंट है, भारतीय खाद्य निगम में मुख्य महाप्रबन्धक जैसे उच्च पद पर कार्यरत है, दिल्ली में रहता है। स्वाभाविक ही लखनऊ का मकान बेचकर हम दिल्ली आकर बस गये।

अपना पारिवारिक विवरण देना मुझे आवश्यक इसलिए प्रतीत हुआ कि हमारे परिवार एवं रिश्तेदारी में अनेक लोग प्रशासकीय एवं स्वास्थ्य सेवाओं में भिन्न-भिन्न उच्च पदों पर कार्यरत हैं पर शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में सुरेश ने जो दिया है, ऐसा किसी एक भी व्यक्ति ने नहीं। डी.लिट्. क्या, पीएच.डी. भी कोई नहीं है और शिक्षा व साहित्य के क्षेत्र में जैसा यश सुरेश को प्राप्त हुआ है वैसा किसी एक को भी नहीं। और अब तो पिछले कई वर्षों से 'साहित्यायन' जैसी उच्च कोटि की पत्रिका निकाल रहे हैं जो सरल काम नहीं है।

सबसे अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि हमेशा गम्भीर बीमारियों से जूझते रहकर भी कभी थके नहीं हैं और न टूटे हैं। अपितु, पिचहत्तर वर्ष का हो जाने पर भी निरन्तर साहित्य सेवा में डटे हैं।

ऐसे साहित्य मनीषी को मेरा आशीर्वाद। अमृत महोत्सव समिति उनके बारे में अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन कर एक अच्छा कार्य कर रही है अतः उसे भी मेरी बधाई।

भगवान सुरेश को स्वस्थ रखें और हमेशा संघर्षरत् रहने का साहस प्रदान करें।



श्री रामदास वैश्य
आई.आर.एस. (रिटायर्ड)
आवास—जी-46, विजयलक्ष्मी अपार्टमेंट्स, 98, आईपी. एक्सटेंशन,
पटपड़गंज, दिल्ली-92
दूरभाष : 011-22774525, चलयंत्र : 09968872060

69

सरस्वती के वरद् पुत्र



आकृति प्रकृति कृति और संस्कृति से ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की परख और पहचान होती है। ऐसे ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अपनी बहुमुखी प्रतिभा के अनमोल मोती बिखेरने वाले डॉ. गुप्त का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद शाहजहाँपुर के एक प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न परिवार में हुआ था। किसे मालूम था कि लेखनी का धनी, माँ सरस्वती का अमर पुत्र, भाव और विचारों के संयम से सबको चमत्कृत कर देगा।

गुप्त जी ने अपना समस्त जीवन माँ सरस्वती के खजाने को समृद्ध करने में लगा दिया तथा निरन्तर इस कार्य में रत हैं।

भाषा पर अपनी मजबूत पकड़ रखते हुए, शिक्षण कार्य को ही अपने हृदय के करीब समझकर सन् 1973 में बरेली कालेज से स्वयं को जोड़ लिया तथा निरन्तर अपने अटूट परिश्रम और लगन के साथ विद्यार्थियों को शिक्षित करते रहे। इसी बीच गृहस्थ जीवन की कामना से प्रेरित होकर आपने सन् 1977 में मेरी पुत्री (भांजी) जो इन्दु के नाम से जानी जाती है उसके साथ वैवाहिक जीवन में प्रवेश किया। मुझे गर्व है आपकी वैवाहिक जीवन की चपल चंचलता पर जिसने एक दूसरे के जीवन को साकार बना दिया, जिससे आपको दो पुत्र रत्न प्राप्त हुए।

आपने अनगिनत पुस्तकों की रचना की है गद्य-पद्य में समान अधिकार रखने वाली लेखनी के धनी, डॉ. गुप्त ने अनेक पुरस्कार प्राप्त किए हैं। आत्म मंथन और लोकतांत्रिक भारत में नव प्रकाशित कृतियाँ हैं। अभिगीता हिन्दी साहित्य की अमर रचना है। आप अपने रचनात्मक कार्यों में विभिन्न रूपों में सामने आए हैं। कभी महान समालोचक, कभी महान निबन्धकार तो कभी भावुक हृदय वाले

कवि। मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पदा उसका चरित्र है। कर्त्तव्य परायणता, सत्यनिष्ठा, पारिवारिक जीवन में स्नेह, सद्‌भाव, शिष्टता, शालीनता आदि आदर्शों के प्रति आप सदैव समर्पित रहे हैं।

आपके सकारात्मक विचारों से मैं बहुत प्रभावित हूँ। आपके व्यक्तित्व की प्रभावशीलता, आत्म विश्वास निडरता प्रशंसनीय है।

आपके यशस्वी जीवन, दीर्घायु होने, स्वस्थ रहने और साहित्य की ऐसे ही सहज सेवा करने हेतु परमेश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि आपके जीवन का उपवन स्थायी रूप से बसन्ती एवं पुष्पित हो।



श्रीमती पदमा अग्रवाल
आवास-67, प्रभातनगर, बरेली
दूरभाष : 0581-2221001, चलयंत्र : 9897897506

क्यों न लेते संकल्प –
कि गलत काम न करेंगे, न करने देंगे
झूठ, बेईमानी और भ्रष्टाचार से घिरे रहने पर भी
भ्रष्टाचार न ही करेंगे न सहेंगे
अधीनस्थों को सताएँगे नहीं
नहीं सहेंगे शोषण रंचक भी
नहीं फँसने देंगे युवकों को चक्र में
शोषण बेईमानी के
करेंगे काम कायदे-कानून से
नहीं लेंगे रिश्वत, न देंगे
निर्वहन दायित्वों का शुचिता से करेंगे।

ले लिया संकल्प –
शुचिता से जिएँगे
बनेंगे इंसान
और बनाएँगे ऐसा समाज
खिलें जहाँ कीचड़ में कमल।

70

डॉ. गुप्त सपरिवार सुखी और यशस्वी रहें



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त महान प्रतिभा के धनी हैं। वे उच्च कोटि के कवि, लेखक एवं साहित्यकार हैं। समाज में आपकी मान-प्रतिष्ठा और स्थान है। अपने परिवार और समाज का पूर्ण ध्यान रखते हुए हर समय अध्ययन एवं लिखने में व्यस्त रहते हैं। अपनी शारीरिक व्याधि को कभी भी अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया, और निरन्तर काम करते हुए शारीरिक कष्टों को चुपचाप सहन कर जाते हैं। बडी से बडी मुसीबत का सामना वे धैर्यपूर्वक चुपचाप सहन कर जाते हैं। ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्तित्व हम सबके लिए वन्दनीय है।

यह बात व्यक्त करते हुए हमें गर्व का अनुभव होता है कि डॉ. गुप्त हमारे बहुत ही घनिष्ठ और आत्मीय रिश्तेदार हैं। सही अर्थों में, हम एक परिवार के सदस्य जैसे हैं। आप हमारी भांजी इन्दु के पति है। चालीस वर्ष पूर्व इन्दु का विवाह हुआ था, भांजियां और भी हैं, पर जैसा आत्मीय सम्बन्ध इन्दु और डॉ. साहब से है, वैसा किसी से भी नहीं। हम दोनों के घरों में, लगभग दो-तीन फर्लांग की दूरी है। आना-जाना लगा रहता है, और फोन से रोज ही बातें होती हैं। पर्व, त्योहार और पारिवारिक आयोजनों में हम हमेशा साथ होते हैं। बीमारी या किसी भी मुसीबत के समय हम लोग, हमेशा साथ देते हैं, सहयोग करते हैं। सच तो यह है कि बेटी इन्दु से अधिक, डॉ. साहब को हम लोगों का ध्यान रहता है। इसी तरह डॉ. साहब को कोई जरूरत होती है, तो उनका सहयोग करके हमें प्रसन्नता होती है।

इन्दु के विवाह के समय, हम लोग इतनी उम्मीद नहीं लगाते थे, क्योंकि शारीरिक बाधा और अल्पवेतन की सर्विस, पर अपने जीवट, लगन, कर्मठता, परिश्रम और इन्दु के सहयोग से डॉ. साहब ने जिन ऊँचाइयों को छुआ, उन्हें देखकर हम सभी गर्व का अनुभव करते हैं। भौतिक सुख-सुविधा की सारी वस्तुएँ,

जैसे कार, घर आदि सब कुछ आपके पास है। दो पुत्र हैं और दोनों ही उच्च पदों पर कार्यरत हैं। उनकी शादियाँ भी शान से कीं और बहुएँ भी सुन्दर-सुशील मिलीं। दोनों पुत्र आपका नाम रोशन कर रहे हैं। बेटी इन्दु भी डॉ. साहब का तन-मन से साथ देकर सुखी और सन्तुष्ट है।

मुझे स्मरण आ रहा है कि डॉ. साहब को मेरठ के सभागार में जब आत्रेय पुरस्कार से सम्मानित किया गया था, तब भी हम पति-पत्नी उस गौरवपूर्ण क्षण के साथी रहे थे। बरेली की हीरक जयन्ती समिति डॉ. साहब की साहित्यिक योगदान को दृष्टि में रखकर जो आयोजन करने जा रही है, यह प्रशंसा की बात है।

प्रभु से प्रार्थना है कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त स्वस्थ और सुखी रहकर इसी प्रकार साहित्य सृजन करके यश प्राप्त करते रहें।



विष्णु शंकर अग्रवाल एवं श्रीमती उर्मिला अग्रवाल
आवास—ब्रजलोक कालोनी, बरेली
चल यंत्र : 99273-77731, 82735-48237



रेखाचित्र सं. 15
(अजन्ता गुफा नं. 10, सातवीं शताब्दी)

71

मेरे जीवन साथी-मेरे सहचर



अपने जीवन साथी के बारे में बड़ा रोमानी सा ख्याल है और बहुत कुछ कहने-सुनने को मन मचल रहा है। कहें भी क्यों ना। आज विवाह हुए 40 साल होने जा रहे हैं। पर लगता है जैसे अभी कुछ समय पूर्व ही हुआ। मेरे पति डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त साहसी, आत्मबल के धनी हैं। कभी न हारने वाले हैं। अथक परिश्रमी व ईमानदार हैं। अपने अथक परिश्रम व ईमानदारी से आज सब-कुछ हासिल किया है। दहेज रहित शादी की। ईश्वर अनुकम्पा से आज घर गाड़ी दो सुन्दर सुशील बेटे-बहू पौत्रियाँ आदि सब कुछ है। हमेशा ही अपने को 'व्यस्त' रखना साहित्य सेवा में लगे रहना इनकी प्राथमिकता है। अपना कोई शौक न होने के बावजूद आज हमारे घर में धन-धान्य और भौतिक वस्तुओं की कोई कमी नहीं है। स्वास्थ्य ठीक न रहने के बावजूद अपने को व्यस्त रखते हैं। कभी किसी बात की टेंशन तो होती ही नहीं। सोचना है जो प्रभु करेगा अच्छा करेगा। कभी किसी के दस रुपये हम पर उधार न रह जायें। भले ही हमें कोई लूट ले। मैं जीवन संगिनी होने के नाते खिखाती-बचाती रहती हूँ। दोनों बेटों को भरपूर प्यार दिया व उनको इंजीनियर बनाया। शादी भी बेटों की बड़ी धूमधाम से की। आज समाज में, रिश्तेदारी में हमारी प्रतिष्ठा है। डॉ. गुप्त को अपने ऊपर पैसे खर्च करने का कोई शौक नहीं है। पर अपनी धर्मपत्नी (मुझ) पर खर्च करने में कोई आपत्ति नहीं है। आज ईश्वरानुकम्पा से मेरे पास वस्त्र-आभूषण की कोई कमी नहीं है। हमेशा ही अपने को कसा है। यही परिश्रम है कि आज हम लोग रिटायर होने के बावजूद शान की जिन्दगी जी रहे हैं। डॉ. गुप्त बहुत स्वाभिमानी हैं। कभी किसी से एक पैसा उधार नहीं लिया और न ही उधार किया। जितनी चादर उतने पैर वाला सिद्धान्त। आज 'साहित्यायन' पत्रिका 10 वर्षों से अनवरत

चल रही है। उसमें अपना श्रम-पैसा और समय लगा रहे हैं। पत्रिका को वाई-पोस्ट भिजवाना, कोरियर कराना सबमें अपना ही योगदान है।

अधिक न कहकर अन्त में यही कहूँगी डॉ. गुप्त को पाकर मैं धन्य हूँ। आज अभिनन्दन ग्रन्थ छप रहा है। प्रभु का उपहार ही है। आप प्रभु व कर्म में अटूट विश्वास रखने वाले हैं। ईश्वर अनुकम्पा सदैव उन पर बरसती है जो मानते हैं कि कर-भला, होगा भला।

अब शब्दों को विराम देना चाहूँगी। कहने को तो बहुत कुछ है पर गागर में सागर वाली बात ही उचित प्रतीत होती है।



श्रीमती इन्दु गुप्त
मोबाइल नं. : 9411657486

सोचना व्यर्थ है, आगत के बारे में
क्या कर लेंगे सोच-सोच कर ?
जो होना है – होकर रहेगा
न कहने पर भी होगा
जो नहीं चाहेंगे –
होकर रहेगा वह भी
प्रारब्ध में जो है –
होकर रहेगा।

तब,
वर्तमान को क्यों मुरझाने दें ?
जियें वर्तमान को
भरपूर जियें
यही है अपने हाथ में
जियें वर्तमान को
भरपूर जियें
रस लेकर जियें

72

प्रेरणापुंज मेरे पापा



मेरे जीवन के प्रेरणास्रोत मेरे पापा हैं। बचपन से ही मैंने पापा को हमेशा मेहनत और सरलता से जीवन जीते देखा है। उनका हमेशा कठिन परिस्थितियों में यह कहना कि, "हुइये वही जो राम रचि राखा" हम लोगों को चिंता मुक्त कर जाता है। सदा प्रसन्नचित रहना और दूसरों को प्रसन्नचित रखना, उनका स्वभाव है। जीवन में धन को महत्त्व न देकर, पारिवारिक खुशियों को महत्त्व देना, पापा के जीवन का मूल मंत्र है।



डॉ. अभिनव गुप्त
(ज्येष्ठ पुत्र)

परम आदरणीय पापा जी, मैं सदा आपसे प्रेरित होती हूँ। आप हमेशा हमें अपने अच्छे विचारों से अवगत कराते हैं और हमें हर पल परेशानियों का सामना करने की शक्ति देते हैं क्योंकि जिस तरीके से आप अपनी बीमारी तथा कष्ट को अनदेखा करते हैं वह हमारा मनोबल बढ़ाता है। आपका अधिकांश समय मैंने किताबों और अखबार के साथ पाया है। आपकी जीवन शैली बहुत सीधी सादी है।



श्रीमती नेहा गुप्त
(ज्येष्ठ पुत्रवधू)
आईआईटी, आवासीय परिसर नोयडा, सेक्टर-62
चलयंत्रः 99999-28860, 98119-84201

73

[redacted]

पापा! आप प्रेरणास्रोत हो!

जब से आपको देखा सहनशील एवं शान्त स्वभाव, कभी-कभी लगता है कि



आप इतना संयम कैसे रख पाते हो? हर चीज में संतुष्ट, कभी कुछ नहीं कहते। ए.सी., फ्रिज, महँगे कपड़े, किसी चीज में कोई रुचि नहीं। सारे साधन होते हुए भी किसी चीज की कोई लालसा नहीं। काश, मैं भी एक दिन आप जैसी बन पाऊँ।। पापा, ज्यादा शब्द नहीं आते मुझे, हाँ पर आप जैसा बनना आसान नहीं है। मैं हमेशा सोचती हूँ, यह काम नहीं कर पाऊँगी फिर सोचती हूँ, जब पापा इस उम्र में सब कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं। आप मेरे प्रेरणास्रोत हो।

प्रिया गुप्त
(कनिष्ठ पुत्रवधू)



"पिता जो कड़ी मेहनत करके, अपने परिवार का पालन पोषण करता है, ऐसे पिता का सम्मान करना, हम बच्चों का कर्त्तव्य है।

जिनकी उँगली पकड़कर चलना सीखा, जिनसे ज्ञान पाकर जीना सीखा
जिनके आशीर्वाद से सफलता पाई, ऐसे प्यारे पिता को शत्-शत् प्रणाम।

नींद अपनी भुला के सुलाया हमको
आँसू अपने गिरा के हँसाया हमको

दर्द कभी न देना उन हस्तियों को
प्रभु ने माँ-बाप बनाया जिनको।।



अभिलेख गुप्त (कनिष्ठ पुत्र)
म.नं. एम-203, प्लाट नं. 18 द्वारका
सेक्टर-22 ग्रीन वैली एपार्टमैन्ट्स, नई दिल्ली 110077
चलयंत्र :085880-21997, 9818518385

देती हूँ
प्राणवायु मैं ही
दूर कर प्रदूषण
पर्यावरण सुधारती
मैं ही हूँ सहचरी तुम्हारी
युग-युग से

धरती का आवरण
हरीतिमा
छाँटो मत शाखायें
पत्तियाँ
मत करो यूँ नग्न,
मुझको
शोभा हूँ आँगन की
धरती की !

74

72

मेधा, अध्यवसाय और विनम्रता की प्रतिमूर्ति डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त



मेरा डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी से लम्बे समय से परिचय है। पहली बार की भेंट से ही मैं उनका हो गया। ऐसे कम लोग जीवन में मिलते हैं, जो प्रथमवार में ही आपके हो जाएँ, आपको अपना बना लें। परिचय का हेतु बना था उनकी एक शोधार्थिनी के पीएच.डी. शोध प्रबन्ध का मेरे द्वारा मूल्याँकन और उस पर मुझे मौखिक परीक्षा सम्पन्न करने रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली जाना; उनका आत्मीयता के साथ मिलना और आतिथ्य। उनके त्रिवटीनाथ कालोनी में स्थित "उत्थान" नाम के घर पर श्रीमती इन्दु जी द्वारा अपनत्व भरा स्वागत।

मैंने जो लक्ष्य किया, और जिसने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया, वह चमकीला रज्जु था बौद्धिक वार्तालाप, बातों का जो सिलसिला आरम्भ हुआ वह अकादमिक था। शोध पर, समीक्षा पर, कविता पर, कहानी और उपन्यासों पर.... आज की शिक्षा पर.... उन्होंने लगातार बातचीत की। ऐसे कम ही लोग मिलते हैं।

उनके द्वारा मुझे अपनी लिखी कुछ पुस्तकें भेंट की गईं। यह सोने पर सुहागा था। मैंने अपनी आदत के अनुसार तुरन्त उलट-पलट कर उनको देखा और जिन चीजों से प्रभावित हुआ, और जिन कुछ बिन्दुओं पर मेरी सहमति नहीं थी; उनसे उनकी चर्चा की। उनके व्यक्तित्व के सबसे प्रभावी पक्ष मेरे सामने थे—उनकी विनम्रता, मुक्त हृदय से मेरी बातों का अनुमोदन या संशोधन, विनम्रतापूर्वक तर्क करना, हर बात में वस्तुनिष्ठता और आत्मविश्वास से भरे पारदर्शी कथन....। संवाद के इस धरातल पर मैंने अनुभव किया कि डॉ. गुप्त

की बचपन से हो गई दिव्यांगता उनके उत्थान में कहीं बाधा नहीं बन पाई है, और इसके लिए उनकी मेधा, उनका अध्यवसाय तथा उनकी विनम्रता सबसे बड़े आधार हैं। ये आधार उन्होंने अवधानतापूर्वक विकसित किए हैं, ''काल तुझसे होड़ है मेरी...'' जैसी एक प्रसिद्ध कवि की पंक्ति को चरितार्थ करते हुए।

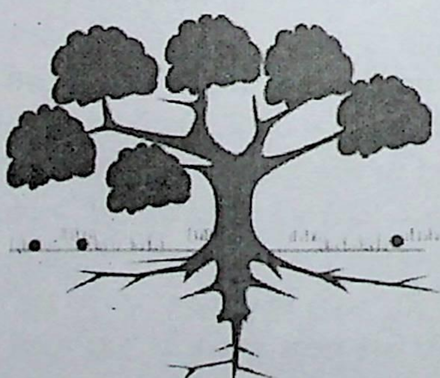
डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी अनुशासन के साथ जीवन-पथ को आलोकित करने वाले शिक्षक तो हैं ही, बरेली कॉलेज, बरेली के उनके छात्र-छात्राएँ इसी रूप में इनकी प्रशंसा करते हैं। वे एक सहृदय कवि, समर्थ आलोचक, तत्वद्रष्टा अनुसंधानकर्ता और प्रेरक सम्पादक भी हैं। छायावादी काव्य के अधिकारी विद्वान् डॉ. गुप्त ने सुकवि सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में निहित दार्शनिक चेतना पर और छायावादोत्तर हिन्दी कविता पर शोधकार्य किया है। उनकी ये शोध-कृतियाँ पर्याप्त चर्चित रही हैं। उनका शोध-प्रबन्ध पुरस्कृत भी है। उनकी डी.लिट्. उपाधि की शोध-यात्रा बहुत संघर्षमयी रही है। वह अलग प्रसंग है। बाबा नागार्जुन के उपन्यासों का जैसा तलस्पर्शी अध्ययन और मूल्याँकन आपने किया है, वह बेजोड़ है। इन कृतियों के साथ ही जब उन्होंने एक अचर्चित अल्पज्ञात काव्यकृति और उसके कवि का शोधपरक अध्ययन कर उसे प्रकाशित किया तो "हंस जवाहिर : एक अध्ययन" नामक इस शोधपरक पुस्तक का हिन्दी जगत ने मुक्त हृदय से स्वागत किया। इसके लिए उनको प्रशंसा मिलना स्वाभाविक था। उनकी लेखनी रुकी नहीं है, न थकी है; वह सतत् सक्रिय हैं। इसी का सुखद परिणाम है उनके द्वारा रचित विविध विधाओं की अनेक कृतियाँ। यथा-कविता और गीत के क्षेत्र में उनकी चर्चित कृतियाँ हैं— मनपाँखी, स्वर्णजयन्ती वर्ष, गीत श्री, ऋतु वसंती, लोकतांत्रिक भारत में, आत्ममंथन, देवी, माँ, सहचरी, प्राण आदि। उनकी कविताओं में प्यार और राग की लय है, प्रकृति का सौन्दर्य है, राष्ट्र-प्रेम की दिव्यता है, नारी के प्रति सम्मान के विविध रूप हैं, दार्शनिक चिंतन हैं और भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों के प्रति निष्ठा है। इसी तरह डॉ. गुप्त ने रोचक यात्रावृत्तांतों की भी सर्जना की है, जिनमें सरसता, कोमलता, उत्सुकता और प्रकृति के सौन्दर्य के बीच दार्शनिक भावों की उपस्थिति मिलती है। इन यात्रावृत्तांतों का संचयन—"जैसे उड़ि जहाज को पंछी" नामक कृति में है। उनके यात्रावृत्तों में अनूठी आत्मीयता और काव्यात्मकता मिलती है। ऐसी ही आत्मीयता उनके संस्मरणों में भी है। "स्मृति के वातायन" नामक इन संस्मरणों में उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा के सारे पड़ाव सच्चाई के साथ सामने रख दिए हैं। यहाँ कोई दुराव या छिपाव नहीं है, और न अपने आपको "महान" घोषित करने की "छद्म विनम्रता"। इन संस्मरणों के माध्यम से उनके द्वारा अपने समय के निम्न

मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय परिवारों की जीवन-शैली तथा संघर्षों का रूपायन है। "स्मृति के विहग" नाम से वे अपने द्वारा प्रकाशित "साहित्यायन" नामक त्रैमासिक शोधपरक पत्रिका में बराबर अपने संस्मरण लिख रहे हैं। मेरे विचार से यह "शोधपरक" पत्रिका कहीं भले ही जाती है; किन्तु जैसा कि हिन्दी में कई ऐसी तथाकथित "शोध पत्रिकाएँ" हैं; जो अनावश्यक गीतों-कविताओं से भरी रहती हैं। स्तरीय शोधपत्र उनमें कम ही होते हैं। शोधपत्रों के नाम पर संक्षिप्त समीक्षात्मक टिप्पणियों की बहुलता ही रहती है। पता नहीं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी अपनी इस पत्रिका के बारे में क्या सोचते होंगे। हाँ, इतना अवश्य है कि वे युवा लेखकों के लिए एक अच्छा मंच दे रहे हैं, प्रेरक और मार्गदर्शक की महती भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

बातें और भी हैं; किन्तु सम्प्रति इतना ही। उनके ही एक संस्मरण की पंक्ति के साथ कि —''सब कुछ प्रभु के अधीन है।'' ईश्वर आप तथा श्रीमती इन्दु जी को शतायु करे। आप दोनों स्वस्थ और सक्रिय जीवन जीयें। ''उत्थान'' के परिवृत्त में आपका जीवन-पथ आलोकित रहे।



प्रो. हरि मोहन
कुलपति, जे.एस. विश्वविद्यालय,
शिकोहाबाद, (फिरोजाबाद) 283135 उ.प्र.
27 सिंडिकेट बैंक कालोनी, गैलाना रोड आगरा-282007



75

किंचित मननीय : एक सत्यम् शिवम् सुन्दरम अभिव्यंजना



साहित्य एक समुद्र के समान है। इस समुद्र के किनारे पर खड़े होकर देखने वालों में से एक मैं हूँ। कुछ लोग समुद्र में तैरना चाहते हैं, तो कुछ नाव/जहाजों में बैठकर यात्रा करना चाहते हैं। शेष कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो बीच समुद्र में जाकर गोता लगाकर समुद्र के गर्भ से मोती ढूँढ के लाते हैं। अन्तिम क्षणों में खोजी, गोताखोर, साहित्यकारों में जुझारू एवं स्वनामधन्य, दिव्यांग साहित्यकार डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त जी का नाम सबसे ऊपर है।

शैशव में संधिवात से आक्रान्त होकर दोनों पैरों से असमर्थ होने के बावजूद आपने हार नहीं मानी। हिन्दी के साहित्य-समुद्र में गोताखोरी के लिए अपने को समर्थ बनाने में उन्होंने विश्वविद्यालय के सभी स्तरों को सुगमता से पार करते हुए पीएच.डी. (लखनऊ वि.वि.) एवं डी.लिट्. (रुहेलखण्ड वि.वि.) की उपाधि प्राप्त की।

लखनऊ में पढ़ने के दौरान वहाँ के विशाल ग्रंथालय का मंथन कर देशी और विदेशी साहित्यों का रसास्वादन कर अपनी जिज्ञासा तृप्ति करने का प्रयास किया। अपने शिक्षक का दायित्व निर्वहन करते हुए बरेली कालेज के ग्रंथालय का भी मंथन कर देशी और विदेशी साहित्यों का अध्ययन किया और एक सफल गोताखोर बनने में सक्षम हुए।

अपने आवास पर निजी अध्ययन कक्ष को ऐसे सजाया, जहाँ उन्हें सारी सामग्री अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही उपलब्ध हो जाये। इतना ही नहीं उसी स्थान पर बैठे-बैठे शोधार्थियों को दिशा निर्देश दिया, उनकी एवं विश्वविद्यालय की कापियाँ जाँचीं। 50 से उपर शोधार्थियों को आगे बढ़ाया, जिसमें से 35 को

पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त हुई और शेष व्यक्तिगत कारणों से शोधाध्ययन बीच में ही छोड़कर चले गये। आज वे 35 पीएच.डी. उपाधि प्राप्त शिष्य एवं शिष्याएँ हिन्दी जगत में शिक्षा के स्तम्भ बने हुए हैं। महाविद्यालय के शिक्षण कार्य से सम्बन्धित गृह कार्य एवं शोधार्थियों के शोधकार्य का एक-एक शब्द पढ़ना, उनकी वर्तनी, वाक्य रचना में आवश्यक सुधार करना, संदर्भित पुस्तकों का स्वयं अध्ययन कर, उन्हें मनोयोग से पढ़ने के लिए प्रेरित करना, आदि कार्यों से मुक्ति मिलने के बाद, जो भी निजी समय उपलब्ध होता, उसमें साहित्य-समुद्र में गोते लगाना जारी रखा। स्पष्टतः डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने जीवन को मर्द की तरह जिया है, सेवक की तरह साहित्य की सेवा की है और ऋषियों की तरह माता शारदा की तपस्या भी की है।

डॉ. गुप्त के दीर्घ कालिक साहित्यिक मंथन एवं वृहद् व्यावहारिक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप 'साहित्यायन' नामक त्रैमासिक पत्रिका का जन्म 19 मार्च 2007 को होता है। सहयोग के लिए डॉ. लवलेश दत्त को सम्पादक तथा डॉ. समराना फय्याज, डॉ. सीमा मोइत्रा, डॉ. कुंज बिहारी सिंह एवं रजनीश कुमार त्रिवेदी को सह सम्पादक का दायित्व सौंपा। साथ ही अपने कन्धे पर सम्पादकीय लिखने का भार ग्रहण किया और वह कार्य वर्ष 5 अंक (2) तक सामान्य गति से चलता रहा। साथ ही साथ डॉ. गुप्त का मन-मस्तिष्क, सुधी पाठकों के लिए कुछ विशेष परोसने के लिए व्याकुल रहा।

अन्ततः डॉ. गुप्त को साहित्य साधना के दौरान राजनीति, धर्म, समाज, शोषण, जिजीविषा, विभिन्न संघर्षों के क्षेत्रों से सम्बन्धित अनेक उपन्यासों एवं आत्मकथाओं आदि के अध्ययन का सारांश प्रबुद्ध पाठकों तक पहुँचाने के जुनून ने साहित्यायन में वर्ष (5) अंक (3) से 'किंचित मननीय' शीर्षक से सम्पादकीय का प्रकाशन शुरू करने के लिए प्रेरित किया। सुधी पाठकों की प्रतिक्रियाओं से डॉ. गुप्त को पाठकों के मननचिन्तन से युक्त सराहना मिली और आगे लिखते रहने की प्रेरणा भी। फिर तो 'किंचित मननीय' ने अंक-दर-अंक अग्रसर होता हुए, देश प्रेम, धार्मिक संकीर्णता, देश विभाजन, प्रतिभा पलायन, नारी शोषण, यौन शुचिता, सेक्स शिक्षा, नारी कामशास्त्र, वैलेन्टाइन डे और प्रवासी पुत्र जैसे अछूते किन्तु प्रासंगिक बिन्दुओं पर चिन्तन-मनन करने के लिए प्रबुद्ध पाठकों को प्रेरित किया है। समयाभाव में अथवा अनुपालब्धता के कारण लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण कृतियों के मूलरूप से अध्ययन करने से वंचित रह गये प्रबुद्ध पाठकों को, 'किंचित मननीय' के माध्यम से चर्चित किन्तु यथार्थवादी रचनाकारों यथा- अतिया दाऊद, तस्लीमा नसरीन, इस्मत चुगताई, प्रभा खेतान, भीष्म साहनी,

काशीनाथ सिंह, मधु काँकरिया एवं स्मणिका गुप्ता की कृतियों को आधार बनाकर मननीय बिन्दुओं का चयन कर, सुधी पाठकों को साहित्यायन त्रैमासिक पत्रिका की पूर्व प्रकाशित प्रतियों की उपलब्धता/अनुपालब्धता की उधेड़बुन से मुक्त करने में भी समर्थ हुई है।

बन्धुवर डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त द्वारा सप्रेम प्रेषित 'किंचित मननीय' संकलन प्राप्त होते ही मैंने उसे बार-बार पढ़ा। अब मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रबुद्ध पाठक इस संकलन को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तब उसे बिना समाप्त किये नहीं रुकेंगे और अभिभूत होकर चिन्तन-मनन में आत्मलीन हो जायेंगे।

अतः यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की 'साहित्यायन' के सम्पादकीय 'किंचित मननीय' का वर्ष (5) अंक (3) से अद्यतन अंक तक का एक आकर्षक पुस्तक के रूप में संकलन, निश्चय ही, सत्यम् शिवम् सुन्दरम् अभिव्यंजना से कतई कम नहीं है।



चित्रभानु मित्र 'बादल'
भू.पू. स. रसायनज्ञ एवं धातु विशेषज्ञ
एवं हिन्दी सम्पर्क अधिकारी, रेलवे
पता- 11 त्रिशूल इन्कलेव, आईवीआरआई रोड, इज्जतनगर
बरेली-243122
मो. 07599263930



काव्यांजलि (1)

वाणी पुत्र : डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

कवि अध्यापक सुरेश गुप्त
तुम चिर जाग्रत हो कहाँ सुप्त।
अपने कामों में लगे रहे
काली रातों में जगे रहे।।

जितना समाज साहित्य पढ़ा
उससे ज्यादा साहित्य लिखा।
पर पता नहीं कब पढ़ते हो
लिखकर पढ़ते पढ़ लिखते हो।।

साहित्य विधा कौन सी बची
जिसमें न तुम्हारी कलम चली।
चली क्या कि मैराथन दौड़ी
साहित्य गली कर दी चौड़ी।।

तुम कब से सेवामुक्त हुए
लिखने से नहीं निवृत्त हुए।
साधना पन्थ जो कभी चुना
वह राजमार्ग सा दिया बना।।

साकार बने साहित्यायन
अब बन जाओगे रामायण।
जो पढ़ी जायेगी घर घर में
वाणी की गूंज चराचर में।।

शत शत शुभकामनाएं अर्पित
यह शब्दोपहार सुमन अर्पित।



–डॉ. सुधेश
सेवानिवृत प्रोफेसर जे.एन.यू., दिल्ली
314, सरल अपार्टमैन्ट्स द्वारिका, सैक्टर-10,
दिल्ली-110075, मो. 09350974120

(2)

साहित्य पुरोधा डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

साहित्यिक पहचान हैं, सुरेश चन्द्र गुप्त।
'साहित्यायन' आन है, कभी न होती सुप्त।।

कभी न होती सुप्त, बहुमुखी ढब विराट है।
उनके वैविध ग्रन्थ, प्रकाशित हुए साठ हैं।।

आत्रेय पुरस्कार, बढ़ाये कीर्ति चतुर्दिक।
और मिले प्रभु कृपा, ख्याति पायें साहित्यिक।।

बहुत साल से पढ़ रहे, 'साहित्यायन' अंक।
सम्पादित साहित्य पर, कभी न लगा कलंक।।

कभी न लगा कलंक, शिल्पगत मर्यादा पर।
पाठक रहते तृप्त, काव्य रचना, गाथा पर।।

यह सम्पादक श्रेष्ठ, डोलता निपुण चाल से।
प्रिय सुरेशचन्द्र गुप्त, कर रहे बहुत साल से।।



-प्रो. डॉ. सुरेशप्रकाश शुक्ल
कवि एवं कथाकार
सम्पादक-प्राची-प्रतिभा (मा.)
संस्थापक-प्राची साहित्य संस्थान, लखनऊ
554/93, पवनपुरी, लेन-9, आलमबाग, लखनऊ

(3)

साहित्य मनीषी : डॉ. गुप्त

साहित्य मनीषी डॉ. गुप्त की हीरक जयंती पर,
कामना उनके सुखद स्वस्थ समृद्ध जीवन की।

परिजन पुरजन सहित बनें यशस्वी आजीवन,
प्रार्थना प्रभु से है सतत अकिंचन की।।

हर धड़कन से होती साहित्य सुधा वर्षा,
कोमल अनुभूतियों में जीता है अन्तर्मन।

भावों, विचारों और कोमल संवेदना से,
नित नूतन कविता का करते हैं सर्जन।।

हाथों में थामी है कलम जबसे आपने,
चलती अविराम रही रचती है कविता।

ज्ञान-दान देकर जग में प्रकाश किया,
गत चार दशकों से बनकर सविता।।

पद्य और गद्य की जितनी विधाएँ आज,
प्रायः सभी में किया, उदात्त, वर सर्जन।

सात काव्य संग्रह, तीन जीवनी ग्रंथ, शोध,
कहानियाँ उपन्यास आदि में भी गर्जन।।

पत्नी, दो पुत्र, बधुएँ, पौत्रियाँ, भ्रातृ आदि,
सबका संयोग, सफल जीवन गृहस्थ।

मित्र शिष्य आदि के हित साधन में रत,
पढ़ने-लिखने में सदा रह करते हैं व्यस्त।।

जो भी पाया आपसे, जीवन कृत-कृत्य हुआ,
होता है आनन्द पढ़ संस्मरण ललाम है।

हमसे जिज्ञासुओं को ज्ञान कराने वाली,
विद्वत्ता, विनम्रता को शत्-शत् प्रणाम है।



–डॉ. गीता मिश्र
1/33, विकासनगर, लखनऊ,
मो. 08756073462

(4)

कर्म और साधना के पर्याय डॉ. गुप्त

कार्य, व्यवहार, आचरण से, जो प्रेम से हैं युक्त।
ये कोई और नहीं, ये हैं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त।।

मेहनत व लगन से सफलता के रचे नव आयाम।
साहित्याकाश पर चमकाया, हिन्दी भाषा का नाम।।
हर तरह के पूर्वाग्रहों से, जो हरदम रहते मुक्त।
ये कोई और नहीं, ये हैं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त।।

जिनकी प्रकृति में है शामिल, सर्वदा मदद करना।
हर भावना को हृदयंगम कर, बस एकाकार रहना।।
सामीप्य पाकर आलस्य भी, हो जाता है लुप्त।
ये कोई और नहीं, ये है डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त।।

आपके कर्म का पर्याय है, अध्ययन-अध्यापन ही।
जीवन का उद्देश्य केवल, सत्य का सत्यापन ही।।
नवाचार में निमग्न रहकर, ये कभी न रहते सुप्त।
ये कोई और नहीं ये है, डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त।।

जिनकी सम्पूर्ण पूँजी मात्र, सेवा और त्याग बस।
वाणी, आत्मा, अंतःकरण से, निर्झरता अनुराग बस।।
माननीय औ' पूजनीय हैं, दिखते कभी नहीं सुस्त।
ये कोई और नहीं, ये हैं डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त।।



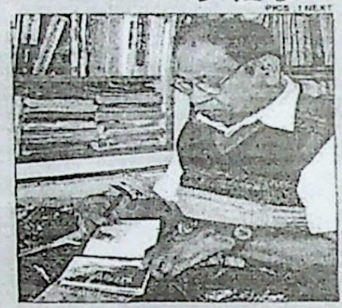
-इन्द्रदेव त्रिवेदी
214, बिहारीपुर खत्रियान, बरेली-243001
महामंत्री-शब्दांगन, बरेली

सप्तम सोपान

पत्र-पत्रिकाओं में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

आई-नेक्स्ट
3-12-2012

'लहरों से डरकर नौका पार नहीं होती'



डिसएबिलिटी मानसिक होती है. इसे जितना आप फील करते हैं, वे उतना ही आप पर हावी होती है. मैं उस वक्त शाहजहांपुर में हाई स्कूल की पढ़ाई कर रहा था. अचानक मुझे ऑर्थराइटिस की प्रॉब्लम हो गई. दोनों पैरों और हाथ के ज्वाइंट्स में जैसे जान ही न रही. वह समय मेरे लिए काफी पेनफुल था. 7 साल तक मैं बिस्तर पर रहा. उसके बाद बरेली में सर्जरी के बाद हालत में कुछ सुधार तो हुआ. दाएं पैर में कैलीपर पहनकर चलने तो लगा. लेकिन हाथ-पैर का टेढ़ापन ठीक नहीं हो सका. मैं 70 परसेंट डिसएबल हूं. मैंने बिस्तर पर रहते हुए भी अपनी पढ़ाई जारी रखी. लखनऊ यूनिवर्सिटी से एमए और पीएचडी कंप्लीट करने के साथ ही मैंने साहित्य रचना शुरू कर दी. हालांकि नौकरी की राह में मेरी डिसएबिलिटी हर जगह रोड़ा अटकाती रही. काफी भटकने के बाद बरेली कॉलेज में बतौर प्रोफेसर मुझे काम मिला. आज मेरी 100 से ज्यादा किताबें, 6 कविता संग्रह और सैकड़ों शोध पत्र पब्लिश हो चुके हैं. मैंने अपनी विवशता ही अपनी शक्ति बनाया और साहित्य रचना के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है.

– डॉ. सुरेश चंद्र गुप्त, साहित्यकार

डा. सुरेश चन्द्र गुप्त को डी. लिट. की उपाधि

नागरण संवाददाता

बरेली, 31 जुलाई। बरेली कालेज हिन्दी विभाग के वरिष्ठ रीडर एवं प्रसिद्ध साहित्यकार डा. सुरेश चन्द्र गुप्त को रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय ने 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' विषय पर डी. लिट. की उपाधि प्रदान की है। यह जानकारी देते हुए प्राचार्य डा. आर. पी. सिंह ने बताया कि डा. गुप्त को डी. लिट. की उपाधि दिये जाने की संस्तुति करने वाले परीक्षकों में [illegible] विश्वविद्यालय की प्रोफेसर डा. [illegible] और [illegible] विश्वविद्यालय के डा. [illegible] शामिल हैं। डा. सिंह ने बताया कि इस शोध कार्य को उच्च स्तर का मान कर इसके प्रकाशन की संस्तुति भी की गयी है। उन्होंने स्पष्ट किया कि डा. गुप्त के शोध ग्रंथ '[illegible] दार्शनिक चेतना' पर इसी वर्ष जनवरी में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का [illegible] पुरस्कार भी प्रदान किया जा चुका है। डा. गुप्त [illegible] कविता, जोगनी, आलोचना, [illegible] लगभग 40 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

[illegible] 1-8-[illegible]

डा. सुरेश की 'आत्ममंथन' का विमोचन



बरेली : शहर के साहित्यकार डा. सुरेश चन्द्र गुप्त की चार पुस्तकों का विमोचन रविवार को समारोहपूर्वक किया गया। शब्दांगन संस्था के तत्वावधान में रोटरी भवन में आयोजित इस समारोह में डा. गुप्त की काव्यकृतियों- अभिगीता, लोकतांत्रिक भारत में और आत्ममंथन के साथ ही साहित्यिक कृति- साहित्यायन का विमोचन पूर्व एमएलसी रमेश चन्द्र शर्मा 'विकट' ने किया। श्री विकट कार्यक्रम के मुख्य अतिथि रहे। इस मौके पर तीनों काव्य कृतियों की समीक्षा करते हुए कैमिस्ट्री के निदेशक डा. एनएन शर्मा ने कहा कि डा. गुप्त ने 'अभिगीता' में सरल ढंग से गीता का उल्लेख करके गीता को सुग्राह्य एवं सरल बना दिया गया है। 'लोकतांत्रिक भारत में' कृति में प्रेम, दर्शन, जीवन संघर्ष, राजनीति, लोकतंत्र, भ्रष्टाचार, नैतिकता आदि समसामयिक विषयों पर गहन चिंतन भरी काव्य प्रतिक्रिया है। इसी तरह 'आत्ममंथन' में टांके गए गीत अनुभूति, विचार दर्शन और सांस्कृतिक को चौसठ कलाओं का परिचय कराते हैं। 'साहित्यायन' की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए पत्रिका के संपादक डा. [illegible] दत्त ने डा. सुरेश चन्द्र गुप्त के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला। कार्यक्रम में साहित्यकार प्रो. रामप्रकाश गोयल, गीतकार ब्रजराज पांडेय व पासपोर्ट अधिकारी हंसराज विशिष्ट अतिथि रहे। इस मौके पर श्रेष्ठ कृतियों के लिए डा. सुरेश चन्द्र गुप्त को सम्मानित किया गया। उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता के अनुभव सुनाए। शब्दांगन के अध्यक्ष डा. सुरेश रस्तोगी ने अतिथियों का स्वागत किया। संचालन महामंत्री इन्द्रदेव त्रिवेदी द्वारा किया गया। कवि डा. अवनीश यादव ने अतिथियों का आभार प्रकट किया। नवगीतकार रमेश गौतम, चौधरी राजेन्द्र गढ़वाली, गीत राजेन्द्र विद्यार्थी, डा. आसिफ, अमरनाथ उपाध्याय, राममूर्ति गौतम गगन, रामकुमार भारद्वाज अफरोज, एसएन चतुर्वेदी, प्रमोद पारवाला, लक्ष्मी उप्रेती, सुरेन्द्र बीनू सिन्हा, राधाकमल [illegible], राजा सारस्वत, शिव चतुर्वेदी, डा. रितु मिश्रा, लालबहादुर गंगवार, अनिल चौबे, डा. [illegible], गुरविन्द मोहन शुक्ल, मनमोहन मेहरोत्रा व रवीश बहार आदि उपस्थित रहे।

Book release



An academic gathering organised by 'shabdangan' (a literary and social organisation) was held in Rotary Bhawan Bareilly. At the gathering, famous poet Raj Bahadur Vikalp was honoured for two interesting collections of poems. *'Ritu basanti'* by Dr Suresh Chandra Gupta and *'rashtra ke prahari suno'*, written by Jyanwati Saxena were also released at the occasion.
Some of the people present at the do were Chandrakant Tripathi, Manoj Shukla, Usha Mishra, Lavlesh Dutt, Ram Prakash Goel, Dr Inder Dev Tripathi and Dr Agam Dayal.

बांग्लादेश के कवि की किताब का विमोचन

बरेली। बांग्लादेश के कवि काजी अशरफ महमूद की काव्य कृति 'प्रसाद' का विमोचन शब्दांगन की ओर से किया गया। इसका अनुवाद डा. सुरेश चन्द्र गुप्त ने किया है। बीडीए कालोनी त्रिवटीनाथ में आयोजित कार्यक्रम में कवियों ने रचनाएं भी सुनाईं। इसमें रामकुमार भारद्वाज अफरोज ने काजी महमूद के जीवन के बारे में बताया। डा. सुरेश चन्द्र गुप्त ने सुनाया, ऋतु वसंती हो रहा है जग वसंती, मन वसंती हो रहा है तन वसंती। अध्यक्षता कर रहे कवि किशन सरोज ने डा. गुप्त की कविता पर विचार रखे। संचालन कवि इन्द्रदेव त्रिवेदी ने किया। इस मौके पर प्रो. रामप्रकाश गोयल, ब्रजराज पांडेय, डा. सुरेश रस्तोगी, डा. दिनेश गोस्वामी, डा. रजनीश त्रिवेदी, मोहन चन्द्र पांडेय आदि मौजूद रहे। ब्यूरो

अमर उजाला, 24.9.08



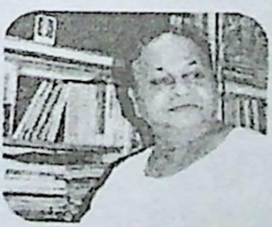
'प्रसाद' काव्य कृति का विमोचन

बरेली: साहित्यिक संस्था शब्दांगन के तत्वावधान में बीडीए कालोनी स्थित डा. सुरेश चंद्र गुप्त के आवास साहित्य भूषण किशन सरोज की अध्यक्षता में 'प्रसाद' काव्य कृति का विमोचन किया गया। बंगलादेश के कवि काजी अशरफ महमूद द्वारा लिखित काव्यकृति का डा. सुरेश चंद्र गुप्त ने हिन्दी में रूपान्तरण किया। कार्यक्रम का आरम्भ कवि मोहन पाण्डे की वाणी वन्दना से किया गया। 'प्रसाद' की पंक्तियां डा. गुप्त ने कुछ इस तरह पढ़ीं- 'चाह नहीं है बनूं जगत में किसी प्रिया के उर का हार, मुझे चाहिये केवल बनूं एक तुम्हारा ही बस प्यार' इसके अलावा भी उन्होंने [illegible] की भी पंक्तियां पढ़ीं। इस मौके पर कार्यक्रम अध्यक्ष किशन सरोज ने कहा कि डा. गुप्त की कविताओं में उनके व्यक्तित्व एवं रचनाओं का विकास पता चलता है। उन्होंने बंगला से हिन्दी में प्रसाद कृति का रूपान्तर कर कृति को भारतीय बना दिया। श्री सरोज ने भी इस मौके पर अपना गीत कुछ इस तरह गुनगुनाया - सब कुछ मुझे मालूम है...

कार्यक्रम में प्रो. राम प्रकाश गोयल, ब्रजराज पांडे, डा. सुरेश रस्तोगी मौजूद थे।

दैनिक जागरण 24.9.2008

गीता के काव्यानुवाद से मिला सर्वाधिक आत्मसंतोष



डॉ. सुरेश चंद्र गुप्त ने भले ही दर्जनों पुस्तकों का लेखन, प्रकाशन, सम्पादन किया हो पर जो आत्मसुख व संतोष उन्हें श्रीमद्भगवत गीता का काव्यानुवाद करके प्राप्त हुआ वह अतुलनीय है। हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद जब सुरेश जी संधिवात से पीड़ित होकर रोगशय्या पर पड़े थे तब गीता के पाठ ने ही उनका मनोबल बढ़ाया। श्रीगीता प्रेस की गीता डायरी में प्रकाशित श्लोकों का पाठ करते-करते उनके मन में विचार आया कि इस अतुलनीय ग्रंथ के श्लोकों का काव्यानुवाद किया जाए। योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविंद से उच्चरित श्रीमद्गीता के हर श्लोक को एक ही छंद में बांधना आसान नहीं था पर प्रभुकृपा से ही यह दुर्लभ कार्य अत्यंत सुगमता से सम्पन्न हो गया।

अभिगीता के नाम से जब यह काव्यानुवाद प्रकाश में आया तो सामान्य पाठकों व विद्वानों ने समान रूप से इसका स्वागत किया। डॉ. गुप्त की धर्मपत्नी श्रीमती इंदु गुप्त बताती है कि अनगिनत लोगों ने अभिगीता के माध्यम से श्रीमद्गीता को बड़ी सहजता से समझने की बात उनके समक्ष स्वीकारी। काव्यानुवाद की सहजता का अंदाज कुछ छंदों को पढ़ कर आसानी से लगाया जा सकता है। दसवें अध्याय के काव्यानुवाद के कुछ अंश यह है-

- श्रीभगवान उवाच- हे महाबाहु सुन
सकल श्रेष्ठ जो अब मैं तुम्हें सुनाता हूँ।
तू अतिशय प्रिय श्रद्धालु अतः हितकारी
बात बताता हूँ।
- देव औ महर्षि भी नहीं जानते, प्रकटित
लीला से होता हूँ।
क्योंकि आदि कारण तो मैं हो, सभी
भाँति इन सबका हूँ।
- जो अव्यय अनादि लोकेश्वर तत्व
ज्ञान मम जाता है।
पुरुष श्रेष्ठ वह ज्ञानी अनुपम, पाप मुक्त
हो जाता है।
- बुद्धि, ज्ञान, निर्मोह, क्षमा, इन्द्रिय
निग्रह एवं सत्य:
भय-अभय और सारे सुख-दुख अपना
जग में उत्पत्ति-प्रलय।
- समता, संतोष, अहिंसा, तप, यश
अपयश दान भाव जो हैं।
दिखते जीवों में विविध भाँति, सब भाव
मुझी से होते हैं।
- सातों महर्षि, उनके पहले सनकादि
चार, फिर मनु जो हैं
जिनकी यह सारी मनुज जाति, वैसे सब
मम संकल्प से हैं।
- इस विभूति औ योग शक्ति को तत्व
सहित जो समझा है।
निःसंदेह वह भक्त योग में सुदृढ़ स्थित
होता है।

पांचाल सवेरा 6-1-09

साहित्यकार सुरेश चन्द्र की चार किताबों का विमोचन

बरेली। शहर के साहित्यकार डा. सुरेशचंद्र गुप्त की चार पुस्तकों का विमोचन रविवार को समारोहपूर्वक किया गया।शब्दांगन संस्थ के तत्वावधान में रोटरी भवन में आयोजित इस समारोह में डा. गुप्त की काव्यकृतियों अभिगीता, लोकतांत्रिक भारत में और आत्मम्थन के साथ ही साहित्यिक कृति–साहित्यायन का



विमोचन पूर्व एमएलसी रमेश चंद्र शर्मा 'विकट' ने किया। श्री विकट कार्यक्रम के मुख्य अतिथि रहे। इस मौके पर तीनों काव्य कृतियों की समीक्षा करते हुए केसीएमटी के निदेशक डा. एनएल शर्मा ने कहा कि डा. गुप्त ने 'अभिगीता' में सरल ढंग से चरित्रों का उल्लेखकरके गीता को सग्राहयएवं सरल बना दिया गया है। 'लोकतांत्रिक भारत में' कृति में प्रेम दर्शन, जीवन संघर्ष, राजनीति लोकतंत्र भ्रष्टाचार, नैतिकता आदि समसामयिक विषयों पर गहरा चिंतन भरीकाव्य प्रतिक्रियाहै। ... गीत अनुभूति विचारदर्शन और संस्कृतिक को चौसठ कलाओं का परिचयकराते ह। 'साहित्यायन' की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए पत्रिका केसंपादक डा. लवलेश दत्त ने डा. सुरेश चंद्र गुप्त के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला। कार्यक्रम में साहित्यकार प्रो. रामप्रकाशगोयल, गीतकार ब्रजराज पांडेय व पासपोर्ट अधिकारी हंसराज विशिष्ट अतिथि रहे। इस मौके पर श्रेष्ठकृतियो केलिएडा. सुरेश चंद्र गुप्त को सम्मानित किया गया।उन्होंने अपनी रचनाधर्मिता केअनुभव सुनाए।शब्दांगन केअध्यक्ष डा. सुरेश रस्तोगी ने अतिथियों का स्वागत किया। संचालन महामंत्रीइन्द्रदेव त्रिवेदी द्वारा किया अतिथियों का आभार प्रकट किया। नवगीतकार रमेश गौतम, चौधरी राजेन्द्रगढवालीसीएराजेन विद्यार्थी,डा. आसिफ, अमरनाथ उपाध्याय, राममूर्ति गौतम गगन, रामकुमार भारद्वाजअफराज, एसएन चतुर्वेदी ,प्रमोद पारवाला, लक्ष्मी उप्रेती,सुरेन्द्र बीनू सिन्हा राधाकमल सारस्वत लतासारस्वत, शिवशंकर यजुर्वेदी ,डा. हितु मिश्रा,लालबहादुर गंगावार,अनिल चौबे, डा. नीरू अग्रवाल, राजेन्द्र मोहन शुक्ल, मनमोहन मेहरोत्राव रवीअबहार आदि उपस्थित रहे।

साहित्यायन
संपादकः डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त, म-12, त्रिवटीनाथ, बीडीए कालोनी, बरेली-05
सहयोग राशि- 25 रुपए
डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने संपादकीय में



विज्ञापन की राजनीति से लेकर दिल्ली गैंगरेप की अमानवीय घटना तक की चर्चा करते हुए हमारी प्रगति पर अपनी स्वाभाविक



उपभोक्ता अ...

डा० सुरेश गुप्ता के 'प्रसाद' का विमोचन



दृढ़ निश्चय और सतत साधना से मिली सफलता

दैनिक जागरण, बरेली, ३० जनवरी, १९९७ (५)

संक्रमण काल के बावजूद साहित्य का अस्तित्व बना रहेगा

-दिनेश पवन-

बरेली, २९ जनवरी। 'पंत की दार्शनिक चेतना' सहित चालीसों से अधिक पुस्तकों के लेखक और बरेली कालेज के हिन्दी विभाग में प्रवक्ता डा. सुरेश चन्द्र गुप्त का मानना है कि आजकल देश के नागरिकों में राष्ट्रीयता का अभाव होता जा रहा है। इसके बावजूद डा. गुप्त यह मानने को तैयार नहीं हैं कि भविष्य में साहित्य का कोई भविष्य नहीं है।

[illegible]

साहित्य ने भुलवा दिया विकलांगता का दुःख



साहित्य सेवा व शिक्षण कार्य में संलिप्तता ने डॉ. सुरेश चंद्र गुप्त को कभी एक पल के लिए भी विकलांगता का एहसास नहीं होने दिया। सम्भवतः यही कारण है कि 70 प्रतिशत विकलांग होने के बावजूद डॉ. गुप्त 75 वर्ष की आयु में भी किसी जवान से अधिक साहित्य सृजन कर रहे हैं।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. गुप्त ने कविता, गद्य, यात्रा वृतान्त, उपन्यास लेखन में तो अपनी प्रतिभा सिद्ध की ही, पत्रकारिता में भी नाम रोशन किया। अंग्रेजी व बंगला कविताओं को अनुवाद किया तो कवि व पाठक को यह कहने का अवसर नहीं दिया कि इस बिंदु को और बेहतर किया जा सकता था। श्रीमद्भगवत गीता के श्लोकों को ऐसा काव्यानुवाद किया कि हर श्लोक एक ही छंद में समा गया। गीता जी का काव्यानुवाद भी किया मात्र 23 वर्ष की आयु में जब युवा मन कामायनी पढ़ने को मचलता है।

आज भी याद है शाहजहाँपुर के युवाओं का आजादी में योगदान

शाहजहाँपुर के गल्ला व्यवसायी श्रीमान लालता प्रसाद के घर पर कार्तिक शुक्ल पंचमी को जन्में सुरेश चंद्र की वास्तविक जन्म तिथि 17 नवम्बर है पर घोषित तिथि 4 जनवरी 1940 है। आजादी की लड़ाई में शाहजहाँपुर के युवाओं का योगदान वह आज भी नहीं भूले हैं। 15 अगस्त 1947 को उनके गोदाम की 25 फुट ऊँची छत पर 70 फुट ऊँचे बांस पर तिरंगा लहराये जाने की बात वह बड़े गर्व से बताते हैं। झंडे को टिका रखने के लिए उनके चारों और [illegible]

वैद्य पं. हरिश्चन्द्र मिश्र के निःशुल्क उपचार ने मानो सुरेश जी का नया जीवन दिया। पर विकलांगता का प्रतिशत कम हुआ मिशन अस्पताल के निदेशक मनएस मखानी के हाथों हुए ऑपरेशन से।

बायें पैर में कैलीपर पहन कर जाते थे परीक्षा देने

विकलांगता के बावजूद सर्वाधिक अंकों के साथ इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। बीए की परीक्षा भी वर्ष 68 में पास की। लखनऊ से प्रथम श्रेणी में एमए पास करके शोध कार्य में लग गये। नौकरी के लिए साक्षात्कार के दौरान गुप्त जी को अनेक कटु अनुभव हुए। वर्ष 73 में बरेली कालेज में शिक्षण कार्य का अवसर मिल गया। यहीं से जून 2000 में सेवानिवृत्त हो गये। बरेली कालेज में शिक्षण सेवा के साथ ही साहित्य सृजन का कार्य निश्चित चलता रहा। बरेली की इंदु गुप्ता के साथ विवाह हो गया। 1977 में प्रथम [illegible]

प्रकाशन का भी संचालन करते हैं। उनकी अधिकांश पुस्तकें यहीं से प्रकाशित हुई हैं। पिछले नौ वर्ष से डा. गुप्त के सम्पादन में त्रैमासिक पत्रिका साहित्यायन भी अभिलेख प्रकाशन से ही प्रकाशित होती है। डॉ. गुप्त के शोध ग्रंथ (पंत की दार्शनिक चेतना) को पूरे भारत का सर्वश्रेष्ठ शोध ग्रंथ घोषित किया गया। इसके लिए मेरठ में हुए एक समारोह में डॉ. गुप्त को सम्मानित व पुरस्कृत भी किया गया। वर्ष 99 में छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण नामक शोध प्रबंध पर उन्हें डी. लिट् की उपाधि प्रदान की गयी। डा.गुप्त के दो पुत्र अभिनव गुप्त व अभिलेख गुप्त हैं। दोनों ही अच्छी सर्विस के कारण इन दिनों दिल्ली व गुड़गाँव में रह रहे हैं। पूरी तरह आस्तिक होते हुए भी डॉ. गुप्त कर्म को जीवन का एक आवश्यक अंग मानते हैं। पचास से अधिक पुस्तकों के लेखक, सम्पादक, प्रकाशक [illegible]

कैम्पस की खबरें

डी.लिट की उपाधि



बरेली कालेज में हिन्दी विभाग के रीडर *डा. सुरेश चन्द्र गुप्त* को रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से डी.लिट की उपाधि दी गई है।

उनके शोध प्रबंध का विषय 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण' है। उन्होंने पंत की दार्शनिक चेतना पर पीएचडी की है। इस शोध प्रबंध के लिए उन्हें इसी वर्ष जनवरी माह में पुरस्कृत भी किया गया है।

उपलब्धि: भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका

— डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त

डा. सुरेशचन्द्र गुप्त को साहित्य-सुमेरु सम्मान

(६) दैनिक जागरण, बरेली, १० फरवरी, १९९७

विविध समाचार

गंभीर पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली दिक्कतों पर चिंता जताई

-जागरण संवाददाता-

डा. सुरेश गुप्त के लघु प्रबंध 'हंस चवाहिए एक अध्ययन' का लोकार्पण

बरेली के सुरेश चंद्र गुप्त को आत्रेय पुरस्कार

मेरठ, 5 जनवरी। अमर सिंह आत्रेय हिंदी विकास संस्थान द्वारा आत्रेय सम्मान पुरस्कार आज डा. सुरेश चंद्र गुप्त को उनके शोध ग्रंथ 'पंत की दार्शनिक चेतना' के लिए दिया गया। उन्हें ग्यारह हजार रुपये का चेक और स्मृति चिन्ह भेंट किया गया। मेरठ कालेज में आयोजित कार्यक्रम में आत्रेय सम्मान बरेली कालेज बरेली के हिंदी विभाग के डा. सुरेश चंद्र गुप्त को दिया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डा. राजेंद्र भूषण सिंघल ने उन्हें ग्यारह हजार रुपये का चेक भेंट किया।

डा. सुरेश गुप्त को इस वर्ष का आत्रेय पुरस्कार मिलेगा



बरेली 24 दिसम्बर। बरेली कालेज हिंदी विभाग के वरिष्ठ प्रवक्ता डा. सुरेश चंद्र गुप्त को इस वर्ष का आत्रेय स्मृति पुरस्कार प्रदान किया जायेगा। यह पुरस्कार उनके शोध ग्रंथ पंत की दार्शनिक चेतना पर दिया जायेगा।

यह जानकारी देते हुए प्रवक्ता डा. आर. पी. सिंह ने बताया कि अमर सिंह आत्रेय हिंदी विकास संस्थान मेरठ के द्वारा प्रति वर्ष हिंदी साहित्य में पी. एच. डी. के लिए स्वीकृत तथा प्रकाशित शोध प्रबन्धों के आधार पर यह पुरस्कार घोषित किया जाता है। शिक्षक नेता डा. सुरेश रस्तोगी के अनुसार यह पुरस्कार डा. गुप्त को मेरठ में पांच जनवरी को आयोजित समारोह में प्रदान किया जायेगा।

अष्टम सोपान

चित्रवीथी



लाला लालताप्रसाद गुप्त

(1888–1948)

पुण्य चरणों में समर्पित साधना अविराम।
सृजन सरिता में प्रवाहित पुष्प यह अभिराम ।।



अग्रज सूरजप्रसाद गुप्त
(1930-2000)



अनुज सुरेन्द्रनाथ विवाह हेतु अग्रज
डॉ. गुप्त को तैयार करते हुए

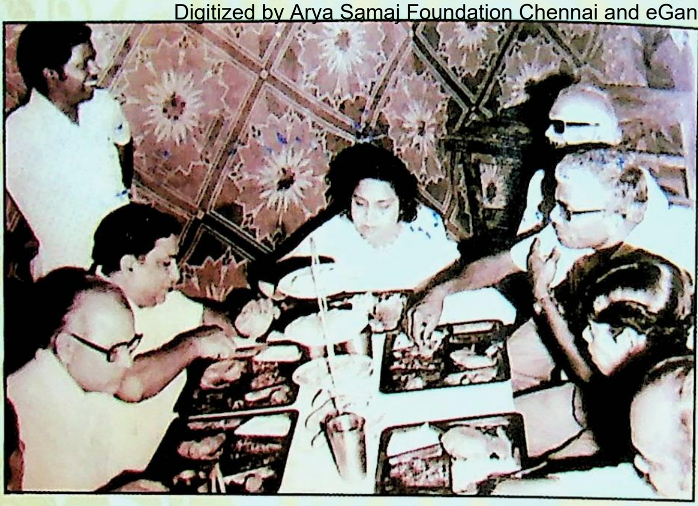


डॉ. गुप्त धर्मपत्नी इन्दु जी एवं अनुज सुरेन्द्रनाथ के साथ

डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त : विविध छवियाँ



सबसे पुराना उपलब्ध चित्र
'ममानुज' नामक संस्मरण में
इसी का उल्लेख है।



विवाह के उपलक्ष्य में प्रीतिभोज में (बैठे हुए) प्रो. कमथान, प्राचार्य डॉ. मेहरा, श्रीमती विमल मेहरा हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. कुन्दनलाल जैन एवं अन्य। पीछे खड़े हुए श्री हरिओम अग्रवाल



विवाह के एक माह पश्चात् गुप्त दम्पत्ति



एक वर्षीय पुत्र अभिनव के साथ गुप्त दम्पत्ति

अभिलेख के मुंडन (1984) के दो चित्र

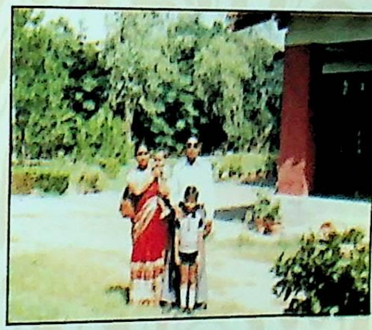




गुप्त जी की बहन सुशीला देवी की गोद में कनिष्ठ पुत्र अभिलेख



महादेवी वर्मा के आवास पर
डॉ. गुप्त दम्पत्ति (1984)



प्रख्यात कथाकार अमृत राय
के आवास पर (1984)



सभा को सम्बोधित करते डॉ. गुप्त जी (1982)
मंच पर बैठे हुए प्रो. रामप्रकाश गोयल
और निरंकार देव सेवक



गुप्त जी सपरिवार (गोद में अभिलेख)

गुप्त दम्पति के विवाह की रजत जयन्ती के चित्र

15 जून 2002, बरेली होटल



मौसी उर्मिला रानी और
श्री बी.एस. अग्रवाल के साथ



तीन सालियों और उनके पति के साथ



दोनों पुत्रों के साथ



श्री हरिओम अग्रवाल के परिवार के साथ



सालियों के पुत्रों के साथ
गुप्त दम्पति



प्रोफेसर मित्रों डॉ. यू.सी. पाण्डेय,
डॉ. श्रीवास्तव और डॉ. पी.वी. अवस्थी
के परिवार के साथ

ज्येष्ठ पुत्र अभिनव के विवाह के समय के चित्र



प्रो. मधुकर एवं एच. पी. श्रीवास्तव
के मध्य गुप्त जी



डॉ. गुप्त जी मित्रों प्रो. महेन्द्रू व
एच. पी. श्रीवास्तव के साथ



डॉ. प्रमोद बाला मिश्र, रामजीत मिश्र
व डॉ. अवनीश मिश्र
(प्राचार्य, एस. एस. कॉलेज, शाहजहाँपुर) के साथ



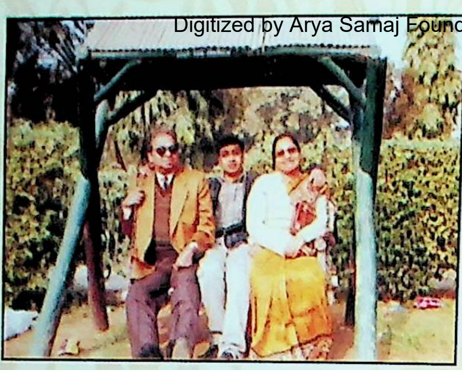
अभिनव व धर्मपत्नी के साथ गुप्त जी



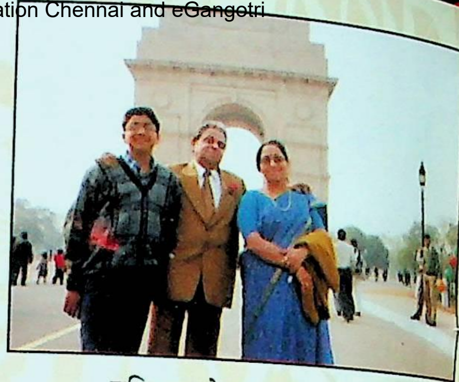
दोनों पुत्रों व अनुज सुरेन्द्र के साथ



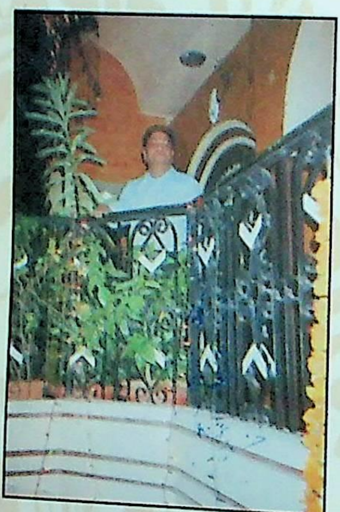
सपरिवार ड्राइंग रूम में गुप्त जी



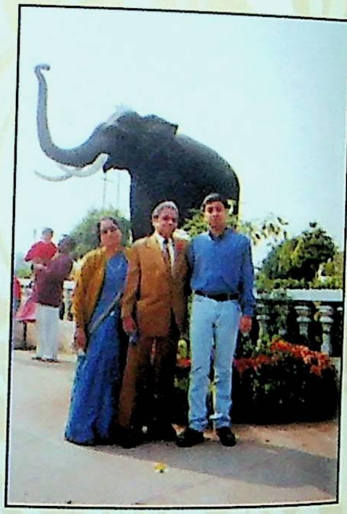
रेलवे संग्रहालय, दिल्ली में



इण्डिया गेट पर (दिल्ली में)



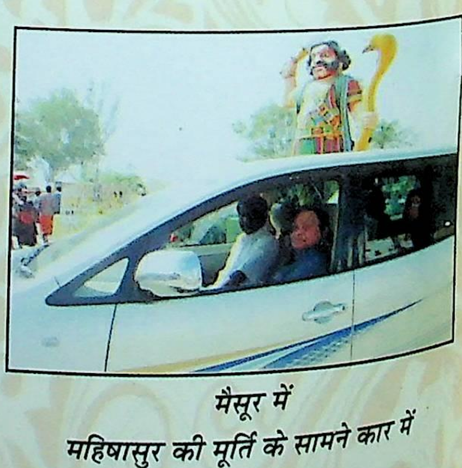
टेरेस पर गुप्त जी



छतरपुर मंदिर परिसर में (दिल्ली)



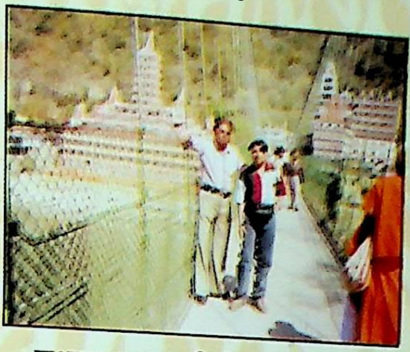
मैसूर जाते समय
इन्दिरा गांधी एअरपोर्ट पर गुप्त जी



मैसूर में
महिषासुर की मूर्ति के सामने कार में



नैनीताल जाते हुए मार्ग में



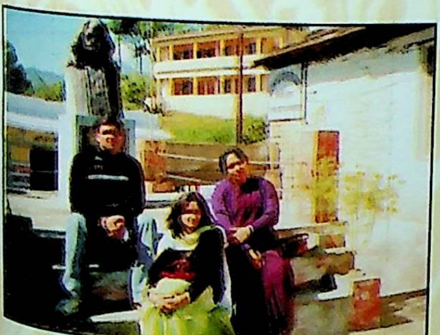
लक्ष्मण झूला (ऋषिकेश) में सपरिवार



अनासक्ति आश्रम कौसानी में
पुत्रवधू नेहा, इन्दु जी, गुप्त जी एवं पुत्र



गौतम बुद्ध पार्क लखनऊ में
सपरिवार गुप्त जी



सुमित्रानन्दन पन्त के आवास पर (पीछे)
पंत जी की मूर्ति



मैसूर में एक होटल के प्रांगण में



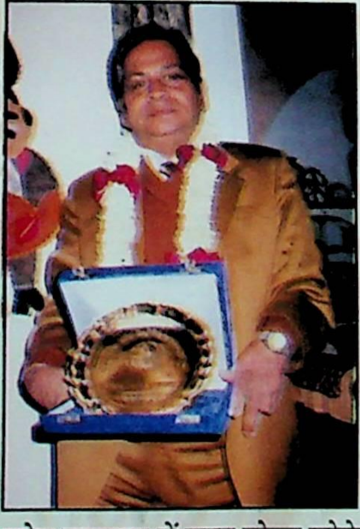
पंत की दार्शनिक चेतना का
कुलपति डॉ. एम. डी. तिवारी
द्वारा बरेली कॉलेज के
सभागार में लोकार्पण



मोदी सभागार, मेरठ में
आत्रेय पुरस्कार
प्राप्त करते डॉ. गुप्त
मंच पर डॉ. कमला आत्रेय,
डॉ. शशिभूषण सिंहल आदि



पुरस्कार प्राप्ति के पश्चात्
आवास पर अग्रज
सूरज प्रसाद गुप्त और शिष्य
डॉ. मोहन लाल मौर्य के साथ



आत्रेय पुरस्कार में प्राप्त गोल्ड प्लेटेड
स्मृति चिन्ह के साथ डॉ. गुप्त



हिन्दी दिवस पर भविष्य निधि कार्यालय
में स्मृति चिन्ह के साथ



डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'
के कर-कमलों से डॉ. गुप्त का अभिनन्दन



विशप मण्डल इं. कॉ. के सभागार में
सभा को सम्बोधित करते डॉ. गुप्त



डॉ. ज्योति स्वरूप द्वारा 'हंस जवाहिर...' का लोकार्पण
बैठे हुए डॉ. आर. पी. सिंह (प्राचार्य)
एवं डॉ. रमाकान्त शर्मा



'शब्दांगन' की गोष्ठी में
डॉ. गुप्त का सम्मान एवं
ऋतु बसंती का लोकार्पण



'शब्दांगन' की गोष्ठी में
'परीज़ाद' का लोकार्पण



सभा को सम्बोधित करते
डॉ. गुप्त

'देवी, माँ, सहचरी, प्राण' के लोकार्पण के दो चित्र



डॉ. गुप्त के आवास पर (11.1.2014)
डॉ. मुरारी लाल सारस्वत, श्री रमेश विकट, इन्द्रदेव त्रिवेदी आदि



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त की काव्यकृति देवी, माँ, सहचरी प्राण को रोटरी भवन में लोकार्पण 7 मार्च 2014
कवयित्री डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी,
श्री रमेश चन्द्र शर्मा 'विकट' (पूर्व एम.एल.सी.),
डॉ. विनय मोहन (मुख्य अतिथि),
डॉ. रामजी मिश्र (निदेशक आकाशवाणी, इलाहाबाद)
डॉ. एन. एल. शर्मा (प्रमुख वक्ता)



प्रो. हरिश्चन्द्र वर्मा के साथ गुप्त जी
(ड्राइंग रूम में)



प्रो. हरिमोहन के साथ गुप्त जी
(ड्राइंग रूम में)



डॉ. सुधेश द्वारा 'साहित्यायन' का लोकार्पण



प्रो. हरिमोहन द्वारा डॉ. गुप्त की कृति 'शोधायन' का लोकार्पण



पीएच.डी. मौखिकी के अवसर पर
डॉ. कौशल नन्दन गोस्वामी,
डॉ. भारद्वाज और डॉ. नीरद
के साथ गुप्त जी



मित्रवर ललितकिशोर मिश्र के
परिवार के साथ गुप्त दम्पति



शिक्षा मंत्री डॉ. नेपाल सिंह द्वारा
स्वर्ण जयन्ती वर्ष का लोकार्पण



प्रोफेसर केशवदत्त रुवाली
और डॉ. गुप्त

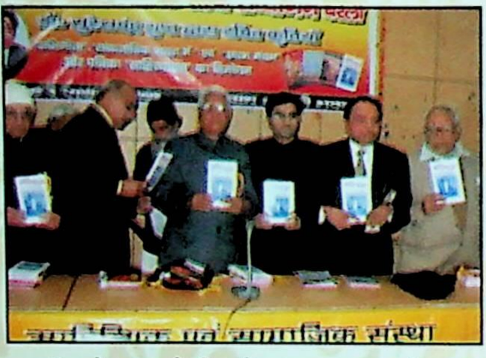


डॉ. गुप्त द्वारा अंजना राठौर की काव्यकृति
'घने बादलों से' का लोकार्पण



डॉ. भक्तराज शास्त्री द्वारा
'स्मृति के वातायन' का लोकार्पण

70वीं वर्षगाँठ पर अभिनन्दन एवं लोकार्पण



डॉ. सुरेश रस्तोगी, प्रो. रामप्रकाश गोयल
डॉ. एन.एल. वर्मा, इन्द्रदेव त्रिवेदी,
श्रीमती इन्दुगुप्त आदि



श्री विष्णु शंकर अग्रवाल,
प्रो. रामप्रकाश गोयल एवं
अन्य साहित्यकार



प्रो. रामप्रकाश गोयल, डॉ. रस्तोगी,
श्री रमेश चन्द्र शर्मा 'विकट' डॉ. लवलेश,
ब्रजराज पाण्डेय आदि के द्वारा
'साहित्यायन' के सुरेशचन्द्र अंक का लोकार्पण



श्री हरिओम अग्रवाल, ब्रजराज पाण्डेय,
श्री हंसराज भाटी (पासपोर्ट अधिकारी)
आदि मंच पर



श्री हरिओम अग्रवाल, ब्रजराज पाण्डेय,
श्री हंसराज भाटी (पासपोर्ट अधिकारी)
मंच पर



पौत्री शुभांगी डॉ. गुप्त को
केक खिलाती हुई



डॉ. ज्योति स्वरूप, डॉ. उमाकान्त शर्मा आदि
के साथ हिन्दी व्यवहार संगठन में गुप्त दम्पत्ति



डॉ. गुप्त का अभिनन्दन



'प्रसाद' का लोकार्पण रामकुमार 'अफरोज',
इन्द्रदेव त्रिवेदी, ब्रजराज पाण्डेय आदि



प्रो. नजीर मोहम्मद और डॉ. गुप्त जी



हिन्दी दिवस पर मुख्य अतिथि व
वक्ता डॉ. गुप्त का अभिनन्दन



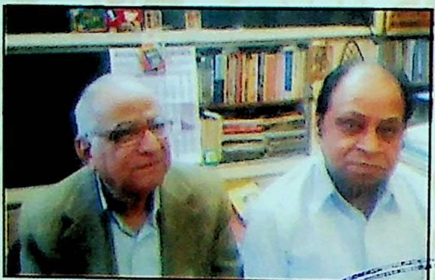
देवी माँ सहचरी प्राण के लोकार्पण के प्रीतिभोज में
इन्दु जी अपनी षष्ठीपूर्ति के अवसर पर
केक काटती हुई सपरिवार



सुरेश रस्तोगी, गुप्त जी, रामप्रकाश गोयल एवं
ब्रजराज पाण्डेय (आवास पर गुप्त जी का अभिनंदन)



किशन सरोज, रामप्रकाश गोयल,
ब्रजराज पाण्डेय आदि काव्य गोष्ठी



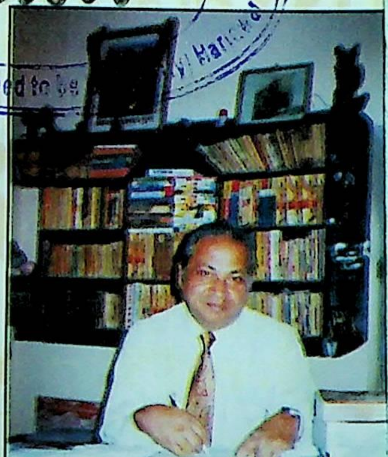
मित्रवर प्रो. ललित मिश्र के साथ गुप्त जी



एक गोष्ठी के समय घर का दृश्य



'किंगडम ऑफ ड्रीम्स' के प्रांगण में
व्हीलचेयर पर गुप्त जी



डॉ. गुप्त अपने अध्ययन कक्ष में

6



डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त :
विहंगावलोकन

जन्म : 4 जनवरी 1940,
शाहजहाँपुर (उ.प्र.)

शिक्षा : एम.ए.,पीएच.डी.(लखनऊ वि.वि.)
डी.लिट्. (रुहेलखण्ड वि.वि.)

लेखन : कविता, कहानी, नाटक, निबंध, समीक्षा, संस्मरण, डायरी, अनुवाद आदि कई विधाओं में

सम्पादन-प्रकाशन : नागरी, पांचाली, साहित्यायन

प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ :-

शोधग्रंथ : हंस जवाहिर : एक अध्ययन
पंत की दार्शनिक चेतना
छायावादोत्तर हिन्दी काव्य का दार्शनिक विश्लेषण

काव्यग्रंथ : मनपाँखी
स्वर्ण जयन्ती वर्ष
गीत श्री
ऋतु बसंती
आत्ममंथन
लोकतांत्रिक भारत में
देवी माँ सहचरी प्राण

जीवनी : विश्व के महान साहित्यकार कविवर सुमित्रानन्दन पन्त
(उ.प्र.हिन्दी संस्थान से प्रकाशित)
बाबा नागार्जुन
(उ.प्र.हिन्दी संस्थान से प्रकाशित)

संस्मरण : स्मृति के वातायन
स्मृति सिन्धु से

बाल उपन्यास : परीज़ाद

यात्रावृत्त : जैसे उड़ि जहाज को पंछी

अनुवाद : अभिगीता (गीता का काव्यानुवाद)
प्रसाद (बाग्ला गीतों का लिप्यांतर)

विविध : शोधायन
किंचित मननीय

सम्पर्क : 'उत्थान' एम-12, बी.डी.ए. कालोनी, त्रिवटीनाथ, बरेली
चलयत्र : 9568714129
9411657486



प्रकाशक/वितरक

अभिलेख प्रकाशन

'उत्थान', एम-12, त्रिवटीनाथ कालोनी, बरेली

चलयंत्र : 9568714129, 9457790835